भारतीय संगीत का साहित्यधार- राधा कृष्ण की लीलाएं

पंकज शर्मा

भूतपूर्व छात्र
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी

'वासुदेव सुतम् देवं कंस चारुद मर्दनम्
देवकी परमानंदम् कृष्णं वन्दे जगत् गुरु'

भारतीय परिवेश में राधा कृष्णा बहुत ही महत्व पूर्ण स्थान रखता है। प्रकृति से लेकर समस्त मानव जीवन शैली की बात करें तो राधा कृष्ण के जीवन प्रसंग हम लोगों के परिवेष में दूध में शक्कर की तरह घुल गए हैं जिससे भारतीय संस्कृति वो मिठास अन्यास ही देखने को मिलती है।

फिर दर्शन शास्त्र से लेकर साहित्य कला की, तो राधा कृष्ण की प्रसंग एवं उनकी लीलाओं के एक अद्वैत सम्बन्ध को झुटलाया नहीं जा सकता। यदि इनके छवि और दर्शन को इन विषयों से अलग कर दिया जाये तो ये सारे विषय नीरस प्रतीत होने लगते हैं। क्योंकि कोई भी साहित्य बिना रस, भाव, भक्ति, संयोग, वियोग श्रृंगार के प्राणहीन महसूस लगता है।

साहित्य कला, चित्र कला, मूर्ति कला, सब ही इनके बिना मृत शरीर की तरह है, क्योंकि कोई भी कला कृति तब तक पूर्ण नहीं मानी जाती जब तक उसमे किसी प्रकार की रस धार ना प्रवाहित हो, और किसी भी भाव या रस की परिणिति प्रेम ही है, प्रेम ही है जिसकी बूंद मात्र मिलने से कला में इस कदर निखार आता है जिस तरह शरद रात्रि को गिरने वाली बूंद सीप में मोती पैदा कर देती है और इसी प्रेम की पराकाष्ठा है "राधा और कृष्ण"

इन दोनों नामों को अलग किया ही नहीं जा सकता क्योंकि ये वास्तव में एक ही है।

एक शरीर है तो दूसरी उसकी आत्मा...

एक लक्षण है तो दूसरा उसका लक्ष्य...

एक साध्य है तो दूसरी उसकी साधना...

एक कर्म है तो दूसरी उसकी प्रेरणा...

जहाँ कृष्ण की आत्मा राधा में बसती है वो कर्म भले ही कुछ भी करें, लेकिन उनकी साधना, लक्ष्य और प्रेरणा और उनके कर्म की परिणिती राधा में जाके ही रुक जाती है।

इसका बड़ा ही सुंदर प्रमाण इस काव्य में देखने को मिलता है कि–

"श्याम तोरी बंशी पुकारे राधा नाम"

भारतीय दर्शन और कला में इनका जीवन एक आदर्श तथा आधार स्तम्भ क रूप में लिया गया है।

सूरदास जी ने अपने एक भजन में इनके प्रत्युत प्रेम स्वरुप का बड़ा ही सुंदर एवं जीवंत वर्णन किया है जहाँ द्वैत भेद ही मिट जाता है और अद्वैत स्वरुप में प्रेम स्थापित हो जाता है।

श्याम तोरी मुरली नेक बजाऊं
जोई जोई तान भरो मुरली में, सोई सोई गाय सुनाऊं
हमरी बिंदिया तुम ही लगाओ, मै सिर मुकुट धराऊं
हमरे भूषन तुम सब पहिरो, मै तुम्हरे सब पाऊं
तुम दधि बेचन जाओ वृन्दाबन, मै मग रोकन आऊँ

मानिनी होकर मान करो तुम, मैं तोहे आन मनाऊं
'सूर' श्याम, तुम बनो राधिका, मैं नंदलाल कहाऊं
(भजनांजलि)

अब अगर हम बात करते हैं संगीत कला की तो हम्मरे भारतीय संगीत में राधा कृष्ण के प्रसंग बहुत अहमियत रखते हैं । भरत के नाट्य शास्त्र से ध्रुपद, ख्याल ठुमरी, गीत, भजन, *और यहाँ तक चित्र पट संगीत इनके प्रसंगों से अछूता नहीं रह पाया है।*

"रसौ वै सः " ..प्रत्येक कला का आधार रस ही है। बिना इसके आनंद की कल्पना नहीं की जा सकती और जब हम संगीत की बात करें तो उसमे हम रसास्वादन ही करते हैं और राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं में हमें सभी प्रधान रसों की अनुभूति होती है । चाहे वह श्रृंगार का संयोग हो या वियोग का विरह, चाहे भक्ति, करुण हो या फिर होरी का हास्य, और या फिर आत्म निवेदन से परिपूर्ण निवैध सभी में उनकी लीलाओं का अंश देखने को मिलता है। तो हमारा संगीत उनसे कैसे अलग रह पता । हमारे संगीत का साहित्य इन्ही के प्रेमाश्रित है

भारतीय संगीत की लगभग सभी विधाएं एवं उनमे कृष्ण राधा की प्रसंग का स्थान और महत्व उदाहरण स्वरुप देखते हैं।

धरुपद धरुपद की रचनाओं में राधा कृष्ण के प्रसंग

कुंजन में रच्यो रास, अदभुत गति लिए गोपाल,
कुंडल की झलक देख कोटि मदन ठठक्यो है
धमार धमार गायन में संयोग श्रृंगार का एक उदाहरण
पनघट रोके मेरो गैल, माई तेरो छैल बरज ना माने,
करी हारी विनती ब्रज नारी भरन देत न नीर मुरारी,
रामरंग ऐसो निठुर अरज ना मानी
एक और उदाहरन धमार में
ए री मैका आज मिले बनवारी जमुना तट, हाथन रंग पिचकारी
अबीर गुलाल मालत मुख मेरे देत हजारन गारी
(अभिनव गीतांजली भाग दो)

ख्याल गायन

कृष्ण द्वारा गोपिकाओं व राधा को रिझाने व जिझाने का भाव तथा उसमे इन गोपिकाओं और राधा के द्वारा उल्हाना के भाव का बहुत ही सुंदर वर्णन इस बंदिश में किया गया है

राग...तिलक कामोद...तीनताल में निबद्ध

स्थाई ------ **नीर भरन** कैसे जाऊं सखी अब डगर चालत मोसे करत रार सखी

आन्तरा ---- ऐसो चंचल चपल हट नटखट, मानत न काहू की बात

बिनती करत मै तो गई रे हार सखी ठुमरी

राग खमाज में "कौन गली गयो श्याम "में वियोगिनी राधा की छवि पर एक बहुत ही लगभग सभी प्रचलित गायकों द्वारा

गायी गयी है जिसमे वियोग विरह श्रृंगार का अनूठा भाव देखेने को मिलता है।

राग खमाज में वियोग श्रृंगार का एक उदाहरन देखने को मिलता है।

श्याम बिना मोरी सुनी अटरिया हो राम
गोकुल ढूंढूं वृन्दाबन ढूंढूं, ढूंढ फिरी नन्द ग्राम

इसके अलावा अगर हम लोग बात करते हैं भक्ति संगीत की तो य पक्ष भी पूरी तरह से राधा कृष्ण के प्रसंगों पर आश्रित दिखता है।

इन सब बातों से ये निष्कर्ष निकाल सकते हैं या मान सकते हैं की भारतीय संगीत की कोई भी विधा, चाहे ध्रुपद या धमार हो या ख्याल और ठुमरी या गीत और भजन, कजरी चौती और फिल्म संगीत। सभी में रद्द कृष्ण के प्रेम लीलाओं की व्यापकता दृष्टिगोचर होती है।

और इन के बिना भारतीय संगीत के उस स्तर की परिकल्पना नि की जा सकती जो परम सुख की अनुभति दायक होध अगर संगीत में से राधा कृष्ण के प्रसंग को नकार दिया जाये तो संगीत तो होगा कहने के लिए पर अधुरा...............

मध्यकालीन स्वामी हरिदास जी के संगीतात्मक पदों में राधाकृष्ण

प्रीति सिंह

अतिथि प्रवक्ता (सितार)

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

संगीत और सृष्टि क्रम में ऊँ को, नाद ब्रह्म परमेश्वर कहा गया है तभी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नादाधीन है। संगीत का मूलाधार नाद ही है जिसके दो स्वरूप है- पहला 'आहत' जो इस लौकिक संसार की परिधि में सिमट गया है और दूसरा है 'अनाहत' अर्थात 'अनहद' जो अपनी तात्विकता लिए हुए परमात्मा के अलौकिक स्वरूप से एकाकार हो गया है। उस अनहद स्वरूप की साधना किसी विरले ही संत फकीर ने की है और संगीत को अपने इष्ट की उपासना में सार्थक माना है ऐसे ही संतो में स्वामी हरिदास जी का नाम सर्वोपरि है जिनके माध्यम से भारतीय संगीत को एक नई राह मिली। स्वामी जी को यदि भारतीय संगीत का रक्षक कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्वामी हरिदास जी को कुछ ग्रन्थों में नाद ब्रह्मयोगी भी कहा गया है। क्योंकि उन्होंने नाद के माध्यम से उस ब्रह्म से साक्षात्कार कर लिया था।

स्वामी हरिदास जी के जन्म समय के बारे में विद्वानो में मतान्तर पाये जाते हैं। सम्भवतः स्वामी हरिदास जी का जन्म 1535 ई. में वृन्दावन के निकट राजपुर नामक ग्राम में एक प्रतिष्ठित धनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। आपके गुरू श्री आशुधीर थे। आपकी माता का नाम गंगा था। आपका परिवारिक वातावरण ईश्वरीय भक्ति से ओत-प्रोत था संगीत के संस्कार पूर्व जन्मों के सहयोग से ही मिलते हैं। बाल्यावस्था में संगीत का बीज प्रस्फुटित होना एक ईश्वरीय कृपा है। स्वामी जी का यही संस्कार आगे चलकर कृष्ण भक्ति के रूप में परिलक्षित हुआ।

25 वर्ष की युवावस्था में आप वृन्दावन आ गये और ''निधिवन-निकुंज'' नामक कुटिया में अपना निवास बना लिया। एक अति साधारण-सी झोपड़ी, एक गुदड़ी और मिट्टी के बर्तन ही आपकी दौलत थी। उन्होंने बेहद साधारण जीवन व्यतीत किया। ब्रज के कण-कण में गुंजायमान बांसुरी की मधुर ध्वनि ने स्वामी जी को आत्मविभोर कर दिया। इससे प्रेरित होकर ब्रज की मिट्टी में, यमुना जी के प्रवाह के साथ आपने आराध्य श्रीकृष्ण की लीलाओं एवं झाकियों को मूर्त रूप दिया।

हरिदास जी के सांगीतात्मक पदों में राधा कृष्णः

यह सर्वविदित है कि स्वामी हरिदास जी महान संगीतज्ञ थे, साथ ही एक श्रेष्ठ कवि भी थे। उनकी दो कृतियाँ क्रमशः 'केलिमाल' एवं 'रस सिद्धांत' के पद आज भी चर्चित हैं। ''केलिमाल'' में 128 पदों की रचना है। रसिक शिरोमणि स्वामी हरिदास जी श्री श्यामा श्याम कुंजबिहारी के अनन्य उपासक, परम विरक्त रससिद्ध गायकों में अग्रगण्य माने गए हैं। स्वामी जी की उपासना वैराग्यमूलक माधुर्यभाव

की थी। वे श्यामाश्याम कुंजबिहारी के युगल स्वरूप की उपासना करते थे।

स्वामी हरिदास जी का संगीत बहुत ही व्यापक था। उनका संगीत प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ था, जैसे कई पदों में कोकिला का आलाप करना, मेघ का गरज कर मृदंग बजाने का आभास देना, मोर का नृत्य एवं पपीहा का सुर देना उन्हें प्रकृति के साथ मग्न होने का आभास कराते हैं। स्वामी जी के अधिकांश पद ध्रुपद एवं ख्याल में गाने योग्य हैं। और उन्होंने अपने पदों के भावों के अनुरूप ही रागों का चयन किया है। उनके सभी पद गेयात्मक है। विषयवस्तु की दृष्टि से स्वामी जी के पदों में एक ही भाव हैं- श्री श्यामा-श्याम का नित्य विहार। स्वामी जी की उपासना पद्धति में संगीत सर्वत्र छाया हुआ है। हरिदास जी श्री श्यामा- श्याम के विषय में जो कुछ भी देखते हैं, सोचते हैं, करते हैं, वह किसी न किसी संगीत धारा (गायन, वादन एवं नृत्य) से जुड़ा हुआ होता है।

हरिदास जी के काव्य में संगीत के सम्पूर्ण तत्व उपलब्ध होते हैं। उनके पद राग और ताल के सांचे में अँगूठी में नगीने की तरह जड़े हैं। इसके अतिरिक्त संगीत में प्रयुक्त होने वाले जो भी शब्द विशेष है, उनका प्रयोग हरिदास जी ने बहुत ही सलीके से किया है एवं संगीतात्मक एवं भावमय सुन्दरता को ध्यान में रखा है। स्वामी जी के आराध्य श्री श्यामा-श्याम और सखी हरिदासी तीनों ही संगीत के मर्मज्ञ हैं, अतः उनकी क्रीड़ाओं में संगीत का स्थान मुख्य है। यह संगीत शास्त्रीय होते हुए विविध भी है। इसमें गायन, वादन एवं नृत्य तीनों का ही समावेश है। स्वामी हरिदास जी की रचनाओं में संगीत के तीनों पक्षों से संबंधित शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो उनके संगीत संबंधी ज्ञान को प्रकट करता है।

स्वामी जी के उल्लिखित सांगितिक शब्दों का निम्न प्रकार से विभाजन किया जा सकता है-

1. गायन 2. वादन 3. नृत्य

संगीत के आधार 'राग-रागिनी' यह दो शब्द स्वामी जी की रचनाओं में अनेक बार आये हैं। स्वामी हरिदास जी की रचनाओं में दूसरा महत्वपूर्ण शब्द है 'संगीत' जो संगीत संबंधी क्रियाकलापों का दिग्दर्शन कराता है। संगीत शब्द से गायन, वादन, नृत्य इन तीनों का बोध होता है।

एकल गायन-वादन एवं नृत्य के उदाहरण के साथ-साथ समूह गान, समूह वाद्यवादन एवं समूह नृत्य के अनेकानेक उदाहरण देखे जा सकते हैं।

''डोलत झूलत बिहारी-बिहारिनी राग रमि रहयो।
काहू के हाथ अघौटी, काहू के बीन, काहू के मृदंग।।
कोऊ गहेतार, काहू के अरगजा छिरकत रंग रहयौ।।''[1]

एक अन्य उदाहरण-

कुंज बिहारी नाचत नीके
लाड़िली नचावति नीके
औघट ताल धरे श्री श्यामा ताताथेई
ताताथेई, बोलत संग पी के
तांडव लास और अंग को गनै
जे-जे रूचि उपजति जी के
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा को
मेरू सरस भयौ और रसगुनी परे फीके।[2]

उपर्युक्त पद में एकल संगीत तथा समूह संगीत दोनों का मिलाप है जैसे श्री राधे नृत्य के बाल बोल रही हैं तथा श्री श्याम नृत्य कर रहे हैं। तांडव लास्य इस नृत्य विशेष के अंग को प्रस्तुत कर रहे हैं।

गायन-वादन के साथ-साथ नृत्य का वर्णन, नृत्य के बोलों का वर्णन स्वामी जी ने अधिक किया है। अलाप शब्द का रूप 'अलापत' अथवा अलाप करना है या गायन करना। दोनों का अटूट संबंध है। गायन का अर्थ गायन करना, कोई भी राग, स्वरक्रम, सशब्द और सस्वर, कोई गीत कोई राग, ब्रज भाषा के गावत शब्द के अन्तर्गत आते हैं-

''कुंज बिहारी, हों तेरी बलाई लेऊँ, नीके हों गावत।''[3]

किसी भी संगीत का महत्वपूर्ण आधार सुर होता है, सुर अर्थात् मधुर ध्वनि-

1. सुर देत पंछी राज बन्यौ।
श्री हरिदास जी के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी'

गायन-वादन एवं नृत्य यह तीनों कलाएं परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर रहती हैं। इसी संदर्भ में स्वामी जी ने संगीत शब्द का प्रयोग किया है। श्री श्याम-श्यामा का गायन तथा नृत्य की क्रीड़ाओं में उनकी सखियों आदि किस प्रकार अनेक वाद्यों द्वारा उनकी संगति करती है, उनके पदों में वर्णित है। उनके समय में भी गायन तथा नृत्य में संगति करने की परम्परा थी।

1. परस्पर राग जम्यो, समंत किन्नरी, मृदंग सुर ताल।[5]

स्वामी जी ने अनेक बार अपने पदों में संगीत में ओत-प्रोत दृश्यों की कल्पना की है। उनके पदों में एक विशेषता और दृष्टिगोचर होती है, वह यह है कि उन्होंने प्रकृति को भी संगीत संगी बना कर प्रस्तुत किया है, जैसे मेघ गरज-गरज कर मृदंग बजा रहे हैं। मोर कौल बाँध नृत्य कर रहा है। पपीहा सुर दे रहा है, कोयल आलाप कर रही है। निम्न उदाहरण उनके प्रकृति के संगीत विषयक साधक होने के रूप में प्रस्तुत करते हैं-

1. "नाचत मोरनि संग स्याम, मुदित स्यामहि रिझावत
तैसियै कोकिला अलापत पपीहा देत सुर
तैसियै मेघ गरजि मृदंग बजावत।"[6]

2. भँवर गुँजार करत संग डोलत, मानों मेरू रागिनी रे संग लिए रागत।[7]

3. राधे चतिरी हरि बोलत, कोकिला अलापात,[8]

प्रस्तुत एक पद में उन्होंने उस काल में प्रचलित ध्रुवपद धमार गायकी का वर्णन किया है, किन्नरी वीणा मृदंग और तार वाद्य बज रहे हैं तीनों स्थान अर्थात् मंद्र मध्य तथा तार सप्तम में तान ली जा रही है और ध्रुवपद गायन रंग जमा रहा है।

"परस्पर राग जम्यौ समेत किन्नरी मृदंग सुरतार।
तीनहू सुख के तान बँधान धुर-धुरपद अपार।।"[9]

स्वामी हरिदास जी जितने बड़े कवि थे, उससे कहीं बड़े संगीतज्ञ थे। उसमें भी वह गायक एवं नर्तक उच्च कोटि के थे। इसका कारण है कि उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन श्यामा-श्याम की भक्ति में लगा दिया। उनकी भक्ति का माध्यम उनका काव्य एवं संगीत ही था। अतः वे इन सभी विद्याओं में शीर्षस्थ सिद्ध हुए।

इसी भाव का एक पद प्रस्तुत है-

1. डोलत झूलत बिहारी-बिहारिन राग रमि रहयो।[10]

ताल संगीत का एक महत्वपूर्ण आधार है तो वह स्वामी जी के पदों में अनछुआ कैसे रह सकता है कुछ ताल से संबंधित पदों पर हम प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे। जहाँ गायन हैं वहाँ ताल अवश्य है और जहाँ नृत्य है वहाँ भी ताल अवश्य है। उसके बिना न गायन सफल है ना नृत्य। ताल का महत्वपूर्ण अंग है गति-लय। इस लय और गति को ताल में बाँधा जाता है-

1. नृत्य गीत ताल भेदनि के विभेद।[11]
2. अद्भुत गति उपजति अति नाना।[12]
3. औघट ताल दे श्री श्यामा, ताता थेई।[13]

उपर्युक्त कई उद्धरणों से यह तो स्पष्ट है कि स्वामी जी की गायन के साथ-साथ नृत्य एवं वादन में पारंगत थे।

निष्कर्षतः यह बहुत ही सहजता से कहा जा सकता है कि स्वामी हरिदास ने अपने पदों में गायन, वादन एवं नृत्य से संबंधित सांगितिक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अत्यन्त कुशलता के साथ व्यवहृत किया है, जो उनके श्रेष्ठ संगीतज्ञ होने का परिचायक है।

वाग्गेयकार की समस्त रचनागत विशेषताएँ स्वामी हरिदास जी की रचनाओं में भी पाई जाती है। संगीत का उपयोग उन्होंने अपनी उपासना के साधन के रूप में किया। स्वामी जी स्वयं पद बनाकर स्वयं ही स्वरबद्ध करके श्यामा-श्याम के लिए गाते थे।

वर्तमान में उत्तर भारत में जो संगीत प्रचलित है वह किसी न किसी रूप में स्वामी जी से जुड़ा हो उनके द्वारा रचित पद आज भी लोकप्रिय होकर धार्मिक भावनाओं को कलात्मक रूप दे रहे हैं।

संदभ्र ग्रन्थ सूची

1. कुलश्रेष्ठ डॉ. सरोजिनी- हिन्दी साहित्य में कृष्ण।
2. प्रताप डॉ. रागिनी- सूर, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना में संगीत का योगदान।
3. शर्मा डॉ. नीरा- अष्टछाप संगीत - एक विश्लेषण।
4. सक्सेना डॉ. राकेश बाला- ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा।
5. सिन्हा डॉ. सुरेखा-मध्ययुगीन शास्त्रीय संगीत के आधार स्तम्भ-अष्टसखा।
6. चौबे डॉ. सुशील कुमार- हमारा आधुनिक संगीत।
7. गर्ग डॉ. लक्ष्मीनारायण- निबंध संगीत।
8. माथुर डॉ. श्रीमती निशि- अष्टछापभक्त कवि और पुष्टिमार्गीय सेवा में संगीत।
9. शर्मा प्रो. सत्यभान- पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा- हवेली संगीत।

पत्र एवं पत्रिकाएं

1. संगीत कला विहार, जून 2013

फुटनोट

[1] वही-पद संख्या 61

[2] वही- पद संख्या 60

[3] स्वामी हरिदास- केलिमाल, पर संख्या 12

[4] वही- पद संख्या 14

[5] वही- पद संख्या 67

[6] स्वामी हरिदास-केलिमाल, पदर संख्या 85

[7] वही- पद संख्या 14

[8] वही- पद संख्या 32

[9] स्वामी हरिदास- केलिमाल, पद संख्या 2

[10] वही- पद संख्या 23

[11] स्वामी हरिदास- केलिमाल, पद संख्या 2

[12] वही- पद संख्या 33

लोकगीत के होरी में राधा और कृष्ण

प्रिया कुमारी

स्नातकोत्तर संगीत विभाग
ति मां भा वि भागलपुर

'लोकगीत' मन की सहज और सुन्दर अभिव्यक्ति है। सच तो यह है कि 'लोकगीत' लोकमन की धड़कन है। लोकगीतों में लोकांचल की छाप दिखाई देती है। सोहर नकटा, गारी, लचारी, चैता उठान, कजरी, होरी (फाग) आदि विविध नामों से हम लोकगीतों की सत्ता को स्वीकार करते हैं। फाग अथवा होरी लोकगीतों का अपने में एक विशिष्ट स्थान है। भारतीय जनमानस में उत्सव का बड़ा प्रभाव है। ग्रामीण जीवन में उत्सव के प्रति काफी मोहक भाव दिखाई पड़ता है। भारतीय लोक जीवन के विविध स्वरूपों में होरी के रंग बिखरें पड़े हैं। लोकगीतों और लोक नृत्यों में होरी के रंग अपनी निराली छटा में परिलक्षित होते हैं। ब्रज के किसी गाँव में कदम्ब की छाँव में बैठी भोली राधा जब सखियों के साथ गाती है।

मत मारै दृगन की चोट रसिया होरी में,
मेरे लग जाएगी

तो गाँव के रसियों के स्वर भी जवाब में कहते हैं–

होरी रे रसिया, बरजोरी रे रसिया,
आज बिरज में होरी रे रसिया।

गाँव की गोरियाँ, रसियों से होरी खेलने की मनुहार पर ध्यान नहीं देती तो वे कह ही उठते हैं-

होरी में लाज न कर गोरी,

ठीक ही कहा गया है होली में काहे की लाज? राधा और कृष्ण भी तो जी भरकर रंगों की मन भावन फुहारों में होली खेले थे।

होरी हिन्दुओं का एक प्रमुख त्योहार है। भारतीय संस्कृति का अनूठा संगम उनकी त्योहारों और पर्वों में दिखाई देता है। सारी कटुता को भूलकर अनुराग भरे माधुर्य से इसे मनाते हैं। इसीलिए होली को एकता, समन्वय और सद्भावना का राष्ट्रीय पर्व कहा जाता है। होली के आते ही धरती प्राणवान् हो उठती है। प्रकृति खिल उठती है और कवियों का भावुक नाजुक मन न जाने कितने रंग अपने गीतों में बिखेर देता है। गाँवों में बसा हमारा भारत ग्राम्य संस्कृति में धुले मिले रचे बसे लोग मांगलिक प्रसंगों पर लोकगीत गाकर वातावरण को लुभावना बना देते हैं। यहाँ के लोग धरती के गीत गाते हैं और उन्ही में हमारे पर्व और तयोहारों की झाँकी होती है।

ऐसे रंगों से सराबोर होली को खेलने में देवतागण भला पीछे क्यों रहें? राधा-कृष्ण होली को रंग ही कुछ और है। ब्रज की होली का रंग ही निराला है। अपने भयामा भयाम के संग रंग में रंगोली बनाकर ब्रजवासी भी होली खेलने के लिए हुरियार बन जाते हैं और ब्रज की नारियाँ हुरियारिनों के रूप में साथ होते हैं और चारों ओर एक ही स्वर सुनाई देता है:-

आज बिरज में होली रे रसिया,
होली रे रसिया, बरजोरी रे रसिया।

उड़त गुलाल लाल भए बादर,
केसर रंग में बोरी रे रसिया।
बाजत ताल मृदंग झांझ ढप,
और मजीरन की जोरी रे रसिया।
फेंक गुलाल हाथ पिचकारी,
मारत भर भर पिचकारी रे रसिया।
इतने आये कुँवरे कन्हैया,
उतसों कुँवरि किसोरी रे रसिया।
नंदग्राम के जुरे हैं सखा सब,
बरसाने की गोरी रे रसिया।
दौड़ मिल फाग परस्पर खेले,
कहि कहि होरी होरी रे रसिया।

इतना ही नहीं वह भयाम सखाओं को चुनौती देती है कि होली में जीतकर दिखाओं। उनमें ऐसा अद्‌भूत उत्साह जागृत होता है कि सब ग्वाल-बालों को अपना चेला बना कर बदला चुकाना चाहती हैं। जिन ब्रज बालों ने अटारी में चढ़ी हुई ब्रज गोपियों को संकोची समझा था, आज वे ही होली खेलने को तैयार हैं। पेश हैं इस दृय की एक बानगीः-

होरी खेलूँगी भयाम तोते नाय हॉरू
उड़त गुलाल लाल भरा बादर,
भर गडुआ रंग को डारूँ
होरी में तोय गोरी बनाऊँ लाला,
पाग झगा तरी फारूँ
औचक छतियन हाथ चलाए,
तोरे हाथ बाँधि गुलाल मारूँ।

फिर क्या था ब्रज में होली की ऐसी धुम मची कि सब रंग में सराबोर हो गए। जिसका जैसा वश चला उसने वैसी ही होली खेली। श्री कृष्ण ने भी धाधर में केसर रंग धोला है और झोली में अबीर भरा है। उड़ते गुलाल से लाल बादल-सा छा गया है। रंग से भरी यमुना बह रही है। ब्रज की गलियों में राधिका होली खेल रही है, रंग से भरे ग्वाल-बाल लाल हो गए हैंः-

होरी खेलत राधे किसोरी बिरिजवा के खोरी।
केसर रंग कमोरी धोरी कान्हे अबीरन झोरी।
उड़त गुलाल भये बादर रंगवा कर जमुना बहोरी।
बिरिजवा के खोरी।
लाल लाल सब ग्वाल भये, लाल किसोर किसोरी।
भौजि गइल राधे कर सारी, कान्हर कर भींजि पिछौरी।
बिरिजवा के खोरी।

ब्रजधरा के होली के सलौने उल्लास के सामने स्वर्ग का आनंद भी फीका लगने लगता है। इसीलिए नागरीदास यह लिखने के लिए मजबूर हुए थे- 'स्वर्ग बैकुंठ में होरी जो नाहि तो कोरी कहा लै करे ठकुराई'

होली ब्रज में अनुराग, उल्लास, हास-परिहास का रमणीय आनंद लेकर अवतरित होली है। रस-रंग का महकता आह्लाद ब्रजभूमि के घर-घर का उत्सव बन जाता है। बनावटी लोक मर्यादाओं के सारे बंधन एक झटके में तार-तार हो जाते हैं। प्रेम-अनुराग की उमड़ती-घुमड़ती सरिता सारी वर्जनाओं को तोड़ देती हैं। ब्रज के गली-मोहल्लों, घर-घर में सारे लोगों की मस्ती के कारण मानव निर्मित भेदभाव के पाखंड के सारे लिबास एक झटके में उतर जाते हैं और ोष रह जाता है, प्रेम का दिव्य स्वरूप।

ब्रज की होली तथा रसिया का अद्वैत संबंध है। रसिया ऐसे व्यक्ति को कहते हैं जो जीवन में चारों ओर अनुराग का उल्लास उत्पन्न कर देता है। होली के अवसर पर तो वह घर-घर में विशेष वंदनीय बन जाता है। श्री कृष्ण रसिया के सिरमौर आदर्श आराध्य हैं।

राधा-कृष्ण के जीवन काल से ही अनुराग के इस त्योहार को ब्रज के गाँव-गाँव, घर-घर में लोग राग-रंग, मौज-मस्ती, हास-परिहास, गीत-संगीत के साथ परम्परा से आज तक मनाते आ रहे हैं। ब्रज में ऐसा कोई हाथ नहीं होता जो गुलाल से न भरा हो, पिचकारियों के सुगंध भरे रंग से सराबोर न हो। गुलाल के रंगीन बादल से छा जाते हैं आसमान में। सदियों से गाये जाने वाले यह लोकगीत नवगति, नवलय और नवताल के साथ सारे वातावरण में गुंज उठता है।

टोलियों में रंग-गुलाल में सने नर-नारियों के झुंड के झुंड एक-दूसरे पर अबीर-गुलाल की वर्षा

करते हुए, गली-गली मोहल्लों-मोहल्लों में एक अजब मस्ती में डूबे हुए गाते फिरते हैं:-

आज बिरज में होरी-रे रसिया,
होरी रे रसिया बरजोरी रे रसिया।
कोन के हाथ कनक पिचकारी,
कोन के हाथ कमोरी रे रसिया।। आज।।
कृष्ण के हाथ कनक पिचकारी,
राधा के हाथ कमोरी रे रसिया।। आज।।
उड़त गुलाल लाल भये बादर,
केसर रंग कौं घेरी रे रसिया।। आज।।

रसिया कृष्ण ने ब्रज में ऐसा भारी ऊधम मचा रखा है कि वह रंग डाले बिना किसी को निकलने ही नहीं देता है। बेचारी गोरी बार-बार रसिया. याम से अनुनय-विनय करती है कि तू मुझ पर रंग मत डाल, नही तो मैं तुझे गालियां देने लग जाऊंगी। सास-ननद क्या कहेंगी। सब हंस-हंस कर मेरा मखौल बनाएंगी-

मति मारौ. याम पिचकारी, अब देऊंगी गारी।
भीजेगी लाल नई अंगिया, चुंदर बिगरैगी न्यारी।
देखेंगी सास रिसायेगी मोपै, संग की ऐसी है दारी।
हंसेगी दै-दै तारी

पर दूसरी तरफ ब्रज की गोरी बड़े उल्लास के साथ चटक-मटक कर रसिया कृष्ण के साथ होली खेलने के रस-रंग में तन-मन की सुधि भूल गई है। वह स्वयं को बहुत भाग्यशाली मानती है कि आज मोहन स्वयं उससे होली खेलने आया है। उसका यौवन सार्थक हो जाता है। वह बड़े प्रेम से. याम से अपने नरम-नरम गालों पर खूब गुलाल मलवाती है, रंग डलवाती है। हे कृष्ण तेरी जो इच्छा हो वह कर ले परंतु इन आंखों को बचाकर अबीर डाल, नही तो तेरा रूप कैसे देख पाउंगी। इसलिए मैंने थोड़ा घूंघट डाल रखा है, तेरे पैर पड़ती हूं, इसे मत हटा-

भावै तुम्है सो करो मोहि लाल,
पै पाउ परौ, जिन घूंधट टारो।
वीर की सौं हम देखि हैं कैसे,
अबीर की सौं हम देखि हैं कैसे,
अबीर तो आंख बचाय के डारो।

ब्रज के पुष्टि संप्रदाय के वैष्णव देवालयों में रस-रंग और राग के सौंदर्य से ओत-प्रोत तथा सुगंधित अबीर-गुलाल से विभूषित होली के उत्सव पूरे एक माह तक चलते हैं। इन मंदिरों में 'बसंत मनाय चली ब्रज सुंदरी, लै पूजा को थार' के बोलों द्वारा बसंत पंचमी के दिन एक माह तक चलने वाले होली उत्सवों की.ारूआत करते हैं। पंद्रह दिन तक इन देवालयों में बसंत के पद गाए जाते हैं। पूर्णिमा के दिन संध्या आरती के अवसर पर होरी का डांडा रोपा जाता है। 'ऋतु सुख खेलियो आय के फागुन मास' पद गायन से इस दिन से होली गायन की.ारूआत होती है।

बृज में राधा-कृष्णः एवं संगीत एक अवलोकन

पूजा द्विवेदी

इलाहाबाद वि.वि., संगीत विभाग

G.S. बन्दोपाध्याय ने देवी - देवताओ और साधू संतो संगीत का सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहते है-

"He is found is Hindu mythology That the different & aspects of life and learning were associated with different stages so it is but natural that the mythologists might have ascribed the origin of the art of music and dance to some certain sage heavenly body or God according to their self realization idea or fanny"

धरतीति धर्मः जो हमारी रक्षा करता है धारण-पोषण करता है उस परमेश्वर का नाम ही धर्म है। भागवत धर्म से तात्पर्य उस उपासना धर्म से है जिससे एकमात्र भगवान अथवा भगवत को माना जाता है और वासुदेव कृष्ण ही भगवान शब्द के बाच्य है।

अतः प्रागैतिहासिक काल से ही लोकप्रिय रहा भगवत धर्म बाद में वैष्णव धर्म में समाहित कर दिया गया मध्ययुग में वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत कृष्ण भक्ति धारा का प्रर्याप्त विकास हुआ श्री कृष्ण भक्ति की सरल धारा ने लीलामय देविक कृष्ण की अमर ज्योति का प्रकाश समस्त में प्रस्तुतित कर दिया श्री कृष्ण काल में तो जैसे समस्त कलाओं ने ब्रज में अपनी प्रखर ज्योति का मार्तण्ड ही उद्दीप्त कर दिया कई शताब्दियों तक चित्रकार, कवि नर्तक तथा संगीतकारो को प्रेरणा प्रदान की श्री कृष्ण को इसी कारण सोलह कलाओ का अवतार माना गया है।

ब्रज की रास परम्परा भारतीय कला कि विराट चेतना का प्रत्यक्ष प्रमाण है शास्त्रो के अनुसार कृष्ण ने गोपियो के साथ शरतपूर्णिमा को रास नृत्य किया रास नृत्य में निहित मूल भाव यही था कि "ब्रह्म एक है वह कण-कण में व्याप्त है इस बात को सिद्व करने के लिये ही कृष्ण ने प्रत्येक गोपियो के साथ नृत्य किया था भगवान परमात्मा है गोपियायें आत्मा है परमात्मा के साथ अनेको सम्बन्ध स्थापित कर जीवात्मा भगवत स्वरूप प्राप्त होती है फिर रास लीला भगवत स्वरूप का रहस्य प्रकट करती है शास्त्रीय नृत्य चाहे मणिपुरी हो कत्थक हो अथवा कथकली या ओडिसी कृष्ण के अध्यामिक लीला रूप का प्रभाव सभी पर पड़ा। वैदिक काल में अध्यात्मिक उपासना के उद्देश्य से प्रवाहित संगीत की परम्परा ने मध्य युग में कीर्तन व समाज गान आदि विभिन्न गेय पद्वतियों के रूप में एक नवीन रूप धारण किया जिसने संगीतात्मक कलात्मक एवं रसात्मकता के साथ-साथ श्री राधाकृष्ण की लीलाओं में नीहित लालित्व और सौन्दर्य को भी अंगीकृत कर लिया। निसदेह ब्रज के मन्दिरो में संगीत भी जो धारा प्रवाहित हुई वह अत्यन्त ही सौम्य, भक्तिभाव एवं माधुर्य से परिपूर्ण रही।

ब्रज को ऋषि मुनियों ने तपोभूमि कहा है जो श्री कृष्ण के जन्म स्थल का एक भाग है। श्री कृष्ण के चित विलास ने इस क्षेत्र के कण-कण को

अध्यात्मिक गरिमा से प्राप्त किया है राधा जी के साथ उन्होने लीलायें कर आनन्द कि शारवत सरिता प्रवाहित ही भगवान श्री कृष्ण में 64 कलाओं में निष्पात कहा जो ब्रज कलाओं के विशद रूपो का संकेत है। जिसमें वास्तु मूर्ति चित्र, संगीत एवं नृत्य कला को स्वीकारा है, रास लीलाओं की मौलिक परम्परा का स्तरोक्न प्रणाली के अभाव के कारण धुपद व धमार आदि की गायकी परम्परा आज भी अपने आधुनिक स्वरूप में विद्यमान है। गायन परम्परा हो या वादन परम्परा या नृत्य सभी भगवान श्री कृष्ण और सखियों से सम्बोधित श्री राधा जी के नित्यरास से पुष्ट होती है। गायन व नश्त्य में हारमोनियम ढोल ढोलक डफ तानपुरा जैसे अनेक वाद्य यन्त्र ब्रज के संगीत को गति प्रदान करते है। इसके अलावा मुरली वीणा सारंगी, तबला, मंजीरा एवं झाँझ आदि भी संगीत के सुमधुर वातावरण में दिव्यता लाकर श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देती है।

राधाष्टमी के अवसर पर मंगला से लेकर शयन तक झाँकी में समय ओर अवसर के अनुसार विभिन्न मार्गो में गाये जाते।

ब्रज के वैष्णव धर्माचार्यों के अनेकनेक परम्परा व भिन्न-भिन्न साम्प्रदायो के रूप में प्रवाहित होती रही है तथा उनकी दार्शनिक पृष्ठाभूमि में सूक्ष्म अंतर परिलक्षित होता रहा। जिसके कारण कही कृष्ण को कही राधा को और कहीं राधा कृष्ण युगल स्वरूप को ईस्ट के रूप में प्रधानता दी गई परन्तु सभी सम्प्रदाओं में समानता तथा मूल भावना निहित रही, वह है श्री कृष्ण व श्री राधा का अमर्यादित प्रेम। संभवतः इस मूल तत्व ने ही समस्त भारत के महान दार्शनिको एवं धर्म तत्वान्वेशी प्रतिभाओं की ब्रज की ओर आकर्षित किया एवं होरी पर राग काफी समाज में राधे कृष्ण की होली का वर्णन क्सर गायक करते है सूरदास रचित राग काफी में निबद्व यह होरी आज भी लोक में प्रचलित है पद के शीर्ष पर राग होरी उल्लेखित है।

राग होरी

ब्रज में हरी होरी मचाई,
इतसो निकली कुंवरि राधिका उतते कुबेर
कान्हा है, खेलत फाग परस्पर-हिली मिली वह सुख बरनी न जाई।

स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ब्रज में भगवान श्री कृष्ण की लीलाएं हमारे लिये धर्म के धार्मिक तत्व का प्रमाण है ब्रज-वासियों के लिये श्री कृष्ण एक धर्म संस्थापक है और उनकी यह परम्परा युगो-2 तक चलती रहेगी, जिसमें ब्रज के प्रति हमारी आस्था और विश्वास ब्रज की धार्मिक परम्परा को गति व प्रगति प्रदान करने में सशक्त माध्यम बने रहेगें।

राधें-राधे

संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा. मुंशी राम शर्मा भाक्ति का विकास 1948
2. डा. वन्दना सिंह, बृज की संगीत परम्परा
3. डा. सत्या भार्गव, बृज संगीत सुगन्ध
4. गीता माथुर, हिन्दुस्तानी संगीत मे होरी

सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण

प

हिन्दुधर्म की कई परम्पराओं में राधा-कृष्ण की पूजा की जाती है। जिनमें से चार प्रमुख हैं -गौड़ीय वैश्णव सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, स्वामीनारायण संप्रदाय एवं वल्लभ सम्प्रुदाय (पुष्टि-सम्प्रदाय)। 'राधा-कृष्ण' के युगल-स्वरूप की आराधना, कीर्तन-संगीत के माध्यम से प्रचार-प्रसार करने में पुष्टि-मार्ग ने उत्कृष्ट योगदान दिया है। मध्य काल में वैष्णवाचार्यों ने, पद-रचियताओं ने एवं कई भक्त गायकों ने 'राधा-कृष्ण' के युगल-स्वरूप को शास्त्रीय तथा लोकसंगीत में इस प्रकार रमा दिया कि समस्त भारत उनके भक्ति से रसमग्न हो गया। इनके युगल स्वरूप की पूजा करने के कई आरंभिक संदर्भ मिलते हैं।

श्रीमद् भागवत-महापुराण के अनुसार'श्रीकृष्ण' भगवान विष्णु के बीसवें अवतार हैं। 'द्वापर-युग' में देवकी के गर्भ से मथुरा के कारागार में श्रीकृष्ण ने अवतार लिया था। कृष्ण के पिता वसुदेव जी ने कंस के भय से उन्हें नन्द बाबा के यहाँ ब्रज पहुँचा दिया था।

'श्रीकृष्ण' द्वारा की गई विभिन्न लीलाएँ जैसे-मृत्तिका—भक्षण, माखन-चोरी लीला, गोचारण लीला, गोवर्धण धारण लीला एवं रास-लीला आदि हैं। श्रीकृष्ण तो भगवान थे। उन्होंने कई चमत्कार भी किए जैसे-बचपन में ही पूतना के प्राण हर लेना, तीन महीने की अवस्था में पैर उछालकर बड़ा भारी उखल उलट देना और घुटनों के बल चलते-चलते आकाश को छूनेवाले यमलार्जुन वृक्षों को उखाड़ देना आदि।

श्रीकृष्ण की शिशु-लीला गोकुल में एवं बाल-लीला वृंदावन में सम्पन्न हुई। ब्रज-वृन्दावन धाम को श्रीकृष्ण का ही स्थूल साक्षात् स्वरूप कहा जाता है। ब्रज की मिट्टी, श्रीकृष्ण एवं राधाजी के पावन पादारबिन्दों के चिन्हों से चिन्हित है। इस पावन धरा पर उनके द्वारा विविध भुवन मोहनी, लोकपावनी लीलाएँ सम्पन्न की गई। श्रीकृष्ण अपनी लीलाओं से संसार को मोहित करते हैं परंतु राधा तो उन्हें ही मोहित कर लेती हैं। ऐसा कहा जाता है कि वह अपने प्रेम से कृष्ण को नियंत्रित करती हैं।

'प्रेम' अनासक्त होता है और इससे परमात्मापन प्रकट होता है। इसमें विशालता होती है और यह किसी भी संयोग में नहीं टूटता। जब प्रेमास्पद से कुछ याचना की भावना न हो और अपना सर्वस्व लुटा देने पर भी तृप्ति न हो, वही 'प्रेम' है। ब्रज-गोपिकाओं का प्रेम भी इसी प्रकार का था। वे सब वही करती थीं जिससे श्रीकृष्ण प्रसन्न रहे।

श्रीकृष्ण की सभी लीलाओं में सबसे प्रमुख है-ब्रज की प्रेममयी गोपियों के साथ बद्ध-बाहु होकर, शारदीय पूर्णिमा को, की गई 'रासलीला'। गोपियों को अपने इन्द्रियों के सुख की लवलेश भी इच्छा नहीं थी। वे अपने माधुर्य-भाव से श्रीकृष्ण की उपासना करती थीं। 'माधुर्य-भाव' का अर्थ है किसी को अपना सर्वस्व मान लेना। गोपियों के माधुर्य-भाव एवं दिव्य प्रेम के अधीन होकर ब्रह्म-श्रीकृष्ण अपनी भगवत्ता खो बैठे।

उन गोपियों में 'राधाजी' एक युवा नारी हैं। जो श्रीकृष्ण की सर्वोच्च प्रेयसी एवं सहचरी हैं। कृष्ण

को बाँयी तरफ खड़ी राधा के साथ चित्रित किया जाता है, जिनकी छाती पर लक्ष्मी विराजमान हैं। श्रीकृष्ण को ईश्वर के सभी रूपों का स्त्रोत माना जाता है एवं राधा को सभी शक्तियों का मूल स्त्रोत। राधा और कृष्ण का संगम, शक्ति के साथ शक्तिमान के संगम को इंगित करता है। 'जीव स्वामी' के अनुसार—प्रत्येक गोपी भिन्न स्तर के मनोभाव की तीव्रता को व्यक्त करती हैं एवं राधा उनकी मूल हैं, सर्वोपरि हैं। श्रीकृष्ण के अवतार काल अर्थात् द्वापर-युग के अंतिम चरण में सम्पन्न होनेवाली रासलीला का वर्णन स्पष्ट रूप से कई पुराणों में मिलता है जैसे - हरिवंश-पुराण, विष्णु-पुराण, श्रीमद् भागवत-महापुराण आदि। सर्वमान्य श्रीमद् भागवत-महापुराण पुराणों में सर्वश्रेष्ठ एवं वैष्णव सम्प्रदाय का कण्ठाहार है। श्रीमद् भागवत-महापुराण का रास वर्णन सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसी के आधार पर ब्रज एवं भारत के विभिन्न प्रान्तों के आरसिक भक्तों ने रासलीला का वर्णन अपने पदावलियों, वाणियों एवं काव्यों के माध्यम से किया।

यह सत्य है कि श्रवण की अपेक्षा दृश्य दर्शन का मन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। श्री युगल सरकार के रासलीला के श्रवण एवं दर्शन से कामवासनाओं का सदा के लिए ही विनाश हो जाता है। राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप में भक्ति होते ही, एवं अनन्य प्रेम से उनमें चित्त जोड़ते हीं निष्काम ज्ञान एवं वैराग्य का आविर्भाव हो जाता है। परमप्रेम को ही भक्ति की संज्ञा दी गई है। राधा-कृष्ण की प्रेमलीला ने समस्त भारत को रसमग्न कर दिया, उसका मुख्य केन्द्र वृंदावन है। जिससे कई शताब्दियों तक कवि, संगीतकार, नर्तक तथा चित्रकारों ने प्रेरणा ग्रहण की। भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी लीलाओं द्वारा व्यक्ति और समाज को आध्यात्मिक संदेश दिया है।

जब बारहवीं शताब्दी में जयदेव गोस्वामी ने गीत-गोविन्द नामक ग्रंथ लिखा तो उसमें वर्णित दिव्य कृष्ण और उनकी सहचरी राधा के बीच आध्यात्मिक प्रेम-संबध के विषय को सम्पूर्ण भारतवर्ष में पूजा जाने लगा। सोलहवीं शताब्दी का समय भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। इस समय देश के विभिन्न भागों में आचार्यों का प्राकट्य हुआ। इसी काल में रास रस रसिक रसिकाचार्यो का प्रादुर्भाव भी हुआ, जिनमें वंशी अवतार सर्व श्रीहित हरिवंश महाप्रभु, स्वामी हरिदास जी महाराज, श्री हरिराम व्यास जी, श्री चौतन्य महाप्रभु, श्री भट्ट जी, श्री वल्लभाचार्य जी आदि सभी महानुभावों ने रासलीला के पुनरूद्धार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

श्रीमद् वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित मार्ग या सम्प्रदाय को पुष्टिसम्प्रदाय कहते हैं। इनके पिता विष्णु स्वामी मत के अनुयारयी थे। श्रीमद् वल्लभाचार्य ने यात्रा करते हुए गोकुल, मथुरा, वृंदावन एवं गोवर्धन में श्रीमद् भागवत का पारायण किया। उस समय गोवर्धन की गिरिराज की पहाड़ी पर एक भगवद् स्वरूप का प्राकट्य हुआ था जिन्हें ब्रजवासी देवदमन के नाम से श्रद्धा एवं भक्ति से पूजते थे। श्रीमद् वल्लभाचार्य जी ने भगवद्स्वरूप यानि श्री नाथ जी का नाम श्री गोवर्धननाथ रखा। उन्होंने छोटा-सा कच्चा मंदिर बनवाकर श्री गोवर्धन नाथ को उसमें विराजमान कर दिया। उस समय कुछ ब्रजवासी उनके सेवक हुए, जैसे- सदुपांडे, रामदास चौहान एवं कुंभनदास आदि। सदुपांडे एवं रामदास को पूजादि भोग सामाग्री की सेवा एवं कुंभनदास को संगीत द्वारा श्री नाथ जी को रिझाने के लिए नियुक्त किया गया।

पुष्टि-सम्प्रदाय ने पूजा के लिए कीर्तन-संगीत को ही माध्यम बनाया। कीर्तन में सरल स्वरोच्चार एवं समर्पण की भावना होती है। इसी समय पुष्टिमागीय संगीत का उद्भव हुआ। इस संप्रदाय के अनुसार भक्त एवं ईश्वर में मर्यादा की कोई आवश्यकता नहीं होती। यहाँ सखा एवं वात्सल्य भाव की भक्ति को श्रेष्ठ माना जाता है। अतः इन्होंने प्रेम, ज्ञान, वातसल्य एदास्य आदि विविध भावों के मधुर आलंबन के रूप में परिपूर्ण ब्रह्म नारायण श्रीकृष्ण के साथ परम शक्ति के रूप में राधा जी को प्रतिष्ठित किया। राधा-कृष्ण के इस मनोहारी स्वरूप ने सखा, प्रिया एवं स्वामी रूप से जन-समुदाय को उनकी उपासना के प्रति अग्रसारित कर दिया।।

पुष्टि-मार्ग के मंदिर को हवेली कहते हैं। हवेली का अर्थ है—विशाल मंदिर। ऐसा माना जाता है कि उनके इष्टदेव, आराध्यदेव, उपास्यदेव श्रीकृष्ण, नंद, नंदरानी और सकल गोलोक के साथ वहाँ वास करते हैं। ये अपने भगवान की आराधना, उपासना, प्रार्थना, आरती स्तुति आदि कीर्तन के द्वारा करते हैं। जिसे हवेली-संगीत कहा जाता है। इनकी भाषा ब्रजभाषा है। कीर्तन में गा, जानेवाले सभी गीत ईश्वर से संबंधित होते हैं।

भगवान को भजने के लिए कीर्तन को सरल एवं सुगम माध्यम माना जाता है। कीर्तन की परंपरा के प्रमुख प्रचारक नामदेव, चौतन्यदेव, जयदेव, एवं आचार्य वल्लभ माने जाते है। इनके अलावा संत-कवियों में तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई और अष्टछाप के अन्य कवियों का उत्कृष्ट योगदान रहा है। कीर्तन मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं (1) यात्रा-कीर्तन (2) अष्टयाम-कीर्तन (3) विषय-कीर्तन एवं (4) भजन-कीर्तन। पुष्टि-सम्प्रदाय में अष्टयाम-कीर्तन होती थी। वहाँ आचार्य गण अपने मर्म चक्षुओं से नित्य बिहारी लाल की उस अतिदिव्य लीला का दर्शन कर आनंदविभोर हो जाते थे। प्रतिदिन की लीला को नित्य-लीला कहा जाता है।नित्य-लीला के दर्शन इस प्रकार है (1) मंगला (2) श्रृंगार (3) ग्वाल (4) राजभोग (5) उत्थापन (6) भोग (7) आरती एवं (8) शयन आदि।

श्रीमद् वल्लभाचार्य के बाद उनके द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी को पुष्टि-सम्प्रदाय का आचार्यत्व प्राप्त हुआ। संगीत में विशेष रूचि होने के कारण इन्होंने संगीत का वैभव बढ़ाने के लिए अष्ट-संगीताचार्यों की संख्या नियत की। इस प्रकार इन्होंने राधा-कृष्ण के युगल-स्वरूपके सम्मुख अष्ट कीर्तनकारों को नियत करके अष्ट-सखा की भावना प्रकट को प्रकट किया। इन अष्ट कीर्तनाचार्यों के नाम, लीलास्थित नाम, सेवा एवं भाव इस प्रकार है -

नाम	लीलास्थित नाम	सेवा	भाव
परमानंद	तोकसखा	मंगला	जगाने के पद, अनुराग के पद, दधि-मंथन के पद।
नन्ददास	भोजसखा	श्रृंगार	-स्वरूप बालका सौंदर्य, वेश-भूषाण्बाल-क्रीड़ा, सख्य-भाव एवं खेल के पद।
गोविंदस्वामी	श्रीदामासखा	ग्वाल	माखनचोरी एगोचारण एचौगान, चकडोरी एगोदोहन पालना, धैया के पद।
कुंभनदास	अर्जुनसखा	राजभोग	छाक के पद।
सूरदास	कृष्णसखा	उत्थापन	गोटेरन एवं वन्य लीला के पद।
चतुर्भजदास	विशालसखा	भोग	कृष्ण-रूप, गोपी-दशा, मुरली-रूप एमाधुरी एगोप आदि के पद।
छीतस्वामी	सुबलसखा	संध्यार्ति	गो-ग्वाल सहित वन से आगमन, गो-दोहन, धैया, वात्सल्य भाव के पद।
कृष्णदास	ऋषभसखा	शयन-समय	अनुराग, गोपी भाव से निकुंज लीला तथा संयोग-श्रृंगार के पद।

इस प्रकार आठों समय की सेवा में नित्य-क्रम, ऋतु क्रम तथा उत्सव क्रम के अनुसार सेवा का आयोजन बदलता रहता है।

पुष्टि-सम्प्रदाय के मंदिरों (हवेली) में संगीताचार्य कुंभनदास, सूरदास, परमानंद एवं कृष्णदास जैसे भक्त कविवरों द्वारा ध्रुपद शैली की अधिकतम भाग का उद्भव हुआ है ऐसा माना जाता है। इनके द्वारा रचित ध्रुपद-धमार की रचनाओं का गान पुष्टि-मार्ग में किया जाता है। इन्होंने विभिन्न रागों में, ऋतुओं के अनुसार सैकड़ों ध्रुपद-धमार का गायन किया। उस समय तंबुर, मृदंग, झाँझ और वीणा का उपयोग कीर्तन सेवा में किया जाता था।

ऐसा माना जाता है कि पुष्टिमार्ग कि सेवा-प्रणाली के तीन स्तंभ हैं -राग (संगीत), भोगयसामग्री) एवं श्रृंगार। अष्टछाप की स्थापना के समय से ही राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप (श्री जी) के सम्मुख शास्त्रीय-प्रणाली के अनुसार कीर्तन की सेवा व्यवस्थित हो गई। इनकी अष्टसखा मंडली में चार संगीतकार (कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास) श्रीमद् वल्लभाचार्य के सेवक थे एवं अन्य चार संगीतकार (श्री गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास जी) श्री विट्ठलनाथ जी के सेवक थे।

पुष्टि-सम्प्रदाय की सेवा-भावना-पद्धति का अन्य सम्प्रदायों में गहरा प्रभाव हुआ। इस प्रकार चतुःसम्प्रदाय के सर्वोच्च भक्त-कवि एवं संगीताचार्यों के संगठन का प्रारंभ हुआ। अन्य सम्प्रदाय की वाणी को भी पुष्टि-मागीय अष्टछाप की वाणी के साथ सम्प्रदाय में स्थान दिया गया। संगीत सम्राट तानसेन के गुरू स्वामी हरिदास भी पुष्टि-मार्ग के भक्त थे। स्वामी हरिदासजी भी राधा-कृष्ण की लीलाओं में ध्यानमग्न होकर अपने संगीतमय पदगान से प्रभु को रिझाते हुए सेवा करते थे। उनकी रास रसप्रियता जग प्रचलित है। उनकी एवं उनके शिष्यों की वाणी में रास के पद पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। रास के कलात्मक अभिनय में उनका महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है।

पुष्टि-मागीय कीर्तनकार के कुछ पद-रचनाएँ निम्नलिखित हैं -

1) *श्रीवृषभानु-नंदिनि नाचति लाल गिरिधर संग,*
   लाग डाट उरप तिरप रास रंग राच्यो।।
   झपताल मिल्यौ राग केदारो सप्त सुरनिए
   अवघर वर सुघर तान, गान, रंग राच्यो।।

2) *देखो राधा-माधो वन-विहार*
   तहाँ बाजत ताल मृदंग चंग, बाजै ढ़फ शहनाई अरू उपंग।
   बीन रबाब किन्नरी की घोर बिच सिरिमंडल मुरली की रोर।।
   तंबूर सारंगी सितार संग, खंजरी कठताल ढ़ोलकी रंग।
   अछवट महुवर सुर मिलाई, झाँझ झमक बाजै गिने न जाई।।

3) *नाचत गोपाल संग गोप कुंवरि अति सुधंग,*
   तत्थेई तथेई तथेई तथेई मंडल मघि राजे।
   संगीत गति भेद मान लेत सप्त सुर बंधान,
   धिधिकटि धिधिकटि मृदंग मधुर मधुर बाजे।।

4) *वृंदावन में खेलन होरी।*
   ताल पखावज बंसि धुनि बाजत।
   बिच मुरली धुनि सहज सुहाई।।
   ढ़ोल निसान दुंदुभी बाजत, मदनभेरी आनक सहनाई।।
   रूंज मुरज अरू झांझ झलरी, बाजत कर कठताल उपंगा।।
   अरू पिनाक किन्नरी श्रीमंडल, मधुर जंत्र बाजत मुखचंगा।।
   गिरिधरलाल की लीला गावै, चतुर्भुज गास चरन रज पावै।।

इनके पदों में रागों एवं वाद्यों के नाम प्राप्त होते हैं। उपरोक्त पदों में संगीत कला का चरमोत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है एवं राधा-कृष्ण के सम्मिलित गायन, वादन और नृत्य कला की उत्कृष्ट झाँकी मिलती है। श्री कृष्ण एवं राधाजी की मधुर रस वर्षिणी रासलीला के प्रेममयी रसधारा से सम्पूर्ण भारतवर्ष रससिक्त हो गया।

कवि जयदेव के आराध्य देव 'श्री कृष्ण'

रीना सहाय

एसोसियेट प्रोपफेसर, संगीत विभाग,
श्री अरविन्द महिला कॉलेज, पटना

भारत में संत कवियों की विशेष भूमिका रही है, जिन्होंने भक्ति रस के पद लिखे। गेय रचनाओं की परम्परा वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो चुकी थी। उस समय से ही शब्दो एवं स्वरों के समन्वय से विशिष्ट रचनाएँ की जाती रही है। भारतीय साहित्य में संगीत को माध्यम मानकर ग्रन्थों की रचना और विकास मध्यकाल की विशेष उपलब्धि रही हैं। छन्दों को भावों का वाहक कहा गया है। छन्द लय निर्धारित करते है, गीत द्वारा विशेष प्रसंग या भाव रस को चित्रित करने में सक्षम होते हैं। छन्दों का संगीत से और इन दोनों का भावाभिव्यक्ति से गहरा संबंध है। भारत के संतकवियों ने संगीत एवं साहित्य के बीच इतना सान्निध्य स्थापित कर दिया कि वे एक दूसरे के पूरक बन गए। मध्यकाल में विकसित भक्ति संगीत में काव्यात्मिकता एवं संगीतात्मिकता दोनों का समावेश है।

कवि जयदेव एवं मैथिल कोकिल विद्यापति महान् संतों के आराध्य देव हुए 'श्री कृष्ण'। इन्होंने कृष्ण-लीला को अपना विषय माना एवं अद्भूद काव्य रचनाएँ की। सूरदास के पद 'मैया मोरी मै नहीं माखन खायो। में वात्सल्य, मीराबाई की पक्तियों 'मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो ना कोई, में पूर्ण समर्पण के भाव हैं। कबीर ने निर्गुण रूप को उतारा है। स्वामी हरिदास ने नाद ब्र"म की उपासना की। हरिदासी नाम कृष्ण भक्तों के समूह ने विष्णुपद गाए। चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन द्वारा कृष्ण को पुकारा। विद्यापति ने यद्यपि महादेव, गंगा, भगवती के भी अनेकों पद लिखें हैं तथापि श्रृंगार रस की अभिव्यंजना में इन्होंने कृष्ण एवं राधा को आधार माना।

कवि जयदेव ने 12वीं शताब्दी में गीति काव्य 'गीत-गोविन्द' की रचना की। इस कृति के प्रबन्ध-सौन्दर्य ने विश्व साहित्य में अपना अमूल्य स्थान प्राप्त किया। उनके इष्ट देव विष्णु थे जिनके अवतार 'श्री कृष्ण' पर यह गीति काव्य लिखा गया। जयदेव पश्चिम बंगाल के बीरभूमि में राजा लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि थे। कवि ने माधव, केशव, कृष्ण, जगदीश, मधुसूदन कई नामों से उन्हें पुकारा है और उनके गीत पूर्णतः गोविन्द को समर्पित हैं। गीत गोविन्द में बारह सर्ग हैं जिनका चौबीस प्रबन्धों में विभाजन हुआ है। प्रत्येक प्रबन्ध में आठ पद हैं। राधा कृष्ण की रासलीला के माध्यम से नायिका की कई अवस्था का वर्णन इन पदों में किया गया है। अभिलाषा, ईर्ष्या प्रत्याशा, निराशा, कोप, मान, पुर्नमिलन तथा हर्षोल्लास आदि का बड़ी तन्मयता और कुशलता के साथ वर्णन प्राप्त है। प्रेम के सभी रूपों का वर्णन रोचक, सरस और सजीव होने के अतिरिक्त इतना सुन्दर है कि ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि ने शास्त्र अर्थात चिन्तन को भावना का रूप अथवा अमूर्त्त को मूर्त्त रूप देकर उसे कविता में परिणत कर रहा है।[1]

काव्य और नाद की महिमा के कारण सहृदय सामाजिक के हृदय की सूक्ष्म परन्तु सदा अवस्थित वृत्तियाँ इस आनन्द रूप उत्पन्न हुआ करती हैं।

संगीत आन्तरिक लोकोत्तर आनन्द की अभिव्यक्ति हैं। दार्शनिक तो इस सृष्टि को भी ब्र"म के परमानन्द की अभिव्यक्ति मानते हैं।[2] संत कवियों ने इस अलौकिक आनन्द का संदेश दिया है। गीतों एवं काव्यों के माध्यम से संत कवियों एवं सूपिफयों ने आन्तरिक चेतना की जागृति की ओर समाज को उन्मुख किया है। स्वर, गीत-काव्य एवं ताल इन तीनों का समन्यवयात्मक प्रयोग ही रस निष्पति के लिए प्रभावशाली होता हैं। रसों की चर्चा के क्रम में संत कवियों की विभिन्न रचनाएँ विभिन्न भावों को व्यक्त करती हैं। समाज तक अपना संदेश पहुँचाने के लिए इन संत कवियों ने ऐसे पद साहित्य की रचना इन्होंने की जो सभी वर्गो के लिए ग्राह्य हो सकें। गीत गोविन्द की काव्यात्मिकता एवं संगीतात्मिकता जहाँ सौन्दर्य पक्ष को बढ़ाती है, वहीं इन पदों में निहित गूढ़ तत्त्व आध्यात्मिक चेतनाओं की ओर अग्रसर करते हैं। सौन्दर्य एवं आनन्द दोनों ही मूलतः एक बौद्धिक प्रक्रिया की समरसता की परिणति है। सौन्दर्य की कोई भी संवेदना बौद्धिक चेतना के बिना अनुभूति नहीं बन सकती। गीत-गोविन्द इन तथ्यों को पूर्णतः स्थापित करता है। राधा-कृष्ण पर केंद्रित इस कृति की कोमलकान्त पदावलियों ने सहृदय श्रोताओं को इतना प्रभावित किया कि भारत ही नही वरन् विदेशी भाषाओं में भी इसका अनुवाद हुआ। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने इसे ग्राम्यरूपक कहा, कुछ अन्य समीक्षक उसे गीतिनाटक कहते हैं, तो कुछ अन्यों के मत में यह काव्य परिष्कृत यात्रा है। पिशेल इस काव्य को संगीत रूपक स्वीकार करते हैं। लेकिन इसे गीत और रूपक का मध्यवर्त्ती अथवा समन्वित रूप मानते है, परन्तु जयदेव ने अपनी इस कवि का सर्गों में विभाजन करके इसे नाटक के स्थान पर काव्य मानने की अपनी धारा की ओर संकेत किया है। कुछ विद्वान उसे श्रृंगार महाकाव्य की संज्ञा देते है।[3]

गीत गोविन्द की रचना कर कवि ने राधा, माधव और उनके दशावतार की महता को मानव समाज के सामने प्रस्तुत किया है। मान्यता है कि वे गीत-गोविन्द के पदों को अपनी पत्नी पद्मावती के साथ नृत्य एवं नाट्य में प्रस्तुत करते थें। पद्मावती स्वयं नृत्य कला में दक्ष थी। अतः जयदेव के गीतों को नृत्य मुद्राओं का भी साहचर्य मिला। जगन्नाथ पुरी के मंदिर के आलावा उड़ीसा के कई जगहों पर गीत-गोविन्द लोकप्रिय हुआ। तत्कालीन उड़ीसा के लोक संस्कृति को भी प्रभावित किया औ्र पिफर पूरे भारत को। शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से देखें तो यह प्रबन्ध काव्य रागों एवं तालों में निबद्ध था, जिसकी चर्चा परवर्त्ती सांगीतिक ग्रन्थों में भी की गयी है। उदाहरणतः पंडित लोचन ने अपनी पुस्तक 'राग-तरंगिणी' में भैरवी-राग के उदाहरण में कवि जयदेव की भैरवी में बद्ध पंक्तियाँ प्रस्तुत की है। जिसमें भैरवी रूपी खण्डिता नायिका कृष्ण से अपने मन की पीड़ा व्यक्त करते हुए कही है - हे माधव! हे केशव! आप वहीं चले जाएँ जो आपके विषाद को दूर करती हैं, यहाँ झूठ ना बोलें। रात्रि को जागने से आपके नेत्र लाल हो गये हैं और श्रृंगारजन्य अनुराग आपकी आँखों में झलक रहा है - यथा-

रजनि जनित गुरूजागररागकषायित मलसनिवेशम्
वहसि नयनमनुरागमिव स्पुफटमुदितरसाभिनिवेशम्
हरि हरि याहि माधव! याहि केशव! मा वद कैतवादम्।
तामनुसर सरसीरूहलोचन! या तवहरति विषादम्।।

इसी प्रकार राग कर्णाट तथा ताल एकताली में निबद्ध निम्नलिखित पंक्तियों में सखी राधा की अवस्था का वर्णन कर रही है। गीत-गोविन्द के चतुर्थ सर्ग में कृष्ण के दूर हो जाने के कारण विरहोत्कण्ठिता राधा अत्यन्त दुःखी है। कृष्ण को राधा की विरहावस्था सखी इस प्रकार बताती है:-

कर्णाटरागैतालीतालाम्यां गीयते प्रबन्धः ।।6।।
निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनु विन्दति खेदमधीरम।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिष कलयति मलयसीरम्।
माधव मनसिजविशिरव मयादिव भावनयात्वदि लीना
सा विरहे तव दीना ।।धुवपदम्।।

हे माधव! राधा आपके दुःख में चन्दन की निन्दा करती है, चन्द किरणों को देखकर अत्याधिक कष्ट का अनुभव करती है, सर्पो की पुफपफकार वायुमिश्रित होने से मलयानिल को विष के समान

समझती है तथा कामदेव के वाणों से भयभीत-सी वह आपका ध्यान करती हुई अपने में ही लीन हो गयी है और अत्यन्त दुःखी हैं।

प्रथम प्रबन्ध में वर्णित दशावतार के पद विशेषतः उल्लेखनीय हैं जिसमें सृष्टि से लेकर विकास की हर एक अवस्था में केशव विभिन्न दस रूपों में अवतरित हुए। प्रत्येक पद के बाद जय-जगदीश-हरे की वन्दना की गई है।

निम्नलिखित प्रबन्ध मालव राग में बद्ध है उसमें कवि कहते हैं कि केशव ही प्रकृति में सर्वत्र हैं। संसार के बन्धनों से मुक्त करने वाले मानव मस्तिष्क रूपी सागर में केशव हंस के समान हैं:-

दिनमणि मण्डल मण्डन भवखण्डन।
मुनिजन मानस हँा-जय जय देव हरे।

तृतीय प्रबन्ध बसन्त राग में बताया गया है। कवि स्वयं कहते है कि उनकी गीति काव्य में कृष्ण और राधा के अद्भूत लीला का वर्णन है। इसके गायन से गायकों एवं श्रोताओं को यश की प्राप्ति हो ओर वे कृष्ण की महानता को समझ पाएँ।

तृतीय सर्ग सप्तम प्रबन्ध में कृष्ण पश्चाताप कर रहे हैं क्योंकि राधा उन्हें अन्य गोपियों के साथ देखकर क्रोधित हो जाती हैं, उन्हें छोड़कर चली जाती हैं:-

हरि हरि हतादरतया गता साकुपितेव ।।ध्रुवम।।

सातवें पद में कृष्ण राधा से क्षमा माँगते हैं यथा-

क्षम्यतांपरं कदापि तवेदृशं न करोमि
देहि सुन्दरि! दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि।।7।।

पंचम सर्ग में कृष्ण का संदेश सखी राधा को सुनाती हैं और कहती हैं कृष्ण तुम्हारे विरह में अत्यन्त व्यथित एवं व्याकुल हैं यथा -

वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय
तव विरहे वनमाली सखि सीदति ।।ध्रुवपद।।

इस प्रकार राधा की विरह वेदना कवि ने प्रस्तुत की है। कहीं वे कृष्ण की प्रतीक्षा में डूबी हुई उनपर किसी अन्य प्राणी के साथ विषयासक्त, होने का आरोप लगाती है। कहती हैं कि यह उसके लिए अत्यन्त लज्जाजनक परिस्थिति है, सखियाँ उनका उपहास करेगी, यदि कृष्ण उनके पास आ जाते तो वे लज्जित होने से बच जाती।

आँठवें सर्ग; विलक्षण लक्ष्मी पति नाम सर्गद्ध में कवि ने राधा के दुःख एवं नैराश्य को अष्टपद में व्यक्त किया है- वह कृष्ण से कहती हैं कि वे असत्य ना बोलें -

हरि हरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादम्
तामनुसर सरसीरूह लोचन या तव हरति विषादम्

अष्टम सर्ग में राधा पूरी रात कृष्ण के लिए व्याकुल रहीं हैं। प्रातः लौटे श्री कृष्ण से कहती है कि सब कुछ जानते हुए भी वे कृष्ण के लिए दीवानी बनी हुई हैं और ग्लानि का अनुभव कर रही है। स्वयं ही उनका मन उन्हें क्षमा नहीं कर रहा है। परन्तु रूष्ट राधा को कृष्ण मना लेते हैं। दशमू सर्ग में राधा को अपना आभूषण बताते हुए कृष्ण कहते हैं कि उनका हृदय सदा राधा के लिए ही विचलित रहता है। राधा ही उनका जीवन है।

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि ममजीवनं
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम्।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनो
तत्र मम हृदयमतियत्नम्।।3।।

(उनविशः प्रबन्ध)

ये पद, राग मालव, गुर्जरी, देसी, बराड़ी, गुणकारी में अधिकतर एकताली में निबद्ध हैं। शब्दों एवं स्वरों का सामनन्जस्य अत्यन्त सुन्दर है। प्रकृति का भी वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। उन्नसवें प्रबन्ध में देशी राग में निबद्ध जीव में राधा की मुख प्रतिमा के लिए चन्द्रमा की उपमा दी गयी है। सुनदर दन्त चाँदनी की भाँति प्रतीत होते हैं जो अँधकार को दूर करती है। आँखों के लिए कमल पूफल की उपमा है।

बीसवें प्रबन्ध में जो बसन्त राग में निबद्ध है, तीसरे पद में कवि जयदेव कहते है - राधे! मधु की सुन्दर वाणियों को तुम सुनो, कोयल की कूक में भी प्रेमवाणी सुनायी पड़ रही है।

आध्यात्मिक पक्ष :-

गीत गोविन्द के पहले पद में ही कवि जयदेव यह बताते हैं कि सांसारिक मोहमाया में पफँसकर मनुष्य यह पूर्णतः भूल जाता है कि सच्चिदानन्द ही उसका अन्तिम लक्ष्य है जो स्वयं ब्र"म हैं। जीव आध्यात्मिक अनुशासन के माध्यम से इस संसार रूपी मायाजाल से निकल सकता है और अज्ञानता के अंधकार को दूर कर सकता है। भक्ति एवं पूर्ण विश्वास द्वारा ही सांसारिक बंधनों जो घृणा, शंका, भय के रूप में वर्त्तमान रहते है। उनसे मुक्त हो सकता है। योग के द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। गीत गोविन्द द्वारा कवि परमात्मा तक पहुँचनके की विविध अवस्थाओं का ज्ञान देते है।

सृष्टि पूर्णतः जलमग्न थी । प्रथम अवतार में भगवान ने मीन रूप लेकर वेदों की रक्षा की। दूसरे अवतार में कूर्म के रूप में उन्होंने पृथ्वी को अपनी पीठ पर उठाया। स्वच्छ मन के बिना ईश्वर प्राप्ति नहीं हो सकती। तीसरे अवतार में वे वराह रूप में अवतरित हुए। वराह रूप में यह संकेत है कि जीव अपने मन की अपवित्रता को हटाकर ही ईश्वर तक पहुँच सकता है। चौथी अवस्था में केशव नरसिंह रूप लेते हैं, जो मानव एवं पशु का सम्मिलित रूप है। विकास के बाद भी मनुष्य अपने आप को पूर्णतः अहम् भाव से दूर नहीं कर सकता है। हिरण्यकशिपु की प्रवृति राजसिक एवं तामसिक है। अध्यात्म के मार्ग में ये तत्त्व बाधा उत्पन्न करते हैं। पंचम अवतार में वामन रूप लेकर केशव सात्विक गुणों के विकास की ओर इंगित करते हैं जो राजसिक एवं तामसिक प्रवृत्तियों का दमन करता है। इन तीनों गुणों के संतुलन के ज्ञान के बावजूद मनुष्य सांसारिक अहम भाव एवं अपनी शक्ति के प्रति आसन्त होता है। षष्ठ अवतार में परशुराम के यप में भगवान इन प्रवृत्तियों से साधुओं एवे संतों की रक्षा करते है।

सप्तम अवतार में राम के रूप में अहँकार को शेष करते हैं। संसार को अपने मन पर संतुलन कर सांसारिक सुखों से विमुख होकर अहिंसा से दूर होकर आध्यात्मिक राह पर चलने का संदेश देते है। अष्ठम अवतार बलराम या हलधर का है जब मानव समाज का विकास होता है। जीवन के मूल श्रोत कृषि, सिंचाई की ओर अग्रसर होता है। नवम अवतार बुद्ध का है जिसमें बलि, जैसी बुराइयों का अन्त होता है। ईर्ष्या, द्वेष, जाति-भेद, वर्ण भेद जैसी कुरीतियों को छोड़कर मनुष्य निर्वाण के मार्ग पर चलता है। अन्तिम एवं दसवें अवतार में केशव कल्कि रूप धारण करते हैं जिसमें शारीरिक बन्धनों से मुक्त होकर जीव ब्र"म में लीन हो जाता है। जिस प्रकार नदी बहती है और समुद्र में विलीन हो जाती है उसी प्रकार यह जीवन निरनतर चलता रहता है और अन्त में महाकाल में मिल जाता है।

राधा कृष्ण की रासलीला प्रेम की अन्तिम अवस्था है। यही प्रेम आनन्द की अनुभूति में सच्चिदानन्द हैं। सांसारिक वस्तुओं से प्रेम तो आसक्ति होती है जवकि ईश्वर प्रेम ही प्रेम की सार्थकता है। गीत गोविन्द में वर्णित रासलीला इस कृति के दार्शनिक पक्ष यह है कि श्री कृष्ण सर्वत्र हैं, सर्वव्यापी है और सबके हृदयों में हैं। निश्छल मन एवं हृदय से हो उनकी भक्ति रूपी अमृत को ग्रहण किया जा सकता है। मनुष्य जब इस भक्ति के लिए स्वयं को तैयार करता है तो प्रकृति के रूप में राधा उनकी सहायता करती हैं।

इस संदेश को सहृदयों तक पहुँचाने के लिए ही कवि जयदेव ने **'गीत-गोविन्द'** प्रबन्ध काव्य की रचना की।

संदर्भ

1. **रामचन्द्र वर्मा शास्त्री** - जयदेव गीत गोविन्द पृ.-6
2. **डॉ. सुरेशव्रत** - लेख-संगीत में रस तत्त्व पुस्तक-संगीत में रस तत्त्व एक सैद्धान्तिक विवेचना - पृ.-1
3. **डॉ. रामचन्द्र वर्मा शास्त्री** - जयदेव कृत गीत-गोविन्द-पृ.-5

कृष्ण भक्ति में संगीत परम्परा

ऋतु सोनी (शोध छात्रा)

नेट, क्रेट, जे.आर.एफ.
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

जीवन के लक्ष्य अखण्ड आनंद की प्राप्ति के लिए मन, वचन और कर्म से भगवान् की भक्ति आवश्यक है। भगवान के प्रति अनन्य प्रेम तथा समर्पण की भावना को ही 'भक्ति' कहते हैं। 'भक्ति' नौ प्रकार की बताई गई है, जिसमें से भगवान के गुणों का गान (कीर्तन) सहज और श्रेष्ठ है। गान के अधिक संवेदनशील होने पर माधुर्य भाव अथवा सत्त्व का उद्रेक होता है। सत्त्वोद्रेक से चित्त क्रमशः शांत होता है और विराग उत्पन्न होता है। ऐसे विराग के अनुकूल राग हो, राग के अनुकूल छन्द हो, छन्द के अनुकूल शब्द हों और शब्दों के अनुकूल लय हो, तो मन का अखंड लय (समाधि) होता है।

भगवान का प्रत्येक नाम एक मंत्र है। स्वर और लय के आधार से मंत्र की शब्द या चेतन-शक्ति जाग्रत् रहती है। वल्लभ, चैतन्य, सूर, मीरा, तुलसी, पुरंदरदास, त्यागराज, तुकाराम, नरसी, गोरख, हरिदास, जयदेव, विद्यापति, धर्मदास, नानक, मलूकदास, रैदास, पलटूदास, दादू, संदरदास, चरनदास, सहजोबाई, दयाबाई इत्यादि संत भक्तों ने स्वर और शब्द की चेतन-शक्ति से ही भगवान् का अनन्य प्रेम उपलब्ध किया तथा जगत् को सत्य का संदेश दिया।[1]

ईसा की 14वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक का काल भक्ति-साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। इस काल में भक्ति-आन्दोलन अपने चरम उत्कर्ष पर था और इसी समय निर्गुण संत भक्ति, प्रेममार्गी सूफी-भक्ति, प्रेमलक्षणा कृष्ण-भक्ति तथा मर्यादामार्गी राम-भक्ति की प्रेरणा से हिंदी के सर्वोच्च साहित्य का निर्माण हुआ, जिसके फलस्वरूप शिल्प, संगीत तथा अन्य ललित कलाओं को भी पूर्ण विकसित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस काल को भक्ति-काल कहा जाए, तो कोई अत्युक्ति नहीं।

कृष्ण-भक्ति के जिस रूप ने समस्त भारत को रसमग्न किया, उसका मुख्य केन्द्र वृन्दावन रहा, जिसने कई शताब्दियों तक चित्रकार, कवि, नर्तक तथा संगीतकारों को भी प्रेरणा प्रदान की। मनुष्य की सौन्दर्य-वृत्ति को परिष्कृत तथा सार्थक बनाने में भक्ति काव्य का प्रमुख हाथ रहा।[2]

कृष्ण भक्ति में हवेली-संगीत की परंपरा अत्यन्त प्राचीन और महत्वपूर्ण स्थान रखती है। भगवान् श्री कृष्ण का कथन है, 'वेदानां सामवेदोऽस्मि।' वेदों का कथन है, 'अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।' नाद ही ब्रस्म है। व्यापक परमात्मा में ही आत्मा अनुरंजन करती है। 'नादाधीनं जगत सर्वम्' - स्वयं न्यायेश्वर भगवान भी नाद के अधीन है। भगवान् के हाथ में वेणु है और उन्होंने नारद से कहा है कि जहाँ-जहाँ मेरे भक्तगण गायन करते हैं, वहाँ-वहाँ मैं उपस्थित रहता हूँ।

इस प्रकार हवेली-संगीत की परम्परा का मूल वेद में है और वह स्वयं ईश्वर से ही अवतरित हुई है। वैष्णवों का तो यहाँ तक कथन है कि संगीत भगवान् श्री कृष्ण की देन है। साधारणतः संगीत का गुण तन्मयता है। और इसके ऊर्ध्वमुखी होने पर

मनुष्य ईश्वर की ओर प्रवृत्त होता है। यही कारण था कि विश्व के सभी धर्मों में संगीत को विशिष्ट स्थान दिया गया।[3]

वल्लभाचार्य जी के सम्प्रदाय की सांगीतिक परम्पराएँ हवेली संगीत परम्परा के अन्तर्गत आती हैं। 'हवेली संगीत' की संज्ञा वास्तव में आकाशवाणी की देन है। यह पुष्टिमार्गीय संगीत अर्थात् हवेली संगीत भले ही ब्रज में अंकुरित हुआ था, परन्तु इसका पल्लवन गुजरात में हुआ। गुजरात में मंदिर को 'हवेली' कहा जाता है। इस कारण इसे 'हवेली संगीत' कहना उचित प्रतीत होता है। इस परम्परा में इष्टदेव श्री कृष्ण के बाल रूप की पूजा का प्रावधान था। इनकी पूजा अर्चना में संगीत, खाद्य-सामग्री व वस्त्र-आभूषण को सम्मिलित किया गया है। जिसे संक्षेप में राग-भोग-श्रृंगार की संज्ञा दी गई है। इनमें प्रथम 'राग' अर्थात संगीत को अत्यधिक महत्ता प्रदान की गई।[4]

महाकवि सूरदास को 'पुष्टि-मार्ग का जहाज' और 'कविता करने में सागर' कहा जाता है। आश्चर्य की बात है कि इस अंधे भक्त महाकवि के काव्य और संगीत-गुरु कौन थे, यह किसी को ज्ञात नहीं है। यह ठीक है कि आचार्य वल्लभाचार्य से दीक्षा लेने के पूर्व सूरदास केवल विनय और भक्ति के पद ही गाया करते थे और बाद में आचार्य के आदेशानुसार इन्होंने लीला का गायन किया। उन विनय और भक्ति के पदों में भी पुष्टि-मार्ग की झलक मिलती है। आचार्य ने इनकी विशिष्ट काव्य रचना, गायन कला और भक्ति-भावना को देखकर अष्टछाप के संत कवियों में इन्हें प्रथम स्थान दिया। पुष्टि-मार्ग के प्रचार और प्रसार में इनका योगदान सभी संत कवियों में कविता के संख्यात्मक और गुणात्मक, दोनों दृष्टिकोणों से प्रथम है।

पुष्टि-मार्ग का स्वरूप :

जब सूरदास मरणासन्न अवस्था में पहुँच गए, तो इनके दर्शन के लिए आचार्य विट्ठलनाथ के साथ अन्य संत कविगण भी गए। चतुर्भुजदास ने सूरदास से पूछा कि पुष्टि मार्ग का स्वरूप कैसा है? इस पर इन्होंने यह पद गाया -

राग केदारो
भजि सखि, भाव-भावक-भेव।
कोटि साधन करो कोऊ, तऊ न माने सेव।।
बेद-बिधि को नेम नाहि, न प्रीत की पहचान।
ब्रज-बधू बस कियो मोहन, 'सूर' चतुर सुजान।।

वस्तुतः पुष्टि मार्ग के अनुसार, भक्त और ईश्वर में मर्यादा की कोई आवश्यकता नहीं है। बुद्धि के बदले हृदय की पवित्रता चाहिए। यदि हृदय पवित्र है, तो ईश्वर पास ही में है। इसी भाव के अनुसार इन्होंने सख्य और वात्सल्य भाव की भक्ति को श्रेष्ठ बताया है।[5]

कीर्तन की परम्परा :

नवधा भक्ति के अन्तर्गत भगवान् को भजने के लिये कीर्तन भी एक सरल मार्ग बताया गया है। जिसके द्वारा भक्त जन सुगमता से मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस कीर्तन की परंपरा के मुख्य प्रचारक नामदेव, चैतन्य देव, जयदेव एवं आचार्य वल्लभ माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त सन्त कवियों में तुलसीदास, सूरदास, मीराबई और अष्टछाप के अन्य कवियों का प्रमुख हाथ रहा है। इस कीर्तन के मुख्यतः चार प्रकार हैं :- 1. यात्रा-कीर्तन, 2. अष्टयाम कीर्तन, 3. विषय-कीर्तन, और 4. भजन-कीर्तन। डा. दीनदयालु गुप्त ने बताया है कि अष्टयाम-कीर्तन का प्रारंभ वल्लभाचार्य ने ही किया था। कीर्तन में गाए जाने वाले सभी गीत संगीतमय होते हैं। 'गीत' उसे कहेंगे, जिसमें हृदय के उद्गार गीतों के बंध में बँधकर राग, ताल और लय से युक्त हो। इनमें से किसी एक का अभाव गीत की श्रेणी से नीचे गिराकर 'गीति' की श्रेणी में ले आता है। कीर्तन में गाए जाने वाले सभी गीत ईश्वर से ही संबंधित होते हैं; चाहे उनका वर्णन किसी भी रस या भाव में क्यों न हो। गीतों के माध्यम से जो कुछ कहा जाता है, उसका प्रभाव अत्यंत गंभीर होता है और सीधे हृदय को छू लेता है।[6]

सूरदास के पदों में प्रयुक्त तालों में एकताल, झपताल, चर्चरी ताल, ध्रुवताल और धमार ताल प्रमुख हैं। इनके काव्य में प्रायः निम्नांकित वाद्ययंत्रों का उल्लेख मिलता है :-

पंचसब्द, रूंज, मुरज, ढफताल, बाँसुरी, झालरी, बीन, रबाब, किन्नरी, अमृतकुंडली, यंत्र, सुरमंडल, जलतरंग, पखावज, आवज, उपंग, सहनाई, सारंगी, तान तरंग, कंसताल, कठताल, सृंग, मुँहचंग, खंजरी, पटह, मुरली, बीना, झाँझ, मृदंग, चंग, डफ, ढोलक, दुंदुभी, मँजीरा, आनक, महुवरि, डिमडिम, संख, निसान, भेरी इत्यादि। यहाँ यह स्मरणीय है कि यद्यपि उस समय सितार और तबले का प्रचलन संगीत समाज में हो गया था, परन्तु सूरदास ने इन्हें नहीं अपनाया।

नृत्य संगीत :

नृत्य-कला भी संगीत का अभिन्न अंग है। इसके अभाव में संगीत विकलांग हो जाता है। महाकवि सूर ने अपने पदों में 'रास-नृत्य' का भी वर्णन किया है, जिसके अन्तर्गत तांडव और लास्य-नृत्य का मनोरम चित्रण किया गया है।[7]

भारतीय संगीत को मीराबाई की देन :

भारतीय संगीत में आज तक जो भी गायक-वादक हुए हैं, उनमें पुरुषों की संख्या स्त्रियों की अपेक्षा अधिक है। स्त्रियों में संगीत की साधना होती रही, लेकिन शास्त्रकारों ने उनका उल्लेख नहीं किया। भाग्यवश उन दो स्त्रियों का इतिहास मिलता है, जिन्होंने संगीत की उच्च उपासना तथा साधना की थी। एक थी तानसेन की पुत्र सरस्वती, जो स्वयं वीणा-वादन में सिद्ध थी और दूसरी थीं मीराबाई जिन्होंने गायन, वादन तथा नृत्य को अपना जीवन ही बना रखा था। इन दो स्त्रियों की संगीत साधना ने संगीत-संसार को पर्याप्त समृद्धि प्रदान की। सरस्वती का विवाह सिंहगढ़ के राजा महाराजा समोखन सिंह के पुत्र मिश्री सिंह से हुआ और उनके पुत्र तथा शिष्यों ने वीणा-वादन की कला का अभ्यास जारी रखा।

मीराबाई ने गायन तथा नृत्य, इन दो अंगों का पूर्ण अभ्यास किया था। साज, करताल, एकतारी इत्यादि वाद्य तथा नृत्य-समय के गायन; इनका संगम मीराबाई के ही संगीत-साधन में प्राप्त होता है। संगीत-साधन का हेतु मूलतः मोक्ष-साधन है, इसका प्रमाण मीराबाई के संगीत-साधन में मिलता है। जिस प्रकार उच्च काव्य का जन्म अनुभव से होता है, उसी प्रकार जब संगीत-साधना आत्मानंद के समय की जाती है, तब अनुपम आनंद मिलता है। मीरा का लक्ष्य एक ही था और वह था, अपने प्रियतम कृष्ण का रंजन कर, उसको ही प्राप्त करना। वह अपने प्रियमत के लिए गाती थी और नृत्य भी करती थी, उसकी सारी साधना केवल श्री कृष्ण के लिए ही थी। कृष्ण के साथ उसके मन की स्थिति कभी विप्रलंभ, कभी संयोग की थी। अपने अनुभव को व्यक्त करने के लिए उसने काव्य और संगीत को माध्यम चुना था।[8]

ब्रज में विकसित चैतन्य सम्प्रदाय के साहित्य में संगीत :

ब्रज में विकसित चैतन्य सम्प्रदाय के साहित्य में संगीत का उल्लेख प्रचुर मात्रा में मिलता है। एक ओर जहाँ इस सम्प्रदाय के भक्त संगीतकारों ने अपनी अनुपम रचनाओं व वाणी द्वारा संगीत को अत्यधिक महत्व दिया, वहीं दूसरी ओर सम्प्रदाय की आध्यात्मिक व धार्मिक पृठभूमि को संगीत के सम्बल द्वारा ही दृढ़ता प्रदान की। ब्रज में चैतन्य सम्प्रदाय के प्रायः सभी भक्त-कवियों ने संगीत तथा उसके भेद-प्रभेदों, अंगो-उपांगो आदि का यत्र-तत्र पर्याप्त वर्णन किया है। यद्यपि केवल संगीत सम्बन्धी ग्रन्थ तो इन भक्त कवियों में से किसी ने नहीं लिखा किन्तु उत्कृष्ट संगीतज्ञ होने के नाते इन सभी कवियों के भक्ति के आवेश में गाये पदों में संगीत से सम्बन्धित सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है। अनेक राग-रागिनियों, लय एवं तालों तथा अन्य सांगीतिक शब्दों का प्रयोग इनके पदों में हुआ है। अनेक गीत-शैलियों जैसे - ध्रुपद, धमार तथा ख्याल इत्यादि का प्रयोग भी इनके पदों में मिलता है।

इसके अतिरिक्त कृष्ण का बाल-रूप, भोग, श्रृंगार, शयन व रासलीला आदि जितनी भी सेवा विधियाँ हैं, वे सभी स्वर व लय के साथ ही स्वीकार की गई है। वर्ष में जितने भी उत्सव हैं, उन सभी को भी विविध राग-रागिनियों, विविध गीत-शैलियों और विविध वाद्य-यंत्रों के साथ ही सम्पन्न किया जाता रहा। आज भी वृन्दावन में यही विधान अपनाया जाता है। जिससे इस सम्प्रदाय के भक्तों की रचनाओं द्वारा उनके संगीत-ज्ञान का स्पष्ट परिचय मिलता है। नृत्य के विविध रूपों व नृत्य प्रकारों विशेषतया "कृष्ण रास-लीला" का वर्णन इस सम्प्रदाय के भक्त-कवियों ने किया है। इन भक्त कवियों में अधिकतर नृत्य के सिद्धान्त पक्ष से परिचित थे किन्तु कतिपय महानुभावों ने इसमें व्यावहारिक दक्षता भी प्राप्त की थी। क्योंकि इन भक्त-कवियों की रचनाओं में नृत्य की मुद्राओं और पारिभाषिक पदावली का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। नृत्य के शास्त्रीय रूपों जैसे - अंग, उपांग, लाग, डांट, उरप, तिरप इत्यादि का वर्णन भी यत्र-तत्र हुआ है। संगीत के पारिभाषिक शब्दों नाद, ग्राम, श्रुतियाँ, सप्त-स्वर, तान, आरोही, अवरोही व विभिन्न वाद्य-यन्त्रों इत्यादि का भी प्रयोग इन भक्त-कवियों के संगीत-ज्ञान का स्पष्ट परिचय देता है। संगीत के इन्हीं पारिभाषिक शब्दों से संबंधित इस सम्प्रदाय के संगीतज्ञों के पदों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

नंद नंदन सुघर राय, मोहन बंसी बजाए
स र ग म प ध नी सप्त सुरनि गावै।
अतीत अनागत संगीत सुधर
सुर नीके औघट तान मिलावै।
सुरध्याय, तालध्याय, नृत्यध्याय निपुन,
लघु गुरू जति पुलक भेद मृदंग बजावै।।
सूरदास मदनमोहन, सकल कला गुन प्रवीन
आपुन रीझि रिझावै।।

उपर्युक्त पद में सर्वप्रथम संगीत के सात-स्वरों का स्पष्ट उल्लेख है। तद्पश्चात् संगीत में ताल के पारिभाषिक शब्दों, अतीत, अनागत तथा अनाघात (औघट) इत्यादि का उल्लेख है।[9]

सूरदास जी ने निम्नांकित पद में अपने आराध्य श्री कृष्ण जी को वृन्दावन कितना प्रिय है उसका वर्णन किया है

वृंदावन मोकौं अति भावत
सुनहु सखा तुम सुबल, श्रीदामा, ब्रज तै बन गौ-चारन आवत
कामधेनु, सुरतरु सुख जितने, रमा सहित बैकुंठ भुलावत
इहि वृंदावन, इहि जुमना-तट, ये सुरभी अति सुखद चरावत
पुनि-पुनि कहत स्याम श्रीमुख सों, तुम मेरे मन अतिहिं सुहावत
सूरदास सुनि ग्वाल चकित भए, यह लीला हरि प्रगट दिखावत।।[10]

रसिक-शिरोमणि कविवर जयदेव के जन्म स्थान, जन्म तिथि, प्रारम्भिक जीवन के बारे में प्रामाणिक सामाग्री के उपलब्ध न होने पर ही लगभग सभी उनका काल 11वीं सदी मानते हैं, उनके जीवन का महत्वपूर्ण भाग किन्दुविल्व में बीता तथा जगन्नाथपुरी के पास रहते हुए ही पद्मावती से उनका विवाह हुआ और उसके बाद ही उन्होंने 'गीतगोविन्द' की रचना की।

'गीतगोविन्द' बारह सर्गों में विभक्त है। इन सर्गों में कुल मिलाकार चौबीस गीत हैं। प्रत्येक गीत में आठ कड़ियाँ यानी पद हैं। आठ पद होने के कारण ही प्रत्येक गीत 'अष्टपदी' कहलाता है। श्री कृष्ण और राधा की प्रेम लीला का चित्रण इन गीतों में हुआ है। सभी गीत अल्पाधिक मात्रा में एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं तथा जहाँ गीतों में सीधे सम्बन्ध नहीं जुड़ता, वहाँ पूरक कड़ी के रूप में कवि ने श्लोक रचकर पूरा कर दिया है। ये श्लोक, जो संख्या में लगभग 92 हैं गीतों से पहले हैं इस प्रकार 'सम्पूर्ण गीतगोविन्द' में कथा प्रवाह है 'गीतगोविन्द' की रचना को प्रबन्ध-गान-परम्परा में प्राचीनतम् माना जाता है।

'गीतगोविन्द' के सारे गीत अलग-अलग राग और तालों में गाए जाते हैं। राग-ध्यान-परम्परा के प्रभाव से प्रयुक्त रागों का राग-ध्यान भी प्रत्येक पद से पहले गाने का प्रचलन है। पद-माधुर्य के साथ-साथ ध्वनि-माधुर्य भी इसमें इतना है कि बिना गाए भी संगीत तत्व नष्ट नहीं होता।[11]

उपरोक्त सम्पूर्ण वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि वास्तव में कृष्ण भक्ति में संगीत परम्परा कूट-कूट कर विद्यमान है क्योंकि संगीत ही वह माध्यम है जो कि व्यक्ति विशेष को परमात्मा से सीधा जोड़ता है। वैसे ध्यान से देखा जाये तो जितने भी भक्तगण कृष्ण-भक्ति से जुड़े होते हैं वह सदैव संगीत रूपी सागर में आनन्द की अनुभूति का रसास्वादन करते रहते है, अर्थात् आनन्दमग्न रहते हैं।

सन्दर्भ-सूची

1. निबंध संगीत, गर्ग नारायण, लक्ष्मी, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), प्रथम संस्करण मई, 1978
2. संगीत मैनुअल, डॉ. शर्मा, मृत्युंजय, एच.जी. पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. चैतन्य सम्प्रदाय और संगीत (ब्रज के विशेष सन्दर्भ में) सैम्भी, नीलम, प्रिन्टवैल, तिलक नगर, जयपुर, प्रथम संस्करण 1994
4. भक्ति काव्य का समाज दर्शन, प्रेमशंकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000

पत्रिका-संगीत, मई, 2015

फुटनोट

[1] निबन्ध संगीत, लक्ष्मीनारायण गर्ग, पृ.सं.-535

[2] निबन्ध संगीत, लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ.सं.-536

[3] निवन्ध संगीत, लक्ष्मी नारायण गर्ग/पृ.सं.-509

[4] संगीत मैनुअल, डॉ. मृत्युंजय शर्मा, पृ.सं.-397

[5] निबन्ध संगीत, लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ.सं.-540-541

[6] निबन्ध संगीत, लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ.सं.-542-543

[7] निवन्ध संगीत, लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ.सं.-544

[8] निवन्ध संगीत, लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ.सं.-546-547

[9] चैतन्य सम्प्रदाय और संगीत (ब्रज के विशेष सन्दर्भ में), नीलम सैम्भी, पृ.सं.-162-163

[10] भक्ति काव्य का समाज दर्शन, प्रेमशंकर, पृ.सं.-142

[11] संगीत, मई, 2015, पृ.सं.-45

विद्यापति पदावली में राधा-कृष्ण का प्रेम

रूचि पाण्डेय

शोध छात्रा, (एस.आर.एफ.)

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हिन्दी साहित्य के 'अभिनव जयदेव' के नाम से विख्यात भारती के वरपुत्र विद्यापति की लोकोत्तर रचनाओं का परिचय देने, उनके माधुर्य, प्रसाद, सरसता और मनोमुग्धकारिता की व्याख्या करने के लिए उनको 'मैथिल कोकिल' कह देना ही पर्याप्त है। आपकी कोकिल-काकली-कलित मधुमयता, कोमल कान्त पदावली, भावुक-हृदयविमोहिनी भावुकता और नव भावोन्मेषिणी प्रतिभा देखकर चित्त विमुग्ध हो जाता है। इनकी भाषा मैथिलि होने के बावजूद सर्वाधिक रचनाएं संस्कृत भाषा में थी। विद्यापति ने मैथिल, अवहट्ट, प्राकृत और देशी भाषाओं में चरित काव्य और गीति पदों की रचना की। इनके काव्य में वीर, श्रृंगार, भक्ति के साथ-साथ गीति प्रधानता मिलती है। विद्यापति की यही गीतात्मकता उन्हे अन्य कवियों से भिन्न करती है। विद्यापति की काव्यात्मक विविधता ही इनकी विशेषता है।

विद्यापति द्वारा रचित 'राधा कृष्ण' से सम्बन्धित मैथिल भाषा में निबद्ध पदों का संकलित रूप 'विद्यापति पदावली' के नाम से विख्यात है। इनके पदों में 'राधा-कृष्ण' के प्रेम के (संयोग-वियोग) दोनों पक्षों का श्रृंगारिक और मार्मिक वर्णन है। इनमें भावना प्रधान काव्य के समस्त गुण पाए जाते हैं।

इनके पदों में राधा को प्रमुख स्थान दिया गया है। उसमें भी नख शिख वर्णन प्रमुख है जैसे-

देख देख राधा रूप अपार
अपरूप के विहि आनि मिराओल,
खिति तल लावण्य सार,
अगहि अंग अनंग मुरझायत
हेरय पड़य अधीर।

विद्यापति की राधा अथ से इति तक मुग्धा किशोरी हैं। इस राधिका में प्रेम का यह समुज्ज्वल रूप अनाविल भाव से प्रस्फुटित हो उठा है, जो प्रेम भाजन के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं देखता है। विद्यापति ने राधिका की जिस प्रेममयी प्रतिमा की अभिकल्पना की है उसमें विलास कलावती किशोरी का स्वप्न प्रत्यक्ष ही प्रमुख है।

विद्यापति की राधा के रूप, चरित्र और ृील में कुछ ऐसा है, जो केवल विद्यापति ही प्रस्तुत कर सकते थे। राधा उनके सम्पूर्ण मानस सौन्दर्य का धन विग्रह है, इस मूर्ति के निर्माण में कवि ने अपना सारा निजित्व, हृदय का सम्पूर्ण भाव संसार अर्पित कर दिया है। विद्यापति की राधिका के जीवन का प्रथम क्षण उस समय आरम्भ हुआ जब कृष्ण ने एक ऐसी अपरूप बालिका देखी, जो यौवन के आकस्मिक आगमन पर कुतूहलचकित होकर अपने अंगों का उभार देखते हुए विविध प्रकार के आनन्द में विभोर हो जाती है-

सैसव जीवन दुहु मिलि गेल
स्त्रवन क पथ दुहु लोचन लेल
निरजन उरज हेरइ कत वेरि
हंसइ जे अपन पयोधर हेरि।

राधा के रूप को कृष्ण विजड़ित चित्त से देखते रह गए, किन्तु एक क्षण का यह मिलन पीड़ा का

नया संसार दे गया। मेघमाला की सान्द्र नीलिमा में जैसे तड़ित-लता एक क्षण के लिए झिलमिला कर छिप जाए, राधा के रूप की वह झलक हृदय को बर्छी की तरह चीरती चली गयी। वे उसे अच्छी तरह देख भी न सके।

सजनी भल कए पेखल न भेलि
मेघमाला सयं तड़ित लता जनि
हिरदय सेल दई गेलि।

इसी तरह श्री कृष्ण की अनुपम छवि को देखकर राधा भी कुछ कम आकृष्ट न हुई। उसे तो जैसे स्वप्नवत मालूम हो रहा था। वह अपनी सखि से जब कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करने लगी तो उसे विश्वास भी नहीं हुआ कि ऐसा रूप कहीं सम्भव भी हो सकता है-

ए सखि पेखलि एक अपरूप
सुनइति मानव सपन सरूप।

उस अपूर्व सौन्दर्य को एक निमिष तक ही तो वह देख सकी थी, किन्तु वह एक क्षण का दर्शन-सुख उसके मन-मृग के मर्म को क्रूर व्याध के विषम ़ार की तरह बेध गया। कदम्ब वृक्षों से आच्छादित यमुना तट पर धन माला की तरह सुन्दर उस रूप को देखने के लिए वह व्याकुल हो उठी, किन्तु लाज के मारे पूरा देख भी न सकी। उलट-पलट कर देखते समय वह गिर पड़ी, उसके पैर कांटों से लहू-लुहान हो गये-

कि लगि कौतुक देखलों सखि निमिष लोचक आध
मोर मन मृग परम बेधल विषम बान बेआध
तीर तरंगिनी कदम्ब कानन निकट जमुना घाट
उलटि हेरइत उलट परलौं चरन चीरल कांट।

अपनी प्रेम दशा की इतनी सरल और मासूमियत भरी व्यंजना शायद ही कोई कर पाए। इस तरह विद्यापति के पदों में राधा कृष्ण के दिव्य प्रेम और ललित विलास का प्रवाह उमड़ता हुआ दिखाई पड़ता है।

इसी प्रकार विद्यापति के कृष्ण सौन्दर्य के अप्रतिम भण्डार हैं। उनकी ऐन्द्रजालिक शोभा ने सम्पूर्ण ब्रज को विह्वलित कर रखा है। उनकी त्रिभंगी छटा, यमुना के तीर कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़ा होकर भुवनमोहन सौन्दर्य से सबको बरबस अपनी ओर खींचने वाली मुद्राएं गोपियों के हृदय को नाना प्रकार के वैचित्यकारी भावों से उन्मथित कर देती हैं। कृष्ण के इस रूप को राधा अपार्थिव अलौकिक मानती हैं। यह रूप उनकी सारी चेतना हर लेता है।

विद्यापति के कृष्ण न केवल राधा के परम प्रिय प्रेमास्पद हैं, बल्कि स्वयं प्रेम की व्यथा को प्रत्येक क्षण भोगने वाले प्रेमी भी हैं। विद्यापति ने कृष्ण जीवन का अत्यन्त सीमित क्षेत्र लेकर भी उनके रूप, आकर्षण, व्यवहार शील और प्रेम प्रतिदान की विभिन्न स्थितियों का चित्रण करके एक ऐसे नायक का निर्माण किया है, जो सहज ही पाठक के मानसिक जगत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है। विद्यापति ने कृष्ण जीवन की उन लीलाओं का जो असुरों के विध्वंस और सज्जनों के परित्रण के लिए घटित हुई, वर्णन नहीं किया है। इस कारण कृष्ण के ऐश्वर्यमय, शौर्यपूर्ण लोकरक्षक व्यक्तित्व का प्रस्फुटन नहीं हो पाता। इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यापति ने प्रेमी कृष्ण को ही अपना लक्ष्य बनाकर पूर्णकाम लीलावतार के जीवन के एक अंश मात्र को चित्रित किया। वे जन भाषा में कृष्ण पर काव्य लिखने वाले पहले व्यक्ति थे और इसमें सन्देह नहीं की उन्होंने राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति के चरणों में जो मानसिक वाक्रूप पुष्पार्चन निवेदित किया, वह बाद के कवियों, भक्तों और साधकों के लिए प्रेरणा का ज्योतिर्मय सम्बल और पाथेय बन गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. विद्यापति : डॉ. शिव प्रसाद सिंह
2. विद्यापति : डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल
3. विद्यापति पदावली : रामवृक्ष बेनीपुरी
4. विद्यापति और सूर, काव्य में राधा : श्रीमती कृष्णा शर्मा
5. हिन्दी के कृष्ण काव्य में, प्रियप्रवास : डॉ. सुरेश पति त्रिपाठी

संगीत काव्य में राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण

रूचि मिश्रा

शोध छात्रा, गायन विभाग

संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

युगों-युगों से अविरल बहती आ रही भारतीय शास्त्रीय संगीत की काव्य धारा में राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण पद रचनाकारों का प्रिय विषय रहा है। इस युगल जोड़ी के प्रेममय विविध भाव को शास्त्रीय संगीत धारा के विविध शैलीयों के पदों में विविध प्रकार से चित्रित किया गया है, जैसे-

भगवान कृष्ण की छवि का वर्णन-

मन अटकी छबि नागर नट की
केसर खौर मुकुट माथे पर
वनमाला गल लटकी अटकी।

मृदु मुस्कान नैन अनियारे
चितवन हिय बिच खटकी अटकी।।
कृष्ण की चितचोर छवि का वर्णन-
मन लै गयो री साँवरा
सखी री मोरा लागे कैसे जियरा।

दै गयो पीर धीर लै गयो री
नीर बहे नैन लागे दुख दैन
रामरंग जब सुधि आवे हियरा।

राधा-कृष्ण का युगल स्वरूप-

• माई री सहज जोरी प्रगट भई रंग की गौर श्याम घन दामिनी जैसे।

प्रथमहूँ हुती आगे हूँ रहिहें न टरिहें तैसे।
अंग अंग की उजराई सुखराई चतुराई सुन्दरता ऐसे।
श्रीहरिदास कै स्वामी स्यामा, कुंजबिहारी सम वैसे-वैसे।

• राधिका आज आनन्द में डोलें

सांवरो चन्द्र गोविन्द के रस भरे
दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोले

परतन नील पट दामिनी दमकत
हाथ लिये आरसी
रूप को खोले।
राधा-कृष्ण की होरी का वर्णन-

• आज "छबीले" मोहन नागर ब्रज में खेलें होरी।

ग्वाल-बाल सब संग सखा लै, लै गुलाल की झोरी।

• सरस रस रहस रीझे दोउ भीजे रंग रसमाते खेलत होरी।

अतर अरगजा अबीर लावे री नंद किशोरी।
राधा द्वारा श्री कृष्ण को उलाहना देना-
वहीं जाओ, जाओ, जाओ मोहन
जिन युवती संग किन्हीं रंगरलियाँ।

देखी देखी तोरी नेहा की रीत
भली जूँ अकेली विरहा की मति
अब ना बनावो बनावो बतियाँ।

इस प्रकार उपरोक्त पदों के अन्तर्गत राधा-कृष्ण के परस्पर प्रेम को एवं प्रेममय विविध भावों का प्रगटन किया जाता रहा है। प्राचीन रचनाओं से लेकर वर्तमान समय में रची जाने वाली रचनाओं में भी अधिकतर राधा-कृष्ण के परस्पर प्रेम को ही कथानक के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है।

राधा कृष्ण के प्रेम का सामाजिक सन्देश

रूचि रानी गुप्ता

एम.ए.

संगीत वादन (तबला), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रेम वह मानसिक प्रक्रिया है जिसका सम्बन्ध व्यक्ति की चित्तवृत्तियों से सरोकार रखती है। प्रेम ईश्र द्वारा प्रदत्त एक ऐसी अमूल्य निधि है जिसके वशीभूत होकर मनुष्य का एक दूसरे के प्रति समर्पण भाव उत्पन्न होता है यदि प्रेम की भावना सच्ची है तो व्यक्ति अपना एक दूसरे के प्रति सर्वस्व त्यागने को सदा तत्पर रहते है। प्रेम निःस्वार्थ होता है प्रेम में विश्वास होता है यह राधे रानी का अटूट विश्वास ही तो था जो वह अति उत्सुकता से नैनों में आस लगाये हर क्षण श्री कृष्ण के वापस आने की आशा रखती थी। कहा गया है कि "मनुष्य प्रेम भयो बैकुंठी" इसका अर्थ है कि प्रेम सर्वोपरि है जिसके द्वारा मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। राधे कृष्ण का प्रेम का बन्धन एक ऐसा पवित्र बन्धन था, जिसमें त्याग, विश्वास, समर्पण, दृढ़ संकल्प की भावना हमें देखने को मिलती है। श्रीकृष्ण जी का प्रेम का स्तर यह था कि लाख वह सांसारिक लीला में व्यस्त रहे सामाजिक कारणों को देखते हुए उन्होंने विवाह भी रुक्मणि से कर लिया किन्तु राधा तो उनका प्राण थी उनकी सासों में बसी थी, वह राधे को अपना ही शरीर का एक अंग मानते है उन्होंने अपने आप को राधा से अलग कभी स्वीकार ही नहीं किया।

एक बार राधे रानी श्रीकृष्ण से कुछ सवाल पूछती है वह कहती है कि "प्रिय गुस्सा क्या है और श्रीकृष्ण मुस्कुराते हुए कहते है कि "किसी की गलती की सजा खुद को देना", राधा पूछती है कि प्रिये आपकी दृष्टि से प्रेमी और दोस्त में अन्तर क्या है। वह कहते है - "प्यार सोना होता है और दोस्ती हीरा, सोना तो टूटकर दोबारा बन जाता है परन्तु हीरा नहीं बनता।"

राधा ने पूछा कि हे प्रिये मैं कहा-कहा हूँ? श्रीकृष्ण मुस्कुराते हुए बोले - "राधे तुम दिल में हो, तुम सासों में हो, तुम जिगर में हो, तुम धड़कनों में हो, तुम तन में हो, तुम मन में हो, तुम हर जगह हो। फिर राधा जी ने पूछा अच्छा बताइये "मैं कहा नहीं हूँ?" श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया "तुम सिर्फ और सिर्फ मेरी किस्मत में नहीं हो।"

राधा जी श्रीकृष्ण से "प्रेम का असली मतलब पूछती है।" श्रीकृष्ण जी कहते है - "जहाँ मतलब हो वहाँ प्यार नहीं होता है।" राधा जी कहती है कि "आपने प्रेम मुझसे किया तो फिर विवाह रुक्मणि से क्यूँ?" श्रीकृष्ण जी राधा से कहते है कि "विवाह के लिए दो व्यक्ति चाहिए, दो दिल चाहिए, दो शरीर चाहिए और हमारे तो प्राण एक दूसरे में बसे है तुम ही बताओ? राधा कि "राधे-कृष्ण" में दूसरा कौन है? राधे हम तो पहले से एक ही है फिर हमें विवाह करने की क्या आवश्यकता है?

निःस्वार्थ प्रेम विवाह के बन्धन से अधिक महान है और ऐसा प्रेम ही पवित्र होता है। इसीलिए राधे कृष्ण का प्रेम अमर है उनका प्रेम एक सच्चे प्रेम, विश्वास, समर्पण और त्याग का एक उदाहरण बन

गया है। राधे-कृष्ण का प्रेम निःस्वार्थ प्रेम की प्रति मूर्ति है उनका प्रेम सदैव जीवित रहेगा और निःस्वार्थ प्रेम का उदाहरण बनकर सदैव सच्चाई, समर्पण, विश्वास की पराकाष्ठा का सन्देश समाज को देता रहेगा।

श्रीकृष्ण ने मर्यादा में रहकर भी राधे के प्रति अपनी पवित्र प्रेम भावना को सदैव जीवत रखा उनके प्रेम में संयोग क्षण भर तो वियोग अधिक बना रहा किन्तु वियोग के पलों में उनका प्रेम का रूप और भी प्रगाढ़ होता गया। यदि दोनों के प्रेम में सच्चाई न होती और एक-दूसरे के प्रति विश्वास नहीं होता तो वियोग के समय वह प्रेम जीवित नहीं रह सकता था यह राधा जी का विश्वास ही था, जो वह लाख अपनी सखियों के वहकाने में कदापि नहीं आयी उनकी सखियाँ जब-जब राधे-रानी को विरह की अग्नि में तपते देखती तो उनसे राधे की यही पीड़ा सही नहीं जाती थी और वह राधा जी को समझाने का प्रयत्न कर करके हार गयी कि श्रीकृष्ण अब नहीं आयेंगे राधे अब तुम उनकी आशा की डोर छोड़ दो परन्तु राधा जी का प्रेम दृढ़ी था उनका श्रीकृष्ण के प्रति यह अटूट विश्वास था कि श्रीकृष्ण उनके पास लौटकर एक बार अवश्य ही आयेंगे। राधे रानी का प्रेम वियोग के दिनों में और भी प्रगाढ़ रूप लेता गया। उनका जो श्रीकृष्ण के प्रति अटूट विश्वास था जिस पर विषम परिस्थितियों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि दिन-प्रतिदिन वियोग के दिनों में भी उनका श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम भावना बढ़ती ही गयी इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी राधा रानी के प्रेम के वशीभूत थे यद्यपि श्रीकृष्ण जी ने सामाजिक दृष्टि से राधा से दूर रहे उनके समीप न रह सके परन्तु मर्यादा में रहते हुए समाज को देखते हुए भी उन्हें राधा से प्रेम की भावना को कम नहीं किया इस वियोग का दशा में श्रीकृष्ण व राधे दोनों का प्रेम और भी प्रगाढ़ होता गया इसीलिए राधा-कृष्ण निःस्वार्थ प्रेम की प्रतिमूर्ति बनकर अमर है।

भागवतों में जो राधा कृष्ण के प्रेम की लीला को दर्शाया है वह उनके लिए परोक्ष प्रेम था, उस प्रेम को वो लोग ठीक-ठीक उसी प्रकार उसी रूप में नहीं देख पाते थे, जिस रूप में किसी नायक-नायिका के रूप हम प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखते है। भागवतों में राधा-कृष्ण जी की लीला को लेकर लौकिक प्रेम की जो आलौकिकता नायक-नायिका के अलौकिक होने के कारण प्रदान की थी और जिसकी महिमा सूरदास आदि कृष्ण भक्तों में मिलती है उसे प्रेम रूप के अलौकिक प्रेम की व्यंजना भी हिन्दू प्रेमाख्यानों में हुई।

राधा कृष्ण के प्रेम का प्रभाव हिन्दी साहित्य जगत में भी बहुत गहरा पड़ा है। पृथ्वीराज की "वेलि", "डउषा अनिरूद्ध" की कथाओं तथा नन्द दास की रूप मंजरी में प्रेम का यही स्वरूप निखरा है अन्तर केवल इतना है कि राधा के स्थान पर रुक्मणि, उषा, रूपमंजरी नायिका के रूप में आती है। राधे-कृष्ण प्रेम को साधना मानते थे वे प्रेम को तपस्या का फल मानते थे इस पथ पर चलकर आने वाली कठिनाइयों से भी वह अनभिज्ञ नहीं थे। उनकी दृष्टि से यह प्रेम का पथ तलवार की धार से भी तेज और मृणाल के तार से भी सूक्ष्म है।

"अति छीन मृणाल के तारहूँ ते तेहि ऊपर पांव दे आवनो है।
सुई बेह के द्वार सकै न तहां परवीत को टौंड़ो लदावनो हैं।
कवि बोधा अनी धनी बेज़हुँ ते चढ़ि तापै न चि डुलावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल है जू तरवार की धार पे धावनो है।"[1]

कृष्ण और राधा से सम्बन्धित प्रेम व्यंजना में यदि राधा और कृष्ण का नाम हटाकर किसी अन्य नायक-नायिका का नाम ले लिया जाये तो वह प्रेम फिर शुद्ध लौकिक प्रेम ही कहा जा सकता है। राधे कृष्ण का प्रेम एक अगम अगाध समुद्र के समान है जिस में डूबकर किनार पाने का अति कठिन कार्य उनके प्रेम की सच्चाई के कारण सफल हो सका। राधे राधो व कृष्ण पिराहग्नि में तपते थे। उनका

शरीर दिन-दिन घुलता था परन्तु ऐसी विषम परिस्थितियों में भी उनका प्रेम और भी प्रगाढ़ होता गया। यदि एक बार भी किसी के शरीर में राधा-कृष्ण की भाँति सच्चे प्रेम की पवित्र अग्नि प्रज्वलित हो गयी तो वह निश्चित रूप से अजर अमर हो सकता है तथा उसे विषय वासनादि से भी छुटकारा मिल जाता है इसके साथ ही यदि सच्चा प्रेम किसी के मन में जाग्रत हो गया तो फिर वह किसी भी प्रकार हटाए नहीं दृढ़ता और न मारने से मर सकता है -

"प्रेम अमर यह मरै न मारा बुझै न प्रेम अगिनि चिनगारा।

वेई वेद पुरानहं गाई जिन मन प्रेम उरझ उरझाई।।
नाहित ऐसे गिरा हिरानी प्रेम बिना कुछ न बखानी।[2]

यही प्रेम का स्वरूप था राधा-कृष्ण के प्रेम का। इसी प्रेम की महानता के कारण राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन जैसे सूरदास, रसखान आदि ने उनके प्रेम के प्रति जो उद्‌गार व्यक्त किये है उनमें व्यंजित प्रेम किसी भी प्रकार से निम्न स्तर पर दृष्टव्य नहीं हो सकता है ऐसा प्रेम का स्वरूप शुद्ध सात्विक, महान कल्याणकारी, सुख का दाता और शुद्ध आत्मा की सच्ची आत्मानुभूति है। राधे-कृष्ण के प्रेम का रूप काम वासना भी कदापि नहीं रहा उनका प्रेम तो मानवीय जगत के विकास, सामंजस्य, सौहार्द एवं सामरस्य का आधार है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

श्रीवास्तव, डॉ. हरिकान्त, भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ. 66 हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस

श्रीवास्तव, डॉ. हरिकान्त भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ. 67 हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस

सिंह, डॉ. योगेन्द्र प्रताप, लीला और भक्ति रसशुभम प्रकाशन 177 शहराराबाग, इलाहाबाद

याजिक, डॉ. भवानी शंकर रसखान रत्नावली हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

वर्मा, डॉ. ब्रजेश्वर सूर मीमांसा ओरियण्टल बुक डिपो 1709 नई सड़क, दिल्ली

वर्मा, रामनरेश हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

टण्डन, डा. प्रेमकान्त साधारणीकरण और सौन्दर्यानुभूति के प्रमुख सिद्धान्तलोकभारती प्रकाशन 152 महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद

नवल नन्द किशोर निराला : कृति से साक्षात्कार राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, इलाहाबाद

संस्कृत वाङ्मय में श्रीराधा-कृष्ण का युगल-स्वरूप

संदीप कुमार यादव

शोधच्छात्र

संस्कृत विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अखिलरसामृतमूर्ति व न्दावन-आनन्दकन्द श्रीनन्दनन्दन की मधुरी मुलरी की तान एवं मस्तक पर मयूरपिच्छ धारण किया तथा अपने रसमयी चिन्मयस्वरूपिणी विग्रह वाली श्रीराधा का युगलस्वरूप अनादि काल से भक्तों, रसिकों को आनन्दित करती आ रही है और अनन्तकाल तक करती रहेगी। भारतीय संस्कृति में पूर्णत्व की कल्पना उसमें ही स्वीकार की जाती थी, जिसमें युगल-छवि हो। एक के बिना दूसरा सदैव से अकेला रहा है। अतः हमारे जनमानस ने युगलस्वरूप की कल्पना की। अर्द्धनारीश्वर की छवि इसी को द्योतित करती है। महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश की मङ्गलाचरण भगवान् शिव और माता पार्वती के युगलस्वरूप की है। इनका यह स्वरूप वैसा ही है जैसे वाग् और अर्थ की। जिस प्रकार वाणी और अर्थ दोनों अलग-अलग कहलाते हुए भी एक ही हैं, उसी प्रकार पार्वती और शिव कहने को तो दो हैं, पर हैं वे सचमुच एक ही।

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।[1]

सम्पूर्ण जगत् एवं भारतीय संस्कृति में जिस युगल छवि ने सर्वजनसमुदाय को आकर्षित किया वह केवल श्रीराधा-कृष्ण की छवि ने। समाज के हर वर्ग ने इसे अपना बनाने का सफल प्रयास किया। चाहे वे भक्त रहें हों, या कवि। इस युगल छवि ने भक्त को कवि बना दिया और कवि को भक्त। चाहे वे महाकवि सूरदास जैसा भक्तशिरोमणि रहा हो, जिसको स्वयं भगवान् द्वारा चर्मचक्षु प्राप्त होने पर भी अपने तमस्-नेत्रों से ही भगवद्दर्शन करते हुए अपने मनोभावों को काव्य का स्वरूप प्रदान किया। शास्त्रकार रूपगोस्वामी ने काव्यशास्त्र की रचना करते हुए भक्त हो गय और भक्ति को भी रस की श्रेणि में खड़ा कर दिया। भक्ति के रस में डूबा हुआ यह शास्त्रकार भक्तिरस का स्थायिभाव केवल श्रीकृष्णविषयक रति को मान बैठा। रसिकजनों को भी इस युगल-स्वरूप ने खूब रिझाया। किसी ने इसे अपने स्वामी के रूप में स्वीकारा तो कुछ ने इसे अपने स्वामिनी-रूपिणी मानकर प्रेम किया। इस छवि को देखकर मतवाला बने हुए प्रमत्तजनों ने इसे काम की साक्षात् विग्रह माना।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के नायक, वृन्दावन में कदम्ब के नीचे अपनी बाँकी छटा से खड़े होने वाले त्रिभङ्गीलाल श्रीकृष्ण नित्य रसमय विग्रह है और उनकी सहचरी निखिल गोपी मुकुटमणि रासेश्वरी राधिका भी नित्य आनन्दमयी मूर्ति हैं। दोनों एक ही तत्त्व की युगल-मूर्ति हैं। श्रीकृष्ण रासेश्वर हैं, राधिका रासेश्वरी। ये नित्य रासेश्वरी भगवान् के रस की नित्य स्वामिनी हैं। इनके बिना भगवान् रह ही नही सकते। राधा कोई मृण्मयी मूर्ति नहीं, वह साक्षात् चिन्मयविग्रहवती हैं। वह पार्थिव प्रतिमा नहीं, पराशक्ति का प्राकाट्य है।[2]

श्रीराधा-कृष्ण की युगल-छवि इस धराधाम पर कब अतीर्ण हुई यह कहना अत्यन्त कठिन है, किन्तु फिर भी लिखित रूप का जो आद्यस्वरूप है वेद। उसमें इस छवि का दर्शन सर्वप्रथम होता है। संहिताओं में तो इसका स्पष्ट स्वरूप नहीं दिख पड़ता परन्तु उपनिषदें इसके प्रमाण हैं। राधोपनिषद् तथा राधिकातापनीयोपनिषद् में इसकी महिमा प्रतिपादित है। राधोपनिषद्‌ में राधा कृष्ण की परमान्तरंगभूता ह्लादिनी शक्ति बतलायी है। राधा शब्द की व्युत्पत्ति 'राध्' धातु से है-

'कृष्णेन आराध्यते इति राधा।'

''कृष्णं समाराधयति सदा' इति राधिका गान्धर्वीति व्यपदिश्यते।''[3]

अर्थात् श्रीकृष्ण के द्वारा जो आधारित है, वही राधा है तथा श्रीकृष्ण की सदा आराधना करने वाली राधिका है। यहाँ श्रीकृष्ण और श्रीराधा का जो स्वरूप मिलता है, वह है एक-दूसरे की आराधना करने वाली। अर्थात् राधा अपने पूर्व भावना से श्रीकृष्णचन्द्र की स्तुति करती है और अपने पूर्ण मनायोग से नन्दनन्दन वृषभानुनन्दिनी की पूजा करते हैं। राधिकातापनीयोपनिषद् में राधा-कृष्ण उत्कृष्ट प्रेमी के रूप में दिखते हैं। विश्वभर्ता श्रीकृष्णचन्द्र एकान्त में प्रेमार्द्र होकर राधा के चरणों की धूलि-राशि को अपने मस्तक धारण करते हैं श्रीकृष्ण राधा के प्रेम में इतने निमग्न हो जाते हैं कि अधरधारिणी मधुर मुरली भी धराधारी हो जाती है और बिखरे हुए अलकसमूह भी स्मरण पट्टिका से भ्रंशित हो जाती है–

यस्या रेणुं पादयोर्विश्वभर्ता धरते मूर्ध्नि रहसि प्रेमयुक्तः।
स्रस्तवेणुः कबरीं न स्मरेद्य तल्लीनः कृष्ण क्रीतवत्तां नमामः।।[4]

ऋक् परिशिष्ट (=वृहद्ब्रह्मसंहिता) श्रीराधा-कृष्ण में किसी भी प्रकार का अन्तर स्वीकार नहीं करता। वस्तुतः एक ही अनन्तखण्ड ब्रह्म-ज्योति को राधा-माधव दो रूपों में प्रकट माना गया है-

यः कृष्णः सापि राधा या राधा कृष्ण एव सः।
एकं ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधव रूपकम्।।[5]

जितने भगवान् के रूप हैं उतने ही रूपवाली लीला देवी हैं। जो लोकों में अनेक नामों से प्रसिद्ध हैं। वही वृन्दावन में राधा नाम से प्रसिद्ध है। यह वेदोक्त लीला नाम ही व्रज में श्यामा (=श्रीराधा) नाम से विख्यात है।[6] इसी के द्वितीय पाद के पंचम अध्याय में स्वयं भगवान् नारायण महालक्ष्मी से रहस्योद्घाटन करते हुए कहते हैं-

गोपनादुच्यते गोपी श्रीलीलाराधिकाभिधा।
देवीकृष्णमयी ज्ञेया राधिका परदेवता।।[7]

ऋक् परिशिष्ट में अन्यत्र भी कहा गया है- **''राधया माधवो देवो माधवेनैवराधिका''**। ये संकेत स्पष्ट करते है कि पूर्णतम पुरुषोत्तम परम तत्त्व ही राधाकृष्ण स्वरूप में प्रकट होकर लीलार्थ क्रीड़ाशील होता है। प्रकृति, शक्ति आदि सब कुछ राधा का ही बहिरंग रूप है। वस्तुतः शुद्ध ब्रह्म ही राधा है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार, सगुण-साकार त्रिविध रूप है, उसी प्रकार श्रीराधा का भी त्रिगुण रूप है। इसीलिए जो राधा है, वही कृष्ण है और जो कृष्ण है वही राधा है।

पुराण संस्कृत-साहित्य के उपजीव्य हैं। भारतीय संस्कृति का सम्यक् उद्घाटन पुराणों में ही हुआ है। 'पुराण' शब्द से तात्पर्य है प्राचीन आख्यानों से। भारतवर्ष के जो भी प्राचीन इतिहास है वह सब पुराणों में उपलब्ध होता है। राधा-कृष्ण के आख्यान तो प्रायः सभी पुराणों में प्राप्त होता है, कुछ में संक्षेपरूप में तथा अन्य अत्यन्त विस्तार के साथ। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस श्रीमद्भागवत में राधाकृष्ण की ललित तथा मधुर लीलाएँ अत्यन्त विस्तृत रूप में प्राप्त होता हैं उसी में राधा का नाम स्पष्टतया अंकित नहीं है। भागवत में रासलीला के प्रसङ्ग में वर्णन आता है कि कृष्ण रासमण्डल में से एक अपनी प्रियतमा गोपी को साथ लेकर अन्तर्हित हो जाते हैं। यह दृश्य गोपियों को व्याकुल कर देती है और वे श्रीकृष्णचन्द्र को ढूँढ़ने निकल पड़ती हैं। खोजते-खोजते यमुना के विमल बालुकाराशि में उन्हें कृष्ण के पग-चिन्ह दिखलाई पड़ते हैं और वे पग-चिन्ह अकेले नहीं अपितु किसी

व्रजवाला के चरण-चिन्हों के साथ दृष्टिगोचर होता है। उसके सौभाग्य की प्रशंसा में गोपियाँ कहती हैं कि इस रमणी के द्वारा अवश्य ही भगवान् ईश्वर कृष्ण आधारित हुए हैं, क्योंकि गोविन्द हमको छोड़कर प्रसन्न होकर उसे एकान्त में ले गये है।-

अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः।।[8]

पद्मपुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराण तो राधा7कृष्ण के वर्णनों से भरे पड़े हैं अर्थात् इन पुराणों में श्रीराधाकृष्णचन्द्र का स्वरूप विविध रूपों में दिखलाई पड़ता है। पद्मपुराण में कहा गया है कि राधा आद्या प्रकृति है तथा श्रीकृष्ण की वल्लभा है। यहाँ राधाकृष्ण के नैसर्गिक स्वरूप को दिखाया गया है। शक्तिस्वरूपिणी राधा शक्तिसम्पन्न होते हुए भी श्रीकृष्ण की वल्लभा हैं। अर्थात् ये शक्ति एवं प्रेम स्वरूप वाली छवि है-

तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्णवल्लभा।
तत्कतना कोटि कोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिका।।
तस्य अङ्घ्रिरजः स्पर्शात् कोटि विष्णु प्रजायते।।[9]

पद्मपुराण के पाताल-खण्ड में राधा को श्रीकृष्ण की आह्लादिनी प्रेयसी के रूप में चित्रित किया है-

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका पर देवता।
सर्वलक्ष्मीमयी स्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी।।[10]

इस पुराण की पूर्णमान्यता है कि राधा के समान न कोई स्त्री है और न कृष्ण के समान कोई पुरुष है। यह संसार का विलक्षण युगल-स्वरूप है- **न राधिका समानारी न कृष्णसदृशः पुमान्।**[11]

ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी श्रीराधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। श्रीकृष्णजन्मखण्ड में राधाकृष्ण का चरित्र विशद् रूप में वर्णित है। इसके अनुसार राधा की उत्पत्ति कृष्ण के वामाङ्ग से हुई है। रास के समय श्रीकृष्ण के वाम-पार्श्व से एक कन्या का प्राकट्य हुआ, जिसने तुरन्त पुष्प लाकर भगवान् के चरणारविन्दों में अर्घ्य प्रदान किया- राधा कृष्ण की आराधना करती है। और कृष्ण राधा की आराधना करते हैं। दोनों परस्पर आराध्य-आराधक हैं—

आविर्बभूव कन्येका कृष्णस्य वाम पार्श्वतः।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे।।[12]
राधा भजति तं कृष्णं स च तां च परस्परम्।
उभयो सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च।।[13]

इसी पुराण में यह भी कहा गया है कि वृन्दावन में ब्रह्मा स्वयं प्रकट होकर राधा का कृष्ण के साथ विधिपूर्वक विवाह सम्पन्न कराया। ये पति-पत्नी के रूप में भी यहाँ दिखलाई पड़ते हैं। ब्रह्माण्ड-पुराण में कहा गया है कि जिह्वा, नेत्र, कर्ण, हृदय तथा सर्वाङ्गों में व्याप्त राधा की आराधना स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र करते हैं-

जिह्वा राधा श्रुतौ राधा नेत्रे राधा हृदिस्थिता।
सर्वाङ्गव्यापिनी राधा राधैवाराध्यते मया।।[14]

यह राधा केवल दृश्यमान् जगत् के परा प्रतीत होती है अन्यथा यह तो श्रीकृष्णचन्द्र के सर्वाङ्गों में समाहित है। ये अलग-अलग दो होते हुए भी एक ही हैं।

आर्षकाव्यों के अनन्तर संस्कृत साहित्य की अविच्छिन्न परम्परा प्राप्त होती है। इस परम्परा के सभी रचनाकारों ने श्रीराधाकृष्णचन्द्र के युगलस्वरूप का दर्शन किया और अपने प्रातिभ-चक्षु से अनन्त-काल तक सर्वसमाज को अपनी रचनाओं से दर्शन कराते रहेंगे। ध्वनि-सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक परमाचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है। जिसमें विरह विधुरा श्रीकृष्ण राधा का कुशल-क्षेम नारद जी से पूछते हैं-

तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहःसाक्षिणां
क्षेमं भद्र कलिन्दशैलतनयातीरे लतावेश्मनाम्।
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनमृदुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठो भवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः।।[15]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने दशावतार में राधा को कृष्ण की प्रधान प्रेयसी के रूप में माना है-

प्रीत्यै बभूव कृष्णस्य श्यामानिवयचुम्बिनः।
जातीमधुकरस्यैव राधैवाधिकवल्लभाः।।[16]

गीतगोविन्द में महाकवि जयदेव ने राधाकृष्ण के रास का जो अद्भुत वर्णन किया है वह अन्यत्र

दुर्लभ-सा है। गीतगोविन्द में श्रीकृष्ण नायक तथा राधिका नायिका हैं और सम्पूर्ण काव्य राधाकृष्ण की ललित लीलाओं के विलास-वर्णन के निमित्त ही निर्मित किया गया है। जयदेव ने राधा को अन्य गोपियों से श्रेष्ठ माना है। प्रेम की एकनिष्ठता के लिए श्रीकृष्ण अन्य गोपियों को छोड़कर अन्तर्हित होते हैं। श्रीकृष्ण मूर्तिमान् शृङ्गार हैं- **''शृङ्गारः सखि मूर्तिमाननिवन्धो मुग्धो हरिः क्रीडति।''** रूपगोस्वामी का कथन है कि कृष्ण जीव हैं और राधा आत्मतत्त्व हैं। गोपियों को छोड़कर कृष्ण का राधा में आकृष्ट हो जाना जीव का पञ्च इन्द्रियों के क्षेत्र ऊपर उठ जाता है और वह तब परमात्मा में एकनिष्ठ हो जाता है।

संस्कृत साहित्य के व्यतिरिक्त संस्कृतभाषा के अङ्गभाषा प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में भी श्रीकृष्ण-राधा की युगल-छवि भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत वाङ्मय में श्रीराधाकृष्ण की युगल- छवि विविध रूपों में दृष्टिगत होती है। चाहे श्रुति की परम्परा रही हो या आर्षकाव्य हों, ये सर्वत्र अपने भक्तों, रसिकों आदि के विषय बने रहे हैं। संस्कृत के लौकिक साहित्य का एक भाग ही श्रीराधाकृष्ण की छवि से भरी पड़ी है। कवियों ने इसे जिस रूप में देखा उसी रूप में उसका अंकन कर दिया। किसी ने इसे प्रेमी-प्रेमिका के रूप में देखा तो किसी ने शक्ति स्वरूप में। कहीं ये एक-दूसरे के आराध्य के रूप में दिखते है। तो कहीं साक्षात् प्रजापति ब्रह्मा के द्वारा विधिपूर्वक विवाहित दम्पत्ति के रूप में दृष्टिपात होते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रघुवंश-1/1
2. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा-आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ0 3
3. वही, पृ. 20-21
4. वृ.ब्र.सं.-4/25
5. वही-4/55
6. वही-2/5/50
7. श्रीमद्भागवत-10/30/24
8. पद्मपुराण-69/118
9. वही, पातालखण्ड-57/53
10. वही-7/51
11. ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड-5/25
12. वही, प्रकृतिखण्ड-48/38
13. वही, कृष्णजन्मखण्ड-52/39
14. ध्वन्यालोक-आचार्य आनन्दवर्धन-2/5, पृ. 93
15. दशावतार, आचार्य क्षेमेन्द्र-श्लोक 83

निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रतिबिम्बित श्रीराधाकृष्ण का स्वरूप

सौम्या कृष्ण

(जे.आर.एफ.)
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

*भारतीय धर्म-साधना, संस्कृति तथा कलायें अद्ययावत श्रीकृष्ण के विलक्षण व्यक्तित्व एवं अद्वितीय रूप से प्रभावित हुई हैं। श्रुति तथा स्मृति पर आद्धृत मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति के नाना सम्प्रदायों ने श्रीकृष्णचरित के विविध आयामों को प्रकाशित करने का यथासम्भव प्रयास किया है। यद्यपि भारतीय वाङ्मय में जितना महत्त्व श्रीकृष्ण के चरित को मिला है उतना किसी अन्य को नहीं तथापि श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा तत्त्व को भी भारतवर्ष के गौरवशाली धर्म व साहित्य में पर्याप्त महत्त्व मिला है। स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती ने 'श्रीकृष्ण' पद की व्याख्या करते हुये कहा कि 'कृष्' अर्थात् अनन्त सत्ता एवं 'ण' अर्थात् निवृत्ति या आनन्द। अतः अनन्त अखण्ड-अतुलित सत्ता एवं आनन्द का नाम ही कृष्ण है तथा श्री पद का अर्थ है सेवा-भक्ति। यह भक्ति या आराधना ही राधा है-**'आराधनं राधा'**। अनन्त भक्तों में विविध प्रकार की भक्ति है, सेवा है, उन सब में जो अनुस्यूत है, वे सब जिससे अनुप्राणित हैं, वह परम तत्त्व 'श्री' है। वही 'राधा' है।[1] वस्तुतः अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के नायक, वृन्दावन में कदम्बतले मनोहर त्रिभंगी लाल श्रीकृष्ण नित्य रसमय विग्रह हैं और उनकी सहचरी निखिल गोपी मुकुटमणि रासेश्वरी राधिका नित्य आनन्दमयी मूर्ति हैं। दोनों एक ही तत्त्व की युगल मूर्ति हैं। श्रीकृष्ण रासेश्वर और राधिका रासेश्वरी। राधा के अभाव में कृष्ण अधूरे है। पं. बलदेव उपाध्याय के अनुसार राधा कोई मृण्मयी मूर्ति नहीं, वह चिन्मयी विग्रहवती है।[2]*

सम्पूर्ण वाङ्मय में श्रीराधाकृष्ण के विकास क्रम का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि राधा कृष्ण का स्वरूप तीन स्तरों में प्राप्य है। पहले स्तर में श्रीकृष्ण की आराधना अथवा समर्चना करने वाली, प्रेमपात्री सुन्दरी गोपी के रूप में किसी प्रिया का संकेत तो निश्चय ही मिलता है किन्तु वह अनामिका है, वह राधा नाम विशेष से रहित है। भागवत पुराण में रासलीला के प्रसंग में वर्णन आता है कि कृष्ण रासमण्डल में से एक अपनी प्रियतमा गोपी को साथ लेकर अन्तर्हित हो जाते हैं। उनके इस व्यापार से अन्य गोपियाँ व्याकुल होकर उन्हें ढूढ़ते हुये मार्ग में प्रत्यक्ष हुई हरिनियों से पूछती है कि अरी सखी! हमारे श्यामसुन्दर के अंग-संग से सुषमा सौन्दर्य की धारा बहती रहती है, वे कहीं अपनी प्राणप्रिया के साथ तुम्हारे नयनों को परमानन्द का दान करते हुये इधर से तो नहीं गये हैं? देखो कुलपति श्रीकृष्ण की कुन्दकली की माला की मनोहर गन्ध आ रही है, जो उनकी परम प्रेयसी के अंग से लगे हुये कुङ्कुम से अनुरंजित रहती है।[3] विष्णु पुराण में भी किसी अज्ञात प्रेयसी का वर्णन किया गया है।

द्वितीय स्तर में संस्कृत साहित्य जगत् राधारानी से भलीभांति परिचित हो चुका था। इस क्रम में राधा कृष्ण की प्रिया के रूप में रास करती हुई प्रतीत होती

है। ध्यातव्य है कि यहाँ राधा कृष्ण की केवल प्रियतमा है, वह प्रेम का आधार है परन्तु अभी तक वह आह्लादिनी शक्ति के रूप में अपने पूर्ण उत्कर्ष पर नहीं पहुंची है। वह अभी केवल कृष्ण का नाना उपायों से चित्त विनोद करती हैं तथा उनके हृदय में हर्ष का संचरण करती हैं। इस रूप में सर्वप्रथम प्राकृत साहित्य के गाथा सप्तशती में राधा रानी का प्राकट्य होता है जबकि संस्कृत साहित्य में राधा का कृष्ण की प्रेयसी के रूप अर्विभाव निम्बार्क सम्प्रदाय में होता है। पुष्टिमार्गियों का राधिकारमण एवं राधिकाबल्लभ रूप भी इसी का विस्तार है। राधाकृष्ण तत्त्वविवेचन के तष्तीय स्तर में गौड़ीय वैष्णव गोस्वामियों ने राधाकृष्ण की अलौकिक चमत्कारी लीलाओं को दर्शन की प्रौढ़ भित्ति पर आधृत कर नितान्त दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। यहाँ राधा भगवान् कृष्ण की महाभाव स्वरूपिणी, आह्लादिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं, जो भगवान् को आह्लादित करती है और जिसके द्वारा भगवान् अपने भक्तों को दिव्य आह्लाद प्रदान करते हैं।

वृन्दावन का आश्रय पाकर पनपने वाले कृष्णभक्तिपरक सम्प्रदायों में निम्बार्क सम्प्रदाय में राधाकृष्ण की युगलछवि का प्रथम धार्मिक प्राकट्य हुआ है ऐसा मानने में कोई विप्रतिप्रत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती है। निम्बार्क मत के प्रवर्तक आचार्य निम्बार्कने ब्रह्मसूत्र के भाष्य 'वेदान्त परिजात सौरभ' में किसी भी मत का खण्डन किये बिना अपने द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा 'दशश्लोकी' एवं 'सविशेषनिर्विशेष श्रीकृष्णस्तवराज' में श्रीराधाकृष्ण के विस्तृत स्वरूप का वर्णन किया है। निम्बार्क सिद्धान्त में चित्, अचित् एवं ब्रह्म ये तीन पदार्थ माने गये हैं। चित् अर्थात् जीवात्मा, जो ज्ञान स्वरूप एवं ज्ञान का आश्रय है तथा अणु-परमाणु रूप है। प्रत्येक देह से भिन्न है परन्तु वह देह से संयुक्त व वियुक्त हो सकता है। परन्तु वह अनन्त ज्ञाता जीव ईश्वर के अधीन है[4] जीव ईश्वर का अंश है। ईश्वर अंशी है या सर्वशक्तिमान् है। भगवान् के प्रसाद से जीव को अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान होता है। अतः जीव अपने ज्ञान एवं भोग के लिये ईश्वर पर आश्रित होने से उस (ईश्वर) से अभिन्न है किन्तु वह ईश्वर द्वारा नियम्य होने के कारण उससे भिन्न भी है। अचित् पदार्थ प्रकृति, अप्राकृत एवं काल के भेद से तीन हैं, यह स्वतन्त्र नहीं अपितु वह ईश्वर सापेक्ष है। प्रकृति प्राकृत से उत्पन्न महद् आदि है, अप्राकृत अचित् पर व्योम, परमधाम या बैकुण्ठ है तथा काल नित्य एवं विभु है। ये तीनों भी ईश्वर के अधीन है। निम्बार्क का ईश्वर व ब्रह्म वस्तुतः एक ही भगवान् के दो नाम है और उनका ब्रह्म 'कमलनयन कृष्ण' हैं।[5] उन्होंने कहा-'मैं वरेण्य, कमलेक्षण कृष्ण का ध्यान करता हूँ।'[6] वे कृष्ण के साथ सखियों समेत राधा को भी नित्य संयुक्त करते हैं और राधाकृष्ण के रूप में भगवान् का ध्यान करते है। वेदान्त कामधेनु अर्थात् दशश्लोकी में श्रीकृष्ण के वाम अंग में विराजमान वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका का स्मरण करते हुये कहा गया है कि-

अंगे तु वामे वृषभानुजा मुदा विराजमानामनु-रूपसौभागाम्।
सखीसहस्त्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।[7]

अर्थात् वृषभानु की आत्मजा अर्थात् राधा भगवान् श्रीकृष्ण के वाम अंग में विराजती हैं वह समस्त कामनाओं और इच्छा को देने वाली हैं। श्रीकृष्ण के अनुरूप ही उनका सौन्दर्य एवं सौभाग्य है तथा वे सहस्त्र सखियों से सेवित होती हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा कृष्ण की युगलमूर्त की उपासना इष्ट है। अतएव सखी सहचरी भाव से ही राधा कृष्ण को सेवा करना एवं मधुर उज्जवल रस की उपासना इस सम्प्रदाय की मुख्य पद्धति है। निम्बार्काचार्य के शिष्य औदुम्बराचार्य का कथन है कि राधाकृष्ण सच्चिदानन्द रूप है और सामान्यतया अगम्य होने से विरले ही सुजन इस तत्त्व को जानते हैं। राधा और मुकुन्द दोनों समभावेन अवस्थित रहते हैं। दो दृष्टिगोचर होने पर भी वास्तव में दोनों एक रूप ही हैं। इनकी आकृतियाँ आपस में एक दूसरे से नितान्त संयुक्त हैं।[8] जिस प्रकार पवन के झकोरों से जल में चंचल

तरंग दृष्टिगोचर होती है परन्तु वास्तविक रूप से वे जल से भिन्न दिखती हुई भी जलरूप ही होती है, उसी प्रकार राधाकृष्ण का युगल तत्त्व भी भिन्न प्रतीत होता हुआ भी वस्तुतः एक ही है।[9]

निम्बार्क मत में राधाकृष्ण के जप मात्र को ईश्वर प्राप्ति का साधन नहीं माना है अपितु यहाँ राधाकृष्ण की युगल प्रतिमा की पूजा अर्चना इत्यादि उपादानों को भी ग्रहण किया गया है। औदुम्बराचार्य का कथन है कि कृष्ण के संग में हरिप्रिया राधा की अर्चा बनानी चाहिये क्योंकि दोनों के साहित्य अर्चन से ही साधक परमगति को प्राप्त होता है। दोनों की उपासना में न्यूनाधिक की भावना नहीं करनी चाहिये क्योंकि ये दोनों एक ही तत्त्व के युगल रूप हैं।[10] ऋग्वेद के राधिकोपिनषद् में भी राधा-कृष्ण के एकत्व को स्वीकारकरते हुये कहा गया है कि-राधा और श्रीकृष्ण रस सागर श्रीमहाविष्णु के एक शरीर से ही क्रीड़ा के लिए दो हो गये हैं। ये श्रीराधिका भगवान् हरि की सर्वेश्वरी, सम्पूर्ण सनातनी विद्या और प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इन राधिका की अवज्ञा करके जो श्रीकृष्ण अराधना करना चाहता है, वह महामूर्ख है।[11] वस्तुतः राधा कृष्ण में परस्पर बिम्बप्रतिबिम्बभाव परिलक्षित होताहै। श्रीराधा श्यामसुन्दर का विग्रह है तो श्रीकृष्ण राधिका की ही मूर्ति है। जैसे कोई व्यक्ति दर्पण में अपना मुख्या देखता है तो दर्पण में उसे अपना मुखमण्डल दिखलाई पड़ता है,साथ ही उसका नेत्र भी दर्पण में प्रतिबिम्बित होता है। परन्तु जिस प्रकार उस व्यक्ति के नेत्र की कनीनिका में वह नेत्र सहित दर्पण प्रतिबिम्बत होता है, ठीक उसी प्रकार राधा और कृष्ण परस्पर प्रतिबिम्बित होते हैं।[12]

आचार्य हरिव्यासदेव ने भी राधाकृष्ण के स्वरूप निर्धारण के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान दिया है। अपने निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद के अनुसार राधाकृष्ण का विशद चित्रण कर उन्हें सहज सुख से संयुक्त माना है। वे दोनों सकल गुणों के निधान एवं समस्त कलाओं में दक्ष हैं। 'दम्पत्ति रूप; से वे दो रूप में है अर्थात् राधाकृष्ण का युगल रूप नेत्रों के सामने दो शरीर वाला प्रतीत होता है। परन्तु एक ज्योति रूप उनका तन व मन एक होने से दोनों एक ही है। इस प्रकार राधा का कृष्ण के साथ नित्य साहचर्य है, वे देखने में तो दो है परन्तु वास्तविक रूप से वह एक हैं।[13]

निम्बार्क मत में राधाकृष्ण का नित्य विहार भी उपास्य तत्त्व है। ये युगल वृन्दावन में नित्यविहार करता है। इस निकुंज-लीला में, नवनवोन्मेष शृंगार में न मान का स्थान है और न ही विरह का अर्थात् इस रासलीला में न तो राधा के मान भंजन का प्रसंग है और न ही व्रजनन्दन नन्दलाल मुकुन्द का वियोग जनित विरह। वस्तुतः राधाकृष्ण का प्रिया-प्रियतम रूप अद्वैत मधुर मिलन ही इनका अभीष्ट है। निकुंज लीला में प्रिया-प्रियतम का ऐक्य इतना सम्पन्न हो जाता है कि दोनों का पार्थक्य ही नहीं रहता। दोनों परस्पर एक ही सौन्दर्य के आलम्बन एवं विषय हो जाते हैं। निरतिशय सौन्दर्य, मृदुलता, लावण्य, सौगन्ध, सौकुमार्य आदि सद्गुण उनके सच्चिदानन्दमय देह को विभूषित करते हैं। उनकी शक्तियाँ और उनके गुण उन्हें अविभक्त नहीं करते। अतः वह एक रस है। इस एकत्व साधन में राधाकृष्ण में परस्पर मैं और तुम की भावना लुप्त हो जाती है-

प्रेयांस्तेऽहं त्वमपि च मम प्रेयसीति प्रवादः
त्वं में प्राणा अहमपि च तवास्मीति हन्त प्रलापः।
त्वं मे तो स्यामहमिति च यत् तच्च नो साधु राधे
व्याहारे नौ नहि समुचितो युग्मदस्मत्प्रयोगः।।

राधाकृष्ण की प्रिया-प्रियतम रूप विशुद्ध प्रीति में यह उत्कण्ठा भी होती है कि श्रीराधारानी श्रीकृष्ण की स्वकीया है या परकीया। स्वकीया स्त्री वह है जो विधिवत् विवाह के उपरान्त वरणीय पुरुष के प्रति समर्पित होती है जबकि परकीया लोक और परलोक दोनों की अनुपेक्षा करने वाले प्रेम से अपनी आत्माको उस पुरुष के प्रति समर्पित करती है जिससे उसका विवाह नहीं हुआ है। राधा के सन्दर्भ में ये दोनों ही धारणायें श्रीकृष्ण वाङ्मय में परिलक्षित होती है। परन्तु निम्बार्क सम्प्रदाय में राधिका श्रीकृष्ण की स्वकीया ही मानी गयी हैं। राधा कृष्ण की विवाहिता है। निम्बार्क अनुयायियों ने पुराणों एवं संहिताओं में

वर्णित राधाकृष्ण के विवाह वर्णन को यथावत् स्वीकार कर लिया है। गर्गसंहिता के गोलोकखण्ड के सोलहवें अध्याय में वर्णित है कि ब्रह्मा जी ने श्रीकृष्ण और राधा का विधिवत् पाणिग्रहण संस्कार वैदिक विधि-विधान से कराया था। श्रीकृष्ण और राधिका ने अग्निदेव की सात परिक्रमायें की, राधा ने अपने हाथों से कृष्ण के कण्ठ में केसरयुक्त माला पहनायी। श्रीकृष्ण ने वृषभानुनन्दिनी को अपने हाथों से माला पहनाकर उनका वरण किया। इस पावनावसर पर देवताओं ने फूल बरसायें और देवा नाओं ने नृत्य किया। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में भी राधा को स्वकीया मानकर राधा-कृष्ण का विवाह वर्णित है। अतः अवतारलीला में राधा का जो विवाह ब्रह्मवैवर्त्तपुराण या गर्गसंहिता में वर्णित है उसे आधार मानकर निम्बार्क मतावलम्बियों ने राधा को स्वकीया सिद्ध किया है।[14] वस्तुतः यहाँ श्रीकृष्ण की कान्ताभाव से उपासना करना माधुर्य रस से अभिहित है और यह भक्ति की सर्वोत्कृष्ट दशा है। यह दाम्पत्य रूप नहीं अपितु दिव्य प्रेम है, जिसमें वासना एवं स्वार्थ का कोई स्थान नहीं है।

इस प्रकार हम देखते है कि भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परमदेव हैं। वे छहों ऐश्वर्य से पूर्ण, माधुर्य सम्पन्न, गोप-गोपियों द्वारा सेव्य, श्रीवृन्दादेवी (तुलसी) द्वारा आराधित एवं वृन्दावन के अधीश्वर हैं। श्रीकृष्ण प्रकृति से भी पुरातन तथा नित्य हैं। इनकी आनन्दप्रदायिनी, सन्धिनी, ज्ञान, इच्छा और क्रिया इत्यादि अनन्त शक्तियाँ हैं, जिनमें आनन्दप्रदायिनी प्रधान है। यही परम अन्तरंगभूता 'श्रीराधा' हैं। यही आद्या प्रकृति है। ये राधिका तरूण, करूणा एवं लावण्य का सार है। श्रीकृष्ण इनके आराध्य है तथा ये कृष्ण की आराधना हैं। अतएव श्रीकृष्ण तथा राधारानी भारतीय भक्ति एवं अनुरक्ति की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति हैं। जहां एक ओर अनन्त सत्ता एवं अनन्त आनन्द का नाम 'कृष्ण' है वहीं भारतीय साधना और आराधना की परिणति का नाम 'राधा' है। वस्तुतः व्यष्टि रूप से दो भिन्न-भिन्न सत्तायें है किन्तु समष्टि रूप से वे दोनों एक ही हैं।

संदर्भ

[1] श्रीराधा सुधानिधि-स्वामी श्री हरिहरानन्द सरस्वती, (पृ. 17-19)

[2] भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा-पं. बलदेव उपाध्याय, (पृ0- 3)

[3] भागवत पुराण-10.30.11

[4] दशश्लोकी, (श्लोक-3)

[5] भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण-प्रो. संगमलाल पाण्डेय, (पृ. 288-289)

[6] ध्यायेम कृष्णकमलेक्षणं हरिम्।

[7] दशश्लोकी-(श्लोक 1)

[8] औदुम्बरसंहिता-जयति सततमाद्यं राधिकाकृष्णयुग्मं यद्वत् सुसम्पृक्तानिजाकृति ध्रुवा।

[9] निम्बार्कविक्रान्ति-आचार्य औदुम्बर (श्लोक 170)।

[10] औदुम्बर संहिता, युग्माराधनव्रत-संसेवितं तत्र न भेदया चरेत् श्री राधिकाकृष्णायुगार्चनव्रती दोषाकरत्वाद्धि भिदानुवर्त्तिनाम् सत्कर्मणामेवमद्यभेदिनाम्।।

[11] श्रीकृष्णाङ्क-20 (1184), पृ. 597

[12] जुगलशतक-श्रीभट्ट-दर्पण में प्रतिबिम्ब ज्यौ ऊपर तन मनधन न्यौछावर डारौ।

[13] महाजनी-आचार्य हरिव्यासदेव, पद्य 1-3

[14] भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा-पं0 बलदेव उपाध्याय, (पृ. 76-77)

मध्य युगीन ललित कलाओं में राधा-कृष्ण

सीमा चौधरी

शोध छात्रा (नेट)
संगीत एवं पदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारत वर्ष सदैव से धर्म प्रधान देश रहा है। इसके कण-कण में राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर की आत्मा समाई हुई है। यही कारण है कि यहाँ की समस्त कलाएं इसी ओर उन्मुख रहीं है। मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर रहा। इसी समय निर्गुण धारा के संतो की भक्ति, प्रेम मार्ग के कृष्ण एवं राम तथा सूफी मार्ग के भक्तों का अर्विभाव हुआ।

यद्यपि कुछ मुगल बादशाहों ने संगीत व काव्य के विकास के लिए प्रयास किये, परन्तु वे अपने धार्मिक संगठनों के आगे विवश थे। भारतीय संगीत के पवित्र एवं शीतल आध्यात्मिक सौन्दर्य को नष्ट करने के मध्य काल में काफी प्रयास हुये, जिसके फलस्वरूप इसी युग में भक्ति-आन्दोलन अपने चरम वेग में प्रवाहित हुआ।

राधाकृष्ण की भक्ति में ललित कलाओं का योगदान यों तो अनेक कालों में विभक्त है, परन्तु जिस काल में भक्ति आन्दोलन चला, वह निश्चित रूप से मध्य-काल के नाम से जाना जाता है। राधा-कृष्ण का चरित्र आदि काल से ही भारत वर्ष में परम आकर्षण का केन्द्र बिन्दु रहा हे। श्रीमद्भागवत, गीत गोविन्द, विद्यापति, पदावली के माध्यम से राधा-कृष्ण का रूप प्रस्तुत किया जाता रहा है। राधा-कृष्ण सदैव से एक-दूसरे के प्रेम में मत रहे हैं- उदाहरण स्वरूप एक पद प्रस्तुत है जिसे राग केदार में बाँधकर गाया गया है-

"सोहन राधे राधे बैन बोले
प्रीति रीति रस बस नागरि हरि लियो प्रेम के मौले।
हास विलास रास राधे संग, लीला आपनों तोले,
श्रीमत जदपि मदन मोहन तउ, हारि हारि सिर डौले।।

मध्य युगीन वास्तुकला और मूर्तिकला में राधा-कृष्ण

मुगल सम्राट अकबर मुसलमान होते हुये भी हिन्दू धर्म के प्रति उदार था। उसके समय में कछवाहा नरेश मानसिंह ने अपने दोनों गुरु रूप तथा सनातन के आदेश से वृन्दावन में गोविन्द देव के मन्दिर का निर्माण कराया। वृन्दावन के मन्दिरों में यह मन्दिर सर्वश्रेष्ठ है। औरंगजेब ने इस विशाल और आकर्षक मन्दिर के ऊपरी बुर्जे तुड़वा दिये। मानसिंह द्वारा निर्मित मन्दिर में श्री रूप गोस्वामी ने गोविन्द देव जी की जिस बड़ी प्रतिमा की प्रतिष्ठापना की थी वह इस समय जयपुर में है।

17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में औरंगजेब के भय से जब कृष्ण मूर्तियाँ राजपूत नरेशों के आश्रम में लाई गई तो उनकी स्थापना साधरण किन्तु सुदृढ़ एवं सुरक्षित मन्दिरों में की गई। यदि मन्दिरों को तोड़े जाने का भय न होता तो उनकी स्थापत्यकला ताजमहल से होड़ ले रही होती, इसमें कोई सन्देह नहीं। आगे चलकर मूर्तियों की स्थापना हुई किन्तु वे सजीव बोलती मूर्तियाँ न होकर, प्रायः काले पत्थर की अनगढ़ मूर्तियाँ थी।

मध्य युगीन चित्रकला में राधा-कृष्ण

मुगल सम्राटों के राज्यकाल में ललित कलाओं को राजाश्रय प्राप्त हुआ और दिन प्रतिदिन वे उत्कर्ष को प्राप्त होने लगी। अकबर ने फतेहपुर सीकरी को जब से राजधानी बनाया चित्रकला को एक नवीन रूप प्राप्त हुआ। सम्राट अकबर को चित्रकला से अत्यधिक लगाव था, उनकी व्यक्तिगत देखरेख में राजपूत शैली तथा फारसी शैली के समिश्रण से उत्पन्न मुगल शैली का पूर्ण विकास हुआ।

1588 ई. में महाभारत का अनुवाद "राजमनामा" के नाम से फारसी में हुआ। उसका चित्रांकन भी पुस्तक के साथ मुगल शैली में हुआ। हरिवंश पुराण के ऊपर आधारित चित्रों का अंकन भी इसी प्रकार अकबर काल में ही हुआ। इन दोनों ग्रन्थों का सम्बन्ध राधा-कृष्ण से है। अतः कृष्ण का महाभारत कालीन रूप मध्ययुग में चित्रकला जगत की पहली देन है। सम्राट जहाँगीर के समय में भी ललित कलाओं को आदर एवं सम्मान प्राप्त था। किन्तु औरंगजेब के समय में अन्य ललित कलाओं के साथ चित्रकला का ही ह्रास हुआ। मुगल शैली में अलंकरण की प्रवृत्ति बढ़ गई और हिन्दू धर्म से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो गया। चित्रकार दिल्ली छोड़कर भारत के अन्य भू-भागों में जा बसें।

जयपुरया राजपूत शैली में कृष्ण चरित्र का अंकन प्राप्त होता है। कृष्ण एक चित्र में अपनी माँ से चन्द्रमा लेने का हठ कर रहें हैं। एक दूसरे चित्र में राधा और गोपियों का जल विहार दिखाया गया है। कृष्ण राधा को प्रेम की दृष्टि से देख रहे है। 'रास मण्डल' राजधानी कला का सर्वोत्कृष्ठ उदाहरण है। केन्द्र में स्थित प्रकृति और पुरूष के प्रतीक राधा और कृष्ण नृत्य का नेतृत्व कर रहे है। उनके चारो ओर गोपियों का समूह तीन सकेन्द्रिक वृत्तों में विभाजित है।

मेवाड़ शैली का एक चित्र 18वीं शताब्दी का है इसमें राधा-कृष्ण को विदा दे रही हैं। इसमें राधा की व्याकुलता का अति मार्मिक चित्रण किया गया है। मध्य युगीन चित्रकला में कृष्ण, चित्रकला का अत्यन्त लोकप्रिय विषय बनें। जितना राधा-कृष्ण का विविध रूपों में अंकन किया गया है उतना देवता, अवतार अथवा मनुष्य का चित्रण नहीं प्राप्त होता।

मध्य युगीन संगीत कला में राधा-कृष्ण

मध्य काल में राधा-कृष्ण की भक्ति में संगीत का विशेष योगदान रहा है। कृष्ण स्वयं एक महान संगीतज्ञ थे। वस्तुतः वंशी का प्रतिक्षण साथ होना उन्हें संगीत के कितना निकट दर्शाता है इसका एहसास किया जा सकता है। राधा-कृष्ण की भक्ति और संगीत का अटूट सम्बन्ध है। मध्यकाल में संगीत तीन रूपों में प्रचलित था-

(1) दरबारी संगीत (2) मन्दिर संगीत (3) लोक संगीत।

भगवान कृष्ण सोलह कलाओं के अवतार तथा चौसठ ललित कलाओं के ज्ञाता माने गये हैं। इन सभी में संगीत उनके जीवन का विशेष अंग था। उनकी मुरली का माधुर्य अनुपम था। नृत्य और नाट्य में वे पारंगत थे। उनकी समस्त क्रियाएं संगीत से ओत-प्रोत थीं। प्रत्येक लय में संगीत की ध्वनि है। प्रत्येक रस से सम्बन्धित संगीत की राग-रागानियों को कृष्ण साहित्य में स्थान मिला है। कृष्ण जन्म की बधाई मांगलिक गीतों से गूंज उठती है। शरद पूर्णिमा की विहंसती ज्योतना में गोपियों संग राधा और कृष्ण के पैरों के धुंधरूओं की झनकार समस्त वातावरण में झंकृत हो जाती है।

सावन ऋतु में राधा-कृष्ण का हिडोला झूलना और मल्हार गाना, बसंत ऋतु में बसंतोत्सव की धूम-गुलाल और रंग से सराबोर। इन सभी लीलाओं तथा उत्सवों में गान, वादन, नृत्य का विशेष रूप से आयोजन होता है। राधा-कृष्ण के श्रंगार रस वर्णन में भी संगीत ने प्रभूतपूर्व योगदान दिया है। तथा संगीत को श्रंगार से आक्षय प्राप्त हुआ।

गोविन्द स्वामी के पदों में संगीत और नृत्य से सम्बन्ध पदावली वाक्यों का अंश बनकर प्रगट हुई है। रास प्रसंग के अनेक पदों में थिरकतें हुए पैरों की गति वाद्य-यंत्रों के स्वर तथा ृब्दावलियों के साथ साकार हो उठते हैं। उदाहरण-

गिड़ गिड़ तत थुंग तत्त त्थेई,
गावत मिलि राग रास रस तान लीने।
धिधिकट सुधिकट मृदु मृदंग बाजै,
वृषभानु कुंवरि गान तान सुर बंधान मान
गोविन्द गिरधर प्रसंसि अद्भुत छवि छाजै।।

मन्दिरों की समाज प्रणाली ने संगीत का अत्यधिक विकास किया। महान योगराधा बल्लभ संप्रदाय ने भी संगीत में अपना महान योगदान दिया।

संक्षेप में मध्यकाल में संगीत ने राधा कृष्ण भक्ति के प्रचार में चमत्कारिक कार्य किया। कृष्ण भक्तों के काव्य में संगीत तत्व का विशिष्ट समावेश है। राधा-कृष्ण की लीलाएं इतनी सरस और मानव हृदय को झंकृत करने वाली है, कि उनके गुणगान के क्षणों में वैविध्यपूर्ण संगीत का सहसा प्रवाहपूर्ण हो जाना प्राकृतिक है।

मथुरा तथा वृन्दावन राधा-कृष्ण की भक्ति के प्रमुख केन्द्र रहे है। यहाँ आज भी कृष्ण मन्दिरों मे संगीतमय वातावरण मिलेगा। हरि कीर्तन, समाज गायन, रास नृत्य का आज भी यहां खूब प्रचार है। अतः हम कह सकते हैं कि कृष्ण भक्ति की अमरता संगीत में ही है। सूर, मीरा, स्वामी, हरिदास, चैतन्य महाप्रभू, बल्लभाचार्य आदि भक्त कवियों के संगीतमय पदों ने राधा-कृष्ण भक्ति को विकसित करने के साथ ही उसे संगीत की रस सिक्तता के कारण जन मानस के निकट लाकर ही उसे कालजयी बना दिया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मध्य काल में प्रचलित विभिन्न रूपों में राधा-कृष्ण का वर्णन किया गया है। जो राधा एवं कृष्ण की भक्ति एवं प्रेम को प्रदर्शित किया करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

(1) हिन्दी साहित्य में कृष्ण - डॉ. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

(2) अष्ट छाप भक्त कवि और पुष्टिमार्गीय सेवा में संगीत - डॉ. निशि माथुर

(3) सूर, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना में संगीत का योगदान - डॉ. रागिनी प्रताप

(4) अष्टछाप संगीत एक विश्लेषण - नीरा शर्मा

(5) स्वामी हरिदास वाणी एवं संगीत - डॉ. अलकनंदा पलनीटकर

(6) भारतीय संगीत का इतिहास - श्री भगवत सरन शर्मा

पुष्टिमार्गीय वैष्णव मंदिरों की संगीत

सीमा कुमारी

शोध छात्रा, गायन विभाग
संगीत एवं मंचकला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भक्ति शब्द की उत्पत्ति 'भज्' धातु से मानी गयी है जिसका अर्थ है-सेवा करना। संसार से विरत होकर इष्टदेव की उपासना ही सच्ची भक्ति है। भक्ति का आधार विरति अर्थात् वैराग्य है। यह साधन व साध्य रूप है।

श्रीमद्भागवत में भक्ति का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि मनुष्यो के लिए श्रेष्ठ एवं धर्म वही है जिससे भगवान् कृष्ण में भक्ति हों और वह निष्काम तथा नित्य हो। ऐसी भक्ति द्वारा हृदय आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है। भक्ति को योग साधन, ज्ञान विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप, पाठ तथा तप त्याग के साथ ही साथ मुक्ति से भी बढ़कर बताया गया है।

श्री रूप गोस्वामी जी ने अपने 'भक्ति रसामृत सिंधु' में भक्ति का लक्षण देते हुए कहा है कि श्रीकृष्ण परम स्नेहास्पद हैं। अतः उनके अनुशीलन को भक्ति कहते हैं। उस भक्ति में अन्य किसी पदार्थ की अभिलाषा न हो, ज्ञान का आवरण हो तथा श्रीकृष्ण के अनुकूल होने वाली प्रवृत्ति की सत्ता हो। तन, मन तथा धन सब कुछ श्रीकृष्ण के लिए ही अर्पित हो।

भक्तियाँ नौ प्रकार की बताई गई है जिनमें श्रवण एवं कीर्तन को सर्वप्रथम रखा गया है। पुष्टिमार्ग में कीर्तन को विशेष महत्व दिया गया है।

पुष्टि का सांकेतिक अर्थ है पोषण परन्तु पुष्टि शब्द का एक विशिष्ट अर्थ भी है यह विशिष्ट अर्थ श्रीमद्भागवत के 'पोषणं तनदुग्रह' सूत्र पर आधारित हैं जिसका अर्थ है कि भगवान का अनुग्रह ही पोषण या पुष्टि है।

श्रीमद् भागवत के अनुसार समस्त वैष्णव मंदिरों में श्रवण एवं कीर्तन की योजना सदैव से रहती आई है। कहीं पर दर्शन खुलने से पहले, कहीं बाद में तो कहीं दोनों समय भगवान का स्मरण करते हुए कीर्तन भजन गाये जाते हैं। इस भगवत गुणगान स्वरूप कीर्तन को और गहरा रंग प्रदान करने के लिए पुष्टिमार्ग में इसे सेवा का आवश्यक अंग ही मान लिया गया है और यहाँ इस लीला गान स्वरूप कीर्तन की योजना मंगला से शयन पर्यन्त अविरल स्वरूप में रहती है। भगवान को कीर्तन से ही जगाया जाता है, कीर्तन से ही स्नान, कीर्तन से ही श्रृंगार, भोग अरोगन, गौचरण, वन से वापिस बुलाना, आरती, ब्यारू व शयन अर्थात् सभी क्रियाओं का संचालन कीर्तन से ही होता है जो कार्य अन्य सम्प्रदायों में मंत्रों से लिया जाता है वह कार्य पुष्टिमार्ग के मंदिरों में कीर्तन से होता है। कीर्तन के पदों को मंत्रोपचार का स्थानापन्न माना गया है।

'पुष्टिमार्गीय वैष्णव मन्दिरों के संगीत' की गायन शैली सर्वथा ध्रुवपद, धमार शैली थी। कीर्तन की पुस्तकों में अनेक पदों की प्रथम तुक के पश्चात ।।धृ.।। अथवा ।ध्रुव.।। ऐसा लिखा गया है। इससे इसके ध्रुवपद होने के तथा इस गायन शैली

को ध्रुवपद धमार शैली होने को असंदिग्ध माना जा सकता है।

पुष्टिमार्गीय संगीत में कीर्तन के अन्तर्गत सभी पदों का गायन प्रायः सभी रागों में किया जाता है परन्तु कुछ ऐसे विशेष राग हैं जिनका गायन अधिक मात्रा में होता है।

पुष्टिमार्गीय वैष्णव मन्दिरों के संगीत अथवा पुष्टिमार्गीय कीर्तन में व्यवहृत रागों के नाम इस प्रकार हैं-देवगांधार, रामकली, भैरव, मालकौंस, बिलावल, आसावरी, सारंग, नट, पूर्वा, गौरी, सोरठ, खमाज, ईमन, कल्याण, नायकी, हमीर, केदार, कान्हारा, मारू, कालव, जैजवन्ती, रायसा, बिहाग, गौरी, पंचम, शंकराभरण, कर्णाटक, परज, जंगला, झिंझौटी आदि।

रागों की ही भाँति मन्दिर संगीत में प्रयुक्त गेय पदों के साथ वजने वाली कुछ तालों का भी प्राचीन स्वरूप सुरक्षित हैं ये ताल हैं-1. ध्रुव (आडाचार ताल) 2. मठ (सूल) 3. रूपक (रूपक), 4. झंपा (झपताल), 5. त्रिवट (तीनताल), 6. अड (चार ताल), 7. एक ताल (एक ताल), 8. झूमरा पुष्टिमार्गीय संगीत में तालें प्रमुख रूप से प्रयोग में आती हैं इसके अतिरिक्त धमार ताल सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है।

वाद्य

पुष्टिमार्गीय संगीत में वाद्यों के अन्तर्गत वीणा, सितार मृदंग तबला, घंटा, झाँझ, बंशी, शहनाई आदि का प्रयोग होता है।

संदर्भ सूची

1. पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा-शर्मा, सत्यभान, राधा पब्लिकेशन्स, द्वितीय संस्करण 2011
2. संगीत, तृतीय प्रश्न पत्र-डॉ. रावत, निशा, उपकार प्रकाशन, आगरा
3. ब्रज लोक संगीत-डॉ. रावत, निशा, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली भारत, प्रथम संस्करण 2006
4. ब्रज संस्कृति और ब्रज का लोक साहित्य-चंचरीक, कन्हैयालाल पीयूष, जगदीश, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2009

संगीत में राधा-कृष्ण

शिवेश कुमार
ति. मा., भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

''संगीत'' शब्द की चर्चा आते ही संगीत की जो सामान्य तस्वीर उभरती है, वह मूल रूप से संगीत के कलात्मक रूप की होती है। धार्मिक मतानुसार श्रृष्टि में सोलह कलाओं की चर्चा की गई है। जिनमें से भगवान कृष्ण को इनमें निपुण माना जाता है। सोलह कलाओं में एक कला ललित कला को माना जाता है, जिसमें संगीत कला को श्रेष्ट कला बतलाया गया है।

संगीत आदिकाल से ही दो धाराओं में प्रवाहित होता रहा है। एक तो जो मोक्ष की कामनाओं से प्रेरित देवी-देवताओं को प्रसन्न करने हेतु साधकों द्वारा व्यवहृत किया जाता था, और दूसरा जो सामान्य जन-मानस की हृदय गत भावनाओं को व्यक्त करने का स्वभाविक वह सरल साधन था। इसका विकास शुरूवात से ही सहज व स्वच्छन्द वातावरण में हुआ। सशक्त आध्यात्मिक आधार की जड़े संगीत में बड़ी गहराई तक चली गई। फलतः यहॉ संगीत देवी -देवताओं से उदभूत और परम पवित्र माना जाता है। नटराज आशुतोष भगवान शिव नृत्य के आदि देवता माने गये, शिव-पार्वती का तांडव तथा लास्य संहार और फिर निर्माण की प्रक्रिया प्रस्तुत करता है। विघ्नविनाशक गणेश अवनद्ध वाद्य मृदंग के प्रथम वादक थे तो विद्या बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती वीणा वादिनी संगीतज्ञों की आराध्या हुई, नारद ने वीणा वादन करते हुये ओमृ नर नारायण गाकर पुरे विश्व को रसाप्लावित किया तो वेणु के जादुगर कृष्ण की चुम्बकीय प्रभाव वाली वंशी धुन से जैसे संगीत ही क्या चित्र एवं काव्यकला भी अभीभुत है।

संगीत में राधा-कृष्ण की अतुल्यनीय भुमिका देखने को मिलती है। वृंदावन नगरी मथुरा गोकुल जैसे धर्म भूमी पर वास्वत में राधा-कृष्ण की ही चर्चा सुनने को मिलती है। वास्तव में संगीत की झलक को अगर देखा जाए तो कृष्ण का वेणु वादन से गोपियो को लुभाना अपनी ओर मोहित करना राधा संग रास रचाना इत्यादि हमें राधा-कृष्ण की समय की संगीत के बारे में बताता है। सुबह-सुबह वेणु वादन से गायो और अन्य पशुओं को मोहना साथ ही मनुष्य जाति को भी मोहना ये सब तो मोहन को ही आता था, तभी तो बहुत कवियों में उन्हें सांगितिक जादुगर ही कहा है।

राधा और श्रीकृष्ण की चर्चा अधिकांशतः रास लीलाओं में ही देखने को मिलती है। राधा का रूठना और श्रीकृष्ण का मनाना ये सब रास लीलाओं में देखनो को मिलता है। बहुत से जगहों पर दर्शाये गये चित्र कारियों में भी इनके रास लीलाओं का वर्णन देखने को मिलता है। ये तो मात्र प्रेम भाव ही नही बल्कि भक्ति के भी प्रतीक माने जाते है। संगीत के राग रागणियों में भी अधिकांश बंदिशो में इनकी ही व्याख्या देखने को मिलती है। नृत्यों में भी प्रेम-भाव को दिखाने के लिए विभिन्न तरीकों से राधा-कृष्ण के ही चारित्रिक दृश्यों को दिखाया जाता है।

यूँ तो वंशी के जादुगर वृंदावन में अपनी रास-लीला रचते थे, और उसे देखने के लिए मोहित

होकर देवी-देवता भी इनके पास दौड़े चले आते थे। बहुत से कथाकारो ने भी इस बात की पुष्टि की है कि जब कृष्ण का वेणु वादन होता था तब राधा संग गोपियाँ और देवी देवता भी मोहित होकर उनके रास लीला में सामिल हो जाते थे।

एक बार राधा और कृष्ण की रास लीला को देखने स्वयं शिवजी और माता पार्वती वृंदावन धाम में पहुची। इनके रास-लीला और प्रेम-भक्ति की चर्चा इतनी थी कि स्वयं उमाशंकर को भी इनका आनंद लेने वृंदावन आना पर गया। उस रास लीला में सिर्फ कृष्ण को ही आना था और किसी पुरूष वर्ग को नही। शिवजी ता उस समय असमंजस में पड़ गये आखिर मे मैं इस रास लीला को देखूँगा कैसे? अन्तोगत्वा उन्हें एक स्त्री का रूप धारण करना पड़ा। उसके बाद वे माता पार्वती के साथ अंदर प्रवेश किय। इनका वर्णन हमें इन गीतो के शब्दो के माध्यम् से प्राप्त है :-

एक दिन ओ भोल-भंडारी, बनके ब्रज की नारी
गोकुल में आ गये है।
पार्वतीजी मना के हारी, ना माने त्रिपुरारी
गोकुल में आ गये है।

रास-लीला में सम्मिलित होने के पश्चात् भगवान शंकर इतने आनंदित और प्रफुल्लित होकर मोहित हो गये कि वे स्वयं को भूल कर उस रास लीला का हिस्सा बन गये। जब स्वयं कृष्ण को इस बात का अभास हुआ तो वे इतनी मधुर वंशी बजाने लगे कि भगवान शंकर संगीतमग्न हो कर अपने असली रूप में आ गयो और मोहन के मुस्कुराने पर सच का खुलासा भी हो गाया।

इसी प्रकार प्रेम-भक्ति के सर्वोच्च प्रतित राधा-कृष्ण का वर्णन संगीत में होली में भी देखनो को मिलता है। अनेक घ्रुपद और धमारों के बोलों में भी राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन मिलता है तथा होली पर की गई रास लीलाओं में भी इनका वर्णन प्राप्त है। ठुमरी और दादरा में जब शब्दों को देखते है तो पाते है कि ज्यादातर बोल प्रम भाव को ही दर्शाते है अर्थात कहा जा सकता है कि शायद संगीत में प्रेम एवं आनंद भाव को प्रबल रखने के लिए भी शायद ये रास लीला एवं संगीत सम्मोहन का जादू श्रीकृष्ण ने उस समय स्थापित कर दिया जो आभी तक चला आ रहा है। अतः हम कह सकते है कि आत्मा को लाभ पहुचाने में जो स्थान संगीत का है ठीक उसी प्रकार राधा कृष्ण का स्थान संगीत में है।

''विश्रांतीर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मता''।
''लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला''।।

आर्थात मानव जीवन का लक्ष्य आत्म-लाभ है, और इस बात को भगवान श्रीकृष्ण भली भॉति जानते थे , तथा इसी को बरकरार रखने के लिए वो रास लीलाओ आदि का आयोजन हमेशा कर देरे थे। जिससे वे स्वयं तो लाभान्वित होते ही थे और श्रृष्टि को भी लाभान्वित कर देते थे।

वर्तमान समय मे भी अगर हमे अपने आत्मा को लाभ पहुँचाना है तो हमे भी राधा और कृष्ण की भक्ति में डूबना होगा तथा परमयोगी बन कर संगीत की साधना में लीन रहना पड़ेगा तभी हम संगीत की उच्चता को समझ सकेगें।

ब्रज में रास की परम्परा और राधाकृण

शिवि तिवारी

शोध छात्रा, गायन विभाग
संगीत एवं मंचकला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

हमारी परम्परा में अनुसार राधाकृष्ण एक हिन्दू देवता है वैष्णव धर्मशास्त्र में कृष्ण को भगवान के रूप में संदर्भित किया गया है और राधा एक युवा नारी है, एक गोपी जो कृष्ण को श्रेष्ठ प्रेमिका है। कृष्ण के साथ राधा को सर्वोच्च देवी स्वीकार किया गया है और यह कहा जाता है कि वह अपने प्रेम से कृष्ण को नियन्त्रित करती है। माना तो यहाँ तक जाता है कि कृष्ण संसार को मोहित करते हैं, लेकिन राधा कृष्ण को मोहित कर लेती है। इसीलिए वे सभी की सर्वोच्च देवी हैं। हालाँकि भगवान के रूप में राधाकृष्ण की पूजा करने की परम्परा काफी आरम्भिक समय से मौजूद है, परन्तु जब बारहवीं शताब्दी में जयदेव गोस्वामी ने प्रसिद्ध गीत-गोविन्द लिखा, तो दिव्य कृष्ण और उनकी भक्त प्रेयसी राधा के बीच के आध्यात्मिक प्रेम सम्बन्ध के विषय को सम्पूर्ण भारत में पूजा जाने लगा। यह माना जाता है कि कृष्ण ने राधा को खोजने के लिए 'रास-नृत्य' अर्थात् रसालीला को माध्यम बनाया है। साथ ही यह माना जाता है कि राधा मात्र एक चरवाहे की कन्या नहीं है, बल्कि सभी गोपियों की प्रतिनिधि नायिका है। ब्रज की रास लीलाओं में राधा-कृष्ण ही केन्द्रीय पात्र होते हैं।

ब्रज में रास की परम्परा भारतीय कला की विराट चेतना का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसके प्रस्तुतीकरण में भारत की नाट्यशास्त्रीय परम्परा के तत्त्व आज भी आरक्षित है। शास्त्रीयता के अलावा इसमें सुगम-संगीत तथा लोक संगीत का भी सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। अधिकांश विद्वान ब्रज में रास-लीला का सम्बन्ध मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति के आन्दोलन से जोड़ते हैं। वस्तुतः यह परम्परा उससे भी अधिक प्राचीन प्रतीत होती है। डॉ. ब्रजवल्लभ मिश्र ने इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है: "रासलीला को उत्कर्ष के धरातल पर पहुँचाने का श्रेय उन कारणों को है, जिनसे इसका उ व और विकास हुआ है। रास की परम्परा का अभिनवीकरण चाहे मध्यकाल में हुआ हो, किन्तु इसका उ व बहुत शताब्दियों पूर्व में हो चुका था। भक्ति आन्दोलन ने इसे राग और रस से अलंकृत करने का अप्रतिम प्रयास किया कि यह अल्लादिनी शक्ति-श्रीराधा और नट-नागर श्रीकृष्ण के जीवन की मधुर झांकियों का दिव्य दर्शन बन गयी, जिसमें संस्कृत की कोमलकान्त पदावली और हिन्दी साहित्य की सुरभि सुवासित हो गयी है।"[1]

वैसे 'रास' की प्राचीनता का ऐतिहासिक संदर्भ सर्वप्रथम महाकवि भासकृत नाटक बालचरित में देखने को मिलता है। भास का समय कालिदास से कई शताब्दी पूर्व का है। नाटक में दामोदर-संकर्षण अर्थात् कृष्ण-बलराम के साथ गोप-गोपियों के नृत्य करने का बड़ा सुन्दर वर्णन है।"[2]

हरिवंश पुराण तो जैसे श्रीकृष्ण और गोपांगनाओं की नृत्य क्रीड़ा के संदर्भों से भरा पड़ा है। पुराणकार ने एक स्थान पर लिखा है कि श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ हल्लीसक नृत्य किया।[3] अभिनव गुप्त ने अपने ग्रन्थ अभिनव भारती में हल्लीसक नृत्य की व्याख्या

करते हुए लिखा है कि हल्लीसक वह नृत्य है जिसमें एकनायक के साथ अनेक नृत्यांगनायें कृष्ण के साथ गोपियों की भांति मंडलाकार रूप में नृत्य करती हैं।

''मन्डलेन तु यन्नृतं हल्लीसकामिति स्मृतम।
ऐकैमस्तस्यस्य नेतास्याद गोस्त्रीणां यथा हरिः।।''

हरिवंश के टीकाकार श्री नीलूकंठ ने इसे पुरुष के साथ अनेक स्त्रियों का क्रीड़ा बताते हुए रास-क्रीड़ा कहा है।[4]

हरिवंश का एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत है। इस ग्रन्थ में कृष्ण की अनेक बाल-लीलाओं का वर्णन हुआ है, साथ ही श्रीकृष्ण के द्वार का प्रवास के समय पिण्डार-यात्रा की चर्चा है। इसमें श्रीकृष्ण ने यादव नर-नारियोंा के साथ समुद्व विहार करते हुए रास-क्रीड़ा की। एक अन्य प्रसंग में कृष्ण ने शरदऋतु की चाँदनी रात में गोप-बालाओं के साथ नृत्य किया था। इस नृत्य में गोपियों ने हाथों से तालियाँ बजाई थीं।[5]

सौराष्ट्र में प्रचलित 'डांडिया' नृत्य में तालियों से ताल देकर मंडलाकार रूप में स्त्री और पुरुष मिलकर नाचते हैं। लगता है गुजरात का 'गरबा' भी इसी नृत्य की कोई शाखा है, जिसमें कहीं-कहीं हाथ में डंडे लेकर भी सामूहिक रूप से मंडल में नाचा जाता है।[6]

'हास' की प्राचीनता और लोकप्रियता इससे भी स्पष्ट होती है कि वैष्णव धर्म ही नहीं जैन धर्म में भी यह लोकप्रिय रहा है। 12वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक के जैन साहित्य में इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। जैन मंदिरों 'ताल रासक' एवं 'लकुट-रासक' नामक रास-नृत्य बहुत प्रचलित थे। जैन-स्रावक तथा श्रोविकाएँ रात्रि में तालियाँ अथवा लकुट अर्थात् छोटे डंडे बजाकर मंदिरों में नृत्य किया करते थें। जैन-साहित्य में श्रीविजय सेन सूरि ने संवत 1288 में रेवन्तगिरि 'रास' की रचना की थी। इस ग्रन्थ की पुष्पिका में लिखा है-''श्री विजयसेन सूरि कृत इस रास का जो उत्साहपूर्वक अभिनय करेगा। उस पर जिन नेमिनाथ जी प्रसन्न होंगे और देवी अम्बिका उसकी मनोकामनाएं पूर्ण करेंगी।[7]

अतः ब्रजरास की परम्परा का सम्बन्ध भारत की पुरातन नाट्य-परम्परा से जुड़ता दिखाई देता है। हम यहाँ तमाम संदर्भो के आधार पर यह कह सकते हैं कि ब्रज में रास की परम्परा में उभरकर जो मूर्ति हमारे जनमन के हृदय और मस्तिष्क में बसती है। वह है राधा-कृष्ण की।

संदर्भ सूची

1. परम्परा प्रवाही रासलीला, उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी स्मारिका, अप्रैल 1984, निबंध, पृ.सं. 32
2. भासकृत नाटक 'बाल चरित', अंक-3
3. हरिवंश पुराण, विष्णुपर्व, अध्याय-20
4. हल्लीसक्रीड़न एकस्य पुंसो बहुभिः स्त्रीभिः क्रीड़नं सैव रासक्रीड़ाः'' हरिवंश, 2-20-36
5. हरिवंश पुराण, अध्याय 20, श्लोक 24 से 35 तक
6. परम्परा प्रवाही रासलीला, निबंध, पृ. 331
7. रंगहि एमरई जो रासु, सिरि विजयसेन सूरि निम्नविउए। नेमि जिगू तूसई तासु, अम्बिक पुरई मणि रलीए।''

संगीत परम्परा में राधा-कृष्ण

श्रेया श्रीवास्तव

शोध छात्रा (जे.आर.एफ)
गायन विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

देवकी की आठवीं सन्तान श्री कृष्ण का जन्म कारागार में भादों कृष्ण अष्टमी की आधी रात को हुआ। जिस समय वे प्रकट हुए प्रकृति सौम्य थी, दिशायें निर्मल हो गई थीं और नक्षत्रों में विशेष कांति आ गई थी। भयभीत वासुदेव नवजात शिशु को शीघ्र लेकर यमुना पार गोकुल गये और वहाँ अपने मित्र नंद के यहाँ श्री कृष्ण को पहुँचा आये। गोकुल में नंद बाबा ने पुत्र जन्म पर बड़ा उत्सव मनाया, पूरा गोकुल धाम इस खुशी के मौके पर नाच पड़ा। धीरे-धीरे कृष्ण बड़े हो गये और राधे कृष्ण की प्रेम लीला को कौन नहीं जानता। कृष्ण के प्रति ब्रजवासियों का बड़ा स्नेह था। गोपियाँ तो विशेष रूप से उनके सौन्दर्य तथा साहस पूर्ण कार्यों पर मुग्ध थीं। प्राचीन पुराणों के अनुसार शरद पूर्णिमा की एक सुहावनी रात को गोपियों ने कृष्ण के साथ मिलकर नृत्य-गान किया। इसका नाम रास प्रसिद्ध हुआ। धीरे-धीरे ये प्रथा एक नैमित्तिक उत्सव बन गया, जिसमें गोपी-ग्वाल सभी सम्मिलित होते थे। जहाँ कृष्ण होते वहाँ राधा जरूर होतीं। श्री कृष्ण बांसुरी इतना अच्छा बजाते थे कि राधे के साथ-साथ ब्रज की सभी गोपियाँ सारे पशु पक्षी उनके बांसुरी वादन को सुनने के लिए उनके करीब आ जाते थे। जब श्री कृष्ण गोपियों संग रास रचाते तो अपनी बांसुरी से सबको मोहित कर देते। ऐसा माना जाता है कि राधा श्री कृष्ण से बड़ी थीं। एक समय की बात है गोकुल में होली का त्योहार आया, इस रंगीन माहौल में जब हर चीज अपने चरम पर थी, पूर्णिमा की एक विशेष शाम को कृष्ण और राधा की ये टोलियां यमुना नदी के किनारे इकट्ठी हुई। पहले तो इन टोलियों ने खेलना शुरू किया। इसके बाद उनका एक-दूसरे पर पानी उछालने और बालू व मिट्टी फेंकने का खेल शुरू हुआ। इस बीच वे एक-दूसरे को देखकर चिढ़ाते थे और बीच-बीच में गालियां देने का दौर भी चलता था। थोड़ी देर बाद जब इस खेल का जोश बढ़ता गया, तो बच्चों ने मिलकर नाचना-गाना शुरू किया और फिर हर्ष व उल्लास के अपने जुनून में वे नाचते गये लेकिन कुछ देर बाद थकान होने पर वे धीरे-धीरे एक-एक करके गिरने लगे। जब श्री कृष्ण ने अपने इन साथियों को इस तरह थककर गिरते देखा, तो उन्होंने अपने कमरबंद से बांसुरी निकाली और मंत्रमुग्ध करने वाली एक धुन बजानी शुरू कर दी। श्री कृष्ण की बांसुरी की यह धुन अत्यन्त मनमोहक थी, जिसे सुनकर सभी उठ खड़े हुए और वे फिर मस्ती में झूमते गए। वे इस धुन में नाचते-नाचते इतने मगन हो गये कि वे अपने आप ही कृष्ण के चारों ओर जमा हो गए। नाचने-गाने का यह शिलशिला आधी रात तक चलता रहा।[1] 16 साल की उम्र के बाद श्री कृष्ण पूरे जीवन राधा से कभी नहीं मिले। लेकिन

सात साल की उम्र से लेकर 16 साल तक के उन नौ सालों में, जो उन्होंने राधे के साथ गुजारे, राधा जी उनका एक हिस्सा बन गईं। श्रीकृष्ण जीवन में बहुत सारे लोंगों से मिले, बहुत सारे काम किये, उन्होंने कई विवाह भी किये, लेकिन राधे उनके जीवन में हमेशा बनी रहीं। राधा जी के शब्दों में "मैं उनमें रहती हुँ, वह मुझमें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वह कहाँ हैं और किसके साथ रहते हैं। वह हमेंशा मेरे साथ हैं, कहीं और रह भी नहीं सकते।"[2] यानी जिस पल उन दोनों ने एक दूसरे को देखा, उसके बाद से उन्हें एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा गया। और वर्तमान इस बात का प्रमाण है, आज भी उन्हे अकेले करके नहीं देखा जा सकता है। श्री कृष्ण की लीलाओं में गीत, नृत्य, संगीत महत्वपूर्ण पक्ष था, जिसके कारण मध्यकाल में वैष्णव धर्म का व्यापक प्रचार हो सका तथा कई कला रूपों का उद्‌भव हुआ।

हमारे भक्ति कवियों के पदों में राधा-कृष्ण के पूरे जीवन का सार मिल जाता है। मध्यकाल की एक बहुत ही सशक्त परम्परा ब्रज साहित्य कृष्ण-भक्ति से ओत-प्रोत है। कृष्ण भक्तों की नामावली अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। कृष्ण भक्तिधारा का मध्यकालीन सूत्र गीतगोविन्द से जोड़ा जाता है, किन्तु यह ग्रन्थ संस्कृत में था। उस समय संस्कृत का प्रचार-प्रसार कम था अतः इसके स्थान पर ब्रज तथा अवधि भाषाएं विकसित हो रही थीं। इन्हीं लोक भाषाओं से मध्यकाल में कृष्णभक्ति साहित्य की रचना हुई। कृष्ण भक्त कवियों में चैतन्य महाप्रभु, अष्टछाप कवि (सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, कृष्णदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी) मीराबाई, रसखान, स्वामी हरिदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[3] इन सभी कवियों के पदों में राधा-कृष्ण का बखुबी वर्णन मिलता है जिसे हम सभी उन पदों को सांगीतिक रचनाओं में बांधकर गाते हैं।

सूरदास जी के पदों का संगीत विधान भी बहुत आकर्षक है। उनके बहुसंख्यक पद ऐसे हैं जहाँ रस और पद भाव के अनुकूल राग के शीर्षक के चयन में सूरदास ने अपने संगीत ज्ञान का स्पष्ट परिचय दिया है। सूरदास जी ने अपने सांगीतिक पदों में श्रीकृष्ण की बाल लीला, रूप वर्णन, राधा छवि, गोपि छवि, रास लीला, मुरली लीला, मानलीला, यशोदा-वृजांगना विरह, विनय आदि विभिन्न लीलाओं की अभिव्यक्ति बहुत ही भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी रूप से की है। सूरदास जी के काव्य में श्रीकृष्ण के मानवोचित व्यवहार और चरित्र की प्रधानता है। सूरसागर में श्रीकृष्ण के मानवीय और अलौकिक रूपों की सुसंबद्ध कलात्मक अभिव्यक्ति है। सूरदास जी के काव्य पदों में सबसे सुन्दर रचना है, जिसे सभी गाते हैं-

मैया मोरी मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायौ।।
देखि तुही सीके पर भाजन ऊंचे धरि लटकायौ।
तुहीं निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायौ।।
कि मैया मोरी मैं नहिं माखन खायौ।

स्वामी हरिदास जी ने राधा कृष्ण का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है-

कुंज बिहारी नाचत नीके, लाड़िली नचावति नीके।
औघट ताल धरे श्री श्यामा ताताथेई ताताथेई, बोलत संग पी के।।
तांडव लास और अंग को गनै, जे-जे रूचि उपजति जी के।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा को, मेरू सरस भयौ और रसगुनी परे फीके।।[4]

अर्थात् लड़िली (राधा) नचा रही हैं और कुंजबिहारी नाच रहे हैं। श्यामा 'औघर' ताल दे रही है और पी के संग मिलकर तत्ताथेई-तत्ताथेई गा रही हैं। हृदय से तांडव तथा लास्य के जो-जो अंगराह उपज रहे हैं, उनकी गणना भला कौन कर सकता है, श्यामा (राधा) और कुंजबिहारी (कृष्ण) का मेल सरस हुआ है और उनके समक्ष अन्य गुण फीके पड़ गये हैं।

वहीं स्वामी जी राधा जी का बखान इस प्रकार करते हैं-

गुन की बात राधे तेरे आगे को जाने, जो जाने सो कछू उनहारि।
नृत्य गीत ताल भेदन जाने काहू, जिते तिते देखे झारि।[5]

अर्थात् स्वामी जी कहते हैं कि राधा सकल कलाओं की मर्मज्ञा हैं। उनके सामने गुण की एक बात भला कौन जान सकता है, यदि कोई कुछ जानता भी है तो वह ज्ञान भी उन्हीं का प्रसाद मात्र है। राधिका में नृत्य, गीत और ताल के जितने भेद दिखाई दिए, उतने कोई नहीं जानता।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राधा-कृष्ण दोनों का ही जीवन संगीतमय था। जब कृष्ण बांसुरी बजाते तो राधा के साथ सभी गोपियां अपनी सुध-बुध खोकर उनके करीब आ जाती और फिर सभी मिलकर नृत्य-गान करते। हम ये कह सकते हैं कि कृष्ण गीत हैं तो राधा संगीत, कृष्ण बंशी हैं तो राधा स्वर, कृष्ण समुद्र हैं तो राधा तरंग हैं और कृष्ण पुष्प हैं तो राधा उस पुष्प की सुगंध हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. http://isha.sadhguru.org/blog/hi/yog-dhyan/radhe-aur-krishna-ki-pehli-raas-leela/
2. http://isha.sadhguru.org/blog/hi/jeene-ke-rang-dhang/khushaal-rishte/jag-deewana-krishan-ka-aur-krishan-deewane-radha-ke/
3. सचदेव रेनू, धार्मिक परम्परायें एवं हिन्दूस्तानी संगीत, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999
4. दीक्षित डॉ. रश्मि, मध्यकाल के संगीतज्ञ व कवियो का हिन्दुस्तानी संगीत व काव्य में योगदान, अनुभव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2012

फुटनोट

1. इण्टरनेट, http://isha.sadhguru.org/blog/hi/yog-dhyan/radhe-aur-krishna-ki-pehli-raas-leela/
2. http://isha.sadhguru.org/blog/hi/jeene-ke-rang-dhang/khushaal-rishte/jag-deewana-krishan-ka-aur-krishan-deewane-radha-ke/
3. धार्मिक परम्परायें ण्वं हिन्दुस्तानी संगीत, रेनु सचदेव, पृ.सं.-61
4. मध्यकाल के संगीतज्ञ व कवियो का हिन्दुस्तानी संगीत व काव्य में योगदान, डॉ. रश्मि दीक्षित, पृ.सं. -135
5. मध्यकाल के संगीतज्ञ व कवियो का हिन्दुस्तानी संगीत व काव्य में योगदान, डॉ. रश्मि दीक्षित, पृ.सं. -134

भारतीय संगीत परम्परा में राधा और कृष्ण

स्मिता श्रीवास्तव

यू.जी.सी. (नेट)

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

भारतीय मानस आदि काल से ही धर्म से प्रेरित रहा है। भक्ति का स्थान अत्याधिक प्राचीन है। धर्म हमेशा से साहित्य को प्रेरित करता रहा है तथा भक्ति एक शुद्ध रागात्मक वृत्ति है। भक्ति जितनी प्राचीन है उतना ही प्राचीन है उसमें प्रयुक्त संगीत। अपने आराध्य की आराधना के लिये तन्मयता, एकाग्रता एवं भाव की आवश्यकता होती है, वह केवल संगीत से प्राप्त है। संगीत का समाश्रय भक्त की एकाग्रता को खंडित नहीं होने देता। भारतीय संगीत कला आरम्भ से ही आध्यात्मिक छत्र छाया में विकसित हुयी है। भारतीय ही नहीं संसार में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें संगीत का आश्रय ना लिया गया हो। गिरजाघर का घंटा नाद, मस्जिदों की सस्वर अजान, गुरूदारे के ग्रन्थ साहेब का संगीतमय पाठ एवं मन्दिरों में भजन कीर्तन तथा मंत्र पाठ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। भक्ति चाहे सगुण हो या निर्गुण, संगीत आश्रय के बिना जन-जन में जागृत नही हो सकती है। अतः प्राचीन भक्ति मार्ग और उसका संगीत अगर मध्यकाल के सम्प्रदायों के साधु संतों एवं भक्तों को ईश्वर से साक्षात्कार कराने का प्रमुख साधन बना तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। संगीत के दैविक गुणों के कारण ही उसे भक्ति का श्रेष्ठम् उपादान मना है। स्वाभवतः प्रत्येक प्राणी अपने से श्रेष्ठ प्राणियों के लिए श्रद्धायुक्त आकर्षण रखता है, तथा भक्ति और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध इतना गहरा है कि इसमें स्वयं प्रभु की स्वीकारोक्ति भी है जैसा कि उन्होंने स्वयं श्रीमद्भगवत् गीता में कहा है-

"नाहं वसायि वैकुण्ठे योगिनां ह्रदय न च।
भद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठापि नारद।"[1]

अर्थात् न मैं योग द्वारा प्राप्त होता हूँ ना सांख्य के द्वारा, ना स्वाध्याय एवं न तप के द्वारा और त्याग के द्वारा प्राप्त होता हूँ। मेरी प्राप्ति का सुलभ साधन भक्ति योग ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने नौ प्रकार की भक्ति बतायी है, जिसे नवधा भक्ति कहा गया है-

"श्रवणं कीर्तन विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चन वन्दनं दास्य सरव्य आत्मनिवेदनम्।"

इस नवधा भक्ति में कीर्तन को ही विशेष महत्व दिया गया है। कीर्तन सगुण और निर्गुण दोनों उपासनाओं का आलम्बन बना रहा है।[2]

संकीर्तन नवधा भक्ति की एक प्रमुख क्रिया है। मध्यकालीन वैष्णव धर्म के अनुयायी भक्त संगीतज्ञों ने राधा कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को वर्णित करते हुये संगीत की स्वरमय गेय प्रस्तुति के द्वारा अपनी पद रचनाओं को दिव्य रूप प्रदान कर जन साधारण के अन्तः करण को भावविहल कर दिया। ब्रज के देवालयों के संगीत पर यदि दृष्टि डालें तो रागादि विभिन्न संगीत पद्धति, कीर्तन पद्धति, संकीर्तन पद्धति तथा समाज गान पद्धति के रूप में मानसिक भावनाओं को और प्रभावोत्पादक होने का

अवसर प्रदान करते थे। न केवल मध्यकाल में बल्कि आज भी ब्रज के मंदिरों में कीर्तन व समाज गान के द्वारा ही ईश्वर की पूजा अर्चना की जाती है।

"भक्ति गीत काव्य में सत्य, शिव, सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय है। भक्ति गीत से वृत्ति जब छायाकार होती है तो चित का आवरण हटता है।"[3]

"सभी कलाओं में अध्यात्म पद की प्रधानता होने के कारण भारतीय संगीत कला का चरम आदर्श मोक्ष प्राप्ति, आत्मा से परमात्मा का मिलन तथा परम शान्ति प्रदान करना माना गया है।"[4]

यही कारण है कि भारतीय संगीत की प्रत्येक विधा फिर चाहे वो शास्त्रीय संगीत की ध्रुपद, धमार, ठुमरी या ख्याल, शैली, या फिर लोक संगीत की होरी, चैती और कजरी की विधा प्रत्येक शैली प्रत्येक विधा में भक्ति, प्रेम, सौन्दर्य की अनुभूति का वर्णन मिलता है। तथा भारतीय संस्कृति में प्रेम, अनुराग, सौन्दर्य, साहस का अनुपम, अदभूत, अनूठा रूप, स्वरूप श्रीकृष्ण और राधा के प्रेम और उनकी लीलाओं को माना गया है।

अतः भारतीय संगीत की लगभग प्रत्येक गायन, शैलियों विधाओं में इनकी इन्हीं लीलाओं का वर्णन मिलता है जिसका गान गायक तथा श्रोता दोनों के तन और मन को परमानंद प्रेम, भक्ति के भाव से भावाविभूत कर देता है।

यदि हम भारतीय संगीत के इतिहास और विकास की ओर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि संगीत अपने विकास के प्रत्येक काल में अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितों के अनुसार, उत्थान-पतन तथा शिखर की स्थितियों को प्राप्त करता हुआ जब- "15वीं और सोलहवीं शताब्दी में पहुँचता है तो वैष्णव भक्ति का प्रभाव प्रबल होने लगता है तथा पूर्व में प्रचलित तथा प्रतिष्ठत सूफी सन्त गायक संस्कृत और हिन्दी में रूचि लेने लगे। इन सन्तों ने सांस्कृतिक समन्वय की पृष्ठभूमि तैयार की थी[5]।

भक्ति आन्दोलन के इस तीसरे पड़ाव में अकबर की उदार नीति के कारण वैष्णव सम्प्रदायों को पूरी स्वतंत्रता से भक्ति प्रचार में सहयोग मिला तथा अकबर के शासन काल में अनेक कृष्ण सन्त गायक गायकों तथा सम्प्रदायों द्वारा राधा कृष्ण भक्ति के पदों द्वारा संगीत का प्रचार-प्रसार हुआ। वैष्णव धर्म प्रचारकों को अनुकूल वातावरण प्राप्त हुआ। भारत में मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति आंदोलन को व्यापकता देने में विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों का बहुत बड़ा योगदान रहा। भक्ति के स्वरूप में थोड़ा बहुत विविधता तथा वैचिंय लेकर अलग-अलग वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय संगठित हुए। इस सम्प्रदायों में मुख्यतः राम एवं कृष्ण भक्ति का प्रचार करने लगे। परन्तु कृष्ण भक्ति तुलनात्मक रूप से अधिक विकसित तथा प्रभावी होने लगी। इस प्रकार इस काल में कृष्ण के भिन्न रूपों को लेकर पनपने वाले चार प्रमुख सम्प्रदाय हुए-

(1) वल्लभ सम्प्रदाय
(2) चैतन्य सम्प्रदाय
(3) राधा बल्लभ सम्प्रदाय
(4) हरिदासी अथवा सखी सम्प्रदाय।

इनमें 13वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में प्रचलित राधा वल्लभीय सम्प्रदाय में कृष्ण से अधिक राधा की पूजा को प्राथमिता दी जाती थी। तथा 16वीं शताब्दी में राधा कृष्ण युगल उपासना करने वाला एक और सम्प्रदाय सखी सम्प्रदाय प्रचलित हुआ। इसके प्रवर्तक स्वामी हरिदास थे। इन्होंने गोपी भाव की भक्ति को भगवत प्राप्ति का एक मात्र साधन माना। इस काल में मथुरा वृन्दावन भारतीय संगीत और संस्कृति के प्रमुख केन्द्र बन गये। जो कृष्ण भक्तों की साधना स्थली थी। संगीत तो ब्रज भूमि के कण-कण में व्याप्त है। पुरातन काल से ही संस्कृति, साहित्य एवं कला ब्रज में ही पल्लवित हुये और वहाँ के जन-जन में पवित्रता एवं जीवन रस प्रवाहित करते रहे। ब्रज का सम्पूर्ण वातावरण रसमय है। ब्रज एक विशाल अनंत मन्दिर स्वरूप है जिसमें सिर्फ और सिर्फ राधा-कृष्ण ही है।[6]

कृष्ण काव्य में संगीत की चर्चा करे तो कृष्ण का चरित्र आदि काल से ही भारतवर्ष में परम आकर्षण का केन्द्र बिन्दु रहा है, श्रीमद्भागवत्, गीतगोविन्द, विद्यापति पदावली के माध्यम से कृष्ण

का रूप प्रस्तुत किया गया कि उससे कृष्ण भक्ति के अंकुर फूटे। कृष्ण भक्त कवि लगभग पूरे देश में रहे है। गुजरात के नरसी मेहता कृष्ण भक्त थे। गुजरात में आज भी कृष्ण और राधा के पद गाये जाते है। बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार इत्यादि कृष्ण भक्ति धारा के प्रवाह से सिक्त हो गये थे। कृष्ण भक्ति कालीन गायक कवियों के काव्य में प्रधान माध्यम संगीत ही रखा। प्रस्तुत है कृष्ण भक्त गायक कवियों में एक स्वामी हरिदास और मीरा के पद- सर्वप्रथम स्वामी हरिदास का ये पद जिसमें स्वामी जी ने एकल गायन वादन एवं नृत्य के उदाहरण के साथ समूह गान, समूह वाद्यवादन एवं समूह नृत्य का समन्वय प्रस्तुत किया है-

कुंज बिहारी नाचत नीके
लाड़िली नचावति नीके
औघट ताल धरे श्री श्यामा ताताथेई
ताताथेई, बोलत संग पी के
तांडव लास और अंग को गवै
जे-जे रूचि उपजति जी के
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा को
मेरू सरस भयौ और रसगुनी परे फीके।

उपर्युक्त पद में एकल संगीत तथा समूह दोनों का मिलाप है। जैसे श्री राधे नृत्य के बोल बोल रही हैं तथा श्री श्याम नृत्य कर रहें है। ताडंव लास्य इस नृत्य विशेष के अंग को प्रस्तुत कर रहे है। मीरा के पदों में वर्णित श्री कृष्ण के प्रति प्रेम अद्भूत और अलैकिक है-

"बरसे बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आनंद मंगल गायन की।।"

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कृष्ण और राधा की भक्ति के जिस रूप ने समस्त भारत को रस मग्न किया। जिसका मुख्य केन्द्र वृन्दावन रहा है, जिसमें कई शताब्दियों तक चित्रकार, कवि, नर्तक तथा संगीतकारों को जन्म, तथा प्रेरित किया, व संत कवि गायकों तथा उनके संगीत ने निश्चित रूप से भारतीय संगीत परम्परा को समृद्ध सम्पन्न एवं वैभवशाली बनाया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना में संगीत का योगदान- प्रताप डॉ. रागिनी
2. संगीतायन- चौधरी सीमा
3. मध्ययुगीन धर्मो में शास्त्रीय संगीत- खन्ना जतिन्द्र सिंह
4. स्वामी हरिदास वाणी एवं संगीत- पलनीटकर डॉ. अलकनंदा
5. भारतीय संगीत का इतिहास (आध्यात्मिक एवं दार्शनिक)- शर्मा डॉ. सुनिता
6. धार्मिक परम्परायें एवं हिन्दुस्तानी संगीत- सचदेव रेनू

फुटनोट

[1] श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय नवम् श्लोक-6

[2] सूर, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना में संगीत का योगदान- डॉ. रागिनी प्रताप, पृ.सं.-6

[3] संगीतायन- सीमा चौधरी, पृ.सं.-24

[4] मध्ययुगीन धर्मो में शास्त्रीय संगीत- जतिन्द्र सिंह खन्ना, पृ.सं.-91

[5] स्वामी हरिदास वाणी एवं संगीत- डॉ. अलकनंदा पलनीटकर, पृ.सं.-22

[6] सूर, मीरा, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना से संगीत का योगदान- डॉ. रागिनी प्रताप, पृ.सं.-17

मध्यकालीन भारतीय संगीत में राधा कृष्ण का महत्व एवं राधा कृष्ण का प्रेम सम्बन्ध

स्नेहा कुमारी

ति. मां. भा. वि. वि. भागलपुर

भारतीय संगीत परंपरा में प्राचीन समय से हीं भगवान कृष्ण एवं उनकी प्रेमिका राधा के सम्बन्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है। कभी उनकी रासलीला का सैन्दर्य प्रस्फुटित होता है तो कभी संगीत के माध्यम से विरह में व्याकुल राधा का ऐसा मनोरम चित्र उभरता है, कि श्रोता उस व्याकुलता का अनुभव कर स्वं विहृवल हो उठते हैं।

भगवान श्री कृष्ण एवं राधिका के बारे में विस्तार से हमें महाभारत, हरिवंश पर्व, भागवतपुराण, एवं विष्णु पुराण से प्राप्त होता है। भगवान श्री कृष्ण को भगवान विष्णु के आठवें अवतार के रूप पूजा जाता है। इनकी पूजा चौथी शताब्दि में प्रारंभ हो गई थी। दसवीं शताब्दि आते आते श्री कॄण का प्रचार प्रसार उड़ीसा के जगन्नाथ मंदिर, महाराष्ट्र के विठोवा, राजस्थान के श्री नाथ जी इत्यादि के रूप में हुआ तथा 1960 ई. तक आते आते इनकी भक्ति पश्चिमी दुनियां अफ्रिका तक फैल गई।

मणिपुरी वैष्णव कृष्ण को हमेशा राधा कृष्ण की संयुक्त छवि के रूप में पूजते हैं। चंडोज्ञ उपनिषद में कृष्ण को देवकी तथा वासुदेव के आठवें पुत्र के रूप में बताया गया है। इस कथा के अनुसार चुकि देवकी के भाई कंस को यह आकासवाणी हुई थी कि देवकी के आठवें पुत्र से उसका वध होगा इसलिए कंस देवकी की संतानों की हत्या कर देता था। इसी भय से वासुदेव अपने आठवें पुत्र को नंद एवं यशोदा के यहां मथुरा पहुंचा देते हैं, एवं यहीं श्री कृष्ण का लालन पालन होने लगा।

वृन्दावन में राधे कृष्ण की रास लीला का सुंदर चित्रण जयदेव ने 12वीं शताब्दि में अपनी पुस्तक गीतगोविन्द में किया है, जिससे इनके प्रेम को अध्यात्मिक प्रेम प्रसंग के रूप में विकास की नई दिशा मिली ।

मध्यकाल में 1200 ई0 से 1700 ई. के अन्तर्गत अनेक ऐसे भक्त कलाकार हुए जिन्हौंने राधे कृष्ण के भजन, गीत, आदि का निर्माण बड़े पैमाने पर किया जिसमें चैतन्य, वल्लभाचार्य, चण्डीदास, मीरा इत्यादि प्रमुख हैं। 1403 ई. के लगभग चण्डीदास ने लगभग 1000 गीतों की रचना की जिसका मुख्य विषय राधा कृष्ण प्रेम ही था। "महाकवि सूर ने 1483 ई. से 1575ई. सूरसागर में कृष्ण एवं गोपियों की लीलाओं का सुंदर वर्णन किया है। जिसे पढकर आत्मिक शांति एवं आनंद की प्राप्ति होती है। ये ब्रज भाषा के कवि थे। इनकी लगभग 5000 रचनायें संकलित हैं।"[1]

हरिराम कृष्ण एवं राधा के उपासक थे। इन्हौंने त्रिपदी छन्द में एक रासपंचाध्यायी लिखी । जिसमें श्रीमदभागवत गीता की कथा सरल भाषा में लिखी गई है। इसके अन्तर्गत 1216 छन्द हैं। वहीं व्यास जी ने शरद आैर रास के वर्णन में अनेक पद प्रस्तुत किये। जाे संगीत एवं रसात्मकता की दृष्टि से सुंदर आैर हृदय ग्राही हैं। वास्तव में व्यास जी ने ब्रज की रास लीला की पृष्टभूमि को सुदृढ किया।उनमें नवीन शक्ति एवं नवीन उमंग का संचार किया और. प्रेम

की पवित्रता को अंजली दी। इन्हौंने ही रास नृत्य का आरंभ किया ।

ब्रह्म विवर्त में बताया गया है कि राधा कृष्ण का प्रेम इस लोक का नहीं परलौकिक है। सृष्टि के आरंभ से तथा सृष्टि के अंत होने के बाद भी दोनों नित्य गोलोक में वास करते हैं। लेकिन लौकिक जगत में राधा कृष्ण का प्रेम मानवी रूप में था। और इस रूप में इनके मिलन और प्रेम के शुरूआात की रोचक कथा है। इसके अनुसार देवी राधा और श्री कृष्ण की पहली मुलाकात उस समय हुई जब देवी राधा ग्यारह माह की थी और भगवान एक दिन के थे। श्री कृष्ण के जनमोत्सव पर जब राधा माता कीर्ति के साथ पहली बार नंद गांव आईं थीं। मान्यताा है कि राधा कृष्ण से ग्यारह माह बड़ी है। इस समय श्री राधा गोद में थीं और कृष्ण पालने में झूल रहे थे।

भगवान कृष्ण की दूसरी मुलाकात लौकिक ना होकर अलौकिक थी। इस संदर्भ में गर्ग संहिता में एक रोचक कथा मिलती है। यह उस समय की बात है जब कृष्ण नन्हे से बालक थे। उन दिनों एक बार नंदराय श्री कृष्ण को लेकर भांडीर गांव से गुजर रहे थे। उसी समय अचानक एक ज्योति प्रकट हुई जो देवी राधा के रूप में दृश्य हुईं। देवी राधा के दर्शन पाकर नंदराय जी आनंदित हो गऐ ।राधा ने कहा श्री कृष्ण को उन्हे सौंप दें। नंदराय जी ने श्री कृष्ण को राधा जी के गोद में दे दिया । श्री कृष्ण बालरूप को त्यागकर किशोर बन गये तभी वहां ब्रहमा जी उपस्थित हुए। ब्रहमा जी ने दोनो का विवाह संपन्न कराया। कुछ समय तक दोनो इसी वन में रहे फिर देवी राधा ने कृष्ण को उनके बालरूप में नंदराय जी को सौंप दिया।

राधा कृष्ण के लौकिक मुलाकात एवं प्रेम की शुरूआत संकेत नामक स्थान से माना जाता है। नंदगांव से 4 मील की दूरी पर बरसाना नाम का गांव बसा है। बरसाना राधा जी की जन्मस्थली मानी जाती है। बरसाना एवं नंद गांव के बीच में संकेत गांव स्थित है। हर वर्ष यहां राधाटष्मी के दिन यानी भाद्र शुक्ल अष्टमी से चतुर्दशी तिथी तक यहां मेला लगता है और राधा कृष्ण के प्रेम को याद किया जाता है।

हरिवंश पुराण में मथुरा के आसपास की स्थली को व्रज की संज्ञा दी गई है। वेदों के अनुसार ''ब्रजन्ति गावो यस्मिन्नति ब्रजः'' अर्थात् गौचारण की स्थली हीं ब्रज कहलाती है। अष्टाछाप के कवियों ने ब्रज शब्द को गोचारण, गोपालन तथा गौर और ग्वालों के विहार के रूप में वर्णित किया है। ब्रज के हर वृक्ष देव हैं, हर लता देवांगना हैं। यहां की बोली में माधूर्य है। बातों में लालित्य है। पुराणों का सा उपदेश है। यहां की गति हीं नृत्य है। कण कण में राधा कृष्ण की छवि है। दिशाओं में भागवत नाम की झलक मिलती है। देवलोक भी इसके सामने नतमस्तक हैं।

सम्पूर्ण ब्रजमंडल का प्रत्येक कण, वृक्ष ,पर्वत ,पावन कुंड सरोवर और श्री यमुना जी श्री प्रिया प्रीतम की नित्य निकुंज लीलाओं के साक्षी हैं। श्री कृष्ण ने यहां सभी ग्वाल बालों के एवं गोपियों के साथ अनेक लीलाएं की उनकी दिव्य लीलाओं की कल्पना से हीं मन भक्ति एवं श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता हैं। इस पावन भूमि को पृथ्वि का अति उत्तम एवं परम गुप्त भाग कहा गया हैं। ब्रज के हृदय को वृन्दावन की संज्ञा दी गई हैं। कृष्ण भक्ति के जिस रूप ने सम्पूर्ण भारत को रसमग्न कर दिया उसका मुख्य केन्द्र वृन्दावन ही रहा है। जिसने शताब्दियों तक चित्रकार, कवि तथा संगीतकारों को प्रेरणा प्रदान की ।

धन्य वृन्दावन धाम है धन्य वृन्दावन नाम,
धन्य वृन्दावन रसिक जो सुमिरै श्याम श्याम।।

मनुष्य की सैांदर्य वृत्ति को परिष्कृत तथा सार्थक बनाने में भक्ति काव्य का प्रमुख हाथ रहा। ''भक्तिपरक काव्य को ही भजन की संज्ञा मिली छंद और स्वर की दृटि से भक्ति गीत के लिए कोई बंधन नहीं है परंतु फिर भी गेय पद स्वर ,राग एवं ताल में विभूसित हो जाने के पश्चात् जब प्रस्तुत किये जाते हैं तो उनसे रस की अजस्त्र धारा बहती है वह अनिर्वचनीय होती है।''[2]

ज्ञान मार्ग के साधक यह मानकर चलते हैं कि जीव और ब्रहम तत्वतः एक हैं, पर अज्ञान के कारण ब्रहम से अपने पृथक अस्तित्व की प्रतीती होती है। अज्ञान के दूर हो जाने पर उसका भेद ज्ञान उसी प्रकार मिट जाता है, जिस प्रकार छट के टूट जाने पर घटाकाश अेार महाकाश का भेद मिट जाता है। राधा अेार कृष्ण दोनों में कोई भी अज्ञानवृत ब्रहमरूप जीव के समान अनित्य नहीं है। दोनों नित्य हैं, दोनों की लीलाएं भी नित्य हैं। लीला रस का आस्वादन करने के लिए ही दोनों स्वरूपत; एक होते हुए भी अनादिकाल से दो रूपों में विद्यमान हैं।

प्रेम विलासविवर्त में जो प्राण मन देह आदि का एक्य होता है, वह केवल भागवत है वस्तुगत नहीं। देह, मन, अेार प्राण का पृथक अस्तित्व बना रहता है पर विलास सुखैक तन्मयता, के कारण उनके ऐक्य का मनन मात्र होता है। राधा कृष्ण के इस देह मनादि ऐक्य के मनन को कवि कर्णपूर ने परैक्य कहा है। परैक्य का अर्थ है राधा कृष्ण के मन का प्रेम के प्रभाव से गलकर सर्वतो भाव से एक हो जाना, वैसे हीं जैसे लाख के दो टुकड़े अग्नि के प्रभाव से गलकर एक हो जाते हैं।

इस प्रकार मन का भेद मिट जाने पर ज्ञान का भेद भी मिट जाता है। दोनों को अपने पृथक अस्तित्व का ज्ञान नहीं रहता यद्यपि पृथक अस्तित्व बना रहता है। ज्ञान मार्ग के सिद्धावस्था प्राप्त करने पर ज्ञाता, ज्ञान अेार ज्ञेय तीनों का लोप हो जाने के कारण न तो ज्ञाता का अस्तित्व रहता है और ना किसी प्रकार का अनुभव होता है, अेार ना किसी प्रकार की चेष्टा। परंतु प्रेम विलास विवर्त में राधा कृष्ण का पृथक अस्तित्व होता है, विलास सुखैक, तात्पर्यमयी अनुभूति होती है और विलास सम्बन्धी चेष्टा रहती है।

प्रेमविलासविवर्त में राधा कृष्ण की विलास सुखैक तन्मयता हीं प्रेम विलास की परिपक्वताा है। पर इसके परिणाम स्वरूप दोनों में उस अवस्था के दो लक्षण भी परिलक्षित होते हैं। वो भ्रम अेार वैपरीत्य हैं। तन्मयता के कारण भ्रम या अविस्मृति घटती है और आत्मस्मृति की अवस्था में परस्पर का सुख वधन करने का वर्धमान चरम उत्कंठा के कारण उनकी स्वाभाविक चेष्ठाओं का अनजाने वेपरीत्य घटता है। अर्थात कान्ता का भाव और आचरण कान्त में और कान्त का भाव और आचरण कान्ता में संचरित होता है।

जैसे साधारण रूप में कृष्ण वंषी बजाते हैं अेार राधा नृत्य करती है। पर विहार वैपरीत्य में राधा वंषी बजाती है अेार कृष्ण नृत्य करते हैं। नायक अेार नायिका में विहार वैपरीत्य बुद्धिपूर्वक भी हो सकता है। पर प्रेमविवर्तविलास में यह अबुद्धिपूर्वक होता है क्योंकि उसमें रमण का रमणत्व रमणी में और रमणी का रमणीत्व रमण में आत्मविस्मृति की अवस्था में अनजाने में संचरित होता है। चैतन्य चरितामृत में राय रामानंद ने महाप्रभु से अपने वार्तालाप में प्रेम विवर्त विलास को गीत द्वारा इंगित किया है। जिसकी प्रारंभिक पक्तियां इस प्रकार हैं

पहिलहीं राग नयनभंग भेल, अनुदिन बाढ़ल अवधि ना गेल।।
न सो रमण न हम रमणी ;दुहुं मन मनोभाव पेषल जानि।।

राधा कहती हैं नयन भंग अर्थात पलक पड़ने में जितनी देर लगती है, उतनी देर में कृष्ण से मेरा प्रथम अनुराग हो गया। राग दिन प्रतिदिन निरविच्छिन्न भाव से बढ़ता हीं गया। उसे कोई सीमा नहीं मिली। राग के निरंतर वर्धनशील प्रवाह ने तथा एक दूसरे के विलास सुख को वर्धन करने की कामना ने मानों दोनों के मन को पीसकर एक कर दिया हो।

इस प्रकार श्री कृष्ण एवं राधिका ने सम्पूर्ण जगत् को प्रेम की एक नई परिभाषा दी जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में पूजनीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. भारतीय संगीत का इतिहास - उमेश जोशी, मानसरोवर प्रकाशन, उत्तर प्रदेश पृष्ठ संख्या - 276, 282
2. निबंध संगीत - लक्ष्मीनारायन गर्ग, प्रकासन-संगीत कार्यालय हाथरस उत्तर प्रदेश, पृष्ठ संख्या - 539

भारतीय संगीत की बंदिशों में निहित राधाकृष्ण प्रेम की छवियाँ (संगीत शैलियों के संदर्भ में)

सुधा श्रीवास्तव

शोधछात्रा

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

संगीत एक मोहक कला है, जो जनसाधारण के मन का आकर्षित करती है। इस परिष्कृत विशुद्धतम कला द्वारा आध्यात्मिक सोपान एवं सिद्धी तक पहुंच संभव है। भक्ति, अथवा आधात्मिक का प्राचीनतम ग्रन्थ सामवेद है संगीत की महत्ता को स्वीकार करने के कारण इन स्तुतिपरक मंत्रों को संगीतात्मक रूप प्रदान किया गया है। वेदों की ऋचाओं का सस्वर पाठ इसके पश्चात सामगान ऋचाओं का शास्त्रीय संगीत नियामों में बद्ध करके यज्ञादि के समय गान और फिर धीर-धीरे समृद्ध होती अवस्था में जातियों गीतियों प्रबन्ध एवं ध्रुपद आदि के रूप में संगीत मानव को ईश्वर की परम सत्ता से जोड़ने में सक्षम माध्यम है। भगवान कृष्ण ने स्वंय नारद जी से कहा है–

नाहं वसामि बैकुण्ठे, योगिना हृदये न च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

भारतीय संगीत में राधाकृष्ण प्रेम-गीत के अनुपम भण्डार दृष्टत होते हैं। संगीत ही वह माध्यम है, जिसमं श्रीकृष्ण की गोपिकाओं के साथ रासलील, राधाविषाद वर्णन, कृष्ण के लिए व्याकुलता, उपालम्भ वचन श्री कृष्ण की राधा के प्रति उत्कण्ठा का वर्णन किया जा सकता है। श्रीकृष्ण के गोपियों के साथ रास विलास को राधा न पसन्द करती है ओर न ही सहन कर पाती है। राधा अपनी सखी कें माध्यम से श्रीकृष्ण के प्रति अपना आक्रोश मूलक उपालम्भ भेजती है, परन्तु उस अनव्य प्रणयिनी को इतने से भी संतोष नहीं होता, उसका प्रेम निर्भर हृदय से अपने प्रियतम के प्रति अपने प्रगाढ़ अनुराग को व्यक्तिगत रूप से प्रकट करने को विवश कर देता है। राधा जी के आने पर कृष्ण जी ब्रज सुन्दरियों का संग छोड़कर राधा जी की ओर उन्मुख हो जाते है। चन्द्रोदय होने पर प्रणय-व्यथा से अधीर बनी राधा अपने उदीप्त अनुराग पर नियंत्रण नहीं रख पाती और उसकी अभिव्यक्ति को विवश हो जाती है। श्रीकृष्ण राधा से प्रणय-याचना करते हुए उससे लज्ज-संकोच को छोड़ने का अनुरोध तथा रीति-भोग में सहयोग देने का मनुहार करते है। दोनों प्रसन्न मन से रतिक्रीड़ा में प्रवृत्त होते है और इसके उपरान्त राधा प्रणयसिक्त वचनों से अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से अपना श्रृंगार करने को कहती है।

राधा-कृष्ण की केलि कथाओं तथा उनकी अभिसार-लीलाओं का रसपूर्ण चित्रांकन जयदेव कृत गीतगोविन्द को आध्यात्मिक श्रृंगार का मनोरम ग्रन्थ बना देता है राधा कृष्ण के प्रणय त्रित्रांक में प्रेम की नाना प्रकार की दशाओं जिसमें आशा, निराधा, उत्कण्ठा, ईर्ष्या, आक्रोश, मान मिलन की उत्सुकता, मिलन तथा संदेश-प्रेषण आदि का जैसा चित्रांकन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं

मिलता। भारतीय संगीत की समृद्ध परिदृश्य के अन्तर्गत मैं राधा एवं कृष्ण प्रेम का छवियों को विभिन्न तत्वों क द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास विशेष शैलियों के माध्यम से कर रही हूँ:-

● **धमार**-यह गीत का प्राचीन प्रकार है। चौदह मत्राओं की ''धमार'' नामक विशिष्ट ताल में गाय जाने के कारण इस शैली को धमार कहा जाता है। धमार गायन शैली में मृदंग एवं परवावज जैसे वाद्य संगत हेतु प्रयोग किए जाते है।

धमार का वर्ण्य विषय राधाकृष्ण होली-विषयक लीलाओं से सम्बन्धित होते है। श्रृंगार परक इस गान में रंग, अबीर, गुलाल, पिचकारी और सखियों की चूनर रंगने के प्रसंगों को ही प्रधानता दी जाती है। जैसे-

हम तुम मिल दोऊ खेले होरी नव निकुंज में जैये।
अबीर गुलाल कुमकुमार केसरि रंग परस्पर नैये।
और सखि दोऊ भेद न जाति ग्वालियन हू न जनैये।
''परमानन्द'' स्वामी संग खेलत मनभावन सुखमैये।।

फाग से सम्बन्धित होने के कारण धमार को पक्की होरी के नाम से भी जाना जाता है। इन होरी प्रसंगों को चरचरी ताल में गाये जाने के कारण इसे चरचरी भी कहा जाता है। राग जयजयवन्ती में श्रृंगार पर धमार-

आज छबीले गिरधर नागर, बृज में खेलत होरी।
ग्वाल बाल सब संग सखा, रंग गुलाला की झोरी।।

धमार का उद्देश्य गंभीरता से हटकर रंगारंग वातावरण पैदा करना होता है। यह सामान्यतया लय प्रधान होता है।

● **ख्याल**:-यह फारसी भाषा का शब्द है इसका शाब्दिक अर्थ है ''कल्पना''। गीत का वह प्रकार जिसमें राग के नियमों की रक्षा करते हुए आलाप तान, बोलतान, खटका, मुर्की। सरगम आदि विभिन्न अलंकारों द्वारा तबले के साथ गायक अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है तो उसे ख्याल शैली कहीते हैं। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता होती है।

आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत राधा-कृष्ण की प्रणय केलि का निदर्शक 'रास' शनै-शनै 'रासलीला' में परिवर्तित हो गया। रासलीला के अन्तर्गत कृष्ण-राधा तथा 'गोप' और 'गोपियों' के संवादों की बहुल्यता के बाद भी रास लीलाएं धर्मोपदेश और मनोरंजन के मध्य सार्थक सेतु की रचना करती रही। ख्याल बन्दिश द्वारा राधा कृष्ण, प्रेम लीला का वर्णन इस प्रकार है-

राग-भैरवी में छोटा ख्याल-
स्थाई - *माने नाहि श्याम करत लरकइयाँ*
कासे कहुं सखि न मोरी मानत।
अन्तरा- *दिन नाहि चैन, रोय-रोये नैन*
कासे कहुँ मै न माने न सँवरिया।।

राधा-कृष्ण संवाद के अन्तर्गत कभी राधा जी नायक श्री कृष्ण को मनाती है तो कभी स्वयं ही जिद कर बैठती है तथा कभी उनके मिलन पर हर्ष दिखाती है तो कभी वियोग में दुखी होती है। उदाहरणार्थ-

राग बिलावत (बड़ा ख्याल) या एक ताल
स्थाई - *मूरत सांवरी मन बसी उधौ*
एक पल बिसरत ना बिराये।
तुम तो ज्ञान ध्यान के साधक
'रामरंग' गोपियन ज्ञान न सुहाये।।

राग-तिलंग- झपताल (मध्यलय)
स्थाई- *श्याम बिना सजनी जिया न धरे मोरा धीर।*
अन्तरा- *दिन-दिन पियरे परत गात, नहि खान पान निंदिया सुहात*
छिन-दिन अखियन सो ढरत नीर।।

ख्याल शैली में समान्यतया एकताल, तीनताल, झपताल, झूमरा, तिलवाड़ा, आड़ाचारताल इत्यादि तालों का प्रयोग होता है।

● **ठुमरी**-यह गीत का वह प्रकार है जिसमें राग की शुद्धता की तुलना में भाव और सौन्दर्य को अधिक महत्व दिया जाता है। इसकी प्रकृति चंचल और द्रुत मानी जाती है। ठुमरियाँ प्रायः खमाज, देश, पीलू, काफी, भैरवी, खमाज, झिंझोटी, तथा जोगिया आदि ऐसे चपल रागों मे गायी जाती है। राधा कृष्ण प्रेम संवाद आधारित ठुमरी अधोलिखित है–

सांवरिया ने जादू मारा, बाजूबन्द खुली खुली जाये।
जादू की पुडिया भर-भर मारा, क्या करे वैद्य विचारा।।

गीत की इस शैली में दीपचन्दी तथा जतताल का मुख्यतः प्रयोग किया जाता है।

● **होरी**-यह गीत का वह प्रकार है जो ठुमरी के ढंग पर दीपचन्दी ताल में गायी जाती है। इसके अन्तर्गत श्रीराधा कृष्ण के होली के संवाद का वर्णन मिलता है। होली एक मौसमी गीत है, जिसे फाल्गुन मास में गाया जाता है। ठुमरी के समान इसमें भी अंतरे से कहलवा ताल में आ जाती है। उदाहरणार्थ-

राग काफी-

मोहन के संग खेलूंगी होरी।
अबीर गुलाल मलूंगी मुख पर,
रंग छिरकुंगी केसर को री,
अपने श्याम को गरवा लगाऊँ
ताप बुझाऊँ अब मन को री।।

● **भजन और गीत**-इन गीतों में ईश्वर वन्दना अथवा ईश्वर का गुणगान होता है। यह दोनों ही भाव प्रधान होते है। इसमें मींड, कण, खटका आदि का प्रयोग किया जाता है। यह समान्यतया पीलू, भैरवी, खमाज, काफी देश तथा मांड आदि रागों में गाया जाता है। राधा कृष्ण संवाद पर आधारित भजन की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है-

बाजे री मुरलिया बाजे
अधर धरे मोहन मुरली पर,
होठ पर माया विराजे,
---------------।।

● **दादरा**-दादरा ताल के साथ गाई जाने वाली 'दादरा' एक विशेष गायकी है। इसकी चाल गजल से मिलती जुलती होती है। यह मध्य तथा द्रुत लय में गाया जाता है। इसमें प्रायः श्रृंगार रस प्रधान गीतों का गान होता है।

राग पहाड़ी में दादरा-
रंग सारी गुलाबी चुनरिया रे
मोहे मारे नजरिया सांवरिया रे
--------------।।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टित करते हुए यह कहा जा सकता ह कि राधा-कृष्ण के प्रेम वर्णन में वासना का वेग और शील का त्याग होते हुए भी पद लालित्य, पद स्वर ताल का अद्‌भुत संगम है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. संगीत निकुंज - डा. कमलेश सक्सेना,
2. ब्रज संस्कृति में संगीत - अंजू शर्मा
3. अष्टछाप संगीत - डॉ. नीरा शर्मा
4. संगीत पत्रिका - नवम्बर 2013
5. परमानन्द सागर - कांकरोली

ब्रज संस्कृति में रसिया गायन शैली

सुगन्धा वर्मा

शोध छात्रा, गायन विभाग
संगीत एवं मंचकला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सदियों से भारत की जनपदीय संस्कृति में लोक रंगमंच या लोक नाट्य अपने विविध रूपों में महान् जनता का मनोरंजन करता आया है। भारत में अभिजात और कुलीन वर्ग की अभिरुचि के अनुरूप प्राचीन संस्कृत नाटकों की एक समृद्ध परम्परा रही है। ब्रज लोक में यही परम्परा लोक-गीत, नृत्य, कथावाचन, कृष्ण लीला या रास, रामलीला, देवी के रतजगे, ढ़ोला, आल्हा, स्वांग तमाशे, रसिया दंगल के रूप में लोक रंजन, रीति-नीति का साधन रही। लोक संस्कृति का एक व्यापक मनोरंजन का माध्यम बनी।

ब्रज मंडल 'रसिया' छंदों-लोक-गीतों के लिए सुप्रसिद्ध है। 'रसिया' में रस का झरना प्रवाहित होता है। रसिया की रसीली बोली से रसिकता बिखर जाती है। छैल छबीले नटनागर श्रीकृष्ण को रसिया ही तो कहा गया है। राधा रस-रासेश्वरी हैं। ब्रज-रसिया गांव की गलियों, चौपालों, पनघटों, खेत की मेड़ों, गोष्ठियों में सुनने को आज भी मिल जाएंगे।

कुछ ब्रज रसिए जनपदीय कवियों द्वारा रचे जाते हैं और इनकी कल्पना की उड़ान का क्षेत्र व्यापक होता है। रसियाकार अध्यात्म, ईश्वर, भक्ति से लेकर, उत्सव, पर्व, ऋतुओं, प्रेम प्रसंगों, प्रकृति वर्णन, राधा-कृष्ण के मधुर सम्बन्धों और कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को रसीली ब्रज बोलों में चित्रित करते हैं। ब्रज में प्रचलित लोक गायकी की रचनाओं को छन्द विशेष अथवा गायन परम्परा विशेष के परिधान में रसिया, आल्हा, लावनी, चौबोला, निहालदे, ढ़ोला लोकगीत आदि के विविध रूपाकारों में प्रसिद्धि प्राप्त है। इन रचनाओं का सीधा सम्बन्ध लोक जीवन से है।

लगभग 70-80 वर्ष पूर्व गोवर्धन जिला मथुरा में घासीराम नाम से दो महानुभाव हुए हैं, जिनकी ख्याति रसिया-रचनाकार के रूप में विद्यमान है। इनके रसियाओं की विषय-वस्तु प्रायः कृष्ण-लीलाओं से सम्बद्ध थी, जिसके कारण आधुनिक रासमंच पर भी इन रचनाओं की अत्यधिक उपादेयता है। उदाहरणार्थ-दानलीला से सम्बद्ध रसिया का एक अंश यहाँ उद्धृत है-

गोपी वचन

इकली धेरी वन में आय श्याम तैंनें कैसी ठानी रे,
कैसी ठानी रे, श्याम तैंनें।
श्याम मोय वृन्दावन जानौं, लौट कैं बरसाने आनौं
मेरी कर जोरे की मानौं।
जो कहूँ होय अबेर, लड़ै घर ननद जिठानी रे, कैसी
ठानी रे, श्याम तैंने।

कृष्ण वचन

दान दधि कौ तु दैजा मोय, दान बिन जान न दऊँगो तोय, नहीं तकरार बहौत सी होय।

जो इनकार करै तेरी हो गयी ऐंचातनी रे, कैसी ठानी रे श्याम तैंने।

घासीराम के गीतकार की उपर्युक्त पंक्तियां गोपीकृष्ण के निश्छल हृदय की सार्थक अभिव्यक्ति है। इनमें भाषा की प्रवाहमयता के साथ सम्वादोचित पटुता एवं लाघव की व्यवस्था है। 'श्याममोय वृन्दावनजानो' शब्दावली में यदि गोपी की एक लाचारी है तो 'दान दधि कौ तू दैजा मोय, दान बिन जान न दऊँगो तोय' में श्याम का दृढ़ संकल्प है।

शब्दों के प्रयोग में सुकवि घासीराम की लेखनी अत्यन्त पटु है।

जसोदा सुनि माई! तेरे लाला नैं माँटी खाई।
अ ुत खेल सखन संग खेल्यौ, इतनौं सौ माँटी कौ डेल्यौ।
तुरत श्याम ने मुख में मेल्यौ, जाने गटक गटक गटक गटकाई।।

जसोदा सुनि.

घासीराम जी की उपर्युक्त पंक्तियों में मांटी खाते हुए श्याम का जहां रूप चित्र उभरता है, वहां मांटी के धीरे-धीरे कण्ठ से नीचे उतरने (गटकने) का एक ध्वनि चित्र भी श्रवणगोचर होता है।

ब्रज रसिया का एक-एक बोल हृदय के आर-पार हो जाता है। मस्ती व आहूलाद उत्पन्न करता है। सामाजिक-सांस्कृतिक मनोदशा की झलक प्रस्तुत करता है। युवा हृदय के मनोभाव प्रकट करता है। ब्रज लोक साहित्य के शिश्वर अध्येता डॉ. सत्येन्द्र ने रसिया गीतों को अल्हड़ता, हृदय की मस्ती, युवावस्था के माधुर्य और सौंदर्य मिश्रित भावुकता माना है।

आधुनिक युग के रसिया लेखकों में मेघश्याम जी का अग्रगण्य्र स्थान है। अनुकरणात्मक लीलाओं के प्रदर्शन में आज प्रायः सभी रसमण्डलियां इनकी लिखी रसिया रचनाओं का उपयोग करते हैं।

इन रसियों की विषय-वस्तु श्रीकृष्ण लीलाओं से सम्बद्ध है। डॉ. पदम सिंह शर्मा कमलेश के शब्दों में-रस है तो रसिया है, रसिया है तो ब्रजधाम है, ब्रज है तो राधा-कृष्ण हैं जो रसिया के सिरमौर हैं। एक प्रकार से रसिया में ब्रज की मस्ती, मधुरता और रसिकता का मिश्रण है।

आधुनिक काल में रसियाकारों में सनेहीराम जी की रसिया-रचनाएं अपनी विशिष्ट स्वर लहरी एवं भाव-सम्पदा के कारण लोक स्तर पर अत्यधिक ग्राह्य है। उदाहरण के लिए मृत्तिका भक्षण लीला से सम्बन्धित इनकी रसिया रचना का एक अंश द्रष्टव्य है-

नाहीं करी हमनु बहुतेरी ज्या की समझ न आई
तेरे लाला नै ब्रज रज खाई सुनि मैया री ।। टेक।।
बन में अकेलौ खेलैं ग्वालन कौ छोड़ि साथ,
कोऊ देइ गारी कोऊ कूँ चलावै लात,
दाऊ ते कहत तेरी कबहुँ न मानूँ बात औ।।
(सुनि मैया री ।। टेक।।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि सदियों से ब्रज लोकमानस में नौटंकी-भगत जैसी नाट्य विधाएं, रासलीला, रामलीला और लोक रंगमंच, रसका झरना प्रवाहित करने वाले रसिया लोकगीत अपनी रसिकता, जीवंतता के कारण आज भी लोकरंजन का सशक्त माध्यम बने हुए हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रज संस्कृति और ब्रज का लोक साहित्य-चंचरीक कन्हैयालाल, पीयूष जगदीश, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. ब्रज के तीन प्रमुख रसियाकार (कन्हैयालाल चंचरीक द्वारा संपादित बाबू वृंदावनदास अभिनंदन ग्रंथ में रसिया विषयक आलेख)-यमदग्नि, डॉ. वसंत

प्रिय-प्रवास के राधा-कृष्ण

सुप्रिया सिंह

शोध छात्रा (एस.आर.एफ.)
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

'प्रिय-प्रवास' हिन्दी-साहित्य सरोवर का सौरभ-स्नात, श्रीसम्पन्न चिर उत्फुल्ल वह शतदल है जिस पर काल के परिवर्तन का कोई प्रहार अपना प्रभाव नहीं डाल सका है। इस ग्रन्थ के रचयिता साहित्यवाचस्पति डॉ. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी है, जिन्होने हिन्दी साहित्य में अतुकान्त छन्दों में प्रिय-प्रवास महाकाव्य लिखकर एक नई परम्परा को स्थापित किया। 'प्रिय-प्रवास' खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इस काव्य में 'हरिऔध' जी ने अतीत को वर्तमान की शब्दावली में अभिव्यक्त किया है। 'प्रिय-प्रवास' ग्रन्थ के केन्द्र बिन्दु श्रीकृष्ण है। उनके चारों ओर अन्य पात्र अपनी गति के अनुसार समयानुकूल परिक्रमा कर रहे है। ब्रज-वासियों के प्राण-प्रिय कृष्ण कंस के निमन्त्रण पर अक्रूर जी के साथ मथुरा चले जाते है, वहाँ से द्वारिका को प्रस्थान करते है और फिर लौट कर नहीं आते। उनके इस प्रवास का हृदयस्पर्शी वर्णन ही इस ग्रन्थ का मूल विषय है। इसी से इस ग्रन्थ का नाम 'प्रिय-प्रवास' रखा गया है। 'प्रिय-प्रवास' शब्द भावना प्रधान शब्द है। प्रिय और प्रवास इन दो शब्दों को एक जगह संजो देने से इसमें मानवीय मधुर सम्बन्धों की कोमलता सजीव हो उठी है। साथ ही इसका अर्थ बहुत ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी हो गया है। महाकवि 'हरिऔध' जी ने 17 सर्गो के अन्तर्गत इस सुन्दर महाकाव्य को रचा है। 'प्रिय-प्रवास' की कथावस्तु के मुख्य सूत्र-धार कृष्ण और राधा है। यदि कृष्ण इस काव्य की रीढ़ है तो राधा निश्चय ही प्राणवायु के समान है। राधा-कृष्ण दोनो शिशु-अवस्था से ही साथ-साथ खेले-कूदे और बड़े हुये तथा खेल ही खेल में इनके मन में एक ऐसा अंकुर फूटा जिसे प्रेम की संज्ञा दी जाती है-

"युगल का वय साथ सनेह भी,
निपट निरवता सह था बढ़ा।
फिर यही वर बाल सनेह ही,
प्रणय में परिवर्तित था हुवा।।"

यह प्रेम क्रमशः बढ़ते-बढ़ते इस स्तर पर आ पहुँचा कि राधा ने अपना हृदय कृष्ण को समर्पित किया और मन ही मन में उन्हें पति के रूप में प्राप्त करने की कामना करने लगी, मगर प्रेम-पवन से आन्दोलित हो रही राधा की जीवन लता पर सहसा वज्रपात हुआ। मिलन की अवस्था विरह की वेदना में परिवर्तित हो गई। नियति की इच्छानुसार जो भाग्य में लिखा होता है, वही होता है। अतः एक दिन अचानक यह समाचार मिला कि कृष्ण मथुरा गमन करने वाले है। यह सुनकर राधा का खिला हुआ मन मुरझा गया–

विकसित कलिका हिमपात से
तुरत ज्यों बनती अति म्लान है।
सुन प्रसंग मुकुन्द प्रवास का
मलिन त्यों वृषभानुसुता हुई।

राधा अपनी मानसिक वेदना को कम करने के लिए तरह-तरह से अपने आप को धैर्य देने लगती है। वह सोचती है कि कृष्ण तुरन्त ही मथुरा से लौट आएँगें पर मन ही मन वह एक अपरिचित भय से काँप उठती है और अपनी सखी ललिता से कहती है-

प्रिय! स्वजन किसी के क्या न जाते कहीं है?
पर हृदय न जानें दग्ध क्यो हो रहा है?

राधा अपने प्रिय की विरह-कल्पना से इतनी व्याकुल हो जाती है कि प्रकृति की सारी सुखद वस्तुएँ उन्हें दुखद गोचर होने लगती है। अर्थात् दिन, महीने, वर्षों बीत गये, राधा के मन में कृष्ण के लौट आने की जो आशा थी अब वह निराशा में बदलने लगी। राधा के हृदय-गत विरह भावों का परिचय हमें इस काव्य के छठें सर्ग में मिलता है, जो पवन-दूत-प्रसंग नाम से हिन्दी-साहित्य में प्रसिद्ध है। इस प्रसंग में जहाँ एक ओर राधा की विरह व्यथा, वाक्-पटुता और स्त्रियोचित स्वाभाविक निपुणता के दर्शन होते है वहीं दूसरी ओर 'हरिऔध' जी के कवि-कौशल और भाव-वैभव के भी दिग्दर्शन होते है।

एक दिन जब राधा कृष्ण की याद में खोई-खोई बैठी थी, प्रातः काल का सुरभित पवन उनके तन से खेलने लगा, जिससे उनकी विरहाग्नि और भड़कने लगी। राधा ने विमूढ़ होकर पवन को अपना दूत बनाया और उससे विवशतापूर्ण शब्दों में सहायता की याचना की। उन्होंने पवन से प्रार्थना की कि वह मथुरा जाकर श्याम को उनकी दुख-कथा सुनाएँ, और प्रिय की कोई ऐसी वस्तु ला दें, जिससे उनके मरते हुए शरीर में प्राण आ जाएँ। राधा पवन को दूत बनाकर अपना सन्देश मथुरा तक ले जाने के लिए तो कहती है पर साथ ही उससे यह प्रार्थना भी करती है कि मार्ग में यदि कोई थका हुआ पथिक, पीड़ा-ग्रस्त रोगी, पसीना बहाता हुआ किसान हो तो उन सभी की बाधाओं को दूर करता हुआ ही वह आगे बढ़े। यहाँ राधा स्वयं दुखी है, लेकिन अन्य दुखियों के प्रति भी वह सहानुभूति रखती है।

जाते जाते अगर पथ में क्लान्त कोई दिखावे,
तो जाके सन्निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना।
धीरे धीरे परस करके गात उत्पात खोना,
सद्‌गंधो से श्रमित जन को हर्षितों-सा बनाना।

अतएव पवन केवल संकेत के द्वारा ही कृष्ण को राधा का संदेश पहुँचा सकता है इसलिए राधा पवन को उन नाना उपायों को बताती है जिनसे राधा के विरह युक्त-रूप की झलक कृष्ण देख सकें। राधा पवन से कहती है-

कोई प्यारा-कुसुम कुम्हला गेह में जो पड़ा हो,
तो प्यारे के चरण पर ला डाल देना उसी को।
यों देना ऐ पवन, बतला फूल सी एक बाला,
म्लाना हो-हो कमल-पग को चूमना चाहती है।।

राधा असमर्थता सूचक वाणी में पवन से यह निवेदन करती है कि उसके ये सब प्रयत्न भी यदि कृष्ण को राधा की याद न दिला सकें तो कम से कम कृष्ण की चरण धूल ही वह ला दें तो उसी को वो अपना सौभाग्य समझ स्वीकार कर लेंगी। 'प्रिय-प्रवास' की राधा में प्रेम की पराकाष्ठा असीम है जो उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है।

इस काव्य के सोलहवे सर्ग में वियोगिनी राधा उद्धव के साथ वार्तालाप करते हुये मिलती है जिसमें वह राधा को कृष्ण का यह संदेश सुनाते है- "भाग्य ने दो प्यार भरे हृदयों को अलग कर दिया है, दूर रहने पर मजबूर कर दिया है। सुख और भोग की लालसाएँ तो मधुर व प्यारी होती है, परन्तु जगहित की लिप्सा भी कुछ कम मनोज्ञा नही होती। अतः मैने अपने प्रेम से अधिक जगहित को प्रधानता दी है।" इस प्रकार राधा कृष्ण के इस संदेश को सुनकर इसी सर्ग में ही विश्व-प्रेम के प्रांगण में प्रवेश करती दिखाई देती है। अपने हृदय में ही अपनी वेदना को दबाकर, वह प्रिय के आदर्शानुसार लोकहित की वेदी पर स्वयं के प्रेम की बली चढ़ा देती है। उनके मन में एक ओर तो यह कामना करवट लेती है कि कृष्ण कभी ब्रज आएँ और उन्हें अपनी गोद में ले लें। साथ ही दूसरी ओर यह अभिलाषा भी रहती है कि कृष्ण जग-हित के कार्य में ही लगे रहे। राधा कृष्ण

के संदेश को पाकर अनुभव करती है कि उन्होने दो तरह के लाभ प्राप्त किये है। एक तो यह कि उनके मन में विश्व-प्रेम जाग उठा है और दूसरा यह कि उन्हें अपने प्राणेश में प्रभु का रूप देख पाने का अवसर मिला है। उन्होंने जग की हर वस्तु में अपने प्रियतम के रंग व रूप को देखा जिससे समस्त जग उनकी-दृष्टि में श्याम-मय बन गया और इसी विश्व प्रेम में ही उन्होने अपने प्रियतम को पा लिया। वह उद्धव से कहती है-

मेरे जी में हृदय विजयी, विश्व का प्रेम जागा।
मैं न देखा परम-प्रभु को स्वीय-प्राणेश ही में।।
व्यापी है विश्व प्रियतम में, विश्व में प्राण प्यारा।
यो ही मैं न जगत्-पति को, श्याम में है विलोका।।

अतः संक्षेप में हम कह सकते है कि 'प्रिय-प्रवास' के नायक 'कृष्ण' सूर के लोकरंजक तथा रीतिकाल के छलिया और रसिया कृष्ण न होकर मर्यादा पुरूषोत्तम कर्तव्य निष्ठ महापुरूष है। वे दूसरों की रक्षा के लिए सर्वदा ही अपने प्राणों को न्यौछावर करने के लिए तैयार रहते है तथा 'प्रिय-प्रवास' की 'राधा' 'श्रीकृष्ण' के ही अनुरूप है। यद्यपि उन्हें कृष्ण के वियोग में कुछ भी अच्छा नही लगता, पर वे सूर तथा रीतिकाल के कवियों द्वारा वर्णित राधा की भाँति रोती-बिलखती नही है। वे अपने जीवन को समाज-सेवा में अर्पण कर देती है। इस काव्य में 'हरिऔध' जी का उद्देश्य जहाँ 'श्रीकृष्ण' को महापुरूष दिखाना था वहीं 'राधा' को जन सेविका के रूप में प्रस्तुत करना भी था। उन्होने राधा के जीवन को पहले प्रेमिका, फिर वियोगिनी और अंत में लोक सेविका के रूप में प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ के 'श्रीकृष्ण' लोकनायक है तो 'राधा' लोक-सेविका के रूप में अपना सम्पूर्ण कर्तव्य बड़ी ही निष्ठा और लगन से निभाती है।

इस प्रकार 'हरिऔध' जी ने परम्परा से परे जाकर एक नया दृष्टिकोण हिन्दी साहित्य को दिया जो वैज्ञानिक तथा सत्य की दृष्टि से पूर्ण तथा तर्क रहित है।

गीतगोविन्द में श्रीराधा तत्त्व-एक विमर्श

उर्मिला देवी

(जे.आर.एफ.)
शोधच्छात्र, संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

गीतिकाव्य एक भाव प्रधान काव्य है। संस्कृत वाङ्मय में गीतिकाव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गीतिकाव्य वह काव्य प्रकार है जिसमें कवि अपने अन्तरंग में स्थित कोमल भावों में से किसी एकको केन्द्र में रखकर कल्पना या सत्य द्वारा उसे गेय बनाकर संक्षिप्त रूप में प्रकट करता है। हृदय में स्थित भाव का अतिरेक होने पर ही गीति की अभिव्यक्ति होती है। ऐसी रचना निर्मित नहीं की जाती इसकी स्वतः स्फूर्ति होती है। कवि का हृदय सुख दुःख या किसी धार्मिक-नैतिक भावना से उद्वेलित होकर सहसा काव्य के रूप में फूट पड़ता है। संस्कृत के गीतिकाव्यों में मुख्य रूप से श्रृंगार, नीति, विरह, वैराग्य, भक्ति, ऋतुवर्णन, देवस्तुति आदि में से किसी एक विषय को चुनकर गीतिकाव्य में संवेगों की अभिव्यक्ति होती है। गीतिकाव्य का आदि स्रोत **ऋग्वेद** माना गया है। **ऋग्वेद** में उषस्[1], विष्णु[2], इन्द्र[3], वरुण, सविता[4], अदिति, मरुत आदि देवों की अनेक सूक्तों में स्तुति की गयी है। **सामवेद** का संगीत पक्ष गीतिकाव्य के अनन्य गुणों को विशेष रूप से धारण करती है। **इदं हयन्वोजसा सुतं राधानां पते गिर्वण।**[5], **स्त्रेतं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते विभूतिरस्तु सुनृता।**[6] अथर्ववेद में भूमि की स्तुति में गीतिकाव्य का विन्यास है। गीता के ग्यारहवें अध्याय में भगवान् कृष्ण के विराट् रूप की स्तुति की गई है। भागवतपुराण, विष्णुपुराण इत्यादि में उपादेय देव की स्तुति मिलती है। व्यास के अध्यात्म रामायण में भी ब्रह्म के रूप में स्तुति वर्णित है।

प्रथम गीतिकाव्य दशावतारस्तुति के बाद सभी गीति श्रृंगार प्रवण है। श्रृंगार कवि या भक्त कवि के रूप में 12वीं शती में जयदेव का नाम बहुधा विवेचित हुआ है। इन्होंने श्रीकृष्ण की रासलीला और प्रणय व्यापार को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया, जिनकी कृति है गीतगोविन्द। गीतगोविन्द में कवि ने श्रीराधा और कृष्ण के प्रेम प्रणय व उनके प्रति भक्ति को प्रदर्शित किया है और कहा है कि राधा कृष्ण एक ही तत्त्व की युगल मूर्ति है। श्रीकृष्ण रासेश्वर है तो राधिका रासेश्वरी। राधा कोई मृण्मयी मूर्ति नहीं, वह चिन्मय विग्रहवती है। वह पार्थिव प्रतिमा नहीं पराशक्ति का प्राकट्य है। वह काव्य की अधिष्ठात्रि है। भक्ति की निर्झरिणी है, कला की उत्स और प्रेम की प्रतिमा है। राधा एक अनुभूति है, एक भावना है, एक कल्पना है, एक चिन्तना है, एक माधुरी है। राधा भारतीय भक्ति और अनुरक्ति की परम अभिव्यक्ति है। गौड़ीय वैष्णवों की राधा तो सर्वस्व है, उज्ज्वल रस की ज्योति है। लक्ष्मी उनकी अंश की अनुभूति है। सूरदास के शब्दों में सोलह हजार गोपियों की राशिभूत पीड़ा का नाम ही राधा है। भारतीय साधना और आराधना की परिणति का नाम है राधा। अतएव राधा शब्द राध् संसिद्धौ धातु से व्युत्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है आराधना अर्थात् राधा का अर्थ हुआ आराधना करने वाली।

इसका दूसरा अर्थ भी है जिसकी आराधना की जाय वह राधा है।[7] कृष्ण से सम्बन्ध के अर्थ में **कृष्णं समा राधयति सदा इति राधा और कृष्णेन नाराध्यते इति राधा। "राधोपनिषद"** संस्कृत हिन्दी कोश में राधृअकृटाप् राध्नोति साधयति कार्याणि कहकर राधा को कार्य सिद्धि करने वाली कहा गया है।[8] **वाचस्पत्यम्** में राधा की व्युत्पत्ति राध् धातु में अच् प्रत्यय के योग से की गयी है। **अमरकोश** में उसे वैशाख की पूर्णिमा, वष्षभानु-गोप की कन्या तथा कृष्ण की प्रेयसी कहा गया है। **नारद पाञ्चरात्र** में राधा नाम का कारण दूसरा बताया गया है। रास से उत्पन्न होकर वह तरूणी हरि के समक्ष पहुँची अतएव उसका नाम राधा हुआ।[9] **ब्रह्मवैवर्तपुराण** में कृष्ण जन्म के तेरहवें अध्याय में 'रा' आदान वाचक और 'धा' निर्वाणवाचक है। अतएव मुक्ति प्रदात्री होने के कारण ही राधा कहा गया है।

रा शब्दोच्चारणाद् भक्तो याति मुक्ति सुदुर्लभाम्। रा शब्दोच्चारणाद्भक्तो याति मुक्तिं सुदुर्लभाम्।।[10]

राधा शब्द की व्युत्पत्ति के बाद विभिन्न ग्रन्थों में राधा का वर्णन इस प्रकार हैः-

वेदों तथा उपनिशद् में राधा को कृष्ण की आराधना करने वाली राधिका कहा गया है।[11]**पुराणों** में राधा को शुक्लपक्ष की अष्टमी को वृषभानु की यज्ञभूमि में राधा का प्राकट्य बताया है। तो **प्राकृत तथा अपभ्रंश** में राधा को कृष्ण की आह्लाद कारिणी शक्ति बताया गया है। दार्शनिक ग्रन्थों के **निम्बार्क सम्प्रदाय** में राधा कृष्ण की युगल उपासना का प्रचलन कर द्वित्व में एकत्व की स्थापना की गई है। **वल्लभ सम्प्रदाय** में श्रीराधा सर्वत्र सच्चिदानन्द रसमय पुरुषोत्तम की मुख्य शक्ति स्वामिनी के रूप में निरुपित हुयी है।**चैतन्य मत** में राधा कृष्ण को आनन्द का आस्वाद कराने वाली भावों की पराकाष्ठा का नाम महाभाव है जिसकी साक्षात् मूर्ति राधारानी है। श्रीराधा **राधावल्लभ सम्प्रदाय** में कृष्ण की वामांगभूता एवं आह्लादिनी शक्ति है। कृष्ण भी उनको नमन करते है तथा राधा को अनादि ब्रह्म का नित्यरूप स्वीकार किया है।

विभिन्न ग्रन्थों में राधा के स्वरूप की पुष्टि के उपरान्त संस्कृत साहित्य में श्रीराधा का वर्णन गीतिकाव्य गीतगोविन्दकार के अनुसार राधा का वर्णन आद्योपान्त निम्नवत हैः-

गीतगोविन्द प्राचीनकाल से ही भारतीय संगीत, नाटक एवं चित्रकला को प्रोत्साहित किया है, गीतगोविन्द का आविर्भाव काल 12वीं शती के मध्यकाल में बंङ्गाल के राजा लक्ष्मणसेन के शासन काल में हुआ था। इनके पिता का नाम भोजदेव तथा माता का नाम रामा देवी अथवा राधा देवी था। बाल्यकाल में ही इनके माता पिता का देहावसान हो गया था। इसके उपरान्त वे जगन्नाथ पुरी चले गये थे। इनका प्रारंभिक जीवन भगवान् जगन्नाथ जी के भक्तिपूर्ण गीतों का गायन करते हुए व्यतीत हुआ।[12] जयदेव जन्मजात कवि व गायक थे। अपने सरस गेय काव्य के कारण वे राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी कवि हुए। जयदेव संस्कृत भारतीय के परम मधुर कवि तो हैं ही, भक्त कवि भी है। उनका हृदय आनन्दकन्द, नन्दननन्द, व्रजनन्दन, श्रीकृष्ण के श्री चरणों में अनुरक्त है। उनका यह काव्य मुख्य रूप से दो प्रमुख पात्रों राधाकृष्ण की विरह-वेदनाओं को उद्घाटित करता है। इस काव्य का सारतत्व प्रेमयुक्त सरल पदों के द्वारा आत्मा व परमात्मा के गूढ़ तत्वों को व्यक्त करता है। आत्मा अर्थात्श्रीराधा, प्रियतमपरमात्मा अर्थात् श्रीकृष्ण, इन दो तत्त्वों के माध्यम से संयोग-वियोग से उत्पन्न भावस्थितियों का उद्धरण सर्वत्र विद्यमान है। इनके काव्य की कोटि मुख्यतः दो रूपों में हमारे सम्मुख आती है। प्रथम तो श्रृंगारिक पक्ष जिसका वर्णन बहुतायत रूप से प्राप्त होता है दूसरा सूक्ष्म रूप से दार्शनिक पक्ष का भी दृष्टिगोचर होता है।

श्रृंगारिक रूपके वर्णन में गीतगोविन्दकार ने श्रीराधा-कृष्ण केरूपों का वर्णन करते हुए सर्वप्रथम राधा के लिए कहा है कि राधा पार्थिव प्रेम की मूर्ति न होकर दिव्यभक्ति की संचारिणी कल्पलता है। वह

अपने आराध्य व्रजनन्दन के प्रति स्वतः स्वाभाविक अनुराग धारण करती है। वह एक आदर्श प्रेमी के समान अपने आराध्य देव के मूल दोषों का भी ध्यान नहीं देती है। वह अपने प्रेमी के स्वभाव को जानती है किवे बहुवल्लभ है। उनकी प्रीतिपात्री कोई एक भाग्यवती ललना नहीं है बल्कि अनेकों नारियों को आकर्षित करने वाला व्यक्ति है,**'स्वच्छन्दं रमते'** मनमानी ढ़ंग से रसकेलि में रमा रहता है। वे अपनी प्रणय क्रीड़ा में प्रवृत्त होते है तो उन्हें हटाने वाला भी कोई पुरूष नहीं है। इन सब बातों से भी विज्ञ राधा कभी भी बुरा नहीं मानती है। प्रत्युत यह भी कहती है कि क्षण भर के विलम्ब में भी उसका चित्त उत्कण्ठा के भार से कट जायेगा। यहाँ पर राधा को एक दिव्य प्रेमिका के रूप में बताया गया है।

नायातः सखि निर्दयों यदि शठस्त्वं दूति कि दूयसे?

स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किन्तत्र ते दूषणम्।[13]

राधा की रूप सुषमा का वर्णन करते हुए जयदेव यह कहते है कि राधा चिरसुन्दरी भूतल पर विचरण करने वाली दिव्य ललनाओं का एक अपूर्व मिलन है। जब वह पृथ्वी पर विचरण करती है तो स्वर्गलोक की अप्सराए उसके (राधा) अंग प्रत्यंग में अपने पूर्णवैभव तथा सौन्दर्य के साथ केलिक्रीड़ा करती है। राधा के दोनों नेत्र मदालसा अर्थात् मद से अलस तथा मदालसा नाम की अप्सरा है। राधा की तुलना स्वर्गलोक की अप्सरा से भी बढ़कर बताया गया है, कि स्वर्ग लोक में तो एक ही मदालसा है किन्तु राधा के शरीर में दो मदालसा विद्यमान है। राधा की गति मनुष्यों के मन को रमाने वाला है तथा वह मनोरमा अप्सरा है। राधा की रति कला-कौशल से संयुक्त है। साथ ही काम की पत्नि रति तथा कलावती अप्सरा को वह धारण करती है। राधा की दोनों भौंहे कोप के कारण विचित्र भृकुटि के धारण करने वाली तथा दो चित्र लेखाओं को भी धारण करती है। इन सभी समानताओं के द्वारा जयदेव राधा के रूप लावण्य का वर्णन करते हुए यह कहते है कि हे तन्वी राधा तुम पृथ्वी पर रहकर भी देवललनाओं के समूहों को धारण करती हो। जयदेव ने राधा के अद्वितीय सौन्दर्य की दिव्य छवि की अभिव्यंजना मुद्रा अलंकार से विभूषित कर इस पद्य से स्पष्ट किया है

दक्षौ तव मदालसे वदनमिन्दुसन्दीपकं गतिर्जन मनोरमा विजितरम्भ मूरूद्वयम्।

रतिस्तव कलावती रूचिरचित्रलेखे भ्रुवा वहो विवुध यौवनं वहसि तन्वि पृथ्वीगता।।[14]

राधा के सौन्दर्य वर्णन में कवि जयदेव ने स्वर्ग लोक से परे पृथ्वी लोक पर राधा के अधर की तुलना वन्धूक पुष्प से, दाँत की तुलना कुन्दपुष्प से तथा नासिका की तुलना तिल के फूल से करता है। राधा के मुख अलौकिक सौन्दर्य से युक्त तथा काम का उद्दीपक है इसका वर्णन जयदेव ने इस पंक्ति में दिया है।

वन्धूक द्युतिबान्धवो ऽयमधर स्निग्धो मधूकच्छवि... प्राय स्त्वन्मुख सेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः।[15]

राधा का श्रृंगारिक वर्णन करते हुए जयदेव कहते है कि प्रिय की उपेक्षा, वह भी इस सरस वसन्त के समय में सामान्य कामिनी को प्रेम विमुख करने में समर्थ होती है। किन्तु राधा के हृदय में इससे विरक्ति नहीं आती, ये उनके हृदय की दुर्बल स्थिति है। साथ ही श्रीकृष्ण से मिलन की प्रबल इच्छा में वह अपने सखियों से आग्रह करती है।कृष्ण की उपेक्षा उनके प्रति क्षणिक है और राधा का प्रेम स्थायी है। राधा के उदार हृदय में कृष्ण के इस नूतन व्यवहार के लिए आक्रोश नहीं हैबल्कि कृपा की भावना है। राधा का यह उदात्त चरित्र जयदेव की भक्ति भावना का द्योतक है।

हस्त स्रस्त विलास वंश मनृजुभ्रू वल्लिमद्वल्लवी वृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितमतिस्वेदार्द्र गण्डस्थलम्। मानुद्वीक्ष्य विलज्जितं स्मित सुधा मुग्धाननं कानने, गोविन्द व्रज सुन्दरी गणवृतं पश्यामि हृष्यामि च।।[16]

श्रीराधा की सखी माधव से राधा की उत्कण्ठा का वर्णन करती है कि वह तुम्हारे विरह में नितान्त दुःखी है। वह हमेशा आपके ध्यान में तल्लीन रहती है। वह सम्पूर्ण शीतल पदार्थो से घृणा करती है,

चन्दन के स्पर्श से डरती है। विरह के उत्कण्ठा के कारण तुम्हारे साथ तादात्म्य स्थापित कर ली है। राधा फूलों की सेज अपने सुख के लिए नहीं तैयार करती है बल्कि कृष्ण की प्राप्ति के लिए व्रत धारण करती है।

"कुसुम विशिखशरतल्पमनल्प विलास कला कमनीयम्।
व्रतमिव तव परिरम्भ सुखाय करोति कुसुम शयनीयम्।।"

राधा को इससे भी संतोष की प्राप्ति नहीं हुयी वह तुम्हारे दुर्लभ दर्शन ध्यान के द्वारा पाकर विलाप करती है, हँसती है, खिन्न होती है, रोती है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है और ध्यान से तुम्हारे समागम की कल्पना कर अपने संताप को दूर भगाती है।वे प्रत्येक पल यही कहती है कि "हे माधव! मै तुम्हारे चरण पर गिरी हूँ मुझे ग्रहण करो। नहीं तो तुम्हारे विमुख होने पर यह सुधाकर भी मेरे शरीर में दाह उत्पन्न करता है।" विरहिणी राधा की कृशता इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि उसके हृदय पर धारण किये अनमोल हार भी भार के समान है, चन्दन का लेप विष के समान देखती है। वह सदा तुम्हारे नाम को हरि-हरि कहकर जपा करती है, राधा काम रोग से पीड़ित होकर पड़ी है उसे नीरोग करने की एक ही दवा है वह है अमृत के समान तुम्हारे अंग का संग। ऐसी दशा में कृष्ण व राधा के प्रेम का वर्णन करते हुए राधिका की सखी कहती है कि यदि तुम उसकी बाधा नहीं दूर करते हो तो तुम वज्र से भी अधिक कठोर हो। राधा के लिए उसकी सखी का आग्रह है कि तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा में पलपल व्याकुल है। देर मत करो देखती नहीं हो कि तुम्हारी प्रतिकूलता के साथ ही साथ वह तीक्ष्ण किरणों वाला सूर्य अस्त हो गया। राधा का वामाचरण तथा सूर्य का ताप दोनों ही तीक्ष्ण तथा कष्टकारक है ये दोनों एक साथ अस्तंगत होते है। यहाँ पर अन्धकार की सघनता तथा गोविन्द के मनोरथ की सघनता एक श्रेणी की है। जिस तरह से श्रीकृष्ण का मनोरथ राधा से मिलने के लिए सघन है उसी तरह अन्धकार भी सघन हो गया है। चक्रवाक अपनी प्रिया के मिलन के लिए पुकारता है उसी तरह कृष्ण तुम्हें मिलने के लिए निरन्तर जागरूक है।

दार्शनिक वर्णन में श्रीराधा तत्त्व का विमर्श करते हुए जयदेव यह कहते है कि राधा रासेश्वरी है श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है ये पुष्टि-साधना में स्वामिनी जी है। जयदेव अपने काव्य का श्रीगणेश राधा और कृष्ण के श्रृंगारिक प्रेम लीला से शुभारम्भ करते है और अन्त में जाकर हरि-हरि की वर्णन करने लगते है।

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यमास्तमालद्रु-
मैर्नक्तंभीरूरथं त्वमेव तदिमं
राधेः गृहं प्रापया इत्थं नन्दनिदेश तश्चलितयोः **प्रत्यध्वकुन्जद्रुमं**
राधामाधवययोर्जयन्ति यमुना कूले रहः केलयः।

अतएव जयदेव का गीतगोविन्द काव्य हमें श्रृंगार के माध्यम से भक्ति की ओर अग्रसर करता है। इस बात की पुष्टि जयदेव अपने ही शब्दों में काव्य के प्रथम सर्ग में श्रोताओं को सम्बोधित कर करते है यदि–

हरि स्मरणे सरसं मनोयदिविलास कलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्त पदावली शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।।

अर्थात् यदि आपका मन हरिचर्या की ओर लालायित है तथा आपके कान हरि की सुललित लीलाओं का श्रवण करना चाहते है तो अति मधुर तथा मनोहर एवं सुललित पद रचना वाली जयदेव की पदावली सुनिये। एक अन्य स्थान पर वैष्णवों में प्रणाली है कि अयोग्य स्थल में गीतगोविन्द को नहीं गाना चाहिए क्योंकि उनका विश्वास है कि जहाँ गीतगोविन्द गाया जाता है वहाँ भगवान् का प्रादुर्भाव अवश्य होता है। इस पर वैष्णवों की एक अख्यायिका प्रसिद्ध है कि एक वृद्धा को गीतगोविन्द का अष्टपदीस्मरण था और वह गोवर्धन के नीचे रहती थी एक दिन वह बैगन के पेड़ों को सिंचती हुई यह अष्टपदी गा रही थी तब भगवान् कृष्ण भी उसके पीछे-पीछे फिरे, तीसरे प्रहर उत्थान के समय देखा

गया तो श्रीनाथ जी का वागा फटा है तथा वैगन के काटे व मिट्टी लगे हुए थे। इस अख्यायिका के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि गीतगोविन्द में राधा कृष्ण के श्रृंगारिक वर्णन ही नहीं है अपितु दार्शनिक रूप से भक्ति भावना का भी वर्णन है जिसका प्रमाण यह है। एक सच्चे वैष्णव के लिए गीतगोविन्द राधा-कृष्ण की परम लीलाओं का चित्रपट है जिसमें भक्त धार्मिक अनुभूति और परम भक्ति के साथ भाव विभोर हो जाता है।

अतः निष्कर्ष रूप से हम यह कह सकते है कि श्रीराधा आराधना की प्रतीक है भगवत् की श्रेणी और जीव की श्रेणी में विचरण करती है। श्रीराधा प्रेम के द्वारा परमप्रिय कृष्ण को पाना चाहती है, यहाँ पर आत्मा राधा, परमात्मा कृष्ण के मिलन को वैष्णवों का ब्रह्म का मिलन होना, एकाकार होना बताया गया है। लोकजीवन में रहती हुई राधा (आत्मा) अपने प्रियतम् (परमात्मा) से मिलन के लिए हमेशा आतुर रहती है। मिलन में बाधा उत्पन्न होने पर श्रीराधा तनिक भी भयभीत नहीं होती है। बल्कि धैर्य धुरिण होकर अपने परमात्म ईश, कृष्ण से मिलने के लिए प्रयत्न करती है। यहाँ पर श्रीराधा तत्त्व अपने प्रियतम् (परमात्मा) से जब मिल जाती हैतब ब्रह्म का साक्षात सम्बन्ध हो जाता है। सारे अज्ञान नष्ट हो जाते है। राधा और कृष्ण की मनोरम रूप माधुरी का गीतगोविन्द एक अनुपम उदाहरण है। राधा व कृष्ण एक ऐसा महत है जिसको आधार मानकर मैथिलकोकिल विद्यापति परम पूजनीय हो गये, चण्डीदास उसमे लीन हो गये तथा सूरदास सर्वदर्शी हो गये। सम्पूर्ण वैष्णव कवियों पर चाहे वह ज्ञानदास हो या परमानन्द दास हो वे जयदेव के गीतगोविन्द से प्रभावित है।

सहायक-ग्रन्थ सूची

1. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा - पं बलदेव उपाध्याय
2. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा कपिलदेव द्विवेदी
3. गीतगोविन्द साहित्यिक एवं कलागत अनुशीलन - डा प्रेमशंकर द्विवेदी
4. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा - पाण्डेय एवं व्यास
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला

(Footnotes)

[1] ऋग्वेद 3/61/6

[2] ऋग्वेद 1/154/1

[3] ऋग्वेद 1/32/1

[4] ऋग्वेद 1/35/1

[5] ऋग्वेद, सामवेद 3/51/10

[6] सामवेद 20/45/2

[7] डा0 प्रेम शंकर द्विवेदी पृष्ठ- 185 साहित्यिक एवं कलात्मक अनुशीलन

[8] वामन शिवराम आम्टे पृष्ठ- 854

[9] नरद पाञ्चरात्र 2.3-36

[10] ब्रह्मवैवर्तपुराण- ण जन्म खण्ड अध्याय- 16, पृष्ठ- 228

[11] पं बलदेव उपाध्याय भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृष्ठ- 25

[12] भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, पं. बलदेव उपाध्याय पृष्ठ- 245

[13] भारतीय वाङ्गमय में श्रीराधा वलदेव उपाध्याय पृष्ठ- 260

[14] गीतगोविन्द सर्ग 10 श्लोक 7

[15] गीतगोविन्द, सर्ग 10/6

[16] गीतगोविन्द, सर्ग 02/10

Sacramental Existence of Radha-Krishna in Music

Aakanksha tiwari

Research scholar, Vocal department
Faculty of Performing Arts, BHU, Varanasi

As it seems ingenious and pleasing to say about Radha and Krishna but it is equally difficult to describe them in words it is likewise tried to tell about the sweetness of jaggery in words. From reverence period many sants and literature demonstrated them in different ways based on their cognition to make Radha and Krishna vibrant and they tried to innovate the apex of their infinite love. their love was free from Desire and amorousness, such love did never come in existence in earth after them because it is called that they both where the incarnations of Lord Vishnu and deity Lakshmi, so any layman cannot reach them in any form this prudential may be true that Radha and Krishna were the incarnations of Lakshmi and Vishnu because composition move or constant by the pen of writers. With the curiosity to know about the Genesis of Radha krishna I read many text then I found 'Devipuran' and when I read that book I saw there is everything different from what I heard, learnt and read before. What did I read in that text I am telling about with this credence that you may see the generous form of Radha and Krishna love. I thought that according to our ancestors Krishna was the incarnation of Vishnu and her wife Rukmani had been the incarnation of Lakshmi then who was Radha? I found in this book that they both were the roop of Mahadev and Parvati.

शम्भोरिच्छानुसारेण मायापुरुषरूपधृक ।
दुष्टभूभारसंह्त्यै द्वापरान्ते महीतले ।।
शम्भुस्तु जन्म सम्प्राप्य वृषभानु गृहे ततः।
स्त्रीरूपं लीलयोस्थाय राधेत्याख्यामुपगतम।।

To comply Lord Shiva, Devi Parvati took birth as Krishna, son of Vasudev and devaki from his Bhadrakali Roop to destruct the demons at the last of Dwapar era, and Lord Shiva himself took birth as Radha daughter of Brij Bhanu as he wanted to be a dame so we have to assume that the love of Radha and Krishna was other worldly and even though they were born in Dwapar era but their love is beyond the limit of time period and overleap the epicycle of era and even today in Kalyug it interpenetrates and example as true love.

Music is adorable more than amusing from the vadic period. There the communal setup is not more than the veneration of God, probably it is said in Yatidharm Prakaran –

वीणा वादन तत्वज्ञः, श्रुति जाति विषारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन, मोक्षमार्ग नियच्छिति।।

It means if any one Is the cognizant of veena, shruti, jaati and taal then he gain salvation (moksha) from all efforts.

Samveda consider the base text in which authentications of music's presence found.

It has been said by Lord Krishna in Geeta-

वेदानां सामवेदोऽस्मि, देवानामस्मि वासवः।।

Krishna him self was a great musician of Dwapar era, when he played Baansuri (flute) Radha drowned to emotions to hear his music and came to him and had been sensuous with him.

The aim of every art is ecastasy either it is fine arts or music. Radha Krishna exist in every art form and they will be for ever in cogitation of thinker and artist. No any part of Indian classical music is untouched from the context of Radha and Krishna.

From Bhaktikal poets demonstrated Radha- Krishna from the pen of their intellect. One compositions written by Soordas is-

मिट गई अंतरबाधा, खेलौ जाई स्याम संग राधा।
यह सुनो कुँवरी हरश मन कीन्हों, मिट गई अंतरबाधा॥
जननी निरखि चकित रही ठाढी, दम्पति रूप अगाधा।
देखती भाव दुहुनी को सोई जो चित करी अवराधा॥
संग खेलन दोउ झगरन लागे सोभा बढी अगाधा।
मानहु तडित घन इंदु तरनी स्वै, बाल करत रस साधा॥
निरखत विधि भ्रमी भूल पयों तब, मन मन करत समाधा।
सूरदास प्रभु और रच्यो विधि सोच तनद भयो दाधा॥

In Indian classical vocal there are many bandishes based on different ragas made for Radha and Krishna and their immortal love. Compositions wrote by many vagyeykar. Here I am writing some bandishes wrote and composed by pd. Ramashray jha "Ramrang" ji.

Raaga – Devgiri bilaval

Taal- Chaartaal

स्थाई - अधरन मुरली धरन नटवर नागर,
वसुदेव देवकी सुत, यदुपति ,ग्रुदा नन्द ।
अंतरा - दीना नाथ जगत नाथ राधावर लक्ष्मी नाथ,
कमला पति कमल नयन काटो सब जगत फंद ।।

Raag- Gurjari Todi

Taal- Tritaal

स्थाई- अब घर जाने दे याम मोहे
अन्तरा- परी बानि तोहे ढीठ लंगरवा, मग में रसरंग पकरत करवा येहो नन्द दुलारे ।।

Raag- Maalkauns

Taal- Tritaal (Madhya laya)

स्थाई- मन मोहन ब्रज को रसिया, वन कुंजन बजावे बसिया।

अन्तरा- राका रजनी रास रच्यो है, राधा संग सखिया "रामरंग" हराति जिया ।।

Raag- Saarang

Taal- Tritaal (Madhya laya)

स्थाई- मधुर बजाई मुरली में श्याम सलोनें ऐसी तान।
अन्तरा- बाबरी भई धुन सुन सुध बुध न रही तन मन, "रामरंग" रस प्रवीण कान्ह।।

These compositions are in khyal shaili of Indian classical vocal. Like khyal, Radha and Krishna exist in the literature of all styles of singing as thumari, dadra, hori, chaiti, bhajan etc. Along with musical compositions they may not departed from the field of literature too. They both recognized as the synonym of Love and no any composition may get completion without this ornament (Love). So conclusively we may say that the story of Radha-Krishna and their love is divine, immortal and they will be alive and pulsing forever in music and will make it rich.

References-

1. Kalyan, Devipuran [Mahabhagvat]-shaktipithkank, Geeta press Gorakhpur January 2005
2. Abhinav Geetanjali, pd. Ramashrya Jhaa "Ramrang" part-1, Sangeet Sadan publication, 2013
3. Abhinav Geetanjali, pd. Ramashrya Jhaa "Ramrang" part-5, Sangeet Sadan publication, 2012
4. Bhagvat Geeta.

Radha Krishna Love Theme in Sarojini Naidu's Poems

Devendra Prasad

Janta Adarsh Inter College Gaura Bazar, Siddharth Nagar (U.P.)

Love is a very common theme to be presented in English Literature. Nearly every writer of the romantic taste of the English literature since the beginning to the present day has used the love theme for his subject matter. Although the treatment of love theme in the writings of the writers varies according to their own definition and philosophy of love.

There are so many tales of love including physical love, devotional love, spiritual love, platonic love etc. The love between Radha and Krishna is divine love and it is such type of love that can not be expressed through words.

Sarojini Naidu (1879-1949) celebrated the love theme of Radha and Krishna in some of her poems. In Hinduism Radha Krishna are known as the combination of both feminine and masculine aspects of God. ***'Krishna is known as svayam bhagavan in Gaudiya Vaishnavism theology and Radha is acknowledged as the Supreme Goddess and the divine beloved of Krishna'(1).*** There are spiritual love between Radha and Krishna and Radha controls Krishna with her divine love.

Jayadeva wrote a famous poem Gita Govinda in 12th century and since when the divine love between Radha and Krishna became a popular theme for the poets of the Bhakti tradition, but references to the worship of this form of God were prevalent much earlier to this. ***'The Chaitanya school is of the point that the name and identity of the Radha are revealed and concealed in the verse describing this incident in the Bhagvata Purana'(2).*** It is also believed that Radha is not just one cowherd maiden, but origin of all the gopis, and divine personalities that participate in the Rasa Dance. Radha Krishna can not be broken into two % Krishna, the incarnation of Vishnu and His Shakti, Radha.

The Concept of Shakti and Shaktiman :- Shakti and Shaktiman means female and male principle in a god. Each and every god has its partner or Shakti, and without this Shakti, god is sometimes viewed being without essential power. The worship of a pair rather than one personality completes the worship of god. The worship of Ram-Sita, Vishnu-Laxmi and Shankar-Parvati constitute the

worship of a pair rather than one personality and such is the worship of Radha Krishna and it is a very common feature of worship in Hinduism. **'The union of Radha and Krishna indicate the union of Shakti with the Shaktiman, and this view exists well outside of orthodox Vaishnavism or Krishnaism'(3)**.

Before describing the divinity of Radha's love toward Krishna it is necessary to discuss at some length the philosophy of love itself.

What is Love :- Love is the subject of heart not of words. Really love can not be expressed through words, that which can lend itself to description is the most external form of love. The seat of love is the heart. In pure love there is no desire for return. If a lover wants something from his beloved, it can not be called a true love and it corrupts the purity of love. In love there is giving and giving alone. A lover never believes that his is a fully developed love. He always notices his own imperfections and always tries to improve his limitations of his love. True love is that which does not diminish even in any conditions but goes on increasing everyday. This type of pure love can grow only in the heart of devotee in relation to God. There remains no distinction between the lover and the beloved in this state. A Hindi poet says on such type of pure love %

"प्रेम हरि को रूप है, त्यों हरि प्रेम सरूप।
एक होइ द्वै में लसै, ज्यों सूरज अरु धूप।"

The Nature of Radha's Love :- Radha is not a simple cowherd maiden but she is the divine incarnation in the form of a Gopi. Jiva Goswami in his Priti Sandarbha states that each of the Gopies exhibits a different level of intensity of passion, among which Radha's is the greatest. In the love of the Gopis, there is no absence of passion and Radha's love measures the intensity of passion at the greatest level. Of course, that passion has withdrawn itself from all other worldly enchantments, and successfully crossing the barriers of all allurements in the shape of liberation and worldly enjoyment, which is so difficult to surmount, has centered round Sri Krishna alone. And it has been very clearly depicted in the 'Song of Radha' by Sarojini Naidu that in her three different kind of situation how Radha, the supreme Devotee of Lord Krishna, forgets all her purpose and expresses her deep love for her beloved when he cries : - 'Govinda'! 'Govinda'!

Radha always and always thinks about Sri Krishna whether she is at work or at recreation, awake or asleep or in any condition. She has no desires for herself and always wants to see her divine lover in a happy state.

The lord Sri Krishna himself says to Arjuna :-

निजांगमपि या गोप्यों ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न में पार्थ निगूढप्रेमभाजनम्॥

"Gopis think their bodies as instrument of service to me (Sri Krishna). That's why the Gopis take care of their bodies. The lord Sri Krishna says that besides Gopis there is no one who is the object of My secret and profound love." And Sri Radha is nothing else than the embodiment of the bliss Aspect of the all powerful God.

Radha Krishna myth in the poem a part of Indian religious tradition and

culture. Radha is the symbol of the whole nature that is beautiful and attractive. Lord Krishna is the symbol of Purush. Thus this story becomes philosophical because it is the meeting of Prakriti and Purush and we see the manifestation of the whole creation.

This poem is divided into three stanzas. The three stanzas present Radha in three different conditions. In the first stanza Radha goes to Mathura fair to sell her curds, milk etc. in the morning time. It is a very pleasant Shravan morning and soft breeze is blowing and the heifers are lowing softly. The whole atmosphere of the Shravan morning is so beautiful that it enchants the hearts of the reader. The beautiful morning scene made Radha remember and long for her divine beloved Krishna. She is so fascinated by the thought of His beauty that she lose touch with her immediate surroundings and forgets the purpose of her visit to the fair. So instead of calling out to offer her curds for sale she cried out "Govinda"! "Govinda"! Her forgetfulness is noticed by the people around her and they ridicule her for forgetting her purpose of selling the curds, milk etc.

In the second stanza, Radha goes to celebrate the advent of the spring season with all other Gopis during the day. The other Gopis suggests Radha that they should sing and dance and wear saffron clothes to celebrate the spring festival. Radha's friends also desire to pluck the fresh blown buds to adorn their hair and to worship. While her friends are singing and dancing, Radha is lost in the melody of Krishna flute and besides singing and enjoying the company of her friends she chants – 'Govinda' ! 'Govinda' ! In the third and last stanza, Radha is going to Mathura to worship and offering her gifts at the shrine to seek God's protection for herself. It is evening time and the scene is described very beautifully. The river is shining with the light of hundreds of lamps and conch shells are being bloomed. Instead of saying her prayers for invoking God's blessing, she cried out, 'Govinda' ! 'Govinda' !

"O shining once guard us by night and by day" -

And loudly the conch shells were blowing. But my heart was so lost in your worship, beloved, They were worth when I cried without knowing :

'Govinda' ! Govinda !'

'Govinda' ! 'Govinda !'

How brightly the river was flowing!(6)

Such is the intensity of Radha's love and passion that she forgets all things around her. In all the three stanza the poetess very beautifully narrated the mental condition of Radha. What a profound divine and pure love! Radha is the paragon of eternal feminine beauty and charm. She is not a common cowherd maiden but the very spirit of Prakriti and her highest ambition is to become one with divine Lord Krishna, Purush.

There are so many other poems written by Sarojini Naidu in which the poetess beautifully depicts the Radha Krishna myth such as 'The Flute Prayer of Brindaban' from 'The Broken Wing' (1917), 'Ghanshyam' from 'The Feather of Dawn' (1961), 'Village Songs' from 'The Bird of Time' (1912) and 'The Quest' from 'The Feather of Dawn' (1961). In all these poems of Sarojini Naidu there are the sublime depiction and

representation of divine love through the character of Radha and Krishna.

Sarojini Naidu, through her poems on Radha- Krishna love theme gives powerful messages to all of us. We should cultivate in our heart such type of love for the God as it was in the heart of Radha. For cultivating such type of pure love we should give up our desire, anger, ignorance, folly, greed, temptation and all those things that corrupts our love and stops ourselves to follow the path of devotion through which the attainment of God's bliss may be easy to ourselves. The privilege of worshiping God through the sentiment of Radha is not confined to some particular person but it is open to all jivas on the world who have developed dispassion and pure love. Ghanshyam is present even today. If we want to find His bliss, we should mutter His name constantly and lovingly in a disinterested way, obey his commands, conquer the attractions of the world and should weep for His Darsana from the bottom of the heart. Through constant practice the sentiment will grow from within and we will realize Sri Krishna, God the be-all and end-all of our life.

Nowadays, when all of us are loosening past grandeur of our culture and heritage, and the world has become barren in its thought, love, brotherhood and tolerance, it is necessary for all of us to cultivate such type of pure love in ourselves and towards God so that we may revive that grand past of our tradition and divine love and cultivate brotherhood and tolerance in ourselves and find the nectar of love from our Almighty God and this barren world would become productive with the bliss of perpetual love.

Source –

(1,2,3) From Wikipedia, the free encyclopedia.

(4) Gopi Prem by Hanuman Prasad poddar (Page-11)

(5) Gopi Prem by Hanuman Prasad Poddar (Page-14)

(6) Selected Poems of Sarojini Naidu by. Dr. B.P. Asthana

The Love of Radha and Krishna in the Global Context
वैश्विक संदर्भ में राधा और कृष्ण का प्रेम

Seethalakshmi

Philosophical Idea of love

The relationship of Radha and Krishna is the embodiment of love, passion and devotion. Radha's passion for Krishna symbolizes the soul's intense longing and willingness for the ultimate unification with God. It denotes the Union of Jeevatma with Paramatma. This takes place for each and every living being, be it a plant or an animal or human being. The theory of evolution states that every Jeevatma elevates to the level of mankind after evolving into different forms like grass, animals etc. This human birth is the rarest gift by God, as human beings are endowed with the sixth sense, power of Discrimination and can strive for to attain the Ultimate Union with the Almighty. This Jeevatma-Paramatma unification takes place in throughout the world. Radha represents Jeevatma, Krishna represents Paramatma.

Meaning of Krishna and Radha

'Krish' – Bhakti 'na' – slave. One who is in the control of Bhaktas

'Radha' – Moksha or libration

The Goddess praised or worshipped by Krishna is Radha and the Goddess praising or worshipping Krishna is Radhika.

Krishnena Aaradhyata iti Radha

Krishnam samaaraadayati iti sadeti Radhika

Bhava in Bhakti:

In Bhakti Yoga, there are various kinds of Bhava (mental attitudes) viz., Shanta Bhava, Mathurya Bhava, Vaatsalya Bhava, Dasya Bhava, Sakhya Bhava and Sakhi Bhava.

i. Shanta Bhava:

Sannyasi Bhaktas have Santa Bhava. A Bhakta of Santa Bhava type is not emotional. He does not exhibit much emotions. He cannot dance and weep and yet his heart is full of intense devotion. The trees, shrubs, creepers of Brindavan, Cows and Calves of Yamuna were attracted towards Krishna's flute playing. All these emanated from Krishna.

ii. Mathurya Bhava:

In Madhurya Bhava, the Bhaktas entertain the idea of the lover and the beloved. He

regards himself as the wife of Rama or Krishna. In Brindavan and Mathura you will find a large number of Bhaktas with Madhurya Bhava. They dance a lot till they get Murchha Avastha (swoon) and fall down in great exhaustion. Radha, Meera, Andal and Gopis exhibited Mathurya Bhakti towards Krishna. It is also called Prema or Ananya Bhakti.

iii. Vaatsalya Bhava:

In Vatsalya Bhava, the devotee takes Lord Krishna as his son, a boy of ten years. The attractive features of this Bhava is that the devotee gets rid of all fears as he is the father of Krishna and destroys all kinds of selfish motives as he cannot expect anything from his small son. When Krishna was child, Yashoda, Nandagopa, Devaki, Vasudev saw Krishna as a child.

iv. Daasya Bhava:

In Dasya Bhava, the devotee thinks that he is the servant and Lord Krishna or Rama is his master. Sri Hanuman had this Bhava. In Ayodhya the vast majority of persons have this Bhava. Akroora, Vidhura, Narada and Hanuman exhibited Daasya bhava towards Krishna.

v. Sakhya Bhava:

In Sakhya Bhava, the devotee takes Lord Krishna as his friend. This Bhava demands purity, boldness, understanding and courage. Ordinary people will find it difficult to have this Bhava. But when Bhakti develops and matures, the Bhava comes by itself. Arjuna had this Bhava. There is equality in this Bhava between the worshipper and the worshipped. Arjuna and Sudhama saw Krishna as a Friend.

vi. Sakhi Bhava:

In Sakhi Bhava, the devotee thinks that he is the Sakhi (fellowmate) of Sita or Radha.

I would like to explain the philosophical content through great works of legends and Musical compositions emerging from North and South India.

I. Jayadeva

The Gita Govinda,Song of Govinda is a work composed by the 12th-century poet, Jayadeva. It describes the relationship between Krishna and the gopis (female cow herders) of Vrindavana, and in particular one gopi named Radha. úrî râdha — is a maha bhava - 'an ecstatic concept about an exquisite beauty...' and she is the cynosure of this mini-epic gita govindam or Gita Govinda of Jayadeva. Gita Govinda is about how human attains God through Sakhi(Guru). Whatever thing we do must be done only by the advise of Guru. Without Guru's help, the work would not yield its benefits. The Sakhi conveys Radha's love towards Krishna to Krishna and Krishna's love towards Radha to Radha.

The Gita Govinda is organized into twelve chapters. Each chapter is further sub-divided into twenty four divisions called Prabandhas. The prabandhas contain couplets grouped into eights, called Ashtapadis.

The dancing, singing, frolicking and merrymaking of Krishna with this type of unique milkmaids is rasa lila, rasa krida. This dancing in a circle, a ronde dance as we call it, in itself is a particular dance, by the singing of many milkmaids to the fluting of one Krishna. This

happens only in Brindavan, all- holy woodland with thickets of basil plants, conceived only for the congregation of such milkmaids for their communion with Krishna. Few of the citations have been quoted here from Gita Govinda that exhibits the Bhakti Bhava.

There was a conjure atmosphere in Brindavan, very suitable for Rasa Leela. The theme in life is to attain the love of God. Radha came late and Rasa Leela started before she entered. She got angry and asked Krishna as to how Rasa Leela can be performed in her absence. This shows the extent of Libertly, authority and Bhakti Radha has towards Sri Krishna. Radha got angry and went but her mind was towards Sri Krishna as she was always thinking of him. She was angry because she felt Sri Krishna belongs to herself only and always thinks of the moments he was with her. Sakhi goes to Sri Krishna and states that Radha feels of being ignored and she cries thinking of him. This Bhakti touched Krishna's heart and he wanted to passify devotee.

Charana 4 of Ashtapathi 10
vasati vipina-vitane tyajati lalita-dhama|
***iuthati dharai-shayane** bahu vilapati tava nama ||4||*

Though the above text shows that Krishna was depressed with sorrow and Instead of living comfortably at home, he rolls about on the ground, repeatedly calling out the name, 'Radha! Radha!'. The philosophical content is that if the Jeevatma takes a little effort, Paramatma goes beyond in search of jeevatma, the true devotee and fulfils the desires.

The love of Radha with Sri Krishna is very deep; it cannot be learnt from the dasya (servant-lord), vatsalya (child-parent) and other bhavas (emotions). The sakhis (those who express their devotion as a friend) alone are qualified for it.

Jayadeva came to one point in his meditation where Radha had become angry at Krishna and stopped talking to Him. Jayadeva saw Krishna approach Radha and touch her feet and beg forgiveness from her. But he felt that he could not write this down, that it would be inappropriate to show Krishna, God Himself, touching the feet of Radha (Devotee) and begging her forgiveness.

So he decided to take a break from writing. It was almost lunch time, so he went down to the river to take his midday bath and do his midday rituals. When he returned home and asked for lunch his wife was quite surprised—she told him that she had just fed him lunch, and that after eating he had gone back to writing.

Very bewildered to hear this, Jayadeva went over to his desk and saw that the verse he had been contemplating was written there. Then he realized that Krishna had personally come disguised as Jayadeva and blessed his home by eating there and personally writing the verse down. He indeed said his wife Padmavathy as to how blessed she was to meet and serve him. This is explained by the below Ashtapathi.

Charana 7 of Ashtapathi 19

smara-garala-ghadanam, mama shirasi mandanam
dehi pada-pallavam udaram |
jvalati mayi daruno madana-kadananalo haratu tad upahita-vikaram, priye charushile||7||

This shows that Krishna is not only subservient to the love of His devotees but He wants to make it known to everyone that He is always controlled by the love of His devotees, be it Radha or Jayadeva or Padmavathi.

When we consider this conception of God it becomes clear that there is no contradiction in seeing that God is subservient to His own divine loving nature. This is a philosophical truth and it is expressed practically in His many pastimes of love with His pure devotees.

II. Chaitanya Mahaprabhu, 18 February 1486 – 14 June 1534

Chaitanya Mahaprabhu was a Bengali spiritual teacher and was considered as an incarnation of Lord Krishna. Lord Chaitanya not only preached the Srimad-Bhagavatam but propagated the teachings of the Bhagavad Gita and Gita Govinda as well in the most practical way.

He spread the Yuga-dharma as the practice for attainment of pure love for Radha-Krishna. That process is Harinam-Sankirtan, or the congregational chanting of the Holy Names of Krishna "Hare Krishna Hare Krishna Krishna Krishna Hare Hare, Hare Rama Hare Rama Rama Rama Hare Hare".

Compositions from South India on Radha Krishna

III. Narayana Tirthar [1650 – 1745]

We have works by Narayana Tirthar who completed the magnum opus, 'Sri Krishna Lila Tarangini'.

IV. Oottukkadu Venkata Kavi [1700-1765]

There are very few Indian composers who have composed on Radha. Apart from Jayadeva, Venkata Kavi seems to be have been the South Indian composer who has composed specific pieces dedicated to Radha. Jayadeva also seems to have deeply influenced Venkata Kavi going by the style and usage of the Sanskrit vocabulary in some of his pieces. An interesting feature to be noted in some of these compositions is that the poet does not disclose her name and only refers to her through colourful descriptions and adjectives. Maadhava hrdi khelini (kalyani) is one of the Saptaratnas which teases our brain by addressing Radha through various adjectives such as maadhava hrdi khelini (one who plays with Madhava's heart) and veetopamaana venu gaana naada sulaya rasike rasaalaye (one who enjoys the enjoyable music, melody and rhythm of Krshna's flute). The poet reveals Radha's name only in the charanam – raadhe rasayuta raasa vilaase (one who is the manifestation of the best of the raasa (the dance of Krshna with the gopis).

V. G N Balasubramaniam

Gudalur Narayanaswamy Balasubramaniam (6 Jan 1910 – 1 May 1965), popularly known as GNB, was a vocalist in the Carnatic tradition.

He was also the first major Carnatic musician to moot the idea of Indian music as a single entity rather than separating it into Hindustani & Carnatic systems. He emphasized the richness of the composition with expansive improvisation passages.

One of his composition has been quoted for example:

Pallavi:

Raadhaa sameta krsna (jaya)

Anupallavi:

Nandakumaara navanita cora brndaavana gOvinda muraarE

Caranam:

Gopi manohara gokula vaasa
Shobita murali gaana vilaasa
sundara manmata koti prakaasha

VI. H H Parama Pujiya Sri Sri Ganapati Sachchidananda Swamiji

Sri Swamiji, as Sathyanarayana was born on May 26, 1942 in Medakadu, a Serene sleepy village, about 90 KM from Bangalore. Sri Swamiji is a gifted composer and accomplished singer of scintillating Bhajans which is acting as a tonic on starving and suffering soul, bringing peace to the mind. Swamiji has composed lots of Bhajans on various deities and concepts such as Ganapathi Bhajans, Shiva Bhajans, Devi Bhajans, Satguru Bhajans, Vishnu Bhajans, Gita Saaram, Sri Krishna Jaya Bhajans, etc.,

i. Kriti – 1:

i. Kriti – 1:

Pallavi :

Rādhā prāṇa vēṇu adhīna

Vēṇu prāṇa kṛṣṇa adhīna

Caraṇaṁ :

Kṛṣṇa prāṇa viśva adhīna

Viśva prāṇa śakti adhīna...1

Śakti prāṇa śakti adhīna

Māyā prāṇa brahma adhīna...2

Brahmaprāṇa vidhi adhīna

Vidhi prāṇa nāda adhīna...3

Nādaprāṇa bhakti adhīna

Bhakti prāṇa saccidānanda ...4

ii. Torabandha Kriti

This is a special Torabandha Kriti composed by H H Swamiji. Composing of Torabandha Kritis are very rare.

Pallavi :

Śrīharē kṛṣṇa rādhā kṛṣṇa jaya jaya jaganmōhanā

Hansa naḍigeyava kansamardana harivanśa rakṣakā

Caraṇaṁ :

Rēbha mōkṣakā sakhya dharmakā śiṣṭa pālakā

Kṛpāsāgarā bṛndāramaṇa bṛndāvana lōlā ...1

Snāta niṣṭhanē dīna vatsalā rukminī lōlā

Rājīvākṣanē ramyamōhanā ramaṇīya lōlā ...2

Dānavāntaka dhruva rakṣaka durita dūrakā

Kṛṣṇa kṛṣṇa jaya kṛṣṇa kṛṣṇa jaya kṛṣṇa kṛṣṇa jaya...3

The beauty of the above Kriti is as follows : The Kriti is like a garland with the Charana continuing with the aksharas of Pallavi.The Pallavi begins with the line "śrīhar kṛṣṇa rādhā kṛṣṇa"

Let us split the subsequent aksharas in Pallavi and Observe how Charana has been obtained.Splitting up of Aksharas of Pallavi:

Śrī + ha + rē + kṛ + ṣṇa + rā + dhā + kṛṣṇa

The Pallavi starts with the akshara – 'śrī'.The second line of the pallavi starts with the akshara 'Ha' – 'hansa..."The first line of the 1st Charana starts with the akshara 'Re' – 'rēbha mōkṣakā The Second line of the 1st Charana starts with the akshara 'kṛ' – 'kṛpāsāgarā ..." The first line of the 2nd Charana starts with the akshara 'ṣṇa'–'sṇāta niṣṭhanē..." The second line of the 2nd Charana starts with the akshara râ – 'rājīvākṣanē..." The first line of the 3rd Charana starts with the akshara dhā–'dānavāntaka.." The second line of the 3rd Charana starts with the akshara kṛṣṇa – 'kṛṣṇa kṛṣṇa jaya kṛṣṇa kṛṣṇa..." Thus we observe the song as a garland following the aksharas of Pallavi.

ब्यदस्तमहंजपवदंस`पदहपदह व`जीमेम त्वकीं ज्ञतपींदं ठींरंदे पदबनसबंजमे ठीजप ठींअंण

This is similar to Gayathri Ramayana.

Valmiki Ramayana contains 24000 slokas divided into 7 Kandas, namely, Balakanda, Ayodhya Kanda, Aranya Kanda, Kishkindha kanda, Sundara kanda, Yuddha kanda and Uttara Kanda. The first letter of the first sloka in each group of 1000 slokas is taken from the Gayatri Mahamantra (given below) in the same sequence namely, त, स, वि, तु, व etc.,

तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गोदेवस्य धीमहि
धियोयोनः प्रचोदयात्

The collection of these slokas constitutes the Gayatri Ramayana.

Each sloka is identified below by the Kanda (1 for Balakanda, 2 for Ayodhya Kanda etc),

1. *तपस्स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।*
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम्॥
(1.1.1)

2. *स हत्वा राक्षसान्सर्वान् यज्ञघ्नान् रघुनन्दनः।*
ऋषिभिः पूजितस्सम्यक् यथेन्द्रो विजयी पुरा॥
(1.30.23)

3. *विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम्।*
वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत्॥
(1.67.12)

4. *तुष्टावास्य तदा वंशं प्रविश्च च विशांपतेः।*
शयनीयं नरेन्द्रस्य तदासाद्य व्यतिष्टत॥
(2.15.20)

Reference:

Sri GitaGovinda Rasamrutam by Mumbai Ramakrishnan

Radha Krisha Related Dhamali a folk Haridity of Undi Vided Bengal

Sanchari Choudhury

P.G. Dept. of Music
T.M. Bhagalpur University, Bhagalpur

It is fact that the names of Radha Krishna are known to us as separate idol but they are practically undivided devine power and eternal soul of love. The utterance of both the names jointly touch the hearts, feelings and give us limitless heavenly pleasures.

So the feelings of existence of that floating remains in the hearts of all Hindu communities in the shape of pleasure and sorrow.

Common people, Poets, Bawls, Fakirs and others always feel and express it in their activities and deeds. Radha-Krishna unity and separation are acted in daily lives of human society.

It is also noticed that the different types of Floks are sung in different occasion in connection with their devine love.

We find the vastness of 'Floks' in undivided Bengal which are full of varities and charms.

The fruitfulness of Folks become successful when it is composed and sung by rustic people on the basis of their pleasure and sorrow. The melody of songs touches the hearts of the hearers and continues in their mind, century after century.

Folks are composed mostly in their own colloquial language itmay be called sub-language according to geographical area, customs and cultures.

In this connection we can divide Bengal in three parts, considering their categories as follows:-

(1) Rarh Bhumi
(2) Bongal Bhumi
and
(3) Borendra Bhumi.

(1) Rarh Bhumi means western part of Bengal likes Murshidabad, Birbhum, Burdhawan, Hoogly, Howrah, Bankura, Mednapore. The main Folk songs of the above area are 'Jhumur', 'Bawl', 'Bhadu' and 'Tushu'.

(2) The Bongal Bhumi consists of the following places such as Khulna, Jashore, Faridpur, Dhaka, Tripura, Maimonsing, Nowakhali, Chattagram and the eastern part of the undivided Bengal. In Bongal Bhumi the Folk songs are 'Vatially', 'Jari', 'Shari', 'Dhamile' etc.

(3) Borendra Bhumi means the northern side of the Ganges like Rajshahi, Bagura, Malda, Dinajpur and some parts of Asom. The Folk songs of the above area are called 'Bhawaia', 'Chotka', 'Gambhira', 'Alkap'.

But some parts of Rarh Bhumi and Bongal Bhumi are not included in the perview of 'Upo-Vasa'(Rustic language). So it is beyond the matter of discussion here. As such this part is considered separately which is considered as 'Madhya-Bhumi' or 'Bhobya-Anchal'.

(4) Kolkata, Both parts of 24 pargonas, Nadia and western part of river Bhagirathi and some part of the district of Khulna and Jashore are called 'Madhya-Bhumi' or 'Bhobya-Anchal'. In those area the songs are 'Ramprosadi' and 'Lalon-Fakir'.

(5) There is another part which is called 'Nimnya-Bhumi', which covers southern part of the district Mednapore and Sundarban Anchal. The Folk songs of the above area are 'Dakshin Roy' and 'Bona Bibi'.

Besides the above kind of Folk songs, there are many sorts of Folk songs which are running in the human society.

Moreover the eternal love of Radha-Krishna are being sung in large part of Indian Musical World. Whether it may be in the shape of classical music, light music and in Folks. Such as the categories of songs sung in Bongile Bhumi are called 'Dhamile'.

It is also observed in the middle age of the Bengal Literature Dhamile songs are used in the sense of jokes. It is noticed in the books of Shri Krishna Kirtan, Sanjoy Mahabharat and Sati Moina Moti that some section of people think that the word Dhamile has come from Sanskrit Language 'Dhabon' which means to run fast.

The subject matter of Dhamile mostly are on the basis of Bhagbat which we observed in the Lowkik Rup in Krishnalila.

Generally the Dhamile Folks are sung in the religious social festivals, such as Annoprason, Uponayans and Marriage Ceremonies. It also used in the Gopini Kirtan, Puspadol, Suryabrata and at the time of pulling boats etc. The subject matter of the Folk songs are changed with related customs of the society. Almost in all the religions occasions the subject matter of the Folk songs depends on Lowkik Rup in Krishnalila.

Dhamail Song

Jamuna Puline Shyam nagar tribhanga
Emon modhur muroli dhwani dahi techhe anga
Ay lalite ay bishokhe
Shyamke ene de
Jay jadi rair kulman
Pai jodi tare
Amar man hoiyachhe uralphakhi
Prane prem taranga.

The high level leaders of the society at that time did not allow this type of culture of Dhamile rather they tried to stop dance and songs of Dhamile in the society. They have divided the theme of Dhamile into two categories out of which one is Shukla and another is Krishna.

Performance of Dhamile ceremonies are the theme of pleasure. There should

not be fixed dates for the ceremony. It may continue month after month. Suppose the date of marriage of a girl it settled today, the pleasure of Dhamile will be started from that day and continue till the date of marriage ceremony is over. There is no restriction to join the ceremony irrespective of all categories of female members-she may be married, unmarried or widow, ignoring social status. There are two types of Dhamiles (1) Bhore Dhamile and (2) Jal Dhamile.

(1) Bhore Dhamile is that Dhamile which is sung at dawn when the newly married couples will be at 'Basarghar' and at the time of bringing water from the river and in the occasion of first food ceremony of the babies. As this type of songs is sung at dawn so there may not be any excitement and as the love and separation of Radha Krishna are fully present here, so it is called Bhore Dhamile.

" Shoke nisi gaiya jay
E bujhi sagani dake darun kukilia"

(2) Jal Dhamile is also sung when they go to river and come back with water and placed the pots on a surface place inside the house. As the Jal Dhamile is related to Radha Krishna, automatically the shape of the flute appears in the perview of us. So this type of Dhamile is also called Bansi song. After all the main subject matter of this song is-separation of love.

In the rustic life of the girls they can not express their love and sorrow openly. They try to satisfy themselves by singing this type of Dhamile songs.

In Jal Dhamile only filling of water is heard—

"Jale Giyachhilam Soi
Kala kajoler pakhi
Daikhya ailam koi"

Though the Dhamile is based on Radha Krishna's related matters yet it is found in cases of all social function, such as in widowremarriage, journey by train, aeroplane and steamer, even in malaria fever and in social revolution also. In Folk songs it is found some artificial songs have been placed in the place of original Folk by the powerful people of the upper level society which are not related to the original theme of Folk rather it is artificial mostly. Moreover the lower class of people of the society heve been maintaining the originality of the Folks. It is sad to say that the original taste of the Dhamile Folk is decreasing gradually day by day.

Love compatibility of Radha and Krishna: An Astrological Interpretation

Matra Aashirwad Jyotish Sansthan

1) Love and Compatibility: What makes a "perfect" relationship? First and foremost there has to be *love*. What is love? It means caring more for another person than I do for myself. The "purer" or "truer" the love the more extreme that dynamic becomes.

Pure and true love is non-existent in the material world. How can I say that? Because all of us are "hardwired" with survival instincts on physical, practical and emotional levels. This hardwiring results from our attachments to the illusions of who we think we are and are not. Being hardwired with a certain unavoidable amount of selfish instinct, it is not possible to experience true and pure love in a material relationship. Alright, then. What makes a perfect material relationship?

Again, love, but this time normal love; relative love. Relative to what? Relative to our *compatibility.*

When we meet a person who is extremely compatible with us, we "fall in love." Why? Because we have complimentary desires, conceptions, feelings and practical situations. When we meet a person whose desires compliment our own we fall in love as a result of compatibility.

A "perfect" relationship in this world is one in which the two partners have a great deal of compatibility in all four areas: desires, conceptions, feelings and practical situations.

(A) Astrology of compatibility: Venus is the planet of desire[1]. The Sun is the planet of conceptions[2]. The Moon is the planet of feelings[3]. The Ascendant is the point of practical situations. These are the four most important planets to asses for compatibility, particularly compatibility of a romantic flavor.

When two people meet who have Venus, the Sun, the Moon, and the Ascendant in "compatible" astrological configurations they feel they have met "the one" for them, and fall deeply in love. When two people meet with significant incompatibility in these four areas they feel spontaneous repulsion and disgust for one another. Real problems happen in between these two extremes.[4]

In between is where it gets really messy; when you meet a person who really is great for you on one level but terrible for you on another. For example compatible Venus may make you have undeniable mutual attraction, yet incompatible Moons will make that mutual attraction give rise mostly to emotional grief.

The value of astrologically figuring out a relationship before tying yourheart-strings around someone else's incompatibilities cannot be underestimated.

2) Rasa of divine couple: Let's get back to talking about the perfect relationship! I mentioned that it is not possible in the material world. It is possible in the spiritual world. The perfect relationship of absolutely pure love exists in the Divine Couple: the Goddess of Devotion, Sri Radha, and the God of Love, Sri Krishna.

Now and then the divine couple manifests their spiritual relationship in the material world so we can get our priorities straight and set our sights on attaining enlightenment. This happens on time scales of hundreds of thousands of years, mind you. So saying that it occurred roughly 5,000 years ago is really saying it was quite a recent event.

Her connection to Krishna is of two types: *svakiya-rasa* (married relationship) and *parakiya-rasa* (a relationship signified with eternal mental "love"). The Gaudiya tradition focuses upon *parakiya-rasa* as the. Highest form of love, wherein Radha and Krishna share thoughts even through separation. The love the gopis feel for Krishna is also described in this esoteric manner as the highest platform of spontaneous love of God, and not of a sexual nature[5].

Proponents of the Gaudiya and Nimbarka schools of Vaishnavism give the highly esoteric nature of Radha's relationship to Krishna as the reason why her story is not mentioned in detail in the other Puranic texts.[6]

3) Birth Chart of Krishna: Krishna's Ascendant is Taurus and his Moon is also here and at exalted potency. Taurus is the feminine sign of Venus. Thus Krishna had exalted beauty and femininity is all aspects of his body and mind. In fact he is known as "Bhagawan" - which means that he is the Supreme Attractive Person. The impact of beautiful and sensuous Venus on Krishna's body and mind is extremely amplified by powerful Ketu.

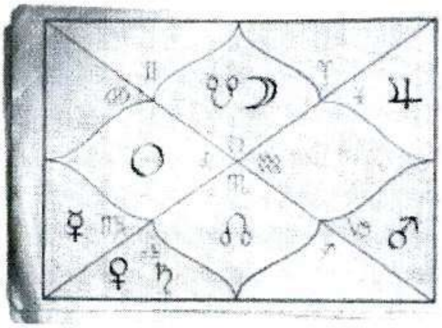

Ascendant Chart of shree krishna

Krishna's Ascendant Lord Venus is with Saturn in the 6th House of Enemies and Krishna always had troubles from enemies. But he vanquished them all one by one, more from his intellect than from brute force. This is shown from intelligent and quick moving Mercury in the skillful 5th House.[7]

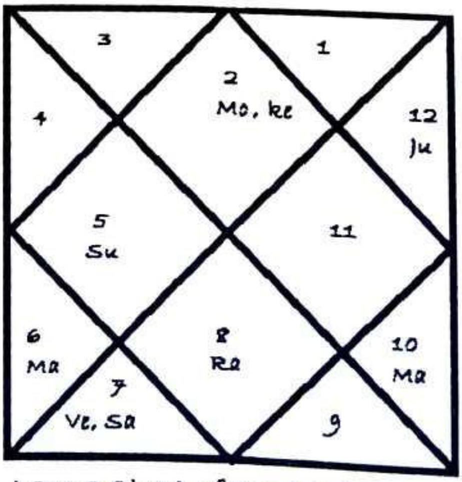

Lagna Chart of Lord Krishna

Krishna's love affairs are nothing short of scandalous in the highest degree to the untrained eye with conventional moral standards. Just see scandalous and misfit Rahu sits powerfully in the 7th House of Krishna's romance. Krishna had hundreds and thousands of wives another effect of the supercharged amplifier Rahu in this house of marriage and romance.[8]

Mars is exalted in Krishna's 9th House of Morality. Thus although he is well known for his playful romantic escapades, he is equally well known as the speaker of the moral masterpiece, Bhagavad-Gita and a king who upheld justice and morality in his society.[9]

Jupiter in the 11th House of Pleasure made Krishna's pleasures and friends to be the highest and most excellent imaginable. Sun in the 4th House Aries gives Krishna exalted artistic skills and mastery over the emotions and affections of others.[10]

4) About Radha the Goddess of Devotion and Birth Chart of Sri Radha: In (IAST: *Râdhâ,*), also called *Radhika*, *Radharani* and *Radhikarani*, is a Hindu goddess who is almost always depicted alongside krishna and features prominently within the theology of today's Vallabha and Gaudiya Vaishnava sects, which regards Radha as the original *Goddess* or Shakti. Radha is also the principal god of worship in the Nimbarka Sampradaya, as Nimbarka, the founder of the tradition, declared that Radha and Krishna together constitute the absolute truth.[11] Radha is the most important gopi in Raas (Special kind of dance) with Lord Krishna. Radha is often referred to as **Râdhârânî** or "Radhika" in speech, prefixed with the respectful term 'Srimati' by devout followers. [12,13,14] Gaudiya Vaishnavas, believe that in fact Radha is the original source from whom Goddess Lakshmi emanated[15]. We know from the same line of enlightened authority that Sri Radha appears exactly one "paksha" after Krishna. That is, she appears in exactly the same phase of the Moon, except Krishna appears when it is waning and she appears while it is waxing. We also know that Krishna's chart results from a midnight birth and Radha's chart results from a midday birth.

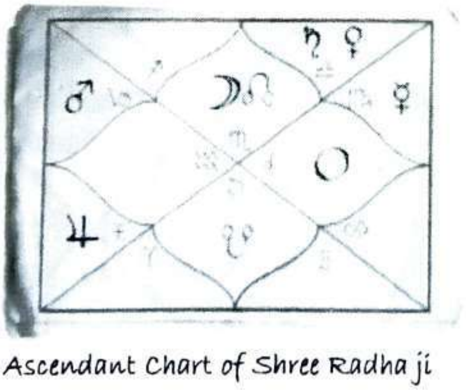

Ascendant Chart of Shree Radha ji

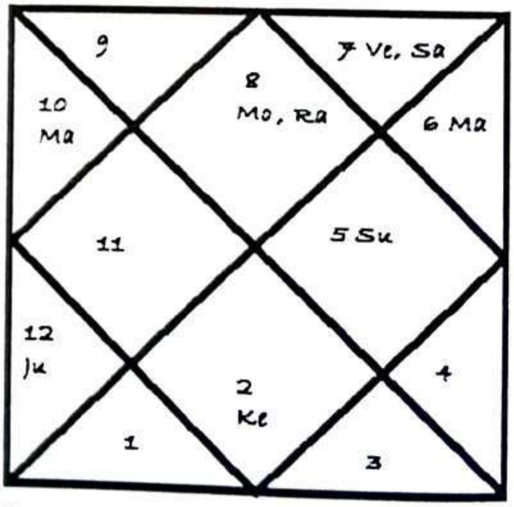

Lagna Chart of Radha Rani

Accepting these facts from enlightened souls, to get Sri Radha's chart all we have to do is progress Krishna's chart about 2 weeks. However, take note

that Krishna's chart shows the two fast planets, Venus and Mercury placed near their absolute greatest distance from the Sun. Therefore they would be moving very slowly and perhaps not at all during the two weeks between Krishna's birth and Radha's. The Sun would have traveled 15 degrees between Krishna's birth and Radha's. The other planets would not have moved much at all. The Moon would be exactly opposite, in Anuradha nakshatra, which is a portion of Scorpio. Thus we can calculate Sri Radha's chart.[16]

5) General rules of Astrological Compatibility: To do compatibility astrology I first need "birth charts" for both people. A birth chart is a map of which planets were in which signs at the time a person was born. Then I evaluate the distance from a specific planet in chart of the first partner to the same planet in the chart of the second partner. For example-If both partners have Venus in Leo, I say that their Venus's are in the same sign. If one partner has the Sun in Virgo while the other has the Sun in Leo, these Suns are one sign away from each other. If one partner has the Moon in Scorpio, and the other has the Moon in Capricorn, their Moons are 3 signs apart. If one has the Ascendant in Taurus and the other in Scorpio their Ascendants are "opposite."[17]

Based on these distances then make basic, fundamental interpretations:

Opposite – When planets are in opposite signs, for example Virgo and Pisces, you have the strongest, most compelling type of compatibility. It is a compatibility brought on by each partner providing what the other lacks and needs. It is a volatile, passionate, strong compatibility.[18]

Same – When planets are in the same sign, you get the next strongest compatibility, brought on by the partners sharing things in common. It is not as exciting and dynamic as opposites, but is still strong and good.[19]

Trine – If the planets are four signs apart they can be called "trine." For example, Leo is trine to Sagittarius and Aries. This is a compatible situation brought about by each partner having a balance of sameness and difference on a given topic. Couples with trine compatibility will quietly, mildly but confidently understand and complement one another.[20]

Sextile – If the planets are 2 signs apart they are basically "sextile." This is the least dramatic or desirable of the compatible situations. Couples with sextile compatibility do understand and complement each other, but do so very passively. For example, Aquarius is sextile to Aries and Sagittarius.[21]

Now, the types of incompatibility:

Neighbors – If the planets you are examining are just 1 sign apart, they are "neighbors." For example Gemini and Aries are neighbors of Taurus. This is the least dramatic or undesirable of the incompatible situations. It causes couples to passively and mildly misunderstand and interfere with one another on the given subject.[22]

Distance – If the planets are 5 signs apart, they are "distant." For example Libra and Sagittarius are distant from Taurus. This is an incompatible situation which causes the couple to cancel out

their energies and interfere with one another.

Clashing Square – If the planets are 3 signs away from one another they are basically "square." For example Aries and Libra are square to Capricorn. This is the most incompatible situation. It cause the couple to have mutually strong attitudes towards the given subject, but strong attitudes that clash. so if we have a couple with opposite Ascendants (one in Taurus the other in Scorpio), we know they have a very dynamic and attractive compatibility in practical ways. That same couple has Venus in the same sign, so we know they understand one another's desires and share similar wants and goals in life. These two people, however, have the Sun 1 sign away from each other – which means that when it comes to their conceptions about themselves, their ego, their identity, their authority – on those topics they will run into some mild misunderstandings and interference. Finally we see that their Moon's are sextile, so we know that their emotions and emotional outlook are not incompatible with one another. Overall it appears to be a

Fundamentally good relationship to pursue.[23]

Omitted Details- Now you know the basics of how relationship astrology works. Let me stress that these are the basics by pointing to some of the missing details.

It's not only important how my Venus interacts with your Venus, for example, it is also important how my Venus interacts with your Sun, Moon and Ascendant. The same basic rules of interpretation apply. If your Ascendant is opposite my Venus, for example, we will have compelling compatibility in practical desires. In this manner, an astrologer interprets all the primary nuances of a relationship.

Finally, *degrees* are crucial. I have a mathematical formula to work it all out, which I will kind of guard like a "trade secret." But basically the closer the planets are together by degree, the stronger the effect of their particular type of compatibility or incompatibility.

6) Love and Relationship Compatibility of Radha and Krishna: Their Ascendants are opposite. Their Moons are opposite. Their Venus is the same and their Suns are the same! Their fundamental compatibility is made of the best ingredients sameness and opposites.

You might argue that it would be better if all four planets were opposite. But the alignment of opposites has a flaw in that it is too volatile at times. You might than argue that all four planets should be in the same signs. But the alignment of sameness has a flaw of familiarity and boredom. So the divine couple has the perfect *balance* of opposites and same – getting the benefits of both and counteracting the flaws of either.

Not just the four basic relationship planets – *everything* in their chart is either opposite or the same, from perspective of signs *or* houses. Thus they have an absolute balance of the two best forms of compatibility – opposites attracting and sameness enduring. [24]

If everything is *too* "perfect," it detracts from the actual perfection because everything becomes too easy. Therefore you see some small "flaws" in the compatibility – particularly in that relationship of their Venus' to their Ascendants. This means that a lot of practical considerations about their lives

stood in the way of their being able to freely meet all the time and fulfill their mutual desires. This is the catalyst that keeps their relationship always relish able and exciting.

Relationships are best when they face obstacles that can be surmounted, *small* flaws. If a relationship is too easy it gets boring and flounders like an overwatered plant. If it is too difficult, it withers and dies like an unwatered plant. The small flaws of practical obstacles to their being able to meet and express their mutual love serve to make the flowering vine of their divine love an ever fresh, exciting, enjoyable, thrilling eternal relationship.[25]

Contemplating this mantra I am delighted to will find abundant beautiful symmetries which perfectly express the realities of the relationship of the Divine Couple, some of which I have just tried to express in evaluating their astrological compatibility. All the balance and symmetry in their relationship reflects in their mantra.[26]

I particularly notice that sometimes "hare" is with "krishna" while sometimes they are separate. This overall astounding beauty and symmetry of the mantra reflects wondrously balanced beauty of their relationship compatibility – while the small balances of union and separation reflect the small apparent "flaws" which serve to heighten and excited the relationship, making it eternally new and enticing.

Reference:

1. Saravali/ Chapter 4/ skolka 26/ Pg. 21
2. Saravali/ Chapter 4/ skolka 21/ Pg. 20
3. Saravali/ Chapter 4/ skolka 21/ Pg. 20
4. Jyorik: Vedang Jyotish ki Prasangikta/ Dr. Pt. Jitendra Vyas/ Articles/ 2012
5. Swami B.G. Narasingha. "Sri Gayatri Mantrartha Dipika - Illuminations on the Essential Meaning of Gayatri | Sri Narasingha Chaitanya Ashram". Gosai.com. Retrieved 2010-11-13.
6. Swami Tripurari , "Sri Radha: Indirectly the Absolute", *Sanga*, 1999.
7. Manasagri/ Chapter- Grahaphaladhyay/ skolka 1,6, 6 / Pg. 97,106,108
8. Manasagri/ Chapter- Grahaphaladhyay/ skolka 7 / Pg.110
9. Manasagri/ Chapter- Grahaphaladhyay/ skolka 9 / Pg.101
10. Manasagri/ Chapter- Grahaphaladhyay/ skolka 6, 11 / Pg. 93, 105
11. H.Wilson, 'English Translation', Motilal Banarsidas Publishers, 1990 reprint.
12. Encyclopaedia of Hindu gods and goddesses By Suresh Chandra http://books.google.co.in/books/goddess+lakshmi
13. *"Radha - Goddess Radha, Sri Radharani, Radha-Krishna, Radhika". Festivalsinindia.net. Retrieved 2010-11-13.*
14. Radha in Hinduism, the favourite mistress of Krishna. In devotional religion she represents the longing of the human soul for God: The Oxford Dictionary of Phrase and Fable, 2006, by ELIZABETH KNOWLES
15. Swami B.G. Narasingha. "Sri Gayatri Mantrartha Dipika - Illuminations on the Essential Meaning of Gayatri | Sri Narasingha Chaitanya Ashram". Gosai.com. Retrieved2010-11-13.
16. StriJatkam/ Dr. Pt. Jitendra Vyas/ Sloka 8,10,13 / Pg.128,137,138
17. Brihad Parashar Horashastra/ Sloka 16, 28/ Pg. 125, 127
18. Sarv Sangrah/ Sloka 67/ Pg. 45
19. Saravali/ Chapter 3/ Sloka 34/ Pg. 13
20. Jyotish tatva Prakash / Chapter 4/ Sloka 8 / Pg. 142
21. Jyotish tatva Prakash / Chapter 4/ Sloka 10 / Pg. 142
22. Brihad Parashar Horashastra/ Chapter 2 / Sloka 3/ Pg. 6
23. Jyotish tatva Prakash / Chapter 4/ Sloka 7 / Pg. 142
24. Bhrigusutra- An ancient asset of India/ Dr. Pt. Jitendra Vyas / 1-9 Grahaphaladhyay
24. Vedang Jyotisham / Dr. Pt. Jitendra Vyas / Collection of research papers. /2015
24. Grah Vigyan our Aadhunik Samsyaein: Karan evam Niwaran / Dr. Pt. Jitendra Vyas / Melapak/ 2014

Godly love of radha-Krishna

Nilesh Chandra Trivedy

"Teacher"

Krishna youthful dalliance with the "Gopies" are interpreted as Symb olic of the loving interplay between God and the human soul. Radha utterly rapturous love for Krishna and their relationship is often interpreted as the guest for union with the divine. This kind of love is of the highest form of devotion in vaishnavism, and is Symbolically represented as the bond between the wife and husband or beloved and lover. Radha daughter of Vrishnavanu was the mistress of Krishna during the period of his life when he lived among the cowherds of Vrindavan. Since childhood they were close to each other they played, they dance, they fought, they grew up together and wanted to be together forever, but the world pulled them apart. He departed to Safeguard the virtues of truth, and she waited for him. Radha and Krishna were one soul. They were soul mates. They thought about each other every moment of their lives that they became one being in two bodies, Because Radha love was so pure, she achieved god status. Whenever she hear the flute play by the Krishna, she used to dance. Radha and Krishna are there invisible enjoying themselves too. They are in heaven together now as one entity. You can't say Krishna without saying Radha, and you cannot say Radha without thinking of Krishna. That is how strong their love is. If any picture you see of Krishna, it is not complete without Radha. Their love is an undying flame that will continue to burn just so beautiful.

I decided to do the Radha Krishna love story due to its unconventional aspect. The story is purely about love which is true. They did not get married and were not with each other at every moment of their lives even though physically they were not connected. Mentally they were one.

The whole universe material and spiritual is the creation of Shri Radha Krishna. Shri Radha is the presiding goddess of Shri Krishna. The Paramatma-Supreme Lord is subservient to her. In her absence Krishna does not exist. Shri Krishna is not only the ultimate object of all love but also is the topmost enjoyer of all loving relationship, therefore in the dynamic and expanding form of Krishna. He has ultimated desires to enjoying spiritual loving relationship or pastimes known as Leela. The lotus-eyed, dark skinned Krishna is the complete and perfect man of Indian mythological traditions. That makes Krishna a major non Aryan god in the Hindu pantheon.

He was the eight incarnation of Vishnu, the preserver of Universe.

The word Radha means the greatest worshiper of Krishna no other Gopi in Vrindavana has such a significant name as Shri Radha of course, all the Braja gopies love and give pleasure to Krishna. The relationship between Radha and Krishna is the example of the highest and present love, an indissoluble union of the highest intermingling and completion. It is also a love expressed through music. Radha is married or involve with someone else, and still cannot resist Krishna's musical call in their love dalliance with him who was the master in all the sixty four arts of love. This is the tie that binds him and Radha. Erotic musical passion over rides the social and female responsibilities herself to her adulterous, but passionate affair with Krishna.

The original expression is Radha, together, Radha and Krishna enjoy eternal pastimes of transcendental love. A real love exists between Radha and Krishna. Real love is transcendental and spiritual. We have to become spiritual love and give up false love and beauty, which are only skin- deep. Krishna consciousness means to be serious and determined to transcend the material attraction between man and women in order to become attracted to the lotus feet of Radha and Krishna.

The Role of Music in the love of Radha and Krishna

Sarada Prasan Das

Research scholar
Department of Instrumental music
Faculty of performing arts
Banaras Hindu University, Varanasi

Radha Krishna are collectively known within Hinduism as the combination of both the feminine as well as the masculine aspects of God. Krishna is often referred as svayam bhagavan in Gaudiya Vaishnavism theology and Radha is Krishna's supreme beloved. With Krishna, Radha is acknowledged as the Supreme Goddess, for it is said that she controls Krishna with her love It is believed that Krishna enchants the world, but Radha "enchants even Him. Therefore She is the supreme goddess of all. Radha Krishna"

While there are much earlier references to the worship of this form of God, it is since Jayadeva wrote a famous poem Gita Govinda in the twelfth century of the Common Era, that the topic of the spiritual love affair between the divine Krishna and his devotee Radha, became a theme celebrated throughout India. It is believed that Krishna has left the circle of the rasa dance to search for Radha. The Chaitanya school believes that the name and identity of Radha are both revealed and concealed in the verse describing this incident in Bhagavata Purana. It is also believed that Radha is not just one cowherd maiden, but is the origin of all the gopis, or divine personalities that participate in the rasa dance.

RadhaKrishna cannot be broken into two – Krishna the eighth incarnation (Avatar) of Vishnu., and his shakti Radha.Such was the love of Radha towards Krishna that they became one. Krishna in Vrindavana is sometimes depicted with Radha standing on his left, on whose bosom sits Lakshmi.

The Radha-Krishna amour is a love legend of all times. It's indeed hard to miss the many legends and paintings illustrating Krishna's love affairs, of which the Radha-Krishna affair is the most memorable. Krishna's relationship with Radha, his favorite among the 'gopis' (cow-herding maidens), has served as a model for male and female love in a variety of art forms, and since the sixteenth century appears prominently as a motif in North Indian paintings.

The allegorical love of Radha has found expression in some great Bengali

poetical works of Govinda Das, Chaitanya Mahaprabhu, and Jayadeva the author of Geet Govinda.

Krishna's youthful dalliances with the 'gopis' are interpreted as symbolic of the loving interplay between God and the human soul. Radha's utterly rapturous love for Krishna and their relationship is often interpreted as the quest for union with the divine.This kind of love is of the highest form of devotion in Vaishnavism, and is symbolically represented as the bond between the wife and husband or beloved and lover.

Radha, daughter of Vrishabhanu, was the mistress of Krishna during that period of his life when he lived among the cowherds of Vrindavan. Since childhood they were close to each other - they played, they danced, they fought, they grew up together and wanted to be together forever, but the world pulled them apart. He departed to safeguard the virtues of truth, and she waited for him. He vanquished his enemies, became the king, and came to be worshipped as a lord of the universe. She waited for him. He married Rukmini and Satyabhama, raised a family, fought the great war of Ayodhya, and she still waited.So great was Radha's love for Krishna that even today her name is uttered whenever Krishna is refered to, and Krishna worship is though to be incomplete without the deification of Radha.

One day the two most talked about lovers come together for a final single meeting. Suradasa in his Radha-Krishna lyrics relates the various amorous delights of the union of Radha and Krishna in this ceremonious 'Gandharva' form of their wedding in front of five hundred and sixty million people of Vraj and all the gods and goddesses of heaven.

The sage Vyasa refers to this as the 'Rasa'. Age after age, this evergreen love theme has engrossed poets, painters, musicians and all Krishna devotees alike.

According to legends, Krishna's flute is the symbol of freedom (Pranava). This is the flute which enchanted devoted gopis, maidens of vrindavan, to see their beloved playing the melodious note on the bank of sacred river jamuna. Divine sound of this flute thrilled all heart with rapturous joy and immense delight. All the maidens of vraja neither had shame nor fear and were totally intoxicated to the divine music of lord melodious tone. This love of the maidens towards Krishna was a divine love, union of two souls and similar to merging of jivatma (Soul) to parmatma(supreme soul) . These gopis were the sages of forest dandka who desired to embrace lord rama. Since Rama was maryada purushottam, he was not able to fulfill their wishes and promised satisfaction in his next birth Gopis and lord Krishna.Power of creation is expressed through his flute. His melodious music from flute represents the act of creation. His standing on the big right toe signifies the Upanishad verse: "Ekam Eva Adwitiyam Brahma" which literally means "One without a second". While standing, lord shows three curves which represent the three gunas which form the base of the creation. He stares at radha to put this universe in motion and the lotus on which he stands represent the entire universe. Lord Krishna is popularly known as "Bansiwala".

Once radha asked lord Krishna: "O my lord, why do you love your flute more

than me. What virtuous action (Good karma) has this flute done that it touches your lips but I can't? Kindly give me an explanation, my Lord". Lord replied: "O my ragini, this flute is very close to my heart. It has done very good karma to reach my lips. First it emptied its egoism, made its inner hollow because of which I can create any tone out of it. If you remove your ego and surrender to me in the same manner as this flute, then I shall love you in the same way I love this flute".

Krishna also gave a spiritual meaning as "Humans sorrows and pains are soul experience similar to holes made in a reed flute. Through these holes, I want to say that the heart of man is like a reed.Their pain and sorrow is like a hole piercing their heart, which is then used by me to produce the music that I wish to produce? But every reed does not become a flute, and so does every human does not believe in me and don't tend to become my flute. Only those who render me service and does good karma is eligible of becoming my flute. As the holes of pain and sorrows increases in life, human ultimately realizes me and agrees to become my flute." The flute has eight holes which represent eight personalities of humans-ears, nose, eyes, skin, tongue, intellect, mind and ego. All humans are like a flute with lord being the player of this flute. If we try to play anything from our flute, then it will produce only harsh noise, and not soothing music. It is only when love, concentration and divine thoughts are created in mind, flute renders divine music. So, human being is like a flute and the lord fills this instrument with breadth of life to make the inanimate instrument (Made up of five elements) come alive with range of possibilities. The Rasa lila or Rasa dance also one of the part of the traditional story of Krishna described in Hindu scriptures such as the Bhagavata Purana and literature such as the Gita Govinda, where he dances with Radha and her sakhis. The Indian classical dance of Kathak evolved from the 'Raslila of Braj and Manipuri Classical Dance' (Vrindavan) also known as Natwari Nritya, which was revived in 1960s by Kathak dancer, Uma Sharma.

The term, rasa meaning "aesthetics" and lila meaning "act," "play" or "dance" is a concept from Hinduism, which roughly translates to "play (lila) of aesthetics (rasa)," or more broadly as "Dance of Divine Love".

The rasa lila takes place one night when the gopis of Vrindavan, upon hearing the sound of Krishna's flute, sneak away from their households and families to the forest to dance with Krishna throughout the night, which Krishna supernaturally stretches to the length of one Night of Brahma, a Hindu unit of time lasting approximately 4.32 billion years. In the Krishna Bhakti traditions, the rasa-lila is considered to be one of the highest and most esoteric of Krishna's pastimes. In these traditions, romantic love between human beings in the material world is seen as merely a diminished, illusionary reflection of the soul's original, ecstatic spiritual love for Krishna, God, in the spiritual world.

References:

- www.radhakrishna wikipedia
- www.mallstuffs.com
- www.radhakrishnaabout.com
- www.rasalila Wikipedia
- www.deshq.org
- www.creative.sulekha.com

Godly love of Radha-Krishna

1. Mrs. Shiva Durga
Asst. Prof. GLA University, Mathura.
2. Dr. Vivek Mehrotra,
Asst. Prof. GLA University, Mathura.
3. Mrs. Kuchalata Mishra
Venunath Kala Kendra, Vrindavan

Have you ever heard the chanting of devotees of Lord Krishna saying these Mantras? 'Rukmini Krishna' or **'Satyabhama Krishna, Champakalata** Krishna, **Chitra** Krishna, **Tungavidya** Krishna, **Vishaka** Krishna, **Indulekha** Krishna, **Rangadevi** Krishna, **Sudevi** Krishna though they are all associated with Krishna as married queens and Ashtasakhis respectively. Of course it is unheard of. But what about **"Radha Krishna?"** Everyone is familiar with this Divine name so pleasant to chant.

'Radha Krishna' is a divine mantra for chanting by all devotees proves that Radha is so close to Krishna whose name stands first before Krishna's name. In the hearts of all living beings Sri Krishna lives. Who lives in the heart of Sri Krishna? It is none other than **'Radha'** the **Hladini** Shakti that is the pure love. The love of them prevails in the whole Universe as ***'Prakriti'*** and ***'Purush'*** to create harmony everywhere in all living organisms- plants, animals, birds, reptiles, flowers, human beings etc. The earth is green because of Sri Radha. The life in it is nothing but Radha and Krishna.

The question- 'who is this great female?' runs in the minds of devotees, critics and other non devotees? Among the Goddesses of Hindu Religion the three famous Goddesses, Parvati, Saraswati and Lakshmi are beautifui. Among these three Lakshmi is beautiful. The Gopis are more beautiful than Lakshmi though all Gopis are the personification of Goddess Lakshmi herself. Among Gopis, Ashtasakhis are more beautiful. Among the Sakhis, Radha and Chandravali are considered to be more beautiful. **Sri Radharani is the most beautiful of all.** *"All the gopis and queens of Lord Krishna are reincarnation of goddess Lakshmi but Radha is the eternal life energy of but also inside she has nothing but love for Krishna in full form as 'lord Vishnu. She is greater than goddess Lakshmi as lord Vishnu touches the feet of her.*[1]" She is *Premswaroopini'* who represents only love and nothing but the love for Krishna. The ten 'Mahabhavas'- the great signs of love are found in Radha.

How is she connected with Krishna? "Her connection to Krishna is of two types: *svakiya-rasa* (married

relationship) and *parakiya-rasa* (a relationship signified with eternal mental "love"). The Gaudiya tradition focuses upon *parakiya-rasa* as the highest form of love, wherein Radha and Krishna share thoughts even through separation. *"The love the Gopis feel for Krishna is also described in this esoteric manner as the highest platform of spontaneous love of God, and not of a sexual nature. Proponents of the Gaudiya and Nimbarka schools of Vaishnavism give the highly esoteric nature of Radha's relationship to Krishna as the reason why her story is not mentioned in detail in the other Puranic texts".*[2]

In Vaishnavism **four types of '*Bhavas*'**-feelings are expressed as *Vvathsalya Bhava*-motherly affection(as Yasoda's love for Krishna) *'Sakya Bhava'*- friendly relation (as Arjun to Krishna), *'Mathura Bhava'* Female love for male (As Gopis to Krishna) and '*Dasa Bhava'*-service to God as servant (as devotees) God can be attained to devotees if they select any one of the 'Bhavas' mentioned above. The whole universe runs because of feelings. Through thoughts feelings emanate; through feelings love emanate and through love God emanates as he is not far off from us since he resides is all living beings. 'Love is God and God is love'. Radha is love; is hence Radha is Krishna and Krishna is Radha. **"EK Prana do Dehi Radha Madhava Roopa"** means though Radha and Krishna have two bodies their soul is one. That is why Krishna and Radha though they were in different places – Dwarika and Vrindavan respectively they were not missing each other. Longing for each other is the clear form of love rather being together. Longing gives **divine pain** expressed by hearts through tears which were found in both of them from their childhood days. That is called 'Viraha'

Sri Rama Krishna Sastri of Srirangam in one of his discourses on Radhastami "When Radha was born to Keertita and Vrishbhanu, as an infant child she was motionless in '*Bhav*' state without opening her eyes which made her parents worry that she might have been possessed. They called many saints, magicians and doctors to cure her to be a normal child. Through a saintly person the name of 'Krishna' was uttered to her ears. She has been possessed only by 'Mahaboot' (one of the thousand names of Lord Vishnu 'Mahabootaya namaha). Mahaboot is none other than Krishna himself. Then she came to normalcy. What else it can be; except the love of Krishna! At that time Krishna was standing in front of her. The first thing she ever saw when she opened her eyes was Krishna only. The divine love was present in her even when she was an infant.

"The Supreme Court of India in 2010 gave a judgement regarding 'live in relationship' or living together unmarried. To speak of this divine couple in this context is a deep attack on Indian Hindu culture and beliefs. Sri Radha is considered the Adhya shakti of Krishna. To speak of this divine couple so lightly and frivolously is highly objectionable". [3]

In fact narration and listening of the divine play of Radha and Krishna by the deserving and those truly desiring to improve causes an end to lust in them as per the Bhagavad Puran. Hence to compare the divine play of Radha and

Krishna to live in relationship is ridiculous and displays lack of knowledge because live in relationship includes lust. Moreover Radha and Krishna were married as evidence from the episode of Bandiravan Matt, **Due to the above it is necessary to criticize the above observations in the interests of justice, truth and knowledge.**

The mutual madhurya (conjugal) past times of Sri Radha Krishna are not at all similar to two mortals engaging themselves in amorous affairs. Radha and Krishna are divine. They are non-different from their bodies. Krishna's body is Krishna itself unlike in our case where our bodies are different from who we really are. Radha and Krishna love each other selflessly.

The love that Radha and Krishna have for each other is ever increasing. It goes on increasing infinitely. This is just not at all the case in terms of human lust.

The rasiks of Vrindavan worship Radha Krishna in a state of Nitya Vihar (eternal amorous union). It has been going on since eternity and will go on for eternity. There is no beginning and no end to it. Human relationships are far from this.

This state of Nitya Vihar takes place only in Vrindavan. Even Radha Krishna do not get to taste this unique flavor of love outside of Vrindavan.

Let us look at what some rasik saints of Vrindavan have said in their writings about this.

"Vrindavan pyaaro adhik, yaa te prem apaar
Jaame khelati laadli, sarvasu praan adhaar" [4]

"Jyo ghan damini sang rahat nit, bichurat nahi aur varan ko, Sri Haridas ke swami Shyama Kunjbihari na taran ko." [5]

The hundred names of Sri Radha Collected from the Holy Couplets of Sri Krishna and Sri Radha from Radhavallabh Temple, a temple totally dedicated to Radha at Vrindavan). [3] are self explanatory of Radha Krishna's divine love. These authentic names express the divine love which is unimaginable to any human mind. The lucky ones who recite these names of Shri Radha will certainly feel the real love, achieve immense happiness and eternal bliss.

"Śri Rādhē, Nitya Kishōrī, V□ndāvana Vihārinī, Vanarāja Rānī, Nikunjēśvarī, Rūpa Rañgīlī, Chabīlī, Rasīlī, Rasa Nāgarī, La□ilī Pyārī, Sukuñvarī, Rasikanī: Mōhanī, Lāla-ukhajōhanī,Mōhana-Mana-Mōhanī, Rati-Vilāsa-Vinōdani, Lāla-Lā□a-La□āvani, Ranga-Kēli-Ba□āvanī,Surata-Candana-Carcinī, Kōm□īDāminī-Damakanī, Lāla-Para-Lam□akanī, Navala, Nāsā-Cam□akanī, RahasiPunjē,V□ndavana Prakāsini, Ranga-Vihāra-Vilāsinī, Sakhī-Sukhanivāsinī,Saundarya Rāsinī, Dulhinī, M□du Hāñsinī, Prītama-Naina-Nivāsinī, Nityānanda-Darsinī, Urajani Piya-Parsinī, Adhara-Sudhārasa, Barasinī, PrāG□ani Rasa-Sarasanī, Ranga-Vihārani, Nēha Nihārani, Piya-Hita-Singāra-Singārinī, Pyāra Sauń Pyārē Kō Lē Ura Dhārani, Mōhana-MaiE□na-Vithā-Nivārani, Jāni Pravīna Udāra Sañbhāranī, Anurāga Sindhē, Syāmā, Bāmā, Bhāma, Bhañvatī, Juvatina-Jūtha-Tilakā, V□ndāvana-Candra-Candrikā,Hāñsa-Parihāñsa-Rasikā, Navaranginī, Alkāvali-Chavi-

Phandinī,Mōhanī Musikinī Mandinī, Sahaja Ananada-Kandinī, Nēha-Kurangin, NaiE□naVisālā. Mahāmadhura Rasa-Kandinī Cancala Cita-Ākarc□inī. Madana-Māna-Khan□inī. Prēma-Ranga-Ranginī. Banka-Kam□ākśinī, Sakala Vidyā-Vicchanī, Kuñvara Anka-Virājanī, Pyāra-Pam□a-Nivājinī, Surata-Samara-Dala-Sājinī, M[□ganaiE□nī, Pikabainī, Salajja Ancalā, Sahaja Cancalā, Kōka Kalāni-Kuśalā, Hāva-Bhāva Capalā, Cāturya Caturā, Mādhurya Madhurā, Binu Bhūc□ana Bhūc□itā, Avadhi Saundaryatā, PraG□a-Vallabhā, Rasika-Ravanī, Kāminī Bhāminī, Hansa Kali-Gāminī, Ghanśyāma Abhirāminī, Canda-Vipinī, Madana-Davanī, Rasika-Ravanī, Kēli Kamanī, Cittaharanī, Lalana-Ura-Para-Caranadharanī, Cavi Kanja-Vadanī, Rasika Ānandinī, Rūpa-Manjarī, Saubhāgya-Rasabharī, Sarvānga Sundarī: Gaurāngī, Ratirasa Rangī, Vicitra Kōka Kalā Angī, Chabi-Canda-Vadanī, Rasika Lāla Bandinī, Rasika Rasa- Ranginī, Sakhinu Sabhāman□inī, Ānanda-Kandinī, Catura AruBhōrī,SakaiaSukha-Rāsi-Sadanē."

Out of all her names 'Radha' is very easy to pronounce. Just utter her name to get the love from the Supreme Godhead Sri Krishna. There is no other way to get His LOVE. This is how all 'Jeevatmas' (all living beings) merge with 'Paramatmah'(God).

Jai Radhey Jai Krishna Jai Vrindavana Dham

Reference:

[1]" (*"Sri Gayatri Mantrartha Dipika - Illuminations on the Essential Meaning of Gayatri | Sri Narasingha Chaitanya Ashram". Gosai.com. Retrieved 2010-11-13. Swami B.G. Narasingha.)*

[2] Swami Tripurari, "Sri Radha: Indirectly the Absolute", *Sanga*, 1999.

[3] Sri S.Dixit in Panchajanya, 11 Apr 2010

[4] Vrindavan Shat , verse 38 by Hit Dhruv Das Ji

[5] Kelimaal by Ananya Nripati Swami Haridas

[6] Collected from the Holy Couplets Sri Krishna and Sri Radha from Radhavallabh Temple, Vrindavan).

"सरस्वत्यै नमः" "गीतगोविन्दं व राधाचरितं काव्य के आधार पर राधाकृष्ण प्रेम की वैश्विक संदर्भ में प्रासंगिकता"

रंजीता मौर्या

(शोधच्छात्रा)

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान

(गंगानाथ झा परिसर, आजाद पार्क, इलाहाबाद)

"गीतगोविन्द" जयदेव की एक मात्र उपलब्ध कृति है। इस काव्य में उन्होंने राजेश्वरी राधा जी की जिन लीलाओं का वर्णन किया है वह एक निर्दोष और अत्यधिक अभिनव कलाकृति का सृजन है। उनके इस काव्य का स्वरूप बड़ा ही मौलिक है। इस काव्य में प्रेममार्ग को भागवत उपलब्धि का मार्ग बतलाया गया है। कृष्णतत्त्व की प्राप्ति के लिए राधा की व्याकुलता को आत्मा की प्रबल आकांक्षा का रूप दिया गया है। भारतीय जनमानस के लिए यह मार्ग अत्यन्त रोचक और सहज प्रतीत हुआ। यही गीतगोविन्द की जनप्रियता का मुख्य आधार है। इस काव्य के पद-पद में जो प्रेम और सौन्दर्य की अगाधता है वह आनन्द की ओर सम्प्रेषित करता है।

वास्तव में यदि देखा जाए तो यह निश्चित रूप से हम पाते हैं कि 'गीतगोविन्द' अपने विषय की एक अनुपम रचना है। इसने जयदेव जी को अमर कर दिया। इस काव्य में राधाकृष्ण की लीलाओं का भक्तिपूर्वक वर्णन किया गया है जो जयदेव को साहित्य के माध्यम से धर्म प्रणेता के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

यद्यपि 'गीतगोविंद' काव्य के विषय में थोड़ा मतभेद पाया जाता है कि यह भक्तिपरक काव्य है अथवा शृंगार परक। यह तो निर्विवाद रूप से सत्य है कि इस काव्य में रास-लीला, कृष्ण-राधा की केलि क्रीड़ा उनका प्रणय आदि का वर्णन किया गया है किंतु अनेक विद्वानों ने इसे आध्यात्मिक रूप देकर कृष्ण को ब्रह्म और गोपियों को जीवात्मा बताया है। उनके अनुसार कृष्ण और राधा का मिलन ब्रह्म और जीव का मिलन है तथा कृष्णतत्त्व की प्राप्ति के लिए ही राधा की व्याकुलता को आत्मा की प्रबल आकांक्षा का रूप दिया गया है। किंतु उनकी इस धार्मिकता व आध्यात्मिकता पर 'की, विलियम्स और रामकुमार वर्मा' आदि विद्वान आलोचकों ने शंका व्यक्त करते हुए लिखा है कि –

"गीतगोविन्द में आध्यात्मिकता का संकेत भले ही मान लिया जाए, किन्तु इसमें कामसूत्र के संकेतों के आधार पर राधा-कृष्ण का परिरंभन है, विलास है, क्रीड़ा है। इस क्रीड़ा में ही रहस्यवाद का संकेत आलोचकों द्वारा माना गया है। इसी बात को आगे चलकर 'वरदारीचारी' जी ने इस प्रकार कहा है–

"यद्यपि भक्ति भावपूर्ण गीति की दृष्टि से उसका मूल्य कम नहीं कहा जा सकता तथापि शृंगारिक गीति की दृष्टि से इसका मूल्य और भी अधिक है। इस काव्य में अभिसार, नखसिख वर्णन, उद्दाम कामवासना इत्यादि वर्णन जो जयदेव द्वारा किया गया है उससे निष्कर्षतः यही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह एक शृंगार परक काव्य है।

गीतगोविन्द की राधा पूर्व यौवना है, वह पार्थिव प्रेम की प्रतिमा नहीं अपितु भक्ति की संचारिणी कल्पलता है। वह अपना सबकुछ कान्हा पर न्यौछावर कर देती है। वह सिर्फ कृष्ण के लिए है और कृष्ण को पल भर के लिए जुदा नहीं करना चाहती। किंतु गीतगोविन्द का कृष्ण बड़ा ही धोखेबाज प्रतीत होता है। जैसे कि वह राधा से मिलने का समय देकर अन्य गोपियों के पास चला जाता है, इस बात को राधा की सखी आकर उसे बताती है कि हे राधा! सुंदर लौंग की लताओं से स्पर्शित, धीरे-धीरे बहते हुए मलय समीर के सहित, भौरो की अवलि में गुंजित एवं कोयलों की कूंक, बाल वियोगियों को क्लेशित करने वाले, नीले शरीर वाले पिताम्बरधारी श्रीकृष्ण बसंत ऋतु में तरुणी गोपियों के साथ नाचते गाते हैं–

ललितलवंगपरिशीलनकोमलमलयसमीरे,
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे।

सुनकर हवह्वल हो उठती है और प्रियमिलन की उत्कट लालसा से अपने प्रिय कृष्ण से मिलने चल देती है।

इस तरह जयदेव के इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से पता चलता है कि मानों उन्होंने कामशास्त्र का भली प्रकारअध्ययन करके ही श्रीराधा कृष्ण के दिव्य स्वरूप का वर्णन किया है। उन्होंने आलिंगन, चुम्बन आदि प्रसंगों का ही केवल चित्रण नहीं किया प्रत्युत रति का खुलकर वर्णन किया है। इसका अन्दाजा जयदेव के इसी श्लोक से लगाया जा सकता है।

मारकरतिकेलिसंकुलरणाम्भे तया साहस–
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात्।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं,
वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिद्धयति॥
(गीतगोविन्द, द्वादश सर्ग, श्लोक 3)

और राधा भी आगे चलकर श्रीकृष्ण को रतिक्रीडा के लिए उकसाती है और उनसे कहती है–

"रचयः कुचयोः पत्रं चित्रं कुरूष्व व कपोलयो,
घर्टय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कबरीभरम्।
कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुरा,
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत्॥
(गीतगोविंद, द्वादशसर्ग, प्रवंध 24, प्र. गीत)

इस प्रकार राधा के कथानुसार श्रीकृष्ण ने भी वैसा ही किया। यदि देखा जाए तो राधा कृष्ण दोनों अलग-अलग न होकर एक ही तत्त्व है अर्थात् जो राधा है वही कृष्ण और जो कृष्ण है वह राधा है इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दोनों एक ही तत्त्व की युगलमूर्ति है। और यही बात जयदेव ने भी शुरू से और कृष्ण दोनों ही अभेद्य हैं और इस काव्य का सारतत्व है प्रेमयुक्त सरलपदों के माध्यम से आत्मा और परमात्मा के रहस्य का उद्‌घाटन करना।

राधा और कृष्ण की प्रेम लीलाओं का अध्ययन मैंने एक अन्य ग्रंथ "डॉ. हरिनारायण दीक्षित विरचित राधाचरितं महाकाव्यम्" से भी किया। जिससे यह स्पष्टरूपेण परिलक्षित होता है कि श्रीकृष्ण और राधा दोनों ही एक दूसरे से असीम व उत्कट प्रेम करते थे। उनकी प्रेमभावना में स्वार्थ लेश मात्र भी नहीं लिप्त था और यदि दोनों का एक-दूसरे से अलगाव हुआ तो वह सिर्फ और सिर्फ लोक कल्याण के लिए। लोक कल्याण के लिए ही उन्होंने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। प्रस्तुत पद्य में श्रीकृष्ण राधा से कहते हैं–

"मदीयाह्लादिनी शक्तिम्
त्वमेव वृषभानुजे।
'त्वयैवाह्लादितो विश्वं–
रक्षितुं निर्गतो गृहात्॥
(संवाद सर्ग श्लोक 126)

अर्थात् हे वृषभानुनन्दिनी! मेरी ह्लादिनी शक्ति केवल आप ही है आप के द्वारा ही तो आह्लादित होकर मैं संसार की रक्षा करने के लिए घर से निकला हूँ।

आगे चलकर वह यह भी कहते हैं कि –

वल्लभे! चित्त वैकल्यं,
तवं चेत्प्रभविष्यति।
कल्पिष्यते न कृष्णस्ते,
दुष्टनिग्रहकमर्मणे ॥
(संवादसर्ग श्लोक 128)

अर्थात्—हे प्रियतमें! यदि आपके चित्त पर विकलता हावी हो जाएगी तो आपका यह कृष्ण संसार में दुष्टों का दमन करने में समर्थ नहीं हो पाएगा।

प्रियदर्शन सर्ग में तो उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि हे राधे। तुम्हारी ही महान तपस्या के फलस्वरूप मैं दानवों, दैत्यों और रक्षसों को जीत सका हूँ। मेरे कर्त्तव्य की पूर्ति में हमेशा ही सभी जगह तुम्हारी ही याद ने मेरी सहायता की है। तुम्ही मेरी प्रेरणा हो, सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाली तुम मेरी और कृष्ण दोनों ही अभेद्य है और इस काव्य का सारतत्त्व है प्रेमयुक्त सरल पदों के माध्यम से आत्मा और परमात्मा के रहस्य का उद्घाटन करना।

राधा और कृष्ण की प्रेम लीलाओं का अध्ययन मैंने एक अन्य ग्रन्थ "डॉ. हरिनारायण दीक्षित विरचित राधाचरितं महाकाव्यम्" से भी किया। जिससे यह स्पष्टरूपेण परिलक्षित होता है कि श्रीकृष्ण और राधा दोनों ही एक-दूसरे से असीम व उत्कट प्रेम करते थे। उनकी प्रेमभावना में स्वार्थ लेश मात्र भी नहीं लिप्त था और यदि दोनों का एक-दूसरे से अलगाव हुआ तो वह सिर्फ और सिर्फ लोक कल्याण के लिए। लोक कल्याण के लिए ही उन्होंने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। प्रस्तुत पद्य में श्री कृष्ण राधा से कहते हैं —

"मदीयाह्लादिनी शक्तिम्
त्वमेव वृषभानुजे।
'त्वयैवाह्ललादितो विश्वं —
रक्षितुं निर्गतो गृहात् ॥
(संवाद सर्ग श्लोक 126)

अर्थात् हे वृषभानुनन्दिनी! मेरी ह्लादिनी शक्ति केवल आप ही हैं आप के द्वारा ही तो आह्लादित होकर मैं संसार की रक्षा करने के लिए घर से निकला हूँ।

आगे चलकर वह यह भी कहते हैं कि—

वल्लभे! चित्त वैकल्यं,
तवं चेत्प्रभविष्यति।
कल्पिष्यते न कृष्णस्ते,
दुष्टनिग्रहकर्म्मणे ॥
(संवादसर्ग श्लोक 128)

अर्थात्—हे प्रियतमें! यदि आपके चित्त पर विकलता हावी हो जाएगी तो आपका यह कृष्ण संसार में दुष्टों का दमन करने में समर्थ नहीं हो पाएगा।

प्रियदर्शन संर्ग में तो उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि हे राधे। तुम्हारी ही महान तपस्या के फलस्वरूप मैं दानवों, दैत्यों और राक्षसों को जीत सका हूँ। मेरे कर्त्तव्य की पूर्ति में हमेशा ही सभी जगह तुम्हारी ही याद ने मेरी सहायता की है। तुम्ही मेरी प्रेरणा हो, सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाली तुम मेरी साधना हो, और हमेशा तुम मेरी साध्या हो। जिस प्रकार आकाश में शब्द, जल में रस, अग्नि में ताप, पृथ्वी में गंध और वायु में स्पर्श व्याप्त रहता है उसी प्रकार मुझ में तुम हमेशा ही विराजमान रहती हो—

शब्दों यथा व्योम्नि रसो यथा जले
तापों यथाग्नौ भुवि गन्धता यथा।
वायौ यथा स्पर्शगुणश्य वर्तते,
तथैव नित्यं मयि राजसे प्रिये॥

और राधा को समझाते हुए कहते है कि हम दोनों राधा और माधव लहर और जल के जुड़ाव की तरह एक दूसरे से जुड़े हुए है, और हम दोनों का यह वियोग तो पानी और बुलबुले के अलगाव की तरह नश्वर है—

राधिकामाधवावावां
संयुक्तौ वारिवीचिवत्
वारि-बुद्बुदनीकाशो—
वियोगो नौ तु भयंकरः ॥

आपके बिना मैं उसी प्रकार महत्त्वहीन हूँ, जिस प्रकार बाती के बिना दीपक होता है, दहनशक्ति के बिना अग्नि होती है। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण के इस वचन को सुनकर राधा जी तुरन्त ही अपनी सारी बिरह वेदना को भूल गई। जिस प्रकार राहगीर

अपने गन्तव्य स्थान को पास आया हुआ देखकर रास्ते की थकान को निश्चय ही भूल जाता है।

किन्तु आज विश्व में प्रेम का जो यप हमारे समक्ष प्रस्तुत है उससे तो सर्वत्र यही प्रतीत होता है कि हर जगबह छल, कपट, धोखा ही फैला है आज के प्रेम में प्रेमी-प्रेमिका के अन्दर त्याग की भावना तो लेशमात्र भी नहीं रह गई है। आज के प्रेम में सिर्फ अश्लीलता ही दिखाई देती है न कि पवित्रता सहनशक्ति व धैर्य तो जैसे लुप्त सा हो गया है। आज भावावेश में आकर युवावर्ग क्या कुछ नहीं कर बैठता, यहाँ तक कि विश्वसनीयता पर सन्देह होते ही एक-दूसरे के प्राण के प्यासे हो जाते हैं। हम तो यह कहते हैं कि जहाँ इस तरह की भावना उत्पन्न हो जाए तो उसे प्रेम नहीं कहेंगे। प्रेम का असली तात्पर्य तो त्याग होता है जो आज के युवा वर्ग में तिरोहित सा हो गया है।

गीतगोविन्दं और राधाचरितं काव्य से हमें यह सन्देश मिलता है कि लोक कल्याण केलिए खुद को एक-दूसरे पर न्यौछावर कर देने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। राधा-कृष्ण से असीम प्रेम करती हैं किन्तु उनका प्रेम सच्चा और स्वार्थ विहीन था। वह तो एक ऐसी प्रणयिनी थी जो आजीवन कान्हापर न्यौछावर रही, उनका यह त्याग भी तो सिर्फ विश्व कल्याण के लिए था। आज के समाज को राधा के जीवन चरित का अनुकरण करके उनके आदर्शों को अपने जीवन में उतारकर प्रेम की पवित्रता को भली प्रकार से समझकर सदैव लोक कल्याण के लिए तत्पर रहना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)
2. ए हिस्ट्री ऑफ द संस्कृत लिटरेचर (एस.एन. दास गुप्ता एण्ड एस.के.डे.)
3. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी– मध्यकालीन धर्म साधना–गीतगोविन्द की विरहिणी राधा, शीर्षक से।
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास–बलदेव उपाध्याय
5. राधाचरित काव्य–श्री हरिनारायण दीक्षित।

!! राधा कृष्ण की प्रेम अनुभूति !!

सारिका पटेल

(शोध छात्रा)
मगध महिला कॉलेज (संगीत विभाग)
पटना विश्वविद्यालय, पटना

शात्विक प्रेम अवतार द्वापर के युगावतार श्री कृष्ण की प्रेम छाया नायिका राधा रानी के प्रेम की अनुभूति ब्रज भूमि के दिव्य दर्शन से ही सम्भव है गोकुल, वृन्दावन बरसाने से थोड़ी दूरी पर मथुर के कारागर में जन्मा श्री कृष्ण की टेर से बढ़ते स्वर यमुना पार जंगल में गायें बछड़े के स्नेह की पराकाष्ठा में श्री राधा रानी के प्रेम सर्वस्व न्यौछावर करने की समर्पित भावना गोप गोपियों के साथ करते अटखेलियाँ परमानन्द की अद्भुत छटा राधा के संग लुका-छिपी तथा नटखट माखन चोर मनोहर की निर्मल प्रेम एक अनुभूति ही तो है।

जो कल्पना मात्र से ही अपने को राधा और कृष्ण के महारास में रास खेलते पाते हैं उस अपार आनन्द का कोई पार नहीं है राधा स्वरूपा आत्मा, प्रेम स्वरूप शरीर परमात्मा के बिना निष्प्राण है। सांस, गति, सब तो कृष्ण ही है बदलते मौसम का हर अनुभव राधे ब्रज मोहनी का प्रेम रस ही तो है भगवान श्री कृष्ण की ब्रज लीलाएँ एवं रासलीलाएँ इतनी मधुर और मन को आनन्दित करने वाला है कि भगवान वेद व्यास से लेकर अब तक ना जाने कितने कवियों और लेखकों ने अपनी ललित एवं हृदयग्राही भाषाओं में उनका सजीव चित्रण करके अपनी वाणी एवं लेखनी को कृतार्थ किया है जिसका अनुशीलन करके आज भी हम लोग भाव-विभोर हो जाते हैं।

प्रेम के अनुभूति से ही परमानन्द की अनुभूति होती है श्री कृष्ण श्री राधे जी की प्रेम लीला लौकिक नहीं अलौकिक है, क्योंकि लौकिक आनन्द में प्रेम की अनुभूति क्षणिक होती है क्षणिक अनुभूति या कोई चाहत की वस्तुएँ पाने की होती है, जैसे ही उन्हें प्राप्त होती है मन भर जाता है, और आनन्द समाप्त हो जाता है। पर स्थायी आनन्द तो उस परम सत्ता की अनुभूति या अनुभव होने से है। जैसे ही हम परम सत्ता में विलीन हो जाते हैं वैसे ही हम आनन्द के समुद्र में डूब जाते हैं और जब डूब जाते हैं तो उबरने का प्रश्न ही खत्म हो जाता है। हम चिर आनन्दमय हो जाते हैं। लौकिक जगत में श्री कृष्ण और राधा का प्रेम मानवीय रूप में था और इस रूप ने इनके मिलन और प्रेम की शुरुआत बड़ी ही रोचक थी देवी राधा को पुराणों में श्री कृष्ण की शाश्वत जीवन संगीनी बताया गया है राधा और कृष्ण का प्रेम इस लोक का नहीं बल्कि पारलौकिक है। सृष्टि के आरंभ से और सृष्टि के अन्त होने के बाद भी दोने नित्य गोलोक में वास करते हैं। इस अद्भुत प्रेम की लीलाको हम साधारण से दृष्टि से अनुभव नहीं कर सकते हैं क्योंकि श्री कृष्ण से ग्यारह माह बड़ी श्री राधे का जनम बरसाने में हुआ था हर साल राधा अष्टमी भाद्र शुक्ल अष्टमी को राधा कृष्ण के अनुपम प्रेम की याद करते हैं। राधा जिनका जन्म बरसानेमें हुआ था जो वृन्दावन के

निकट स्थित है। श्री कृष्ण के माधुर्य व प्रेम की बहुत बड़ी उदाहरण है। मनोभाव से राधेकृष्ण की प्रेम उच्च कोटि का उदाहरण है। इस स्थिति में राधा को प्रमुख भूमिका में प्रस्तुत किया गया है। राधा कृष्ण की महारास को दास्य, वात्सल्य के तथा किसी भी अन्य भाव से नहीं समझा जा सकता है। इसे सिर्फ सखियाँ ही समझ सकती हैं। राधा नाम का एक प्रेम कल्पतरू का है। सखियाँ पुष्प एवं पत्तियों की भाँति प्रेम वृक्ष के प्रति अपने उद्‌गार को इस तरह व्यक्त करती हैं जो इस प्रेम तरू के प्रेम माली यानी "कृष्ण" अपने स्नेह से सींचे तथा इस प्रेम रस से हम सब भी आनन्द की ऊर्जा प्राप्त करें। सखियाँ आने हाव-भाव से कृष्ण को केवल राधा के लिए रिझाती हैं। राधारानी के प्रति अस्वाभाविक प्रेम स्वार्थी नहीं था। नन्द नन्दन के मोह पास में बँधी थी। ये गोपिकाएँ प्रेम की विस्तार हैं। प्रेम सच्चा हो तो बंधन में नहीं, स्वतंत्र प्रदर्शन है, इसी अनुभूति को दर्शाता है। राधा और उनकी सखियाँ कृष्ण का वृंदावन छोड़ मथुरा जाना तथा इस विरह की वेदना से तप्त राधा तथा गोपियों की सुधि अपने संग लगाना, यह अनुभूति ही तो है।

इधर राधा वृंदावन बिहारी, भक्त हितकारी के वियोग में यमुना तट से, कदम की डारी से, मोर से एवं बछड़े से पूछना तथा उद्धव से योग उपदेश का आशय पूछना तथा उद्धव इस प्रेम सरिता के बहाव का अर्थ नहीं निकाल सके, ये प्रेम सन्यास से भी उपर की भक्ति है। ये प्रेम अनुभूति की भक्ति है।

कौन भूल अपराध नाथ नहीं आवल हे उधो-2
ज्यों हम रहती वनके मयूरनी ॥
कृष्ण करत शृंगार, मुकुट बीच शोभितो हे उधो
कौन भूल अपराध.............
ज्यों हम रहती बाँस के बाँसुरी,
कृष्ण करत गुंजार
बसुर बीच शोभितो हे उधो
कौन भूल अपराध...
ज्यों हम रहती जल के मछलिया,
कृष्ण कर स्नान
चरण हम छुवितो हे उधो
कौन भूल अपराध...

कृष्ण काव्य में राधा

हमारा भारतीय साहित्य और कला का इतिहास इतना प्राचीन है, कि कृष्ण काव्य और राधा के स्वरूप को जानना हमारे लिए अत्यन्त ही कठिन है। परन्तु "जहाँ ना जायें रवि, वहाँ जायें कवि"। हमारे साहित्यकारों और कवियों ने ऐसा सुन्दर और सजीव चित्रण किया है कि मानो कृष्ण लीला के सारे भाव, और प्रसंग हमारी आँखों के सामने घटित हो रहे हों।

"कृष्ण काव्य में राधा" सबसे पहले यह समझने की कोशिश करते हैं कि कृष्ण काव्य है क्या? कृष्ण काव्य वह काव्य है जिसमें श्री कृष्ण के जीवन की सम्पूर्ण लीलाओं का वर्णन मिलता है। बड़े ही मनोरम ढंग से हमारे साहित्यकारों और कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का वर्णन प्राचीन प्रचलित कथाओं के माध्यम से तथा अपनी कल्पना शक्ति और अनुमान के द्वारा ग्रन्थों आदि में वर्णित किया है।

कृष्ण काव्य की शुरुआत कृष्ण जन्म के समय से होती है। वर्षा ऋतु की भादों मास में अष्टमी की काली अँधेरी रात में जब चन्द्रमा के उदय होने का समय था तब श्री कृष्ण जी का जन्म होता है। उनके आते ही मानो उनकी प्रेममयी ज्योति से सारी सृष्टि प्रकाशमय हो जाती है ऐसा शास्त्रों में वर्णित है।

ब्रज की रज-रज में श्री कृष्ण के प्रेम की सुगंध व्याप्त हो जाती है राधा भी इस प्रेम रूपी सुगंध से बच नहीं पातीं, और ब्रज की ओर खिची चली आती है। समय था, कृष्ण के जन्मोत्सव का, तब कृष्ण मात्र एक दिन के थे और राधा ग्यारह माह की थी राधा कृष्ण उम्र में ग्यारह माह बड़ी थी ऐसा शास्त्रों में वर्णित है।[1] उस दिन पहली बार राधा और अपनी माँ की गोद से पालने में पड़े हुए कृष्ण को निहारती है। दोनों ने एक दूसरे को देखा। इस धरा पर श्री कृष्ण के जीवन में राधा का आगमन उनके जन्म के प्रथम दिन से हो जाता है।

राधा–कृष्ण की प्रेम लीला ब्रज में ही शुरू होती हैं। प्रेम में समतत्व का भाव होना आवश्यक प्रतीत होता है इसलिए श्री कृष्ण वृन्दावन की प्रेममयी लीला के लिए अपने ऐश्वर्य लोक का परित्याग करके गोप-गोपियों के बीच मानवरूप धर कर इस धरा पर प्रकट हुए। श्रीकृष्ण और राधा का प्रेम बचपन से ही दैनिक जीवन की विभिन्न घटनाओं (गतिविधियों) से होकर विकसित होता है।

सूरदास जी ने राधा और कृष्ण के प्रेम को बड़ी ही सरलता से, विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनका प्रेम पनघट लीला दानलीला, चीरहरण लीला और रासलीला में क्रमशः गहरा होता हुआ दिखाई देता है।

कृष्ण काव्य के वात्सल्य लीला में श्री कृष्ण के बचपन के प्रेम का वर्णन मिलता है। उनका अपने मात-पिता से तथा अपनों से प्यार और स्नेह तो रहता ही है साथ ही गाँव वालों से भी उतना ही अपनत्व और प्रेम रहता है। सारे ब्रजवासी भी नन्द के लाल के आने से अति प्रफुल्लित हो जाते हैं।

वृन्दावन की वात्सल्य, बाल तथा भावती लीला में श्री कृष्ण मानव रूप से कुछ अलग ही दिखते हैं। उनमें ईश्वरीय शक्ति दिखती है। जिससे वे सभी के हृदय में प्रेम तथा श्रद्धा उत्पन्न करते हैं। बाललीला में श्रीकृष्ण का अपने संगी साथियों, गोपालों के साथ प्रेम, सहयोग, सहजीवन तथा स्नेह का बड़ा ही मार्मिक चित्रण मिलता है। बाललीला में गोचारण के प्रसंग में ही श्रीकृष्ण का नागलीला, दावानलपान, प्रलंबवध आदि में श्रीकृष्ण का ईश्वरीय रूप प्रकट होता है।

समय के साथ-साथ कृष्ण बाललीला से प्रेमलीला में प्रवेश कर जाते हैं। जहाँ उनके प्रेम का राधा के साथ सजीव चित्रण मिलता है श्रीकृष्ण गोपाल से मुरलीधर हो जाते हैं। उनकी मुरली चरा-चर को नया स्वभाव और नई प्रकृति प्रदान करती है। उनकी मुरली में इतनी मधुरता है कि स्थिर गतिशील हो जाते हैं, और गतिशील स्थिर। मुरली के नाद और श्रीकृष्ण के रूप के कारण ही ब्रज की सम्पूर्ण रस केलि हुई है। जब कृष्ण की मुरली की स्वर लहरी ब्रह्माण्ड व्यापी हो जाती है और उसका सम्पूर्ण जगत के जड़ तथा चेतन पर पूर्ण प्रभाव पड़ता है तो भला राधा कैसे बच पाती अपने कान्हा की मुरली से। राधा भी अपने सारे काम काज छोड़कर खिची चली आती है, वृन्दवन की कुंज गलियों में, बंशीवन में, तो कभी यमुनातट पर। राधा कृष्ण से प्रार्थना भी करती है कि, हे कृष्ण तुम इस गली में मत आया करो, और अगर आओ भी तो अपनी मोहनी बंशी मत बजाया करो।

राधा और कृष्ण का प्रेम इस जगत में लौकिक ही नहीं आलौकिक है। लौकिक जगत में श्रीकृष्ण–राधा का प्रेम मानवी रूप में था। धीरे-धीरे दोनों बड़े होते हैं और उम्र के साथ-साथ उनका प्रेम भी गहरा होता जाता है। उनका प्रेम बड़ा ही अनोखा था उनके प्रेम में जितनी सच्चाई थी उतनी ही गहराई भी। उनके प्रेम में विश्वास की ऐसी अटूट-अमिट छाया थी कि उनके प्रेम के टूटने की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

कृष्ण काव्य में राधा के कई रूप देखने को मिलते हैं। कभी वह कृष्ण की सहज, चंचल, चतुर बाल सखा होती हैं तो कभी परम सुन्दरी, प्रेममयी प्रेमिका। कभी वह रास के रस में डूबी रासलीला की नायिका रासेश्वरी, रसेश्वरी, सर्वेश्वरी होती है,तो कभी वह गंधर्व विवाह की स्वीकाया होते हुए कामनी के रूप में दिखती है। कभी राधा रासलीला में लिप्त श्रीकृष्ण के बहुनायकत्व होने पर क्रोधित होकर मान करती है, तो कभी कृष्ण के मथुरा चले जाने पर वे परम वियोगनी पराशक्ति के रूप में दिखती है। राधा के रूप अनूप हैं। जिनका सम्पूर्ण वर्णन करना सम्भव नहीं है।

बाल सखा के रूप में राधा :

बालसखा के रूप में राधा-कृष्ण के जीवन में आती हैं और अपनी सुन्दरता, चंचल तथा चतुर प्रकृति से कृष्ण का मन मोह लेती हैं। वही कृष्ण भी देखते ही देखते अपनी मीठी बातों से भोली भाली राध का मन चुरा लेते हैं। दोनों के मन इस सखा प्रेम को एक साथ स्वीकार करते हैं।

राधा और कृष्ण का बाल सखा और सखी का रूप तथा उनका पारस्परिक प्रेम स्वरूप पूर्णतः सूर की मौलिक उद्भावना है। यमुना के तट पर, गोकुल की गलियों में, कभी गोचारण में, तो कभी गोदोहन में कृष्ण और राधा एक दूसरे से मिलते हैं। कृष्ण राधा से उनका परिचय पूछते हैं और अपनी गलियों में खेलने का निमंत्रण देते हैं। बातें ही बातों में वे राधा को अपना बना लेते हैं। श्री कृष्ण की सुन्दरता, वाकचातुर्यता और उनकी आकर्षण शक्ति से राधा भी बहुत ज्यादा प्रभावित होती हैं और कृष्णमय हो जाती है। वही कृष्ण भी बड़ी-बड़ी अँखियों वाली गोरी समवयस्का राधा को देखते ही मुग्ध होकर राधामय हो जाते हैं। देनों एक दूसरे पर रीझ जाते हैं।[2]

अनुरागवती किशोरी के रूप में राधा :

राधा अनुरागवती किशोरी के रूप में कृष्ण से मिलने लगती है। राधा के मन में कृष्ण के प्रेम की भावना जाग उठती है परन्तु वह प्रकट नहीं करती है। घर में रहकर बेचैन मन से वो कृष्ण को याद करती हैं। राधा का मन चंचल हो जाता है। ऐसी अवस्था में उन्हें खाने-पीने की सुधि भी नहीं रहती। वे कभी हँसती है, कभी रोती हैं। घर पर उनका मन नहीं लगता। कृष्ण राधा, का प्रेम धीरे-धीरे विकसित होने लगता है। दोनों मिलने के बहाने ढूँढ़ने लगते हैं कभी गोदोहन के बहाने, कभी गोचारण के बहाने तो कभी यमुना के तअ पर जल के बहाने तथा कुंज गलियों में बार-बार मिलने लगते हैं। और यहीं से दोनों के मन में प्रथम स्नेह रूपी सूर्य का उदय होता है।

"तुम पै कौन दुहावै गैया।
लिए रहत हौ कनक-दोहनी, बैठत हो अधपैया।
अतिरस काम की प्रीति जान कै, आवत खरिक दुहैया।
इत चितवत्, उत धार चलावत, यहै सिखयो मैया?"[3]

गोदोहन के समय कृष्ण की प्रेम भरी कलाबाजी से राधा रुष्ट होती है। इसी तरह से प्रेम के झगड़ों के साथ राधा कृष्ण का प्रेम और गहरा होता जाता है।

राधा कृष्ण के जीवन में सच्ची सखा, सच्ची प्रेमिका बनकर आई। उनका कृष्ण से प्यार निहःस्वार्थ था राधा के हृदय में कृष्ण की सज्जनता और सहृदय का विश्वास था। उनको इस बात का भी पूरा विश्वास था कि कृष्ण उनके प्रेम को कभी नहीं झुठलाएँगे।

प्रेम मयी युवती के रूप में राधा :

कृष्ण काव्य में राधा सम्पूर्ण प्रेम मयी युवती के रूप में दिखती है। जिसमें वह कृष्ण के प्रेम में व्याकुल होकर घर पर, गली में, यमुना तट पर हर जगह कृष्ण की प्रतीखा करती हैं और मिलने के बहाने ढूँढ़ती है। गोप-गोपियों के सामने वह चुप रह कर भी अपने नैंनों से बातें करती है। राधा–कृष्ण का प्रेम मानो युगों-युगों का है। राधा कृष्ण का प्रेम प्रकृति के परिवेश में ही विकसित होकर फलने-फूलने लगता है। उनके प्रेम से मानो सारा ब्रज प्रेममय हो गया। कृष्ण के मिलते ही जैसे राधा की सारी इच्छा पूरी हो जाती है।

असाधारण सुन्दरी के रूप में राधा :

"काम कमान–समान भौंह दोउ, चंचल नैन सरोज।
अलि–गंजन अंजन–रेखा द्वै, बरसत बान मनोज।
कंबु कंठ नाना मनि भूषन, उर मुक्ता की माल।
कनक किंकनी–नूपुर कलरव, कूजत बाल मराल।
चौकी हेम चंद–मनि लागी, रतन जराइ खचाई।
भुवन चर्तुदस की सुन्दरता, राधे मुखहिं रचाई।"[4]

राधा सुन्दरता की अनुपम मूर्ति है। सूर सागर में सूर ने राधा को परम सुन्दरी बालिका के रूप में दिखाया है तथा उनके नख शिख सौन्दर्य का वर्णन रूपकातिशयोक्ति के माध्यम से किया है। राधा का सौन्दर्य असाधारण आकर्षक और विश्वबिमोहन है। वह चन्द्रमुखी है, स्वच्छ सरोवर सा मुख, उसमें मछली सी आँखें, ललाट पर चन्दन का तिलक, सुन्दर ठुड्डी, अण, नागिन सी लहरीली बेड़ी है। इसमें राधा के प्रत्येक अंग की प्राकृत शोभा तथा

अनेक सुन्दर आभूषणों से भूषित सौन्दर्य का वर्णन है। कनक किंकिनी–नूपुर आदि के स्वर से अनुगुंजित लयात्मक पद गति का गतिशील चित्र चित्रित है।

रासेश्वरी के रूप में राधा :

भागवत में भागवतकार के अनुसार रासलीला का आयोजन शरद की दुधिया चाँदनी में यमुना के किनारे, प्रकृत की खुली भूमि में होता है। 5 रासलीला के समय राधा रासेश्वरी के रूप में परम सुन्दरी नायिका होती है। राधा रासलीला की मूल क्रियाशील, आनन्द से परिपूर्ण रसेश्वरी, सर्वेश्वरी होती है। रासलीला में राधा कृष्ण की विशेष प्रिया होती है। कृष्ण अन्य गोपियों को छोड़कर राधा के साथ रासलीला करते हैं। रासलीला के समय ही देनों का गंधर्व विवाह होता है। राधा कृष्ण की स्वकीया बन जाती है।[6]

परम वियोगिनी पराशक्ति के रूप में राधाः

"अतिमलीनवृषभानु कुमारी।
हरिश्रम–जलभींज्यौं उर अंचल, तिहि लालच ना धुवावति सारी।
अधमुख रहति अनत नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुवारी।"[7]

उनके प्रेम के साथ-साथ समय की धारा आगे बढ़ती है और समय आता है कृष्ण के मथुरा जाने का। राधा का मन अत्यन्त बेचैन हो जाता है। उनकी पलकें भींगी हुई हैं राधा ने प्रेम के दाँव पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया वह हारे हुए जुआरी की तरह हत प्रभ सी है। परम वियोगिनी राधा के वियोग की असहनीय वेदना का वर्णन नहीं किया जा सकता। वियोग के समय राधा शान्त, गम्भीर, संयमित और तपस्विनी के रूप में हो जाती है। राधा के प्रेम में जितनी शक्ति थी वियोग में उतना ही तप।

राधा-कृष्ण के प्रेम की गहराई को समझने के लिए बड़े ही सुन्दर-सुन्दर प्रसंग ग्रंथों में मिलते हैं। राधा कृष्ण का प्रेम कितना दिव्य है इस बात का अनुमान इस कथा से लगाया ज सकता है जब रुक्मणी के हाथ से दिया गया गर्म दूध राधा पी लेती है तो कृष्ण के पैर में छाले पड़ जाते हैं जब रुक्मिणी छाले पड़ने की वजह जानना चाही तो कृष्ण बोले कि राधा के हृदय में तो कृष्ण का वास है। इसीलिए जब राजा ने गर्म दूध पिया तो मेरे पैरों पे छाले पड़ गये। आँखें बन्द करके अगर हम उनके प्रेम प्रसंग को देखते हैं तो उनके दिव्य प्रेम की अनुभूति सहज हो जाती है।

ऐसी थी कृष्ण काव्य में राधा, और उनका सच्चा निःस्वार्थ भाव, प्रेम जो राधा करती थी कृष्ण से, और कृष्ण राधा से।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. नन्द दुलारे वाजपेयी, महाकवि सूरदास, काव्य सौन्दर्य पृ. सं. 175
2. सूरदास, सूरसागर, पद्य सं. 1290
3. मैनेजर पांडेय, कृष्ण कथा की परम्परा और सूरदास का काव्य पृ. सं. – 82
4. वही पृ. सं. – 84
5. डॉ. केशव प्रसाद सिंह, वासुदेव सिंह, सूर संदर्भ और दृष्टि पृ. सं. – 232
6. वही पृ. सं. – 56
7. मैनेजर पांडेय, कृष्ण कथा की परम्परा और सूरदास का काव्य पृ. सं. – 89

राधा कृष्ण और भक्ति संगीत

अंकिता कुमारी

शोध छात्रा
पटना विश्वविद्यालय, पटना

जीवन के लक्ष्य अखंड आनंद की प्राप्ति के लिए मन, वचन और कर्म से भगवान् की भक्ति आवश्यक है। भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम तथा समर्पण की भावना को ही भक्ति कहते हैं। 'भक्ति' नौ प्रकार की बताई गई है, जिसमें से भगवान के गुणों का गान (कीर्तन) सहज और–श्रेष्ठ है। गान के अधिक संवेदनशील होने पर माधुर्य भाव अथवा सत्व का उद्रेक होता है।

भ्गवान् का प्रत्येक नाम एक मंत्र है। स्वर और लय के आधार से मंत्र की राष्ट्र या चेतन–शक्ति जाग्रत रहती है। कृष्ण भक्ति के जिस रूप ने समस्त भारत को रसमग्न किया, उसका मुख्य केन्द्र वृंदावन रहा, जिसने कई शताब्दियों तक चित्रकार, कवि, नव्रक तथा संगीतकारों को भी प्रेरणा प्रदान की। मनुष्य की सौन्दर्य–वृत्ति को परिष्कृत तथा सार्थक बनाने में भक्ति–काव्य का प्रमुख हाथ रहा।

ब्रजभूमि की प्राकृतिक सुषमा, ब्रज की मर्मस्पर्शी तानतथा ब्रजभाषा का माधुर्य लोक विख्यात है। राधाकृष्ण की लीलाभूमि ब्रज की संस्कृति संपूर्ण उत्तर भारत की वैष्णव संस्कृति का लगभग चार शताब्दियों तक केन्द्र रही है। ब्रज की प्रेम रंगभीनी ग्वालिने और राग रंजित चित्त वाले गोप ग्वाल प्रेमोन्नत होकर फाग खेलते हैं और चाचर, झुमका, होरी, धमार आदि गाते हैं। 'गीत' धर्म, काम और मोक्ष, चारों पुरुषार्थों का साधन बताया गया है।[1] ''भक्तिगीत'' प्रेम के हारा श्रेय की उपलब्धि कराने में अद्वितीय है। भक्तिपूरक पद या विष्णुपद शास्त्रीय संगीत की ध्रुवपद-पद्धति के जनक हैं। इससे पूर्व स्तोभ या स्तोभ–गान (ईश्वरपरक स्तुति–गान) ने प्रबन्ध-गान को पुष्ट किया था।

भगवान का प्रत्येक नाम एक मंत्र है। स्वर और लय के आधार से मंत्र की शब्द या चेतन-शक्ति जागृत रहती है। भक्ति-गान में सहज उद्रेक, नवोन्मेष, सद्यः स्फूर्ति, स्च्छंदता तथा अनाडम्बर इत्यादि विशेषताएँ स्वयं आ जाती हैं। भक्ति-भाव को उद्धीप्त करने वाली मूल प्रेरणा उसमें निरन्तर व्यक्त रहती है और उसी के द्वारा भाव का विस्तार नियंत्रित होता है।

1. पृष्ठ संख्या–540, गर्ग लक्ष्मी नारायण, निबन्ध संगीत पृष्ठ सं.–540, इसीलिए मीरा, सूर और तुलसी इत्यादि ने अपने भक्ति–काव्य को साहित्य तथा संगीत की दृष्टि से पूर्ण व्यवस्था दी, सामान्य जीवन से उठकर उनकी रचनाएँ शास्त्रीय संगीत तथा भाषा साहित्य तक को समृद्ध करने लगी। श्रीकृष्ण कवि सूरदास के इष्टदेव हैं, जिनकी सगुणलीला के पदों कागान भक्त का लक्ष्य है। विनय के पदों में सूरदास ने श्रीकृष्ण को वासुदेव, हरि, गोविंद, श्याम, गिरिधर कान्ह, मनमोहन, मोहन, माधव, गोपाल नंदकुमार, घनश्याम, भगवान, ब्रजनाथ, मुरारी आदि अनेक नामों से सम्बोधित करते हुए आत्म विनय का निवेदन किया है।1

रूपराशि राधा और रसिक कृष्ण की संयोगलीला का चित्रण सूरदास ने अत्यंत संयम और कुशलता से किया है। राधा कृष्ण की इस प्रेमलीला में सूर की

भावानुभूति और कलात्मकता का उत्कृष्ट रूप दिखाई पड़ता है। सूरदास भक्ति काल के सबसे बड़े प्रगीतकार हैं। वे प्रेम के विविध रूपों और पक्षों के गायक कवि हैं। उनकी कविता की मुख्य अन्तर्वस्तु प्रेम ही है। कृष्ण–भक्ति के जिस रूप ने समस्त भारत को रसमग्न किया, उनका मुख्य केन्द्र वृन्दावन रहा।

भक्तिपरक काव्य को ही 'भजन' कहते हैं। छंद और स्वर की दृष्टि से भक्ति–गीत के लिए कोई बंधन नहीं है, फिर भी गेय पद,स्वर, राग एवं ताल से विभूषित होकर जब प्रस्तुत किए जाते हें, तो उनसे रस की जो अजस्र धारा बहती है, वह अनिर्वचनीय होती है।

भक्ति-गीत पवित्र, वंदनीय तथा अलौकिक शक्ति-सम्पन्न होते हैं। भक्ति–काव्य में सत्य, शिव और सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय है। परम तृप्ति के साथ-साथ उसमें परम आल्हाद भी है। भगवान श्रीकृष्ण के लिए सूर जैसा भाव, मीरा–जैसा प्रेम और तुलसी जैसी श्रद्धा रखकर, भक्ति–संगीत किया जाए, तो मनुष्य का जीवन सफल हो जाए।

सत्य, मूल तत्त्व या भगवान का साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति मनुष्य की प्रकृति में प्रारम्भ से ही किसी-न-किसी यप में विद्यमान रही है। इस प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति सभ्यता के सभी स्तरों, देशों तथा कालों में होती रही है और इसी का नाम 'भक्ति' है। यज्ञ प्रधान ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रियास्वरूप भगवान धर्म का उदय हुआ, जिससे भारतीय भक्ति-साहित्य को पोषण प्राप्त हुआ कृष्ण वैदिक देवता विष्णु के अवतार माने गए, अतः भगवान एवं ब्राह्मण–धर्म के समन्वय से वैष्णव–धर्म की उत्पत्ति हुई।

1. पृष्ठ संख्या–48, पांडेय मैनेजर, कृष्ण कथा की परम्परा और सूरदास का काव्य बारहवीं शताब्दी में जयदेव गोस्वामी ने प्रसिद्ध गीत गोविन्द लिखा, तो दिव्य कृष्ण और उनकी भक्त राधा के बीच के आध्यात्मिक प्रेम सम्बन्ध के विषय को सम्पूर्ण भारतवर्ष में पूजा जाने लगा। यह माना जाता है कि कृष्ण ने राधा को खोजने के लिए रास–नृत्य के चक्र को छोड़ दिया है। राधा कृष्ण कीकथा लोकमानस में बसी हुई कथा है। इसलिए सूरदास कथा के निर्माण के बदले लोक प्रचलित कथा का रचनात्मक उपयोग करते हुए उसे मानवीय अनुभूतियों की अभिव्यक्त का साधन बनाते हैं यही कारण है कि वे राधाकृष्ण कीकथा के भावाभिव्यंजक प्रसंगों का बार-बार उपयोग करते हैं।

परम्परा के अनुसार आराधना को समझने के लिए विभिन्न व्याख्याओं में एक निजवादी समान मूल है। विशेष रूप रो चेतन्य गौड़ीय वैष्णव सिद्धान्त औरमिशन गहरे रूप से 'निजवादी' (आत्मनिष्ठावादी) है, जो कृष्ण की सर्वोच्चता, राधा-कृष्ण के रूप में चैतन्य की पहचान, स्व की वास्तविकता और नित्यता और सर्वप्रथम और महत्त्वपूर्ण रूपसे एक व्यक्ति के रूप में एकमात्र सत्य और ईश्वर तक पहुँचने की घोषणा करता है। जीव गोस्वामी ने अपने प्रीति संदर्भ में कहा है कि प्रत्येक गोपी भिन्न स्तर के मनोभाव की तीव्रता को व्यक्त करती है, जिसमें से राधा का सर्वोच्च हैं। श्री राधिका कृष्णाष्टक एक भजन है। कहा जाता है कि पढ़ने वाला इसके जप द्वारा राधा के माध्यम से कृष्ण को पाया जा सकता है।

कृष्ण भक्त शिरोमणि सूरदास की सांगीतिक सौन्दर्यानुभूति

डॉ रश्मि दीक्षित

एसोसिएट प्रोफेसर

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

Email Id.- rdixitalld@gmail.com

काव्य कला की ही भाँति सूरदास जी को संगीत का गम्भीर ज्ञान था। इसका प्रमाण न केवल उनके रचे हुए पदों में विभिन्न राग रागिनियों का उल्लेख है, वरन् सूरसागर में स्थान-स्थान पर हमें संगीत का जो उच्च वातावरण मिलता है, उससे विदीत होता है कि सूरदास की प्रकृति में काव्य और संगीत मूर्तिमान होकर घुल मिल गये थे। स्वयं महाप्रभु बल्लभाचार्य ने उनके भावपूर्ण संगीत से प्रभावित होकर उनको श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा सौंपी थी।

"चलत चितवन, दिवस जागत, सुपन सोवत रात।
हृदय ते वह स्याम मूरति, छिन ना इत उत जात।।"

अपने सम्प्रदाय की भक्ति भावना का जैसा विशद् और व्यवहारिक रूप उनके काव्य में मिलता है, वैसा कदाचित् अन्यत्र दुर्लभ है।

इतना विस्तृत ज्ञान और अनुभव सूरदास जी को कहाँ से प्राप्त हुआ, यह जानने का कोई साधन नहीं है। विद्वानों के अनुसार - सूरदास को पूर्वजन्म के उच्च संस्कार लेकर पैदा हुए थे और दैवीय प्रेरणा से ही वे सिद्ध हो गये थे। इसमें सन्देह नहीं कि काव्य और संगीत के गुण उनमें जन्मजात थे तथा प्रकृति ने ही उन्हें बुद्धि और विवेक प्रचुर मात्रा में दिया था तथापि उन्होंने शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिए उचित अवकाश और अवसर प्राप्त किया होगा।[1]

कृष्ण की प्रेम भक्ति में दीक्षित होकर भगवद्लीला के गान की प्रेरणा प्राप्त करने के बाद सूरदास की काव्य और संगीत की समस्त शक्तियाँ उभर कर सामने आई और फिर उन्होंने जीवन पर्यन्त श्रीकृष्ण के परम् मनोहर रूप और लीला का गुण गान करने में अपनी बाणी का श्रृंगार करने लगे। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास को काव्य, संगीत व विविध कलाओं का सम्पन्न वातावरण सहज ही प्राप्त होने लगा। बल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त सूरदास के समय में गोस्वामी हितहरिवंश के राधाबल्लभ सम्प्रदाय तथा स्वामी हरिदास के सखी सम्प्रदाय की भी पर्याप्त चहल पहल थी और उनके द्वारा भी ब्रज में काव्य संगीत आदि कलाओं की उन्नति हो रही थी। अकबर के साम्राज्य की शान्ति व्यवस्था की स्थापना तथा सांस्कृतिक उन्नति भी सूरदास के समय में होने लगी थी। इन समस्त परिस्थितियों ने उनकी काव्य रचना पर प्रभाव डाला होगा तथा उनके अनुभव और ज्ञान को बढ़ाया होगा।

सूरदास की जीवनी के अध्ययन में निम्नलिखित आधार सामग्री प्राप्त होती है–सूरदास की रचनाएँ, चौरासी वैष्णवन की वार्ता, हरिराय के भाव-प्रकाश सहित वार्ता, अन्य वार्ता साहित्य, बल्लभ दिग्विजय : गोस्वामी यदुनाथ, भक्त माल : नाभादास, भक्त विनोद : कवि मियासिंह, राम रसिकावली : महाराज रघुराज सिंह, भक्त नामावली : ध्रुवदास, नागर समुच्चय नागरीदास, व्यासवाणी : हरिराम व्यास, आईने अकबरी, मुंतखबुलावारीख, मुंशियाते अबुल फजल, मूल गुसाईचरित, जनश्रुतियाँ। सूरदास के बारे में व उनके जीवन वष्त्त के निर्माण के लिए समस्त सामग्री का अन्वेषण आवश्यक है।

इनकी तीन प्रमुख रचनाएँ हैं- सूरसागर, सूरसारावली, साहित्यलहरी प्राप्त है। इसके अतिरिक्त विभिन्न लेखकों ने जिन रचनाओं का उल्लेख किया है वे या तो सूरसागर के ही स्फुट अंश है अथवा अप्रमाणिक है।

सूरसागर की रचना की सूचना वार्ता से मिलती है। वार्ता में कहा गया है कि सूरदास ने श्री परम् भागवद् के द्वादश स्कंधों पर पद रचना की। भागवद् की ही भाँति सूरसागर की कथावस्तु भी द्वादश स्कंधों पर विभक्त है। सूरसागर के विशाल आकार विस्तार में ऐसे पदों की संख्या अनगिनत है जिन्हें स्फुट पद रचना के अन्तर्गत् रखा जा सकता है।

सूरदास जी द्वारा पदों में तत्कालीन संगीत के श्रेष्ठ स्वरूप का दिग्दर्शन होता है। इनके पदों में संगीत के समस्त तत्व अलंकार, राग रागिनी आदि का उल्लेख प्राप्त होता है जो इस बात की पुष्टि करता है कि इनके द्वारा रचित भक्ति-पदों का गायन शास्त्रीय संगीत के आधार पर ही किया जाता था।

सूरदास के पदों में संगीतोल्लेख के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है-

स्वर, श्रुति व तान का उल्लेख इस पद में प्राप्त होता है-

"सुर श्रुति तान बन्धान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत"

तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना तथा उनचास कोटि तानों का उल्लेख–

"तीन ग्राम, इकईस मूर्च्छना कोटि उनचास तान"

सप्त सुर, सरगम तान, ताल, नृत्य, मृदंग वादन का उल्लेख–

"सरगम सुनि के साधि सात सुरनि गाई
अतीत अनागत संगीत बिच तान मिलाई
सुर ताल अरू नृत्य ध्याई मुनि मृदंग बजाई"

सप्तक का उल्लेख-

"कबहुँक गान करत अति रूचि करताल ताल बजावत
कबहुँक नृत्य करत कौतुहल सप्तक भेद दिखावत"

आलाप का उल्लेख–

"सकल कला प्रवीन स रे ग म प ध नी
आलाप करत है, उपजत तान तरंग"

छः राग, छत्तीस रागिनी–

"छहों राग छत्तीस रागिनी इक इक नीके गावेरी"

चौंसठ कलाओं का श्रृंगार रस 'संगीत' का उल्लेख–

"कला चौसट्ठि संगीत सिंगार रस,
कोक विधि बन्द प्रगटि भेद से सैरो"

उपर्युक्त पदों में संगीत के विभिन्न तत्व, श्रुति, स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना, उनचास कोटि तान, सरगम, सप्तक, आलाप, छः राग छत्तीस रागिनी आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

एक पद में राग मूर्त स्वरूप का वर्णन करते हुए सूरदास कहते हैं-

"राग रागिनी मूरतिवन्त दुलहा दुलहिनी सरस वसन्त"

एक अन्य पद में रागों द्वारा विभिन्न भावों के सबल प्रस्तुतिकरण क्षमता को दिग्दर्शित करते हुए कहते हैं–

"राग रागिनी प्रकट दिखायो गायो जो जिहि रूप"

इसी प्रकार अनेकानेक पदों में रागों का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया गया है–

नाना राग रागिनी गावत घरै अमृत मृदु बैननि में
राग रागिनी संचि मिलाई गावै गुंड मलार
बैनुपति गहि मौको सिखावत मोहन गावत गौरी
कैकि पच्छ मुकुट सिर भाजत 'गौरि राम मिलै सुर गावत'
मन्द मन्द सुर पूरत मोहन राग मलार बजावत
जैवत गावत है सारंग की तान कान्ह सखिन के मध्य लेत करछीने
सारंग, गौडी, नटनाराइन, गौरी, सुरहि सुनावत
अधर अनूप मुरली सुर पूरत गौरी राग अलाप बजावत
सुही सारंग, टोडी, भैरव, सोरठी, केदार
काफी राग गावै मुरली बजाई री
सुर सावंत भूपाली ईमन करत कान्हरो गान"[8]

उपर्युक्त रागों के साथ ही सूरदास ने अपने एक पद में 36 रागें व उनके प्राभभ्भाव का उल्लेख किया है। यह पद सूरदास जी के काव्य ज्ञाता होने के साथ उनके संगीत पाण्डित्य की भी पुष्टि करता है–

ललिता ललित बजाय रिझावत मधुर बीन करलीने
जान प्रभात राग पंचम छट मालकोंस रस भीने
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारंग सुर नट जान
सुर सावंत भूपाली ईमन करत कान्हरौ गान
ऊँच अड़नि के सुर सुनियत निपट नायकी लीन
करत बिहार मधुर केदारो सकल सुरनि सुखदीन
सोरठ गोरमलार साहावत भैरव ललित बजायो
मधुर विभास सुनत बेलावल संपति अति सुख पायो
देवगिरी देस का देव पुनि गौरी श्रीसुख वास जैतश्री अरूपूर्वी
रामकी गुनकली केतकी सुर सुघराई गाये
जैवन्ती जगत मोहनी सो बीन बजावे
सुआ सुरत मिलत प्रीतम सुख सिन्धु वीर रसमान्यौ
जान प्रभात प्रभाती गायौ मरि भयौ दौउ जान्यौ'[3]

इस पद में निम्नलिखित रागों के नाम हैं–

ललित, पंचम, षट (खट), मालकोंस, हिण्डोल, मेघ, मालव, सारंग, नट, सावंत, भूपाली, ईमन (यमन), कान्हरो (कान्हड़ा), अड़ाना, नायकी, केदारो, सौरठ, गौड़ मलार, भैरव, विभास, बिलावल, देवगिरी, देसाक (देशाख्य), गौरी, श्री, पूर्वी, गौड़ी, आसावरी, रामकली, गुनकली, सुघराई, जैवन्ती, सुआ (सुहा), सिन्धु वीर (सिन्दूरा) व प्रभाती।

कृष्ण सम्बन्धी स्फुट पद, पद समूह और खण्ड कथानक के विवेचन में स्थान स्थान पर संकेत किया गया है कि सूरदास का उद्देश्य अपने दृष्टिकोण व **सांगीतिक** माध्यम से कृष्ण की सम्पूर्ण कथा व्यक्त करना है, उनके स्फुट लगने वाले पद समूहों का कृष्ण की वृहद् कथा में अपना एक निश्चित स्थान है।[4]

यदि महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा के अनुकूल उसके बाह्य लक्षणों का विचार न करें तो सूरदास की कृष्ण लीला को महाकाव्य कहा जा सकता है। इसमें नायक, नायिका, प्रतिनायक, सखा, सखी, विभिन्न पात्र प्रधान कथा, अनेक प्रासंगिक कथाएँ, कथाओं की एक सूत्रता, कथानक का आरम्भ, विकास, चरम् सीमा और उसका निश्चित परिणाम में अन्त, बाह्य प्रकृति के चित्रण, आदि प्रबन्ध काव्य के लक्षण महाकाव्य की कोटि तक पहुँचाते हैं।[5]

प्रकृति की सृष्टि के अतिरिक्त काव्य में मानव द्वारा निर्मित विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के चित्रण से भी कवि की निरिक्षण शक्ति और वर्णन कौशल का परिचय प्राप्त होता है। सूरसागर में कृष्णलीला की विभिन्न परिस्थितियों की कल्पना के द्वारा ऐसे चित्र उपस्थित किये गये हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक वातावरण की सूचना मिलती है।

मानव सौन्दर्य- के अर्न्तगत् कवि ने अवस्था और परिस्थिति के भेद से इसमें विविधता दिखाकर अपनी सूक्ष्म निरिक्षण और उत्कृष्ठ सौन्दर्यानुभूति का परिचय दिया है।

पुरूष रूप- कृष्ण का रंग श्याम है। श्याम रंग को यथार्थ भावना देने के लिए कवि ने अनेक उपमाओं का सहारा लिया है। रूप के वर्णन, वर्णाभूषणों का विवरण भी कवि ने अवस्था और परिस्थिति के अनुसार दिया है-

नारी रूप- का सौन्दर्य कवि ने विशेषकर राधा के द्वारा और साधारणतया गोपियों के द्वारा प्रदर्शित किया है-

राग रामकली- सुत कौ बरजि राखहुमहरि, डगर चलत न देत काहुंहि, कोरि डारत उहरि।। स्याम के गुन न कछु जानति जाति हम सौगहरि, इहै लालच गाई दसलिए बजति है ब्रज...।।[6]

प्राकृतिक सौन्दर्य- कवि ने यथावसर सुन्दर प्राकृतिक वातावरण उपस्थित करके मानवेतर सौन्दर्य निरिक्षण का परिचय दिया है।

प्रभात- यशोदा कहती हैं–ब्रजराज कुंवर जागिये। कमल कुसुम फूल गये। कुमुदवृंद संकुचित हो गये और भृंग लताओं में भूल गये। तमचर खग का रोर सुनो। बरनाई बोलता है। गायें रम्भाती हुई बछड़ों के लिए खरिकों में दौड़ रही है। विधु मलीन हो गया, रवि का प्रकाश होने लगा और नर नारी गाने लगे।

राग बिलावल-

जागिये ब्रजराज कुँवर, कमल कुसुम फूले।
कुमुद वृंद संकुचित भय, भृंग लता भूले।
तमचुर खग रोर सुनहु, बोलत बरनाई...।।[7]

वनद्रुम लतादि- वृंदावन की शोभा देखकर ब्रह्मा भी मुग्ध हो जाते हैं। सजल सरोवर है जिनके मध्य कमल शोभित हो रहे हैं। परम सुभग समुना बहती है। त्रिविध समीर चलती है। पुष्प लता द्रुम अति रमणीय कदंब की परम सुखद छांह आदिदेखकर ब्रह्मा भी चकित हो गये।

दावानल- वन के दावानल के वर्णन में यथार्थता और चित्रोपमता है : दसों दिशाओं में दुसहदावाग्नि पैदा हो गई। बास चटकने लगे। कुश कांस चटकने लगे। अंगार उलट रहे हैं। कराल लपटें झपट रही है। धरा से भंवर तक धूम्र की धुंध छाई हुई है, जिनके बीच बीच ज्वाला चमकती है। हरिण वाराह मोर चातक पिक तथा अन्य जीव बेहाल होर जल रहे हैं।

आदर्श वृन्दावन- नित्यधाम वृन्दावन की अनन्त शोभा बसंत के प्रसंग में आदर्श रूप में चित्रित की गई है : जहा सदा बसन्त का वास रहता है, जहाँ सदा हर्ष रहता है, कभी उदासी नहीं छाती, जहा सदैव कोकिल, कीर रोर करते हैं, जहा सदा मन्मथरूप चित्त चुराते हैं, जहाँ डालों पर विविध सुमन फूले है और उन पर अपार उन्मत मधुकर भ्रम कर रहे हैं, नव पल्लव वन की शोभा बढ़ा रहे हैं। वहीं हरि के साथ अनेक सखिया विहार करती हैं, कोकिल कुहू कुहू सुनाती है।

मेघ चपला आदि- राधा-कृष्ण की बाल केलि के समय के प्रथम संयोग सुख का वर्णन कवि ने काली घटाओं के मसुहावने वातावरण में ही किया है-

राग गौड़ मलार।।1302।।
गगन घहराइ जुरा घटा कारी।
पवन झकझोर, चपला चमक चहु ओर, सुवन तन चितै नंद डरत भारी।।
कह्यौ वृषभानु की कुवरि सौं बोली कै,
राधिका कान्ह घर लिए जा रहे री...।[8]

वर्षा ऋतु- वर्षा ऋतु का वर्णन कवि ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों के रति भाव के उद्दीपन के लिए किया है। संयोग के अवसर पर वर्षा ऋतु हिंडोल सुख के लिए उपयुक्त भूमिका तैयार करती है–

शरद- वर्षा के उपरान्त शरद ऋतु का भी कवि ने किंचित् उल्लेख किया है।

इन चित्रणों के अतिरिक्त कवि के प्रकृति निरीक्षण का परिचय भावों अथवा दृश्यों के ग्रहण के लिए की गई उनकी कल्पना में मिलता है। इस विवेचन से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का उपयोग केवल अपनी भावना और कल्पना को सजग और मूर्त करने में किया है। अतः प्रकृति चित्रण की विविधता उसके काव्य में नहीं मिल सकती। फिर भी उसके चित्रणों में सौन्दर्यप्रियता के प्रचुर प्रमाण हैं।

समाज का चित्रण

कवि ने कृष्ण की लीलाओं में उनके संस्कार, पूजा, व्रत, उत्सव, मनोरंजन, भोजन आदि के न्यूनाधिक विवरण दिए हैं। इन लीलाओं से समाज की नैतिक अवस्था का भी किंचित परिचय मिलता है।

संस्कार

कृष्ण के जात संस्कार में कवि ने केवल सखियों के मंगलगान, नाल छेदन, गाली, बधाई और सोहर के गायन, द्वार पर निशान बजने, ढाढ़ी ढढ़िन के गाने, नाने और आर्शीवचन बोलने और बढ़ई के पालना लाने का वर्णन किया है।

राग गांधार।।632।।
उठी सखी सब मंगल गाइ।
जागु जसोदा, तेरैं बालक उपज्यौ कुवर कन्हाइ।
जो तू रच्यौ-सच्यौ या दिन कौं,
सो सब देहि मंगाई...।[9]

पूजा व्रत, उत्सव

कृष्ण की कुशल मंगल कामना के लिए यशोदा द्वारा कुलदेव की मान्यता करने का अनेक बार उल्लेख हुआ है। पर ये कुलदेव कौन हैं, इसके विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है। गोबर्धन लीला से ऐसा विदित होता है कि इन्द्र गोकुलवासियों के सर्वमान्य कुलदेव हैं। इन्द्र ही वर्षा से उन्हें दधि, दूध, अन्न, धन और पुत्रसुख प्राप्त होता है। ये ब्रज की रक्षा करते हैं।

राग गौरी।।1430।।
येई है कुलदेव हमारे।

काहू नहीं और मैं जानति, ब्रज गोधन रखवारे।।
दीपमालिका के दिन पाचक गोपिनि कहौ बुलाई...॥[10]

मनोरंजन

होली और रासलीला में कवि ने संगीत और नृत्य संबन्धी अनेक उल्लेख किये हैं : नन्दनन्दन सरगम साध कर सप्त स्वरों में वंशी बजाते हैं और मृदंग से ताल देते हैं-

राग पूरबी।।1769।।
नंद नंदन सुघराई, बासुरी बजाई।
सरगम सुनीकैं साधि, सप्त सुरनि गाई।
अतीत अनागत संगीत, बिच तान मिलाइ...।।[11]

भोजन

कृष्ण की दिनचर्या के प्रसंगों में कवि ने सवेरे के कलेऊ, दोपहर के भोजन और संध्या समय की बयाली का वर्णन किया है। कलेऊ में दूध, दही, मेवा, माखन और रोटी का उल्लेख है तथा भोजन की लम्बी-लम्बी सूचिया दी गई है, जिससे उस समय की खाद्य सामग्री का अनुमान किया जा सकता है-

राग सारंग।।801।।
कान्हर बलि आरि न कीजै।
जोइ जोइ भावै सोइ लीजै।
यह कहति जसोदा रानी।
को खिझते सारंगपानी ।।[12]

नैतिक अवस्था

कृष्ण की लीलाओं में प्रसंगवश कुछ ऐसे भी उल्लेख हुए हैं, जिनसे समाज की नैतिक अवस्था पर किंचित प्रकाश डाला गया है। ब्रज के निवासियों का जीवन एक प्रकार का वर्गगत जीवन है-

राग देवगंधार।।1028।।
बछरा चारन चले गोपाल।
सुबल, सुदामा अरू श्रीदामा, संग लिए सब ग्वाल।
बछरनि कौं बन झांझ छाड़ि सब खेलत खेल अनूप...।।[13]

सूरदास के साहित्य में उपदेश की प्रवृत्ति कम है। काव्य के सौन्दर्यपरक मूल्यों से ही नैतिक मूल्य पनपते हैं। काव्य में अभिव्यक्त भाव, विचार और निर्मित व्यक्तित्व के सम्पर्क से ही सहृदय का चित् उदार होता है, उसके भावों, विचारों और व्यक्तित्व का परिष्कार होता है। कवि का तो मुख्य लक्ष्य ही है- सौन्दर्य की प्रतीति एवं उसकी सृष्टि।[14] इस प्रकार सूरदास ने अपने काव्य में सांगीतिक सौन्दर्यबोध के माध्यम से नैतिक मूल्यों के विकास का प्रयास किया है।

सन्दर्भ सूची

- सूरदास, ब्रजेश्वर वर्मा,
- मध्यकाल के संगीतज्ञ व कवियों का हिन्दुस्तानी संगीत व काव्य में योगदान, डॉ रश्मि दीक्षित,
- सूरसागर, नंदुलारे वाजपेयी
- भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय
- प्रताप.रागिनी; सूर, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना में संगीत का योगदान;

फुटनोट

[1] सूरदास, ब्रजेश्वर वर्मा, पृ.सं. 13
[2] मध्यकाल के संगीतज्ञ व कवियों का हिन्दुस्तानी संगीत व काव्य में योगदान, डॉ रश्मि दीक्षित, पृ. सं. 174
[3] "वही" पृ. सं. 174
[4] सूरदास, ब्रजेश्वर वर्मा, पृ.सं. 286
[5] "वही" पृ. सं. 293
[6] सूरसागर, पृ. सं. 593,
[7] सूरसागर, पृ. सं. 267
[8] सूरसागर, पृ. सं. 400
[9] सूरसागर, पृ. सं. 214
[10] सूरसागर, पृ. सं. 433
[11] सूरसागर, पृ. सं. 518
[12] सूरसागर, पृ. सं. 261
[13] सूरसागर, पृ. सं. 320
[14] भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय

ब्रह्मवैवर्तपुराण में राधा तत्त्व-एक अनुशीलन

[1]प्रभात कुमार

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

संस्कृत साहित्य के उपजीव्य कहे जाने वाले तथा भारतीय संस्कृति का सम्यक् उद्घाटन पुराणों में ही प्राप्त होता है। 'पुराण' शब्द से तात्पर्य पुराना या प्राचीन अथवा जिसमें प्राचीन आख्यानों का वर्णन हो उसे पुराण शब्द से अभिहित किया गया है। वैदिक साहित्य में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। पुराणों में से कुछ पुराणोां में सम्बन्धित उल्लेख उपलब्ध होता है। जैसे-ब्रह्मवैवर्त, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, देवी, स्कन्ध इत्यादि। ब्रह्मवैवर्त पुराण में शौनक जी कहते हैं कि-

विवृतं ब्रह्मकात्स्‍र्न्यं च कृष्णेन यत्र शौनक।
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः।।[1]

जिस पुराण में श्रीकृष्ण ने अपनी पूर्ण ब्रह्मरूपता को विवृत या प्रकट कर दिया है, अथवा जिसमें श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्त्व के विवर्तों या परिणामों का पूर्णतया वर्णन किया गया है, उसको पुराणवेत्ताओं ने ब्रह्मवैवर्त के नाम से अभिहित किया है। ब्रह्मवैवर्त शब्द का अर्थ है-ब्रह्मणो विवर्तः परिणामः ब्रह्मविवर्तः, ब्रह्म का विवर्त परिणाम। ब्रह्म का आद्य विवर्त प्रकृति है अतः ब्रह्मविवर्त शब्द का अर्थ प्रकृति होता है। ब्रह्मविवर्तस्य (प्रकृतेः) विवर्ताः (परिणामाः) यत्र प्रदर्श्यन्ते तत् पुराणम् ब्रह्मवैवर्तम्। प्रकृति के भिन्न-भिन्न परिणामों का जहाँ प्रतिपादन हो, वह पुराण ग्रन्थ ब्रह्मवैवर्त है। ब्रह्मवैवर्त के प्रकृतिखण्ड में प्रकृति के दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा श्रीराधा नामक मुख्य पाँच विवर्तों का वर्णन है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रधान लक्ष्य कृष्णचरित्र का विस्तृत रूप से वर्णन करना है। सृष्टि के अवसर पर परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दो रूपों में प्रकट होते हैं-प्रकृति और पुरूष। उनका दाहिना अंग पुरूष और बायाँ अंग प्रकृति होता है। वही मूल प्रकृति श्रीराधा है। ये ब्रह्मस्वरूपा नित्या और सनातनी है। फिर इनके पाँच रूप हो गये दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा। इस मूल-प्रकृति देवी के अंश, कला और कलांश भेद से अनेक रूप हैं। गंगा, तुलसी, मनसा, देवसेना, मंगलचण्डी, काली, पृथ्वी, स्वाहा तथा सम्पूर्ण दिव्य देवियाँ इन्हीं से प्रकट हुयी हैं। यहाँ तक की लोक में जितनी भी स्त्रियाँ हैं, वे सभी प्रकृति की कला के अंश की अंशरूपा ही हैं। इसलिए स्त्रियों के अपमान को प्रकृति का अपमान समझा जाता है—

"योषितामपमानेन प्रकृतेश्च पराभवः"।

ब्रह्मवैवर्तपुराण के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि यह पुराण श्रीराधा जी के महत्ता का प्रतिपादक है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में श्रीराधा जी के रहस्यमयी, महिमामयी, पूर्णब्रह्म की शक्ति का प्राणतत्त्व बताया गया है। वहाँ पर राधा जी ने यशोदा जी से अपने नाम की व्युत्पत्ति निम्नांकित तरीके से बतलाया है। एक व्युत्पत्ति के अनुसार 'राधा' शब्द में 'रा' विष्णु तथा 'धा' धात्री (माता या जननी) के अर्थ में प्रयुक्त है। इस प्रकार राधा को विष्णु की जननी, ईश्वरी या मूल-प्रकषति सिद्ध किया गया है—

राशब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु।
विश्वप्राणिषु विश्वेषु धा धात्री मातृवाचकः।।

धात्री माताहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी।
तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः।।[2]

इसी तरह एक अन्य स्थल पर राधा शब्द का अर्थ बतलाते हुए कहा गया है कि 'रा' शब्द दानवाचक है और 'धा' का अर्थ संसिद्ध अर्थात् (निर्वाण) है। इस प्रकार जो स्वयं निर्वाण दिलाने वाली हो वह राधा शब्द से अभिहित किया गया है -

''राधेत्येव च संसिद्धौ रकारोदानवाचकः।
स्वयं निर्वाणदात्री या सा राधा प्रकीर्तिता।।''[3]

इसी पुराण के ही इसी खण्ड 52वें अध्याय में श्रीराधा शब्द का एक और अर्थ बताते हुए कहा गया है कि 'रा' शब्द के उच्चारण मात्र से ही श्रीकृष्ण हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं और धा धातु के उच्चारण होते ही वे निश्चय ही तीव्रता से उच्चारणकर्ता भक्त के पीछे-पीछे दौड़ पड़ते है। यथा-

'रा' शब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवति माधवः।
'धा' शब्दोच्चारतः पश्चाद्धावत्येव ससंभ्रमः।।[4]

श्रीराधा के श्रीकृष्ण सम्बन्ध सूचक जितने नाम पुराणादि में प्राप्त होतें हैं, उतने नाम सम्भवतः अन्य किसी युगल अवतार के नहीं प्राप्त होते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में श्रीराधा सम्बन्ध सूचक श्रीकृष्ण की नामावली बहुत ही प्रेममयी रूप में वर्णित है-

राधाबन्धू राधिकात्मा राधिका जीवन स्वयम्।
राधिका सहचरी च राधामानस पूरकः।।
राधाधनो राधिकांगो राधिवकाशक्त मानसः।
राधा प्राणो राधिकेशो राधिका रमणः स्वयम्।।
राधिका चित्त चोरस्य राधा प्राणाधिकाः प्रभुः।।''[5]

राधा और श्रीकृष्ण की लीला से सम्पूर्ण ब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्म में राधा-कृष्ण का विशद् रूप से वर्णन मिलता है। श्रीराधा के ब्रज में अवतीर्ण होने का मूल कारण श्रीदामा द्वारा उन्हें श्राप दिया जाना है। एक बार श्रीदामा द्वारा पिता की प्रशंसा और माता की निन्दा सुनकर श्रीराधा जी ने श्रीदामा को शाप दिया कि तुम जिस प्रकार असुर देवों की निन्दा किया करते है, उसी भाँति मेरी निन्दा कर रहे हो इसलिए तुम असुर हो जाओ ओर गोलोक के वाहर जाकर आसुरी योनि में जन्म ग्रहण करो। इस प्रकार श्रीराधा जी की बात सुनकर श्रीदामा का भी होंठ फड़फड़ाने लगा उसने श्रीराधा जी को शाप दिया कि तुम भी मनुष्य योनि में जाओ। क्योंकि तुम्हारा क्रोध मनुष्य के ही समान है अतः मेरे शाप के कारण तुम्हें भूतल पर मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ेगा। पराशक्ति की छाया या कला द्वारा वहाँ भूतल में भूतल पर प्रकट होने पर मूर्ख लोग तुम्हें रायण वैश्य की पत्नी कहेगें, जो वृन्दावन में श्रीकृष्ण के अंश से समुत्पन्न होगा-

मानुष्या इन कोपस्ते तस्मात्त्वं मानुषी भुवि।
भविष्यसि न सन्देहो मया शप्ता त्वमम्बिके।।
छायया कलया वाऽपि परशक्त्या कलङ्किना।।
मूढा रायणपत्नीं त्वां वक्ष्यन्ति जगतीतलं
रायणः श्रीहरेरंशो वैश्यो वृन्दावने वने
भविष्यति महायोगी राधाशापेन गर्भजः[6]

श्रीराधा जी को नित्य विकारहीना, निर्गुण होते हुए भी गुण स्वरूपा और सर्वालंकार अलंकृता और उन्हीं को ही सबकी जन्मदात्री माना गया है–

तस्माद्या प्रकृति, राधिका, नित्यानिर्गुण सर्वालंकार शोभिता।
प्रशन्नाशेष, लावण्य, सुन्दरी अस्मद् जनानां जन्मदायिनी।।''[7]

इसी पुराण में ही श्रीराधा जी को आदि प्रकषति भी कहा गया है–

त्रिगुणात्मिका या सर्व शक्ति समन्विता
प्रस्थाने सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते।[8]

मूल-प्रकृति निर्विकार है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में श्रीकृष्ण जी को अपना अर्धांश और मूल प्रकृति कहा है–

'ममार्धांशस्वरूपस्त्वं मूल प्रकृतिरीश्वरी' इसी पुराण में भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधा जी से कहते हैं मैं तुम्हारे बिना जड़वत हूँ अर्थात् निष्क्रिय हूँ। जिस

प्रकार शिवा के बिना शिव शव के समान जड़वत है–

"त्वया बिना जडश्चाद्यं सर्वत्र न च शक्तिमान्।"[9]

ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्मखण्ड के 30वें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण की पंच प्रकृतियों में मुख्य प्रकृति श्रीराधा जी को कहा गया है जो परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को प्राणों की अधिष्ठात्री देवी और और श्रीकृष्ण को सबसे प्यारी है। संसार की जितनी भी स्त्रियाँ हैं। वे सब प्रकृति के अंश-अशांश से उत्पन्न या प्रकट होती है। वहीं यह भी उल्लेख है कि स्त्री जाति की पूजा और सम्मान प्रकृति देवी का सम्मान और पूजा है। जो नारी जाति का चाहे अपनी या दूसरी की नारी हो असम्मान करता है, प्रकृति उसे अपना सम्मान समझती है। श्रीराधा श्रीकृष्ण से अभिन्न अर्थात् ब्रह्मस्वरूपा है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में यह भी उल्लेख है कि श्रीराधा जी और श्रीकृष्ण एक दूसरे के परस्पर आराधना करते हैं–

राधा भजति श्रीकृष्णं स च तां च परस्परम्।
उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च।।[10]

वहीं पर यह भी उल्लेख है कि श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्रियतमा तथा श्रीराधा ही श्रीकृष्ण को प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं -

प्राणाधिष्ठा तृदेवी च तस्यैव परस्मनः।
भजत्वं परब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्।।[11]

इसी पुराण के श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में ही श्रीराधा जी ने अपने नाम की व्युत्पत्ति यशोदा जी से बताते हुए कहती हैं–

"तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुराबुधैः"

इसी ब्रह्मवैवर्त पुराण के 29वें अध्याय में राधा के साथ कृष्ण का वन विहार वर्णित है। 52-54वें अध्याय पर्यन्त कृष्ण के अन्तर्धान होने से समस्त गोपियों के साथ राधा का रोदन एवं दुःख निवेदन, पुनः कृष्ण का प्राकट्य होना और राधा के साथ विहार करना, राधा के नाम के प्रथम उच्चारण करने का कारण तथा कृष्ण द्वारा राधा का श्रृंगार वर्णन किया गया हैं इसी पुराण के प्रकृति खण्ड के प्रथम अध्याय में राधा जी की महिमा के सम्बन्ध में यह उल्लेख है कि ब्रह्मा जी ने 60 हजार वर्ष तक श्रीराधा जी का दर्शन करने के लिए तपस्या किया किन्तु उनका दर्शन नहीं कर सके। भगवान् की कृपा से, आशीर्वाद से जब राधा जी का वृन्दावन में वृषभानु की पुत्री के रूप में जन्म हुआ तब ब्रह्मा जी को उनके दर्शन प्राप्त हुए–

यत्रैव राधिकाख्यानमत्यपूर्वं सुन्धोपमम्।।[12]

ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृतिखण्ड में भगवान् श्रीकृष्ण अपने को त्रितत्त्व कहा है और यह भी कहा है कि मैं कारण भी हूँ, कार्य भी हूँ और उनसे परे भी हूँ। साथ ही अपने आद्या भक्ति श्रीराधा जी को भी उन्होंने त्रितत्त्वरूपिणी माना है–

'त्रितत्त्व रूपिणी सापि राधिक मम वल्लभा"

इसी प्रकार श्रीराधा भी कार्य, कारण रूपा और इससे परे परत्व रूप होकर भगवच्छक्ति के रूप में सर्वव्याप्त है-

"प्रकृतेः परा इवां सापि मच्छक्ति रूपिणी"

इसलिए जब भगवान् श्रीकश्ष्ण का भूतल पर अवतरण होता है तब वे भी श्रीकृष्ण के साथ गोलोक से मनुजाकृति में अवतीर्ण होकर भगवान् की लीला सम्पादन में सहचरी होती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भगवान् श्रीकृष्ण ने बलराम जी से कहा भी है कि तुम्हारे साथ और उसके (राधा) के साथ देवदोहियों के विनाश के लिए मैं अवरित होता हूँ -

"त्वया सार्द्धं तया साद्र्धं नाशाय देवता द्रुहाम्"

इसी को आधार मानकर वल्लभ मत में श्रीराधा जी को स्वकीया माना गया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं इस पुराण का प्रधान लक्ष्य कृष्णचरित्र का विस्तृत वर्णन है। सृष्टि के अवसर पर परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दो रूपों में प्रकट हो गये-प्रकृति और पुरूष। उनका दाहिना अंश पुरूष और बायाँ अंश प्रकृति हुआ। वही मूल प्रकृति श्रीराधा हुयी। ये ब्रह्मस्वरूपा

नित्या और सनातनी है। फिर इनके पाँच रूप हो गये-(1) दुर्गा (2) महालक्ष्मी (3) सरस्वती (4) सावित्री (5) और श्रीराधा। इस मूल-प्रकृति देवी के ही अंश, कला, कलांश भेद से अनेक रूप हैं। गंगा, तुलसी, मनसा, देवसेना, काली तथा सम्पूर्ण दिव्य देवियाँ इन्हीं से प्रकट हुयी हैं। यहाँ तक कि लोक में जितनी स्त्रियां है, वे सभी इन्हीं प्रकृति देवी के अंशरूपा है। इसलिए स्त्रियों का अपमान प्रकृति का अपमान समझना चाहिए। इस प्रकार उपक्रम, उपसंहार तथा अभ्यास आदि तात्पर्य-निर्णय के साधनानुसार इस ग्रन्थ का यह सिद्धान्त स्वीकार किया जा सकता है कि श्रीराधा ही परम तत्त्व है। त्याग, तपस्या, वैराग्य, धर्म, सदाचार आदि के सदुपदेश तो इसमें कूट-कूट कर भरे हैं। सर्वप्रथम एक सुप्रसिद्ध मन्त्र देखिए जिसे प्रत्येक कर्मकाण्डी कार्यारम्भ में पढ़कर अपने ऊपर जल छिड़कता है-

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।
ब्रह्मखण्ड17/17

सन्दर्भ

1. ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मखण्ड 2
2. ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृ0ज0 खण्ड 111/57-58
3. वही, 16/226
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृ0ज0 खण्ड 52/39
5. वही, 13/77-79
6. वही, 3/103-105
7. ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृ0ज0 खण्ड 55-87
8. वही, 17
9. वही
10. वही, 48/38-47
11. वही, 48/48
12. ब्रह्मवैवर्त पुराण, प्रकृतिखण्ड अध्याय, 1/25

राधा-कृष्ण साहित्य का वैश्विक प्रचार-प्रसार (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

डॉ0 (श्रीमती) दीपमाला मिश्रा

प्रवक्ता-समाजशास्त्र
सर्वेश्वरी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धनुहाँ, नैनी, इलाहाबाद
E-mail : deepmalamishra28@gmail.com

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिशदिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।

गोविन्द के नाम से विख्यात कृष्ण ही परमेश्वर है। उनका शरीर सच्चिदानन्द है। वे सबों के मूल स्रोत है। उनका कोई अन्य स्रोत नहीं है एवं वे समस्त कारणों के मूल कारण हैं। (ब्रह्म-संहिता 5. 1)[1]

कृष्णेन आराध्यते इति राधा
"कृष्णं समाराधयति सदा इति राधिका गान्धर्वीति व्ययदिश्यते।"[2]

अर्थात श्री कृष्ण के द्वारा जो आधारित है, वही राधा है तथा श्री कृष्ण की सदा आराधना करने वाली राधिका है।

भौतिक जीवन में हम अपने मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने की कोशिश करते है, लेकिन मन आज्ञा देता है, "अपनी इन्द्रियों द्वारा इस प्रकार से सुख भोग करो" और हम अपनी इन्द्रियों से सुख भोग कर रहे हैं। भौतिक जीवन का अर्थ है इन्द्रियतृप्ति। भगवान कृष्ण इतने दयालु हैं कि उन्होंने हमें अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए पूर्ण स्वतन्त्रा दे रखी हैं। श्रीमदभगवत गीता में यह कहा गया है कि कृष्ण परम भोक्ता हैं हमारे अन्दर सुख भोंगने की प्रवृत्ति का कारण भी यहीं है कि यह मूलरूप से भगवान कृष्ण में विद्यमान है।

वेदान्त सूत्र के अनसुार सभी वस्तुओं का उद्भव कृष्ण से होता है। इन्द्रिय-तृप्ति की इच्छा भी भगवान से मिलती है। इन्द्रियों की पूर्ण तृप्ति है-कृष्ण और राधारानी। युवक एवं युवतियां भी उसी प्रकार अपनी इन्द्रियों से आनन्द प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं, और यह प्रेरणा उनके अन्दर भगवान कृष्ण से प्राप्त हो रही है क्योंकि हम कृष्ण के अभिन्न अंश हैं। हमारे अन्दर इन्द्रिय-तृप्ति की इच्छा का गुण विद्यमान है। परन्तु हम इसका उपयोग भौतिक जगत् में करना चाहते है। इसलिए हम पथ भ्रष्ट हैं। अगर हम राधे-कृष्ण के साथ साहचर्य करें तब पूर्ण माना जायेगा। उदाहरण के लिए—यदि कोई स्वादिष्ट रसगुल्ला या अच्छा व्यंजन हो तो अंगुलियाँ उसे उठा लेती हैं पर ये उसका आनन्द नहीं ले सकतीं। पहले यह भोजन पेट में पहुंचना होगा तब अंगुलियाँ भी आनन्द ले सकती हैं। उसी प्रकार हम सीधे इन्द्रिय सुख नहीं पा सकते हैं परन्तु जब हम राधा-कृष्ण जी का साहचर्य करते हैं और जब महाभावस्वरूप राधा-कृष्ण आनन्दित होतें हैं, तब हम भी आनन्द का अनुभव कर सकते हैं, हमारी वास्तविक स्थिति यही हैं।[3]

भारतीय समाज में तो श्रीराधेकृष्ण की चर्चा होती है परन्तु पाश्चात्य देशों में जब कोई व्यक्ति कृष्ण जैसी पुस्तक के आवरण पृष्ठ को देखता है,

तो वह तुरन्त पूछता है ''कृष्ण कौन है? कृष्ण के साथ किशोरी कौन है'' आदि-आदि। इसका उत्तर है कि ये भगवान कृष्ण हैं ये सर्वाकर्षक हैं। हम अनुभव के आधार पर यह देखते है कि कोई भी व्यक्ति सम्पत्ति, शक्ति, यश, सौन्दर्य, ज्ञान तथा त्याग के कारण आकर्षक बनता है। जिसके पास में छहों ऐश्वर्य एक साथ हों और असीम मात्रा में हों, तो यह समझना चाहिए कि वह परम-भगवान है। भगवान के ये ऐश्वर्य परम वेदाचार्य पराशर मुनि द्वारा वर्णित' किये गये हैं। ऐसे भगवान कृष्ण है। इसी प्रकार हम राधारानी की भी चर्चा करते हैं जो एक दूसरे के ही स्वरूप हैं—श्रीमती राधारानी वैष्णव समाज में विशेष कर निम्बार्क सम्प्रदाय, पुष्टि मार्ग और गौड़ीय सम्प्रदाय में बहुत ही सम्मानित हैं। राधारानी परम सत्य हैं और श्रीकृष्ण की स्वरूपा हैं। श्रीकृष्ण और श्री राधा में कोई भेद नहीं है वे दोनों एक ही हैं। समाज में लीला करने के लिए दो रूपों में हमें परिलक्षित होते हैं और आज भी लोगों के मन में भ्रम पैदा है। कि राधा-कृष्ण दोनो लोगों का अलग-अलग स्वरूप है जो कि एक ही रूप में हमे दर्शन देते है जिसे मानव देख नहीं पाता है। श्री कृष्ण रसराज हैं, रस के मूर्तिमान स्वरूप हैं। भगवान् के अनगिनत लीलाएँ एवं अवतार हैं। उनमें से श्रीकृष्ण ही काल के रूप में विद्यमान हैं। श्री राधारानी भाव स्वरूपा हैं—महाभावमयी/भाव का अर्थ भक्ति से है । इस संसार में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में जितनी भी भक्ति है, ये वास्तव में राधारानी का ही स्वरूप है। भक्तों के हृदय में श्री गोपांगनाओं के हृदय'में या लक्ष्मी आदि देवियों के हृदय में जो भी श्रीकृष्ण के प्रति भाव है, वह श्री राधिका के महाभाव का सूक्ष्म रूप दिखायी देता है। राधारानी महाभावस्वरूपा है और श्रीकृष्ण रसराज हैं, सर्वश्रेष्ठ रस एवं अप्राकृत रस।

श्रीकृष्ण मनुष्य से प्रेम-भावों का विनिमय विभिन्न सम्बधों के रूप में करते हैं, जिन्हें रस कहा जाता है! मूलतः वारह प्रकार के प्रेम सम्बन्ध को बताया गया है श्री कृष्ण से परम अज्ञात के रूप में, परमस्वामी के रूप में, परममित्र के रूप में, परम शिशु के रूप में, परम प्रेमी के रूप में, प्रेम किया जा सकता है। ये पाँच मूल प्रेम रस हैं। श्रीकृष्ण से सात परोक्ष सम्बन्धों में भी प्रेम किया जा सकता है, जो इन पाँच मूल सम्बंधों से भिन्न हैं। किन्तु यदि कोई अपनी सुप्त प्रेम भावना को श्रीकृष्ण में केन्द्रित करता है, तो उसका जीवन सफल बन जाता हैं यह कोई कल्पना नहीं हैं, अपितु सत्य है, जो व्यावहारिक रूप से पालन करके अनुभव किया जा सकता है। मनुष्य के जीवन पर कृष्ण प्रेम का जो प्रभाव पड़ता है उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति की जा सकती है।[4]

श्रीराधाकृष्ण का प्रेम भाव स्वरूप हमारे जीवन की शाश्वत निधि के रूप में, क्योंकि यह प्रत्येक परिस्थिति मे अविनाशी है। आपके भारत देश में ही नहीं पाश्चात्य देशों में कृष्ण आन्दोलन श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुपम उपहार है। वहाँ की हताश तथा निराश युवा पीढ़ी मात्र राधा-कृष्ण की ओर अपनी प्रेमासक्ति मोड़ने के परिणाम का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकती है। विद्वानों एवं ऋषिमुनियों के मतानुसार कोई अपने जीवन में कितना ही कठोर तप तथा यज्ञ क्यों न करे, किन्तु यदि वह कृष्ण के प्रति अपने सुप्त प्रेम को जाग्रत करने में सफल नहीं होता तो सारी तपस्याएँ व्यर्थ मानी जाती है, किन्तु वह कृष्ण के प्रति प्रेम जाग्रत कर लेता है तो फिर कठोर तपस्या करना व्यर्थ है। मानव जीवन के लिए इससे सरल विधि या माध्यम दूसरा कोई नहीं हो सकता। इसका लाभ यह होगा कि वे क्रमशः आध्यात्मिक स्तर को प्राप्त कर सकेगें। इस भौतिक परिवेश में जो भी राधाकृष्ण कथा श्रवण करता है या रूचि लेता है जैसा कि भागवत में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं को किसी अधिकारी से विनीत भाव से सुनता है तो वह भगवान की दिव्य प्रेमभक्ति को प्राप्त करता है और उसके हृदय रूपी काम वासना का भौतिक रोग पूर्णतया विलुप्त हो जाता है। दूसरे अर्थ में हम कह सकते है कि भौतिक विषयी जीवन का निराकरण भी हो जाएगा। भगवतगीता में कहा गया है कि वे (कृष्ण) मानव समाज में अपने यथारूप में प्रकट होकर प्रत्येक व्यक्ति को अपने दिव्य धाम में वापस चलने के लिए आमंत्रित करते हैं। बहुत से महान

आचार्यों, भक्तों और सत्कर्मियों ने श्री राधारानी का गुणगान किया है। इनके अनेक नाम हैं वृन्दावन में राधा, वेदोक्त में लीला, ब्रज में श्यामा आदि नामों से प्रसिद्ध है।

पद्मपुराण और ब्रहमवैवर्तपुराण में राधाकृष्ण के स्वरूपों का विविध रूप दिखलायी पड़ते हैं। इन्हीं पुराणों में कहा गया है कि **राधा के समान न तो स्त्री है और न कृष्ण के समान कोई पुरूष है।** राधा आद्या प्रकृति है, श्री कृष्ण की बल्लभा हैं। यह संसार का विलक्षण युगल छवि है। भगवान श्री राधाकृष्ण के अद्वितीय प्रेम का वर्णन करना कठिन है। क्योंकि उसको व्यक्त करने के लिए शब्द होने चाहिए जो प्राप्त नहीं है केवल हम भक्ति भावना के माध्यम से ही अनुभव कर सकते है। वेद, पुराणों में बतायी गयी कुछ घटनाओं के माध्यम से उनके रासलीला, प्रेमाभाव को समझा जा सकता है। अनेक विद्वान, कवि, लेखक भक्तगण आदि के माध्यम से हमें स्रोत उपलब्ध होते गए है। अथर्ववेदीयपनिषद के प्रस्तुत श्लोक का जो उल्लेख किया गया है।

यस्या रेणु पादयोर्विश्वभर्ता, धरते मूर्ध्नि रहसि प्रेमयुक्तः।
स्त्रस्तवेणुः कवरीं न स्मरेद्य, तल्लीनः कृष्णः क्रीतक्तं नमामः।।[5]

(राधिकातापनीयोपनिषद् - श्लोक-4)

वह श्रीराधाकृष्ण के प्रेम का ही द्योतक हैं। महाकवि जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' में वर्णित राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन अद्भुत है इनमें नायक और नायिका की भूमिका में प्रदर्शित किया गया है। 'पंचतंत्र' महाकवि भास के 'बालचरित' आदि में ब्रज-लीला का वर्णन मिलता है। शास्त्रों में कहा गया है कि राधा के बिना श्याम तेज की अर्चना करने वाले व्यक्ति को पातकी कहा गया है।

श्री राधाकृष्ण प्रेम स्वरूपों में सबसे महत्वपूर्ण प्रसंग उद्यव जी परमआनन्द के साथ भ्रमर गीत के प्रसंग में कई श्लोक गाए हैं उद्यव जी कहते हैं–

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा।
भेजुर्मुकुन्दयदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।[6]

- श्रीमद भागवतम्, 10, 47, 61

प्रस्तुत श्लोक के उल्लेख से ज्ञात होता है कि जब उद्यव जी गोपांगनाओं के महाभाव को देखा तब वे उनके चरणों की धूलि में लोटने लगे जिससे उनका जीवन सफल हो जाए। जिन गोपांगनाओं की चरण धूलि पाकर उद्यव जी अपने-आप को धन्य मानते हैं, उन गोपांगनाओं की मुकुट मणि है– श्रीराधारानी।

सर्वमानय आचार्य आदि शंकराचार्य जी ने श्री राधारानी और गोपियों के विषय में सुंदर-सुंदर रचनाएं लिखी हैं। सभी सम्प्रदाय के लोग, सारे विद्वान अन्य आचार्यों, कवियों में गोपियो ंऔर राधारानी के भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। श्री राधारानी की महिमा एवं श्री राधारानी क्या है? उनका भाव श्रीकृष्ण के प्रति क्या है? उनका वर्णन करने में ब्रहमा जी और शेषनाग भी असमर्थ है। ऐसी परम महिमामयी श्री राधारानी का प्राकट्य दिवस है - राधाष्टमी।

श्री राधाकृष्ण का प्रेमभाव श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भी देखने को मिलती हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं ही कृष्ण है : परन्तु भाव उन्होनें राधारानी का लिया है और ये गौर वर्ण या प्रीत वर्ण के हो गए होगें। तप्त कांचन गौरांग। शिक्षाष्टक के इस श्लोक में श्री राधारानी के भाव और चैतन्य महाप्रभु के श्री कृष्ण के भाव का पता लगता है श्री चैतन्य चरितामृत[7] (अन्त्य लीला 20, 48) के इस श्लोक द्वारा राधारानी के भाव को इस तरह दर्शाया गया हैं श्री राधारानी कहती है कि 'हे सखी'। मैं कृष्ण के चरणकमल की दासी हूँ - आमि कृष्ण-पददासी तेंहो रससुखराशि। मैं जानती हूं कि श्यामसुंदर रसराज है, आनन्द के धनीभूत स्वरूप हैं उनके साथ होना, उनकी सेवा करना, उनसे प्रेम पाना यही सबसे बड़ा सुख है। **आलिंगिया करे आत्मसाथ - वे मेरा आलिंगन करें, अपने साथ मुझे रखें, किबा ना देय दरशन-** अथवा वे मुझे दर्शन न दें। जारेन मोर तनुमन - हमारे तन और मन को विरह की ज्वाला में

जला दें, तबु तेहों मोर प्राणनाथ - फिर भी श्री कृष्ण ही मेरे प्राणों के नाथ रहेगें''।

श्री राधाकृष्ण के प्रेम संबंध जो कि निःस्वार्थ भाव का है जैसा कि राधारानी के इस प्रसंग से मालूम होता है - सखी, मेरा सुख क्या है? कृष्ण की सेवा में ही मेरा सुख हैं **कृष्णेर सुख संगमे**-कृष्ण का सुख मेरो संगम में है। कृष्ण मोरे 'कान्ता' करि, कहे मोरे 'प्राणेश्वरी' मोर हय 'दासी' अभिमान कृष्ण मुझे कहते है - ''श्री राधे! तुम मुझे बहुत प्रिय हो। तुम मेरी प्राणेश्वरी हो लेकिन मेरे मन मे यही रहता है कि मैं कृष्ण की दासी हूँ। मैं यही चाहती हू किवे सुखी रहें।'' (श्री चैतन्य चरितामृत, अन्त्य-लीला 20, 59) इस विषय में राधारानी उदाहरण देती है[8]-

कुष्ठिविप्रेर रमणी, पतिव्रता शिरोमणि,
पति लागि कैला वेश्यार सेवा।
स्तम्भिल सूर्येर गति, जीयाइल मृत पति,
तुष्टकैल मुख्य तिन देवा।
(श्रीचैतन्य चरितामृत, अन्त्य-लीला 20,57)

यह एक पौराणिक कथा है इसमें एक ब्राह्मण की पत्नी जो पतिव्रता थी। अपने पति को सुखी करना ही उसके जीवन का ध्येय था। वह कुष्ठ रोग से ग्रसित था । उसकी कामना थी कि सुंदर वेश्या का संग करें। राधारानी कहती है - उस पतिव्रता स्त्री ने उस वेश्या के पास विनय किया कि तुम हमारे पति की इच्छा को पूरा करो लेकिन वेश्या ने मना कर दिया। फिर भी वह नित्य वेश्या की सेवा मे लगी रही और उसने (वेश्या) कहा कि मैं नहीं जाऊँगी। तुम अपने पति को लेकर आना और रात में। उसी समय मार्कण्डेय मुनि को राजा ने सूली पर चढ़ा दिया था। ब्राह्मणी अपने पति को लिए रास्ते में जा रही थी तभी पैर मुनि को लग गया। महात्मा बोले 'कौन'' है?' वे क्रोधित हो गये और उन्होंने कहा कि ''सूर्य उदय होते ही ये मर जाएगा।'' पत्नी का हृदय कांप गया। उसनेकहा कि - ''यदि स्वप्न में भी मेरा मन किसी पुरूष में न गया हो, अपने पति में ही रचा-बसा हो, इन्हीं को सुखी करने का संकल्प लेते हुए और कुछ भी मेरे मन में न हो, तो आज से सूर्योदय नहीं होगा।'' इस प्रकार महात्मा और पतिव्रता स्त्री का तपबल दोनों भारी पड़ रहा था। ऐसे में भगवान ने प्रार्थना सुनी और उसके पति को जीवनदान मिला। इसी प्रकार राधारानी ने अपने कृष्ण को किसी भी प्रकार से सुखी रखना चाहती है।

भगवान अपने भक्तों से बहुत प्रेम करते हैं। कभी-कभी वे बैकुण्ठ से अवतार लेते है। नित्य लीला में वे हमेशा ही लक्ष्मी जी के साथ रहते हैं। नित्य लीला में वे हमेशा ही लक्ष्मी जी के साथ रहते हैं। लक्ष्मी जी हमेशा ही उनकी सेवा करती दिखाई पड़ती है। क्योंकि उनका सुख इसी में है और वह अपने आप को भगवान की प्रिया नहीं मानती बल्कि भगवान की दासी मानती है। कृष्ण भले ही हमसे प्रेम करें, हमकों प्रिया कहें, प्राणेश्वरी कहें, लेकिन सेवा करना ही मेरा भाव रहता है ऐसी राधारानी के विषय में कहा गया है। एक बार एक सखी ने राधा जी से प्रश्न किया कि कभी-कभी तुम क्यों कृष्ण को कठोर बोलती हो। श्री राधारानी कहती है कि -''मैं कभी-कभी क्रोध करती हूँ और क्रोध में ताड़न-भर्त्सन भी करती हूँ क्योंकि सखी! मैं जानती हूं कि इससे हमारे श्यामसुंदर अधिक सुख का अनुभव करते है'' और भगवान मान को पसंद करते हैं। मान सेवा से प्रेम में वृद्धि होती है लेकिन एक बार राधारानी ने महामान किया था और भगवान मनाते-मनाते बिल्कुल हार गए। सूरदास जी ने पद लिखा है-

श्री राधे, तबसो तव गुना नाही भयो।

अर्थात्-''जितना परिश्रम तुम्हें मनाने में लगा उतना परिश्रम कभी भी नहीं हुआ है। मैने हिरण्याक्ष वध, पृथ्वी को रसातल से लाया, हिरण्यकशिपु को मारकर प्रहलाद की रक्षा की, मंथन करते समय मैनें मंदरांचल उठाया। ये सब कर्म करते समय इतना परिश्रम नही हुआ जितना आपको (राधारानी) को मनाने में परिश्रम करना पड़ा।''

गोस्वामी तुलसीदास जी रचित दोहावली में चातक का प्रेम का उदाहरण आता है। तुलसीदास जी कहते है -

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख।।[9]

चातक के मन में कभी भी मेघ के प्रति दोष दृष्टि नहीं होती। तुलसीदास जी कहते हैं कि वास्तव में प्रेम पयोधि का न कोई नाप है न जोख। इसी प्रकार एक प्रकरण से चातक का प्रेम दर्शाया गया है–

बध्यो बधिक पर्यो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेमपट मरतहुँ लगी न खोंच।।[10]

एक बार शिकारी ने चातक को अपने बाण का निशाना बना दिया। जिसके लगते ही चातक श्री गंगा जी जैसे पवित्र नदी में गिर पड़ा। परन्तु गिरते समय चातक ने-जल उलटि उठाई चोंच-अपनी चोंच को उल्टा उठाकर आकाश की ओर कर लिया कि कहीं गंगा जी का पानी भीतर न चला जाए। तुलसीदास जी कहते हैं कि मरते दम तक चातक के प्रेम -रूपी कपड़े पर खरोंच भी नहीं आई। राधारानी का प्रेम चातक की तरह है, यह कहना अपराध हो जाएगा। श्री राधारानी का प्रेम तो अद्वितीय है, उसकी उपमा किसी से नहीं दी जा सकती, परन्तु इस संसार में उनके प्रेम को समझने के लिए चातक का उदाहरण दिया जा रहा है। इस प्रकार श्री राधासुधानिधि में श्री राधेकृष्ण के विषय में बहुत सी सुंदर बातें कही गयी है। जिसका श्रवण करने मात्र से ही मानव का जीवन आनन्दित हो जाता है। इस प्रसंग को पढ़कर श्यामसुंदर एवं राधिका जी के साहचर्य का अनुभव प्रतीत होता है -

वैदग्ध्यसिन्धुरनुराग - रसैकसिन्धु
र्वात्सल्यसिन्धुरतिसान्द्रकृपैकसिन्धुः।
लावण्यसिन्धुरमृतच्छविरूपसिन्धुः
श्रीराधिका स्फुरतु में हृदि केलिसिन्धुः।।
- श्री राधासुधानिधि -18

इस प्रकार हम कह सकते है कि भौतिक जगत में भगवान अपनी लीलाओं का आदान-प्रदान करते है जिससे मानव जीवन आज भी लाभान्वित होता है और अपने जन्म-मरण के इस चक्रव्यूह से मुक्ति चाहता है। क्योंकि आज भी व्यक्ति आध्यात्मिक स्तर से ही जीवन निर्वाह करने में सुख की अनुभूति प्राप्त होती हैं। मनुष्य कितना भी वैश्विक जगत् से जुड़ा हो लेकिन आज भी वह भीतर से परम्परावादी ही है। स्वयं का मानना है कि श्री राधाकृष्ण महाप्रेममन्त्र का साहचर्य होना नितान्त आवश्यक है इसी में सम्पूर्ण जगत् का कल्याण भी है।

संदर्भ

1. ब्रहम-संहिता - 5.1
2. भारतीय वाङ्मय में श्री राधा - आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ- 20-21
3. कृष्णभावनामृत सर्वोन्तम योग - पद्धति, पृ 23-24, 1984, श्रीश्रीमद् ए0सी0 भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद।
4. श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का संक्षिप्त अध्ययन उद्धृत श्रीकृष्ण-श्रीव्यासदेवकृत। (च्टप)
5. राधिकातापनीयोपनिषद् - श्लोक-4
6. श्रीमद्भागवतम- 10, 47, 61
7. श्री चैतन्य चरितामृत अन्त्यलीला 20, 48
8. वही- 20, 57
9. श्री गोस्वामी तुलसीदास जी रचित दोहावली - चातक का प्रेम।
10. वही - चातक का प्रेम।
11. श्री राधासुधानिधि - 18

राधा-कृष्ण के प्रेम का आध्यात्मिक स्वरूप रसखान रचित पदों के आलोक में

डा. ज्योति मिश्रा

सहायक आचार्य
संगीत एवं प्रदर्शन, कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

हिन्दी के कृष्ण भक्त तथा रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों में रसखान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। रसखान को रस की खान कहा गया है। इनके काव्य में, भक्ति व श्रृंगार रस दोनों प्रधानता से मिलते हैं।

रसखान कृष्ण भक्त हैं और उनके सगुण और निर्गुण दोनों रूपों के प्रति श्रद्धावनत हैं। रसखान के सगुण कृष्ण वे सारी लीलाएं करते हैं, जो कृष्ण लीला में प्रचलित रही हैं। यथा बाललीला, रासलीला, फागलीला, कुंजलीला आदि। उन्होंने काव्य की सीमित परिधि में इन असीमित लीलाओं को बखूबी बांधा है।

रसखान का अपने अराध्य के प्रति इतना गम्भीर लगाव है कि वे प्रत्येक स्थिति में उनका सानिध्य चाहते हैं। चाहे इसके लिये उन्हें कुछ भी परिणाम सहना पड़े

कृष्ण लीलायें:-

लीला का सामान्य अर्थ खेल है। कृष्ण-लीला से मुराद कृष्ण(प्रभु) का खेल। इसी खेल को सृष्टि माना जाता है। सृजन एवं ध्वंस को व्यापकता के आधार पर सृष्टि कहा जाता है। कृष्ण लीला और आनंदवाद एक-दूसरे से संबंधित है, जिसने लीला को पहचान लिया है, उसने आनंद धाम को पहुँच कर हरि लीला के दर्शन कर लिये। रसखान चूँकि प्रेम के स्वछंद गायक थे इसलिए इन लीलाओं में उन्होंने प्रेम की अभिव्यक्ति भगवान श्री कृष्ण को आधार मान कर की है।

यह अलग बात है कि रसखान की लीलाओं की व्याख्या दर्शन न हो, परंतु इन्होंने इसकों अपना कर आज तक भारतीय समाज को एक बेशकीमती तोहफा दिया है। कृष्ण की अनेक लीलाओं के दर्शन रसखान ने अपने काव्य में कराये हैं। इन लीलाओं में कई स्थानों पर आध्यात्मिक झलक भी पायी जाती है।

बाल लीलाएँ:-

रसखान ने कृष्ण के बाल-लीला संबंधी कुछ पदों की रचना की हैं, किंतु उनके पद कृष्ण के भक्त जनों के कंठहार बने हुये हैं। अधिकतर कृष्ण भक्त इन पदों को प्रायः गाया करते हैं -

काग के भाग बड़े सजनी हरि
हाथ सौं ले गयो माखन रोटी।

कृष्ण के मानवीय स्वरूप ने रसखान को अधिक प्रभावित किया, लेकिन रसखान ने अपने पदों में उनके ब्रहमत्व को खास स्थान दिया है।

दूसरें पदों में रसखान ने श्रीकृष्ण को खेलते हुये सुंदर बालक के रूप में चिन्हित किया है–

धूरि भरे अति शोभित श्यामजू तैसी,
बनी सिरसुंदर चोटी।
खेलत खात फिरे अंगना पग पैजनी

बाजति पीरि कछोटी।
वा छवि को रसखान विलोकत बरात,
काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सौं
ले गयो माखन रोटी।।

रसखान के बाल-लीला से संबंध रखने वाले पद बहुत ही सुंदर एवं भावपूर्ण हैं। कृष्ण धूल में भी आंगन में खेलते-खाते हुये फिर रहें है। घुंघरू बज रहें हैं। हाथ में माखन रोटी है। कौआ आकर कृष्ण जी के हाथ से रोटी लेकर उड़ जाता है। काग की यह आम आदत है कि वह बच्चों के हाथों से कुछ छीन कर भाग जाता है। इस दृश्य को रसखान ने हृदय स्पर्शी बना दिया।

रास-लीलाः-

श्री कृष्ण जी की लीलाओं में रासलीला का आध्यात्मिक महत्व है। रासलीला मानसिक भावना के साथ-साथ लौकिक धरातल पर अनुकरणात्मक होकर दृश्य-लीला का रूप धारण कर लेती है। अतः इसके प्रभाव की परिधि अन्य लीलाओं की अपेक्षा अधिक व्यापक हो जाती है। ''रास'' शब्द का संसर्ग रहस्य शब्द से भी है, जो एकांत आनंद का सूचक है। रासलीला के स्वरूप का विचार प्राचीन काल से ही होता आया है। लीला के समस्त रूप भगवान का ही प्रतिपादन करते हैं। भागवत पुराण में रासलीला का विस्तार से विवेचन मिलता है।

रसखान ने रासलीला का वर्णन कई पदों में किया है। इनका रास वर्णन परंपरागत रास वर्णन से एकदम भिन्न है। रसखान के रास-लीला पदों में राधा को वह महत्व नही मिलता है जो वैष्णव कवियों ने अपने पदों में राधा को दिया है। रसखान ने अपने पदों में मुरली को भी वह प्रतिष्ठा नही दिया है, जो सूरदास और दूसरे कवियों ने दिया है।

लै लै नाम सबनिकौ टेरे, मुरली-धुनी सब ही के ने रें।

हालांकि सूरदास की गोपियों के समान रसखान की गोपियाँ भी ध्वनि सुनकर बेचैन हो जाती हैं और यह अनुभव करती हैं कि कृष्ण उन्हें मुरली के माध्यम से बुला रहें है—

अधर रस प्याइ बाँसुरी बजाई
मेरो नाम गाइ हाइ जादू कियो मन में।
नटखट नवल सुघर नंदनंदन ने,
करि के अचैत चेत हरि कै जातन में।

रास की सूचना मिलते ही गोपियाँ विवश हो जाती है। उन्हें मार्ग की कोई बाधा रोक नही पाती है। ये तो शीत की चिंता भी नही करती हैं और चल देती हैं—

कीगै कहा जुपै लोग चवाब सदा करिबो करि हैं बृज मारो।
सीत न रोकत राखत कागु सुगावत ताहिरी गाँव हारो।
आवरी सीरी करैं अंतिया रसखान धनै धन भाग हमारौ।
आवत हे फिरि आज बन्यो वह राति के रास को नायन हारौ।

गोपियाँ एक-दूसरे से कह रही है कि वंशीवट के तट पर कृष्ण ने रास रचाया है। कोई भी सुंदर भाव उनसे नही बच सका। गोपियों ने कुल मर्यादा बनाये रखने का प्रण किया था किंतु वे रास रचाये जाने की सूचना पाकर उसे देखे बिना नहीं रह सकी और अपने प्रण से विचलित हो गयी—

आज भटू मुरली बट के तट के नंद के साँवरे रास रच्योरी।
नैननि सैननि बैननि सो नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्योरी।
जद्यपि राखन को कुलकानि सबैं ब्रजबालन प्रान पच्योरी।
तथापि व रसखानि के हाथ बिकानि को अंत लच्यो पै लच्योरी।

दानलीलाः-

कृष्ण राधा को रास्ते में छेड़ते है और दही तथा माखन दान में माँगते है। राधा को कृष्ण धमकाते है, किंतु राधा पर उसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता

है। राधा के ताने और बातें सुनकर कृष्ण थक जाते हैं, किंतु राधा अपनी जगह पर अटल रहती हैं और कृष्ण को बुरा-भला सुनाती हैं-

नो लख गाय सुनी हम नंद के तापर दूध दही न अघाने।
माँगत भीख फिरौ बन ही बन झूठि ही बातन के मन माने।
और की नारिज के मुख जोवत लाज गहो कछू होई सयाने।
जाहु भले जु भले धर जाहु चले बस जाहु बिंद्रावन जानो।

रसखान का दान लीला साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि का है। उनके दान लीला की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें राधा और कृष्ण के संवाद को स्वाभाविक और सरल अंदाज से पेश किया गया है।

एक दिन राधा और कृष्ण वन को मिलते हैं। रसखान को दोनों के मिलने में तीनों लोकों के दर्शन होते हैं–

लाडली लाल लर्तृ लखिसै अलि पुन्जनि कुन्जनि में छवि गाढ़ी।
उपजी ज्यौं बिजुरी सो जुरी चहुँ गूजरी केलिकलासम काढ़ी।
त्यौं रसखानि न जानि परै सुखमा तिहुँ लोकन की अति बाढ़ी।
बालन लाल लिये बिहरें, छहरें बर मोर पखी सिर ठाढ़ी।

अंत में रसखान राधा-कृष्ण का विवाह करा देते है। रसखान यहाँ वही सब करते हैं, जो एक कृष्ण भक्त को करना चाहिये। उनके इस स्वरूप को देखकर ब्रजवासी भी सुख का अनुभव करते हैं–

मोर के चंदन मोर बन्यौ दिन दूलह हे अली नंद को नंद।
श्री कृषयानुसुता दुलही दिन जोरी बनी विधवा सुखकंदन।
आवै कहयो न कुछु रसखानि री दोऊ फंदे छवि प्रेम के फंदन।
जाहि बिलोकैं सबै सुख पावत ये ब्रज जीवन है दुःख ढ़ंढ़न।

प्रेम तथा भक्ति के क्षेत्र मे भी रसखान ने प्रेम का विषद् और व्यापक चित्र्ग किया है। राधा और कृष्ण प्रेम-वाटिका के मासी मासिन हैं। प्रेम का मार्ग कमल तंतू के समान नाजुक और अतिधार के समान कठिन है। अत्यंत सीधा भी है और टेढ़ा भी है। बिना प्रेमानुभूति के आनंद का अनुभव नहीं होता। बिना प्रेम का बीज हृदय में नही उपजता है। ज्ञान, कर्म, उपासना सब अहंकार के मूल हैं। बिना प्रेम के दृढ़ निश्चय नही होता। रसखान द्वारा प्रतिपादित प्रेम आदर्शों से अनुप्रेरित है।

रसखान ने राधा-कृष्ण के प्रेम का स्पश्ट रूप में चित्र्ग किया है। प्रेम की परिभाषा, पहचान, प्रेम का प्रभाव, प्रेम प्रति के साधन एवं प्रेम के साधन एवं प्रेम की परिकाष्ठता प्रेम वाटिका में दिखाई पड़ता है। रराखान द्वारा प्रतिपादित प्रेम लौकिक प्रेम से बहुत ऊँचा है। रसखान ने 52 दोहों में प्रेम का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह पूर्णतया मौलिक हैं।

संदर्भ सूची-

1. www.ignca.nic.in/coilnet/raskhn. htm
2. www.excellup. com/classmine/ nine hindi/ raskhan. aspx

राधा-कृष्ण से जुड़े सम्प्रदाय एवं उनकी मान्यताएँ

रज्जन द्विवेदी

शोध छात्रा

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय

चित्रकूट सतना म.प्र.

वैष्णव भक्ति में राधा का समावेश किस युग में हुआ यह निर्विवादद रूप से नहीं कहा जा सकता। राधा का जो रूप आज भक्ति-सम्प्रदायों में दृष्टिगत होता है वही एक सहस्त्र वर्ष पूर्व रहा होगा यह कहना भी कठिन है। कृष्ण भक्ति शाखा के प्रत्येक वैष्णव सम्प्रदाय में राधा की किसी न किसी रूप में स्वीकृति है। अपनी-अपनी मान्यता के अनुकूल राधा के स्वरूप और शक्ति की कल्पना की गयी है। आभीर संस्कृति के कान्ह और राही को कृष्ण और राधा मानने वाले विद्वानों के पास भी इस बात का कोई प्रबल प्रमाण नहीं है कि राधा और कृष्ण का प्राचीनतम रूप वही है राधा के उद्भवविषयक इतने अधिक पौराणिक आख्यान उपलब्ध होते है कि उनके आधार पर यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि राधा का यथार्थ स्वरूप प्रारम्भ में क्या रहा होगा? जो लोग राधा को सामान्य नारी मानते हैं वे भी उसके वंश, परिवार, गोत्र, जन्मस्थान आदि का कोई ऐतिहासिक विवरण नहीं देते। इसलिए इन विषम परिस्थितियों में अनुसंधाता के लिए यह विषय बड़े महत्व का हो जाता है। यदि राधा को केवल कल्पित प्रेमदेवी ही मान लिया जाय और उसका सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक परम्परा से संयुक्त न किया जाय तब भी उस देवी के प्रारम्भिक (मूल) उपासकों की भावना की छानबीन करना आवश्यक होगा। यही कारण है कि राधा के स्वरूप और अस्तित्व का प्रश्न साहित्य और धर्म के क्षेत्र में प्रवेश काल से ही जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। यदि राधा का नाम भागवत पुराण में उपलब्ध हो गया होता तो निश्चित ही वहीं से इस परम्परा की कड़ी का संधान प्रारम्भ हो जाता किन्तु राधा नाम के अभाव ने पहेली को और अधिक जटिल बना दिया है। इसी कारण प्रत्येक सम्प्रदाय में अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार राधा का स्वरूप वर्णित और प्रतिपादित किया गया है। किन्तु उनके आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि यथार्थ रूप में राधा क्या है और राधा-भाव का आदि-उद्भव कैसे हुआ? ऐतिहासिक आधार पर तथ्य निर्णय करने वाले विद्वानों ने राधा को लोक-मानस की सृष्टि कहकर ऐतिह्य के जाल से बाहर करने की चेष्टा की है। लोक-मानस की सृष्टि मान लेने पर भी यह तो निर्णय करना ही होगा कि किस काल में लोक-मानस ने यह सृष्टि की और इसका आधार क्या था? वैष्णव सम्प्रदायों में राधा उसी प्रकार अनादि और अनन्त है जिस प्रकार भगवान कृष्ण। दोनों का रूप भी एक ही है अतः इतिहास के कालक्रम की कसौटी पर परखने का वहाँ कोई आग्रह है ही नहीं। किन्तु जिज्ञासु विद्यार्थी के इस प्रवाह में न बहकर तथ्य निर्णय के लिए उत्सुक बना रहता है इस औत्सुक्यशमन के लिए कुछ विद्वानों ने वेदों में राधा का अस्तित्व ढूँढने का प्रयत्न किया और राधा शब्द का संधान करके ही छोड़ा। ऋग्वेद में 'स्त्रोत्रंराधानां पते'1 इस पद में 'राधानां' शब्द को साथ जोड़ने का साहस इसी प्रकार की चेष्टा का

फल है। यद्यपि यहाँ राधा शब्द नामवाचक संज्ञा नहीं है फिर भी बाह्य शब्दसाम्य के आधार पर यह खोज की गई। इसी प्रकार दो-एक और मंत्रों का सम्बन्ध भी- अर्थ का घोर अनर्थ करके-राधा से जोड़ा गया है। किन्तु किसी विद्वान् ने इस प्रकार के असंगत एवं अनर्थ-पूर्ण प्रयत्नों की सराहना नहीं की और न किसी ने वैदिक वाङ्मय में राधा को स्वीकार ही किया। यथार्थ में वैदिक साहित्य में कहीं भी राधा शब्द (नामवाचक संज्ञा शब्द) उपलब्ध नहीं होता। उस काल में राधा की कल्पना हुई ही नहीं थी। धन, अन्न, पूजा, नक्षत्र आदि अर्थो में राधा शब्द का प्रयोग हुआ है; राधा नामक किसी आराध्या देवी के अर्थ में कहीं राधा शब्द नहीं है।

उद्‌भव सम्बन्धी मान्यताएँ

राधा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सर्वाधिक प्रचलित मत यह है कि आर्य जाति की देवी न होकर आभीर जाति की इष्टदेवी थी। आर्यो का जब आभीर जाति के प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित हुआ तब इन्होंने आभीरों की आराध्या इष्टदेवी को भी अपनी पूजा-अर्चना में इष्टदेवी के रूप में ग्रहण कर लिया। सर भण्डारकर ने इस मत की पुष्टि की है और वे लिखते है कि सीरिया से आये हुए आभीरों की इष्टदेवी राधा को आर्यो ने स्वीकार किया। आभीरों के यहाँ बस जाने पर उनके बालगोपाल सात्वत धर्म के उपदेष्टा भगवान् कृष्ण के साथ सम्मिलित हो गये और कुछ शताब्दियों पश्चात् आभीरों की इष्टदेवी राधा की आर्यजाति में स्वीकृत कर ली गयी।[2] यही कारण है कि प्राचीन ग्रन्थों में बालगोपाल लीला तो मिलती है पर राधा का वर्णन कहीं नहीं मिलता। भण्डारकर की इस धारणा के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। आभीर जाति को सीरिया से इस देश में आया हुआ भी नहीं माना जाता। आभीर भारतीय ही थे, किन्तु वे अपनी उपासना-पद्धति की मौलिकता के कारण आर्यो से पृथक् समझे जाते है।

भक्ति-क्षेत्र में राधा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दो संकेत प्रस्तुत किये है। उनकी कल्पना है कि 'राधा आभीर जाति की प्रेमदेवी रही होगी, जिनका सम्बन्ध बालकृष्ण से रहा होगा। आरम्भ में बालकृष्ण का वासुदेव कृष्ण से एकीकरण हुआ होगा इसीलिए आर्य-ग्रन्थों में राधा का नामोल्लेख नहीं है। पीछे बालकृष्ण की प्रधानता होने पर इस बालक देवता की सारी बातें आभीरों से ले ली गयी होंगी। और इस प्रकार राधा की प्रधानता हो गयी होगी।'' यह कल्पना भण्डारकर के मत की पुष्टिमात्र ही है। आभीरों को इसमें विदेशी नही कहा गया है, यही अन्तर है।

दूसरी कल्पना अनुमानाश्रित है। आपका अनुमान है कि ''राधा इसी देश की आर्य-जाति की प्रेमदेवी रही होगी। बाद में आर्यो में इसकी प्रधानता होने पर कृष्ण के साथ भक्ति के लिए इसका सम्बन्ध जोड़ दिया गया।'' इसका तात्पर्य यही है कि सामान्य देवी राधा को कालान्तर में विशेष स्थान मिल गया।1

दार्शनिक दृष्टि से राधा-भाव का विवेचन प्रस्तुत करने वाले विद्वान् सांख्य शास्त्र के पुरूष-प्रकृतिवाद को राधाकृष्ण का आधार मानते हैं। पुरूष और प्रकृति के स्वरूप को विवृत करने के लिए कृष्ण (पुरूष) और राधा (प्रकृति) की कल्पना की गयी। डॉ0 मुशीराम शर्मा कहते हैं कि ''हमारी सम्मति में इस नवीन वैष्णव धर्म की राधा अपने मूल रूप में सांख्य की प्रकृति ही है। ब्रह्म वैवर्त्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में लिखा है- 'ममार्द्धष स्वरूपात्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी'।

तंत्रमत के शिव-भक्ति के स्वरूपाख्यान के मूल में भी सांख्य शास्त्र का यह पुरूष - प्रकृतिवाद अन्तर्निहित है ऐसा मानने वाले विद्वान् राधाकृष्ण भाव का सम्बन्ध तंत्रमत के विकास की एक परवर्ती कड़ी के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार राधा का विकास शक्ति की कल्पना में निहित है। शैव तथा शाक्त तांत्रिकों के प्रभाव से राधा को कृष्ण के साथ स्थापित किया गया और कालान्तर में उसका वैष्णव भावना के अनुसार विभिन्न सम्प्रदायों में विकास हुआ। इसीकारण कतिपय विद्वान् जयदेव के गीतगोविन्द पर भी सहजयान का तथा तंत्रशक्ति का प्रभाव स्वीकार करते हैं। राधा के शक्तितत्व या

आह्लादिनी शक्ति मानना स्पष्ट ही तंत्रवाद का प्रभाव सिद्ध करता है।

वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में पुरूषतत्व तथा स्त्रीतत्व का प्रतिपादन करते हुए कृष्णत्व एवं राधात्व का उल्लेख हुआ है। कृष्ण और राधा क्रमशः रस और रति है। प्रत्येक पुरूष और स्त्री को अपने स्वरूप बोध के लिए प्रारम्भ में अपने को कृष्ण और राधा मानकर लौकिक रति में लीन होना अनिवार्य है। क्रमशः यही लौकिक कामरति अलौकिक प्रेम में परिणत होकर आनन्द की सृष्टि करने वाली होती है। उस आनन्दोपलब्धि के क्षणों में पुरूष कृष्णत्व और स्त्री राधात्व में निमज्जित होकर 'स्वरूप' का रहस्य समझते हैं। सहजिया सम्प्रदाय लौकिक काम की भूमि पर अलौकिक प्रेम की कल्पना करके आगे बढ़ता है अतः उसकी प्रारम्भिक सभी साधन-क्रियाएँ बाह्य श्रृंगार या कामलीला पर स्थिर हैं। उनमें अश्लील श्रृंगार की प्रधानता देखकर विकृत भावना उत्पन्न होना सहज ही है। बौद्ध सहजयान सम्प्रदाय से यौगिक क्रियाएँ ग्रहण करने के कारण इनमें भोग-काम की प्रधानता हुई। इसीकारण परकीया प्रेम की श्रेष्ठतम समझा गया। डॉ0 हरवंश लाल शर्मा ने 'सूर और उनका साहित्य' ग्रन्थ में लिखा है कि ''युगल-उपासना पर सहज मत का भी पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है। इसका ज्ञान हमें बंगाल में सहजिया सम्प्रदया के सिद्धान्तों से हो सकता है जिसके अनुसार चौरासी कोस का ब्रजमण्डल स्त्री के चौरासी अंगुल के शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और ब्रज की पंचकोशी पंचाँगुल परिमित अंग विशेष है।'' किन्तु प्रकृत प्रसंग विचारणीय है कि क्या तांत्रिक, बौद्ध या सहजिया राधा भाव की उत्पत्ति में प्रथम और प्रमुख कारण है? अथवा इनको भी राधा की पूर्व-कल्पना का आभास मिला था जिसका अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार इन्होंने उपयोग किया। हमारी धारणा है कि राधा का कोई न कोई रूप इन्हें मिला होगा जिसका इन सम्प्रदायों में अपनी मान्यतानुसार उपयोग हुआ। कुछ विद्वान् राधा की उत्पत्ति के मूल मे तात्विक दृष्टि से शक्तिवाद का प्रभाव मानते हैं। डॉ0 शशिभूषण दास गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'श्री राधा का क्रम विकास' में लिखा है- ''राधावाद का बीज भारतीय सामान्य शक्तिवाद में है; वही सामान्य शक्तिवाद वैष्णव धर्म और दर्शन से भिन्न-भिन्न प्रकार से युक्त होकर भिन्न-भिन्न युगों और भिन्न-भिन्न देशों में विचित्रा परिणति को प्राप्त हुआ है। उसी क्रम परिणति की एक विशेष अभिव्यक्ति ही राधावाद है। जो थीं शुद्ध शक्तिरूपिणी क्रम परिणति के प्रवाह के अन्दर से उन्होंने आकर रूप परिग्रह किया है परम प्रेम-रूपिणी मूर्ति में।

''भारतवर्ष शक्तिवाद का ही देश है। सृष्टि तत्व का अवलम्बन करके एक अस्पष्ट आदि देवी की कल्पना दूसरे देशों में भी देखी जाती है और इस आदि देवी में मामृत्व का आरोप करके देवी कल्पना अन्यत्र भी कुछ-कुछ मिलती है। लेकिन विश्व-प्रसूति इस एक विश्व-शक्ति को भारतवर्ष ने अपने धर्म जीवन में जिस प्रकार ग्रहण किया है ऐसा संसार में दूसरी जगह नहीं दिखायी देता।

डॉ0 दास गुप्त महोदय ने श्री सूक्त और श्री देवी या लक्ष्मीदेवी का प्राचीन इतिवृत्त वर्णित करके उनमें भी शक्ति तत्व की स्थापना की है और वहाँ भी राधाभाव का संधान किया है। पाँचरात्र और कश्मीर शैवर्शन में भी शक्ति तत्व का आपने अनुशीलन कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि शक्ति तत्व के साथ भी राधाभाव को जोड़ा गया है और शक्ति की मूल कल्पना तक राधा को ले जाने का प्रयास हुआ है। शक्ति के रूप में राधा को मानने वाले सभी सम्प्रदायों में यह क्रम-विकास दृष्टिगत हो सकता है किन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि माधुर्य भक्ति की अस्वीकार करने वाले वैष्णव सम्प्रदायों में शक्ति और शक्तिमान का सम्बन्ध कहाँ तक गृहीत हुआ है और राधा को शुद्ध शक्ति का स्थान किस-किस सम्प्रदाय में प्राप्त है?

शक्ति मत मे वामा पूजा का प्राधान्य है। नर-तत्व (शिव) का ग्रहण साधन रूप में ही किया जाता है। त्रिपुर सुन्दरी की कल्पना में स्त्रीतत्व को मुख्य स्थान देने का भी यही अभिप्राय है। प्रत्येक स्त्री अपने को त्रिपुर-सुन्दरी ही समझकर व्यवहार करे ऐसी मान्यता के कारण शक्तिमत में स्त्रीतत्व

की स्थिति इस तथ्य की द्योतक है कि उसके बिना साधना का पथ प्रशस्त नहीं हो सकता। वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में जहाँ जीवात्मा को सखी भाव से उपासना करने का उपदेश है, वहाँ इस मत का प्रभाव ढूँढ निकालना कठिन नहीं है। कदाचित् इसी कारण अनेक विद्वानों ने राधाकृष्ण की भक्ति पर शक्तिमान का प्रभाव देखा है। कुछ अंग्रेज लेखकों ने तो ''वैष्णवाइट शक्ति'' शब्द द्वारा अपना अभिमत प्रकट भी किया है।

काश्मीरीय शैवदर्शन के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज ने कल्याण के शिवांक में प्रेम-मार्गीय भक्ति-साधना पर उक्त दर्शन का प्रभाव बताया है। सांसारिक अभिमान निवृत्ति के अनेक उपायों के रहते हुए भी प्रेम को ही एकमात्र उपाय बताते हुए आपने इसे शैवदर्शन के आधार पर परवर्ती प्रेमलक्षणा-भक्ति पर घटित किया है। सूफियों के प्रेमदर्शन का मूलाधार भी आपने यहीं स्थापित किया है। इस सम्बन्ध में हम उनके लेख का अंश उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं- ''ऊपर जो तीन सिद्धान्त लिखे गये है उनका स्वरूप आगम शास्त्रों में विस्तारपूर्वक वर्णित है। तीन मार्ग ही त्रिविध उपास्य स्वरूप है। क्रमशः आणवोपाय, सम्भवोपाय और शाक्तोपाय के साथ इनका कुछ अंश में सादृय जान पड़ता है। दूसरा सिद्धान्त भारत में बहुत दिनों का परिचित मत है। इस मत में भगवान् सौंदर्यस्वरूप और चिरसुन्दर हैं। आनन्दस्वरूप और आनन्दमय हैं। सूफी लोग नररूप में इसकी पराकाष्ठा देख पाते हैं। जिन लोगों ने सूफी लोगों की काव्य-ग्रन्थ-माला का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि सूफी सुन्दर नरमूर्ति की उपासना, ध्यान और सेवा करना ही परमानन्द प्राप्ति का साधन मानते हैं। इतना ही नहीं, वे कहते हैं कि मूर्त किशोरावस्था ही तो रसस्फूर्ति में सहायक होती है। किसी के मत में रमणीमूर्ति श्रेष्ठ है। परन्तु सूफी लोग कहते हैं कि इस वस्तु में पुरुष-प्रकृति भेद नहीं है। वह अभेद तत्व है। यही क्यों, उनके गजल, रूबाइयात, मसनवी आदि में वर्णन मिलता है, उससे किशोर वयस्क पुरूष किंवा किशोर वयस्का स्त्री के प्रसंग का निर्णय नहीं किया जा सकता। आगम भी क्या ठीक बात नहीं कहते? नटनानन्दनाथ या चिद्वल्ली या कामकला की टीका में कहते हैं कि जिस प्रकार कोई अति सुन्दर राजा अपने सामने के दर्पण में अपने ही प्रतिबिम्ब को देखकर उस प्रतिबिम्ब को 'मैं' समझता है, परमेश्वर भी इसी प्रकार अपने ही अधीन आत्मशक्ति को दो 'देख' मैं पूर्व हूं इस प्रकार आत्मस्वरूप को जानते हैं। यही पूर्णहंता है। इसी प्रकार परम शिव के संग से पराशक्ति का स्वान्तस्थ प्रपंच उनसे निर्मित होता है। इसी का नाम विश्व है। सचमुच भगवान् अपने रूप को देखकर आप ही मुग्ध है। सौंदर्य का स्वभाव ही यही है। श्री चैतन्य चरितामृत में आया है-

'सब हेरि आपनाए कृष्णेर आगे चत्मकार आलिंगिते मने उसे काम।'

यह चत्मकार ही पूर्णहंता चत्मकार है। काम या प्रेम इसी का प्रकाश है। यही शिव शक्ति सम्मिलन का प्रयोजक और कार्य-स्वरूप है- आदि रस या श्रृंगार रस है। विश्व सृष्टि के मूल में ही यह रस तत्व प्रतिष्ठित है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जो पैंतीस और छत्तीस तत्व अथवा शक्ति और हैं- त्रिपुरा सिद्धान्त में वही कामेश्वर और कामेश्वरी है। और गौड़ीय वैष्णव दर्शन मे वही श्रीकृष्ण और राधा है। शिवशक्ति, कामेश्वर, कामेश्वरी, कृष्ण राधाा एक और अभिन्न हैं। यही चरम वस्तु त्रिपुरा मत में सुन्दरी है। अथवा त्रिपुर-सुन्दरी में भी यही बात कही गयी है।

'नित्य किशोर एवासौ भगवानन्तकान्तक'

उपर्युक्त उद्धरण में गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में स्वीकृत राधाकृष्ण उपासना का सम्बन्ध काश्मीरीय शैवदर्शन की शक्ति-पूजा के साथ स्थापित किया गया है। राधा और कृष्ण के स्वरूप में भेद होने पर भी कृष्ण भक्ति के सभी सम्प्रदायों की आधारभूत मान्यता में अन्तर नहीं है अतः यह कहा जा सकता है कि राधा की कल्पना में, हो सकता है कि शाक्तमत का भी प्रभाव रहा हो। किन्तु यह उपपति कल्पना पर ही आश्रित मानी जायगी।

कुछ विद्वानों ने बौद्धो के ब्रजयानी शाखा के तांत्रिक मत की स्त्रीसाधना से राधा की उत्पत्ति बतायी है, जो आंशिक प्रभाव-साम्य होते हुए भी स्वीकार्य नहीं हो सकती। सिद्धसाधना को राधा की उत्पत्ति का मूल मानने वाले यह भूल जाते है कि सिद्ध-दर्शन में जिस कायासाधना का उपदेश है वह स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूप में भोगवृत्ति पर आश्रित है। सिद्धों की कायासाधना यौगिक प्रक्रिया का रूपान्तर था जो मर्यादावादी आर्य पुरूषों द्वारा स्वीकृत नहीं हुआ। सिद्धों की रहस्यात्मक प्रवृत्ति, उलटवासियाँ, गूढ़ शब्द-योजना आदि की उत्पत्ति या राधाकृष्ण केलि को सिद्धों की देन नहीं कहा जा सकता। सिद्धों में निर्गुण बाद के साथ अज्ञेयवाद भी प्रचलित था जो वैष्णव धर्म का कभी अंग नहीं बना। राधाकृष्ण की उपासना में श्रृंगारमूलक भावनाओं के कारण इसे सिद्धों की देन कहना एकांगी एवं पक्षतापूर्ण निर्णय है। हाँ, परवर्ती राधाभाव को भोग-श्रृंगार से लिप्त करने में आंशिक प्रभाव माना जा सकता है किन्तु राधा की उत्पत्ति में सिद्धों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई योग नहीं है।

ज्योतिषशास्त्र और राधातत्व

अनुसंधान और अविष्कार के इस वैज्ञानिक युग में राधातत्व का सम्पूर्ण विस्तार ज्योतिषशास्त्र में खोज निकालने का प्रयत्न हुआ है। ज्योतिषाशास्त्रानुसार ही राधा और तद्विशयक विविध नामों की कल्पना की गई है ऐसा कुछ विद्वानों का मतह[8]। श्री योगेशचन्द्र राय ने कृष्ण को सूर्य का अवतार सिद्ध करते हुए राधातत्व को भी ज्योतिष का ही प्रपंच बताया है। श्रीकृष्ण सूर्य हैं तथा ब्रज के अन्य गोपगण तारे हैं। श्रीकृष्ण की समस्त ब्रज- लीलाओ को भी नक्षत्रमण्डल पर घटित करने की चेष्टा की गयी है।

ज्योतिषशास्त्र के राधातत्व पर चरितार्थ करने से पूर्व विष्णु शब्द को सूर्यवाचक मानना चाहिए। उसके बाद प्रातः मध्यान्ह और सन्ध्या यह सूर्य की तीन गतियां है। संचरण शील सूर्य इन तीनों कालों ममें होता हुआ त्रिपाद बनता है। विष्णु के वामनावतार में त्रिपाद की कल्पना इसी सूर्य की त्रिकालगति पर अवस्थित कही जाती है। वैदिक वाङ्मय में सूर्य के अर्थ में विष्णु शब्द का प्रचुर प्रयोग उपलब्ध होता है। कृष्ण विष्णु के अवतार हैं- विष्णु स्वरूप हैं अतः वे सूर्य स्थानीय हैं। राधा का वर्णन श्रीकृष्ण के साथ रासलीला प्रसंग में आता है। यह लीला नक्षत्र मण्डल की सम्पूर्ण गति है। राधा विशाखा और अनुराधा नामक दो नक्षत्रों का वर्णन आता है जिसमें अनुराधा का तात्पर्य है राधा के पीछे आने वाला। अतः विशाखा यथार्थ में राधा का पर्यायवाची ही है। अथर्ववेद में 'राधोविशाखे' पद में राधा का विशाखा अर्थ में स्पष्ट ही वर्णन है। ज्योतिषशास्त्र को राधातत्व पर चरितार्थ करने वाले विद्वानों की तो यही कल्पना है कि पहले राधा नाम ही प्रचलित रहा होगा किन्तु कालान्तर में किसी विशेष प्रयोजन से राधा के स्थान पर विशाखा नाम व्यवहार मे आने लगा। कार्तिक मास की पूर्णिमा को सूर्य (कृष्ण) विशाखा (राधा) नक्षत्र में ठहरता है। उस दिन सूर्य तथा अन्य नक्षत्र एक साथ दृष्टिगत नहीं होते। सूर्य की किरणों में ही नक्षत्र समा जाते है। इस प्रकार रासलीला के दिन कृष्ण राधा के साथ विहार करते हैं, यह भाव की ज्योतिषशास्त्रनुसार घट जाता है।

आलवार भक्तों द्वारा राधा का संकेत

राधाभाव के क्रमिक विकास में दक्षिण के आलवार भक्तों के योगदान पर भी इस प्रसंग में विचार करना उपयुक्त प्रतीत होता है। वैष्णव आलवार भक्तों का काल ईसा की पांचवीं शती से नवम् शती के मध्य का स्थिर किया जाता है। इन आलवारों में श्रीकृष्ण को ही पुरूष स्वीकार करके पूज्य देवता माना जाता था। भक्तगण अपने को नायिका (स्त्री) मानते थे। इन भक्तों के चार हजार पद श्रीकृष्णलीला से सम्बद्ध पाये जाते हैं। इनमें श्रीकृष्ण तथा एक प्रमुख गोपी का वर्णन है। कल्पना की जाती है कि यह प्रमुख गोपी राधा ही है। जिस प्रमुख गोपी का वर्णन है उसका नाम 'नाप्पिनाइ' है, राधा नाम कहीं नहीं है। 'नाप्पिनाइ' एक फूल का नाम है। इसके अतिरिक्त

'कुरवैकुटु' नामक तामिल नृत्य विशेष का भी इसी लीला-प्रसंग में उल्लेख है। श्रीकृष्ण इस नृत्य में स्वयं भाग लेते थे। यह नृत्य श्रीकृष्ण की रसलीला का समकक्ष प्रतीत होता है। अतः पाँचवीं-छठी शताब्दी में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दक्षिण के आलवार वैष्णवों में रासलीला और राधाकृष्ण युगल केलि विनोद का कोई न कोई रूप विद्यमान था जो परवर्ती काल में और व्यक्त तथा स्पष्ट होता गया। राधा का साक्षात् वर्णन आलवारों ने नहीं किया है।

शिलालेखों पर राधा

ईस्वी सन् के 200 वर्ष पूर्व के किसी शिलालेख पर राधा या कृष्ण के चरित्र अथवा लीला सम्बन्धी कोई चित्र उत्कीर्ण हुए नहीं मिलते। ईसा की चौथी शताब्दी में आस-पास श्रीकृष्ण चरित सम्बन्धी शिलालेख या प्रस्तर मर्तियाँ मिलनी प्रारम्भ होती है। मन्दसौर के मन्दिर के द्वार के दो स्तम्भों पर जो दृष्य उत्कीर्णित है उसे कृष्ण चरित से सम्बद्ध गोवर्द्धन लीला का दृष्य कहा जाता है। उसी पर माखन लीला, शकटासुर लीला, धेनुक लीला, कालियनाग लीला के दृष्य भी मिलते है जो इस बात के प्रमाण है कि श्रीकृष्ण चरित की ये लीलाएँ जनता में प्रचार पा चुकी थी तभी प्रस्तरों पर अंकित की गयीं।

बंगाल के पहाड़पुर की खुदाई में जो मूर्ति मिली है उसे भी श्रीकृष्ण लीला से सम्बद्ध बताया जाता है। डॉ0 सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के मतानुसार श्रीकृष्ण के साथ जा गोपी उत्कीर्ण की गयी है वह और कोई नहीं राधा है और पाँचवीं शताब्दी में राधा के साथ श्रीकृष्ण चरित व्यापक होने लगा था। यदि मूर्ति वाली गोपी को राधा ही माना जाय तो राधा पूजन का काल भी पीछे ले जाना होगा जो बहुत असंगत एवं अयुक्त नहीं है। महाबलीपुर में भी गोवर्द्धन लीला का उत्कीर्णित प्रस्तर खण्ड मिला है जो यह बताता है कि गोवर्द्धनलीला का व्यापक रूप से प्रचार हो गया था। बादामी की गुफाओं में श्रीकृष्ण लीलाओं का प्राचुर्य से अंकन हुआ है जिनका काल ईसा की सातवीं शती है।

संस्कृत साहित्य में राधा

राधा का विस्तृत विवेचन तो पुराणों में ही मिलता है किन्तु पुराणों से पहले राधा शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में तथा श्रीकृष्ण के साथ संयुक्त देवी के रूप में साहित्यिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। उनमें से कतिपय प्रसिद्ध ग्रन्थों का संकेत उपस्थित करना हम इस प्रसंग में आवश्यक समझते है। प्राकृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गाहा सतसई' (गाथा सप्तशती) में कृष्ण की ब्रजलीला और गोपियों का वर्णन है। गाहा सतसई ईसा की प्रथम शताब्दी की रचना है। पाँचवी शताब्दी में रचित 'पंचतन्त्र' में भी राधा का संधान किया गया है। इन दोनों ग्रन्थों के उद्धरण स्पष्ट नहीं है केवल नामोल्लेख मात्र है। किन्तु छानबीन से यही सिद्ध होता है कि ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी से पूर्व राधा का नाम जन सामान्य में समझना चाहिए। उसका राधाभक्ति-तत्व से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। गाहा सतसई के जिस पद में यह आता है कि तुमने (कृष्ण ने) अपने मुख के श्वास से राधिका के कपोल पर लगे हुए थूलिकणों को दूर कर के अन्य गोपियों के महत्व को न्यून कर दिया है- (गाथा सप्तशती 1-29) वह पद अनेक विद्वानों की दृष्टि में प्रक्षिप्त है। और उसका काल चौथी पाँचवीं शती माना जाता है। श्रीकृष्ण की ब्रजलीला का वर्णन सतसई में तीन स्थलों पर हुआ है।

धनन्जय के 'दशरूपक' में भी राधा का नाम आता है और राधा के प्रणय-कोप का इसमें संकेत है।

'केनालीकमिदं तवाद्य कथितं राधे मुधा तात्यसि'

अमृतवती नामक एक स्त्री का उल्लेख करते हुए राधा का नारायण के प्रति आकृष्ट न होने का वर्णन किया है। दसवीं शताब्दी के 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' में भी राधा सम्बन्धी अनेक श्लोकों का संग्रह मिलता है। अतः यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि दसवीं शताब्दी में राधा नाम अनेक रूपों में साहित्य में प्रविष्ट हो गया था।

क्षेमेन्द्र ने अपने 'दशावतारचरित' में राधा का वर्णन करते हुए श्रृंगारपरक भाव को अभिव्यक्त किया है जो इस तथ्य का प्रमाण है कि इस काल में श्रीकृष्ण और राधा के वर्णन प्रसंगों में प्रेम के व्यापक रूप में दोनों का उल्लेख होने लगा था।

गीतिगोविन्द में राधा

राधा का विषद वर्णन प्रस्तुत करने वाले कवियों में गीत-गोविन्दकार जयदेव का नाम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यथार्थ में राधा को काव्य के माध्यम से भक्ति क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का आद्य श्रेय जयदेव को ही प्राप्त है। जयदेव ने जिस राधा का वर्णन प्रस्तुत किया है वह साम्प्रदायिक दृष्टि से किस कोटि में आंती है यह निर्णय करना कठिन है। जयदेव ने राधा का वर्णन केवल काव्यानन्द के लिए न करके हरिस्मरण के लिए भी किया था अतः यह तो निश्चित रूप से मानना होगा कि उस काल में राधा का भक्ति क्षेत्र में किसी न किसी रूप में पदार्पण हो चुका था। तभी तो जयदेव अपने गीतों के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

यदि हरिस्मरणेसरसंमनो, यदि विलासकलासु कुतूहम्। मधुरकोमलकान्तपदावलीं श्रृणु तदा जयेदवसरस्वतीम्।।

गीतगोविन्द काव्य में राधा के रूप-सौन्दर्य-वर्णन पर कवि का ध्यान आदि से अन्त तक सतत बना रहा है। बारह सर्ग के इस मधुर काव्य का ध्येय राधाकृष्ण की भक्ति का वह रूप प्रस्तुत करना है जो श्रृंगारमयी भावना से परिपूर्ण होने के कारण सहदय जन को यमुना तट के निकुंजों में सम्पन्न होने वाली राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं का आनन्द दे सके। जयदेव ने राधा को शक्ति या महालक्ष्मी का कोई रूप नहीं दिया। जयदेव के काव्य में राधा प्रेमिका-नायिका रूप में ही पाठक के समक्ष आती है। दह ऐसी प्रेमिका है जो दक्षिण नायक कृष्ण के चरित्र को भलीभाँति जानती हुई भी अपने हृदय के समस्त अनुराग और आकर्षण से उसे प्यार करती है, उसके लिए उन्मत्त की भाँति यमुना के पुलिन कुँजों में घूमती-फिरती है। उसके मन में लोकलाज से उत्पन्न संकोच नहीं है। प्रगल्भा राधा शील की रक्षा के लिए प्रयत्नशील न होकर प्रेम पाने को उत्तुक है। विरह की दाहक घड़ियों मे वह उस नायिका के समान आचरण करती है जो अपने चारों ओर के वातावरण से निरस्त होकर विप्रलम्भ की अभिव्यक्ति में अश्रु-प्रवाह का आश्रय लेकर मान, मनुहार, विरह, आक्रोष अनुनय सभी भावों का प्रदर्शन करती है।

पुराण साहित्य में राधा

राधाभक्ति का प्रादुर्भाव किसी भी युग में हुआ हो किन्तु उसका विषद व्यापक प्रचार पुराणों द्वारा ही स्वीकार करना होगा। संस्कृत साहित्य के काव्य, व्याकरण, कथाा-आख्यान आदि में राधा का उल्लेख होने पर भी उसका स्वरूपाख्यान एवं सर्वांगीण वर्णन नहीं हो सका था। जयदेव को छोड़कर अन्य किसी कवि ने राधा को अपने काव्य का आधार बनाकर रचना नहीं की थी। इतना ही नहीं, राधा के आध्यात्मिक या दार्शनिक स्वरूप का वर्णन भी पुराणों से पहले नहीं मिलता। राधा के उद्भव और विकास की जैसी परिपूर्ण कथाएँ पुराणों में मिलती है वैसी अन्यत्र नहीं है अतः राधा के स्वरूपाख्यान में पुराणों का सर्वाधिक योग है। विष्णु की शक्ति के रूप में राधा के विविध रूपों का वर्णन पुराणों से ही प्रारम्भ हुआ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 मुंशीराम शर्मा - भारतीय साधना और सूर साहित्य पृष्ठ संख्या 164
2. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी - सूर साहित्य पृष्ठ संख्या 16, 17
3. डॉ0 शशीभूषण दास गुप्ता - राधा का क्रम विकास पृष्ठ संख्या 3
4. पं0 रामचन्द्र शुक्ला - हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या 178
5. डॉ0 हरवंशलाल शर्मा - सूर और उनका साहित्य पृष्ठ संख्या 269

मध्यकालीन संगीत शैलियों में राधा कृष्ण

डॉ. नमिता यादव

एसोसियेट प्रोफेसर (संगीत गायन)

अपने व्यक्तित्व के आयाम विविधता और विचित्रता में राधा एवं कृष्ण का प्रेम अद्वितीय है। भारत के विराट लोक जीवन की साँस-साँस में बसे कृष्ण-राधा यदि सबसे व्यापक लौकदेवत है तो गंभीरतम द्रार्निक चिंतन के सारभूत गीतोपनिषद के गायक भी हैं। लीला-पुरूषोत्तम कृष्ण एवं राधा के आनंद के अनाविल स्रोत रूप संगीत के माध्यम से आज भी समस्त भारत को किस प्रकार देश काल, जाति, धर्म भाषा आदि के ऊपरी भेंदो का भेदन करते हुए भावात्मक एक्य के सूत्र में आबद्ध किया हुआ है। कृष्ण राधा और उनका वेणु या वंशीगीत समस्त भारतीय साहित्य का प्रिय वर्ण्य विषय है। जिससे श्रेय और प्रेय दोनों प्रकार की अर्थ ध्वनियों गूजा करती है। इस कृष्ण संगीत ने सारे भारत को ही नही अपितु विश्व को सदा सदा के लिए अभिभूत कर दिया है। यही सांगीतिक एकतानता इस देश की एकता और अखण्डता का बड़ा भारी रहस्य है।

कृष्ण के संगीत ने प्रथमतः भौतिक धरातल पर राधा एवं ब्रज बनिताओं को आकृष्ट किया। कृष्ण चरित के प्राचीनतर दो आकार ग्रंथो-हरिवंश पुराण और विष्णु पुराण में कृष्ण के द्वारा आकर्षक कण्ठ संगीत में ब्रज स्त्रियों को मोहित होना कहा गया है।[1] श्रीमद्भागवत के प्राचीन प्रमुख टीकाकार श्री श्रीधर स्वामी ने अपनी भावार्थ दीपिका टीका में कहा है "ब्रह्मादि को भी विजित कर लेने के कारण, जिस कामदेव को गर्व हो गया था, उसके गर्व को नष्ट करने वाले, गोपिकाओं की रास-मण्डली के भूषण रूप श्री कृष्ण सर्वोत्कष्ट है। संगीताधृत इस भागवतीय रास की फलश्रुति में इस राधा-कृष्ण एवं गोपिकृष्ण-क्रीडा को मनुष्य के हृदय रोग रूपी काम से मुक्ति और भराभक्ति को प्राप्ति का त्वदितोपाया बताया गया है।

कृष्ण-राधा और उनके वेणु या मुरली के प्रभाव को लेकर सारे भारतीय साहित्य में विपुल सृजनात्मकता और एकात्मकता के दर्शन होते है। कश्मीरी भाषा के रस सिद्धि कवि स्वामी परमानंद (19वीं सदी) कृष्ण की मुरली ध्वनि का ध्यान आते ही गोपी भाव से भक्ति हो जाते है।

राधायि चति-चति पाद आयिबुछानि, नाद आयि मुरली बोजानो छोपारि कीरि कोनि छीसलवान, मुरली आछ दूरि बजावो।[2]

राधा आदि सब गोपियाँ कृष्ण के चरण चिन्हों को देखने लगी। जिधर से मुरली का निनाद आ रहा था, उधर दौड़ जाती थी, किंतु उस दूरांगत वंशीरव को नहीं पा सकीं। मध्यकाल में भारत में दो महान संस्कृतियों के समन्वय से साहित्य एवं कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व चमत्कार हुए है। इस काल में काव्य के काव्यसृजन की जिस परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ, निःसन्देह उसे संगीत व कला को दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट माना जा सकता है। इस काल में संगीत को तीनों धाराएँ (गायन, वादन, नृत्य) प्राचीन परम्पराओं तथा लोक मान्यताओं को साथ लेकर शास्त्रोन्मुख होते हुए सृजनात्मकता की ओर अग्रसर हुई। ध्रुपद, धमार, सादरा, ख्याल, ढुमरी आदि महत्वपूर्ण गायन शैलियाँ इसी काल में प्रतिष्ठित हुई। रास, चाचर, घूमर आदि नृत्य शैलियों जो लोक संगीत के धरातल से प्रस्फुटित

हुई, शास्त्रीयता की ओर उन्मुख हुई, नृत्य की इन शैलियों (रास तथा नटवरी) ने कथक नृत्य को विकसित किया कथक नृत्य को नई दिशाऐं देने का अभूतपूर्व प्रयास कृष्ण भक्तों ने किया, जो संगीत के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना गया, कथक नृत्य के नायक एवं प्रणेता 'नटवर नागर (कृष्ण) एवं नायिका राधा की भाव भंगिमाओं व नृत्य लीलाओं का सजीव चित्रण मुगलकाल की नृत्य शैली की श्रेष्ठता व कलात्मकता का प्रमाण है।[3]

साहित्य में वर्णित-नायक-नायिका के भेदों के अनुरूप राधा कृष्ण की लीलाओं और प्रेम सम्बन्धी काव्य का प्रचलन कवित्त के रूप में विकसित हुआ, जिससे मात्र लयकारियों के माध्यम से नृत्य अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन गया। महाराज बिन्दादीन की सुन्दर रचना (राधा-कृष्ण नृत्य) इस प्रकार है।

''निरतत ढंग अंग सुभंग
बहे पवन मन्द-सुगन्ध सीतल वंसीवट तट निकट यमुना
वृन्दावन की कुंज गलिन में राधे गोपी उमंग
ब्रह्मादि शंख बजावे, शारद बीन, नारद सुर उच्चारत
प्रेमी शम्भु बजावें डमरू भाल शशि सिर गंग।[4]

उपर्युक्त पद में जहाँ राधा-कृष्ण की लीलाओं का मनोरम चित्रण दृष्टव्य है वहीं इसका प्रत्येक शब्द कथक नृत्य की भाव भंगिमाओं तथा अंग संचालन को प्रोत्साहन देने का अच्छा उदाहरण है।

अख्तर पिया, सुधर पिया, कदर पिया, सनद पिया, चाँदपिया, दरस पिया, कुँवर श्याम, ललन पिया, नवल श्याम, चपल इश्करंग, बिन्दादीन आदि अनेक महान ठुमरी रचयिताओं ने राधा-कृष्ण के प्रेम का सजीव चित्रण प्रस्तुत करने वाली हजारों रसीली ठुमरियों की रचना करके न केवल साहित्य को समृद्ध किया, अपितु नृत्य विषयक सामग्री की संकलित करने का महान कार्य किया।[5]

मध्यकाल में भारत के उत्तरी क्षेत्रों में धमार होरी और फाग के गीतों की अत्यन्त सुदृढ़ परम्परा रही। 'धमार' शब्द का अर्थ धम्म, धमार, उछलना छलांगना अथवा कूदना है। ध्रुपद की अपेक्षा यह श्रृंगारिक तथा चंचल प्रकृति की गायिकी है। ब्रज की लोक परम्परा में जिन होरी अथवा प्रपत्र के गीतो का प्रचलन रहा वे कालान्तर में धमार-ताल से युक्त होकर धमार कहलाए। इन गीतों में कृष्ण-राधा गोपियों की लीलाओं अठखेलियों व श्रृंगारिक प्रसंगो का वर्णन मिलता है- उदाहरण देखिए—

मुरली चंग बजत ढफ न्यारी संग जुबती ब्रजनारी।
बाजत चारू धमार राग तहाँ दे दे कर तारी।[6]

ध्रुवपद- धमार के साथ-साथ अष्टछापीय संगीत परम्परा का ख्याल गायन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। बहुत से ख्याल गायक व संगीतकारों ने अष्टछापीय परम्परा के पदों को अपनाकर अपने घराने की वंदिशों में उनका समावेश किया है। यह कहना अनुपयुक्त न होना कि ध्रुपद-धमार के उपरांत भारतीय संगीत के ख्याल घरानों की गायिकी में भी समृद्ध और प्रभावशाली बनाने में वैष्णव सम्प्रदाय की देन कम नही है। अष्टछाप के कृष्ण भक्ति कवियों ने जिस पद साहित्य की रचना की वह धारा उस काल खण्ड के कवियों ने प्रवाहित की जो कि तत्कालीन गायकों के लिए भी इस प्रकार से वरदान सिद्ध हुई। उन्होने भारतीय संगीत धारा में योगदान तो किया है साथ-साथ इन अष्टछापी कवियों के पदो को भी सुरक्षित रखा।

मल्हार में एक पद हिण्डोले से सम्बन्धित प्रस्तुत है।
झूलत-राधा मोहन कालिन्दी के कूल
बोलत वचन सुहावने नन्ददास चितचोर।[7]

पृष्टि सम्प्रदाय के संस्थापक—बल्लभाचार्य जी का ध्रुवपद शैली का।

पद देखिए—

बैठि हरि राधा संग-कुंज भवन अपने रंग
कर मुरली अधर धरे, सारंग मुख गाई
मोहन अति ही सुजान, परम चतुर गुण निधान
जान बूझ एक तान चूक बजाई।
प्यारी जब गही बीन सोलह कला- गुण प्रवीन
अति नवीन रूप सहित वो ही तान सुनाई।[8]

यहाँ पर एक उदाहरण सारंग के पहले विष्णु पद के रूप में प्रस्तुत है जो सर्वप्रथम तानसेन ने आसकरण को सुनाया था।

कुँवर बैठे प्यारी (राधा) के संग, अंग-अंग भरे रंग,
बल बल बल त्रिभंगी युवतिन सुखदाई
ललितागती विलास हास दंपति मन अतिउल्लास,
विकसित कच सुमनवास स्फुटत कुसुम निंकर तैसी
है शरद रैन जुन्हाई।।[9]

श्री केलिमाल में स्वामी हरिदास का राग मल्हार में पद देखिऐ-

"नाचत मोरिन संग श्याम मुदित श्यामहि रिझावत
मोर कोकिला अलापत, पपीहा देत सुर
तैसहि मेघ गरजि मृदंग बजावत।।
तैसहि श्याम निसि की कारी
तैसहि, दामिनी कौधि दीप दिखावत
हरिदास के स्वामी-श्यामा कुंज बिहारी
रीझि राधे हँसि कण्ठ लगावत।[10]

गान कला गन्धर्व ललिता सखी के अवतार को गीत, वाद्य नृत्य के इन तीनों अंगो पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वृन्दावन की रास लीला आपकी ही देन है। अपने उपास्य- स्वरूप का दिन-रात चिंतन करते हुए जब वे समाधिस्थ हो जाते थे, तब उन्हें श्यामा-श्याम की दिव्य लीलाओं का जो अनुभव होता था, उसी का गायन उन्होनें केलिमाल के पदों द्वारा किया है।

उबटन और स्नान के अनंतर वस्त्रा धारण कर फुलवारी में अलकों को सुखाती-सँवारती हुयी राधिका जी कि दिव्य शोभा का वर्णन देखिए—

सौंधे-न्याह बैठी पहिरी पट सुंदर
जहाँ कुलवारी तहाँ सुखवति अलकै।
कर-नख शोभा कल केस सम्हारत
मानो नव घन में उडगन झलकै
विविध सिंगार लिए आगे ठाठी प्रिय सखी
भयौ भरूआन रति-पति दल दलैकै।
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी की
छवि निरख लागत माँही पलकैं।

श्री कृष्ण शपथपूर्वक राधिका जी से कहते है, तेरी वेणी भला मुझसे अच्छी कौन गूँथ सकता' है। अपने कथन को सार्थक करने के लिए उन्होने अनेक रंगो के पुष्पों से राधा के केशों को ही नहीं संभाला, बल्कि उनके नेत्रों में काजल लगा नख से शिखा तक उन्हें सुसज्जित कर दिया—

बैनी गूँथि कहा कौऊ जानै-मेरी सी तेरी सौ
बिच-बिच फूल सेत-पीत-राते कौ करि सके रीसौ।
बैठि रसिक संवारत बारनि, कोमलकर कक ही सौ।
श्री हरिदास के स्वामी श्याम नख-सिख लौ बनाई दै
काजर ही सौं।।

श्यामा श्याम की नाना प्रकार की केलि-क्रीडाओं का कथन होने से 'केलिमाल' नाम की सार्थकता स्वयं सिद्ध है। इसमें स्वामी जी ने अपने उपास्य युगल स्वामी के दिव्य श्रृंगार का ऐसा सरपूर्ण वर्णन किया है कि वह सहृदय रसिक जनों को दिव्यानंद प्रदान करने में अनुपम है।[11]

यद्यपि ब्रज में प्रायः सभी श्री राधा कृष्णोपासक भक्ति सम्प्रदायों में रस-तत्व एवं लीला तत्व की मान्यता है। प्राणेश्वरी राधा जी को अष्ट प्रधान सखियों में ललिता जी की प्रसिद्धि सर्वोपरि संगीतज्ञा एवं सखी के रूप में है। 'ललिता' शब्द में सखी के स्वरूप का पूरा-पूरा तात्पर्य निहित है ललिता का अर्थ है लालन करने वाली लालमतीति ललिता जो सब प्रकार की श्री प्रिया प्रियतम को लाड़ लड़ाऐ वह है ललिता।

बल्लभ सम्प्रदाय की ऐसी मान्यता है कि श्री कृष्ण के कुछ अन्तरंग मित्र एवं राधाजी की अंतरंग सखियाँ है जिनके साथ वे दोनों समस्त लीलाऐं करते है। अष्टछाप के कवियों ने झाँकियों में विभिन्न लीलात्मक पदों के वर्णन तथा उनका राग गायन करने हेतु व्यवस्था प्रदान की। प्रत्येक झाँकी में पदों के भावों के अनुरूप समय तथा ऋतु के अनुसार विभिन्न राग-रागिनियों में कीर्तन करने की व्यवस्था दी। इस सम्प्रदाय के प्रमुख पर्व एवं त्यौहारों में राधा कृष्ण की झाँकियों में पद गाऐ जाते है जैसे- जन्माष्टमी, राधाअष्टमी, दान ऐकादशी, वामन द्वादशी रास एवं मुरली, दशहरा- धनतेरस, रूप चथुर्दशी, गोवर्धन पूजा, गोपाष्टमी आदि-

यहाँ पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रही हूँ-

डोल- श्रीकृष्ण एवं राधा के कंचन के झूले पर विठाकर झूला झूलने का वर्णन इस प्रकार है- राग

मल्हार हिन्डोरे माई झूलत गिरवर धारी''[12] वर्षा ऋतु में सावन की हरियाली, चातकों के मधुर स्वर व मेघों की गर्जन के बीच मनोहारी फुहारों की मृदु में श्रीकृष्ण- राधा एवं गोप- गोपियों का झूला झूलने का चित्रण किया जाता है हिन्डोरे के उत्सव में श्रीकृष्ण राधा की हिन्डोरे झूलने की शोभा का चित्रण इस प्रकार है।

हिन्डोरे माई झूलत नन्द कुँवार, सोहत संग सुभग श्री राधा करत विविध मनुहार राग मलार अलापति ठाड़ी मिलि सोहत चहुँओर, ताल मृदंग रबाब, बाँसुरी बाजत वैन रसाल।।

शिशिर ऋतु में होली से सम्बन्धित शैलियों का गान किया जाता है- जिसमें राधा श्री कृष्ण गोप गोपी आदि पिचकारी अबीर गुलाल, मिट्टी का वर्णन मिलता है होली के पद विशेषतया धमार में गाये जाते है धमार के अलावा अन्य तालें जैसे त्रिताल दीपचन्दी, कहरवा आदि तालों मं भी होरी गाई जाती जिसे 'रसियां कहा जाता है राग जैत श्री—

''डिम डिम दुदंभी झालरी रूज मुरज डफताल
मदन भेर राई गिरी गिरी बिच विच बैनु रसाल
अति रस भरी ब्रज सुन्दरी देति परस्पर गारी
आँचल पट मुख दै हँसी मोहन बदन निहारी''

ग्रीष्म काल—में राधा कृष्ण की झाँकियाँ को पूर्ण रूप से पुष्पों से सुसज्जित करते ही

राग सारंग—फूलनि की चोली फूलन का चोलाना
फूलन माथे फूलन हाथे कानन के फूल फूलन
की सेजनी की फूलन के चँदवा''

चन्दन के पदों में ग्रीष्मकाल को उष्णता में श्री कृष्ण व राधा के चन्दन निर्मित महल में चन्दन के खिड़की झरोखों के मध्य बैठे हुए शोभा का वर्णन किया जाता है।

''चन्दन को बंगला अति शोभित बैठे तहाँ गोवर्धनहारी

सोभित सबै साज बहु औरन संगराजत बृजभान दुलारी''

शरद ऋतु में रास के पदों का गान किया जाता है श्री कृष्ण राधा व गोपियों का विभिन्न प्रकार से रास नृत्य करने का वर्णन किया जाता है शरद पूर्णिमा के दिन पूर्ण चन्द्र की धवल चाँदनी में नृत्यरत राधा कृष्ण की शोभा का वर्णन राग केदार में इस प्रकार है- '' पूरी पूरी पूरण मासी पूर्यो सरद को चन्दा

नृत्य करत श्री राधा प्यारी नचवत आप बिहारी
सो गिड़गिड़ तता थेई थेई छन्दा।[13]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ब्रज संगीत के विकसित करनें एवं समृद्ध बनाने में राधा-कृष्ण का प्रेम भारतीय परम्परा को संवर्धन प्रदान करता रहा है। वैश्विक स्तर पर राधा कृष्ण का वाल रूप कृष्ण का भोग, श्रृंगार शयन, रासलीला सांस्कृतिक दृढ़ता से विश्व को नई दिशा प्रदान कर रहा है।

संदर्भ सूची

1. द्रष्टव्य- हरिवंश पुराण, द्वितीय विष्णु पर्व, अध्याय- 2015 35
2. कश्मीरी भाषा एवं काव्य (आजाद) भाग 2 पृ. 43-
3. संगीत नवम्बर 2008, मुगलकाल में कथक नृत्य के विकास में साहित्य का योगदान (मिकी वर्मा)
4. कथक नृत्य- लक्ष्मीनारायण गर्ग- पृ. 16
5. संगीत, नम्बर 2008 मुगलकाल` कथक नृत्य के विकास में साहित्य का योगदान (मिकी वर्मा)
6. अष्टछाप परिचय प्रभुदयाल मित्तल पृ. 239
7. नंददास के काव्य में सांगीतिक तत्व - डॉ. दीपक पंत संगीत मार्च 1994 पृ. 10
8. संगीत जून 2008 लेख- ध्रुवपद की मंदिर परम्परा एवं दरबारी संरक्षण मेवाड़ का योगदान- मधुतैलंग भट्ट-
9. दो सौ बावन वैष्ठावन की वार्ता 'गंगा विष्णु श्री कृष्ण दास संस्करण पृष्ठ- (192-199) से उद्धृत
10. स्वामी हरिदास की वाणी प्रथम संस्करण सं. 2018 वि.पृ. 38
11. मध्यकालीन संगीतज्ञ एवं उनका तत्कालीन समाज पर प्रभाव- नमिता बैनर्जी प्रथम संस्करण पृ. 105, 106
12. मध्ययुगीन शास्त्रीय संगीत के आधार स्तम्भ अष्टसंख्या- डॉ. सुरेखा सिन्हा पृ. 66- 74
13. मध्य कालीन संगीत के आधार स्तम्भ अष्टसजा- डॉ. सुरेखा सिन्हा पृ. 73, 74, 75

Omnipresent Cosmogonal Inamorato-Radha and Krishna

Dr. Shanti Mahesh

Introduction

Divinity in sacerdotal promenade is the fortuity of effects that spring to reach humanity from from a celestial power-God, the sacred, holy Creator visualized in forms as deity, spirit etc., which are considered as "divine" due to their sublime origins. They are all eternal and abode of truth and materialism is momentary and apparent.

In monotheistic faiths, the word divinity is often used to exemplify the faith on a central singular force. The statement 'inshallah' in Islam maening 'as God wills it'; 'God works in mysterious ways' in Christianity manifestly convey. 'Ahimsa' – 'no harm' for faiths as Hinduism, Buddhism, Jainism; 'de' or 'te' – 'virtuous action' in Taoism depict the thought, necessity, importance of peace, love in the Universe. The Latin deus, cf. Dyaus, closely related to Greek zeus, div in Persian and deva in Sanskrit could be considered nucleus of the word "divine". The Abrahamic term God, abode of omnipotence. The entity, crux in any religion is faith which is closely related to hope. From the Bible it is evident that love is greater than both faith and hope. Love is prodigious without which there would have been no emancipation, salvation for ethnology. Love is angelic, austere for every alternate feature, boon in life. In Hinduism,God is focussed as Brahman, the great celestial spirit, ultimate reality in the Universe. The male and female principle in God could be visualized through various Hindu traditions which conceive God androgynous-like

Sakti, female-dynamic power inseperable from Siva as heat from fire, light from Sun etc.,. in Saivism, Sita and Rama, Radha and Krishna in Vaishnavism.

Radha and Krishna

Krishna (referred to as Svayam Bhagavan in theology of Gaudiya Vashnavism) who enchants the whole Universe is enchanted by Radha who is acknowledged as the Supreme Goddess.

Radha and Krishna are inseparable-Radha being the Sakti of Krishna, the eighth incarnation in the Dasavatar of Vishnu. Krishna in Brindavan is at times portrayed with Radha standing on the left with Lakshmi on Her bosom.

"In opinion of some Hindu scholars as well as scholars of Hinduism, a golden age existed when Muslims and Hindus created a common culture mainly because

some Muslim rulers patronized Sanskrit and translations from Sanskrit into Persian, while there were poets with Muslim names who wrote about Krishna and Radha".

"In the Western countries, when somebody sees the cover of a book like Krishna, they immediately ask, "Who is Krishna? Who is that girl with Krishna?" etc. The immediate answer is that Krishna is the Supreme Personality of Godhead. How is that? Because He conforms in exact detail to descriptions of the Supreme Being as mentioned in the infallible Vedic scriptures."

"Charlotte Vaudeville, in the article Evolution of Love Symbolism in Bhagavatism draws some parallel to Nappinnai, appearing in Godha's magnum opus Thiruppavai and in Nammalwar's references to Nappinnani, the daughter-in-law of Nandagopa. Nappinnai is believed to be the source of Radha's conception in Prakrit and Sanskrit literature although their characteristic relations with Krishna are different. In the ritual dance called Kuravai, Krishna dances with his wife Nappinnai".

Monumental Study of Gita Govinda by Jayadeva

There are many references to worshipping the Eternity in the Form of Radha and Krishna who eternally are in cosmic love, this became a very celebrated theme perhaps after Gita Govinda, the famous Love song between them by Jayadeva Goswami in the twelfth Century. In the work, love of Radha, the milkmaid towards Krishna is symbolic of the human soul wandering away from Eternity and then striving, succeeding to get the highest bliss. Lord Krishna and Goddess Radha manifest themselves as Cowherd and Milkmaid, having weird love affair in Spring time impersonates the secret of seeking everlasting union with the Supreme. Centuries before, Rasikapriya of King Kumbha, and Rasamanjari of Mahamahopadhyaya Shankara Mishra supplied the real essence of the work. If we see contemporarily, there are Indian Scholars like Kapila Vatsyayan who have contributed tremendouly to grasp the crux of Jaya Deva. The concept of intimacy between Radha and Krishna depicted in Gita Govinda has been studied by Western Scholars Barbara Stoller Miller, Lee Siegel, Colin John Holcombe etc., Below is a gist from their study.

The GitaGovinda of Jayadeva Love Song of the Dark Lord by Barbara Stoller Miller depicts very manifestly the love between Radha and Krishna as religious inspiration. The textual aspects of Gita govinda has given the study, translation, description of the work by studying substantial material relevant to its cultural contexts-hearing the recordings of the song in various musical versions of orissa, Bengal, Bihar, Madras, Mysore, Kerala and Nepal as well. Her formal affiliation with the Mysore University was with Director of the Central Institute of Indian Languages . Dr. Pattanayak, its Director, Sri. H.V. Nagaraja Rao at the Oriental Institute, Research Scholars, Epigraphist at Mysore and the resources there have enriched her study immensely. It might be ponderous to note the Western scholars who contributed.

Theodre Riccardi, Lynn Bennet, Gabriel Campbell who were central in identifying, locating materials from Nepal, and others like Neil Gross, Daniel H.H.,

Susan Bergholz, Edwin Gerow, Jeffrey Masson, Agueda Pizarro, David Rubin, Burton Watson. William Bernhardt, Karen Mitchell, Andree Mounier of Columbia University Press were all helping her sculpture the work which is undoubtedly an everlasting monument. She was keyed to work travelling to India with her husband James. Gwenn was also another person who prompted her work to excellence by travelling with her to India. Motilal Banarasidass-Indological Publishers & Booksellers made the first Indian Edition of that work in 1984. and that has been used for this Paper. In the work, the Introduction silhouettes the Wandering Poet Jayadeva, the lyrical structure of his Poem, his language for love, Krishna, the cosmic cowherd lover and Radha the consort of Krishna's springtime passion. Phenomenal Translation of Gita Govinda and its text in Sanskrit is limned par excellence.

In the study she has examined the presence of variations of the text as observed in several commenteries published on it, hence colected searching inclusive of palm-leaf manuscripts in the Bir Library Collection of the National Archives, Kathmandu which are also in variant forms of Newari script bearing dates 567 and 616 in the Nepali era. The available manuscripts were also contemplated selected commentaries, existing as well as previous editions, secondary evidences like a stone-inscription of Maharaja Sarngadeva, significance of available critical edition, variant readings of the text have been magnificently vignetted.

Colin John Holcombe who has also translated Gita Govinda and the introduction says

"Jayadeva's poem became the focus of a religious sect in India. Buddhism and Hinduism sought to release the enlightened from worldly illusions through renunciation, meditation and physical austerities. Particularly to be avoided was carnal pleasure. In Gita Govinda, however, Krishna embodies the erotic sentiment, and in that sense the cowgirls serve him with rapture and unselfishness. Jayadeva developed the aesthetic experience of love, and the songs typically end with dedications to Krishna, which urge readers to cultivate an appreciation of a taste that is both mental discrimination and physical relish. The two are inseparable, each growing from the other. The poem combines the sweetness of the experiences described, the poetry itself, and the joy that devotees find in relishing Krishna through the text. Indian theologians took this concept of taste further, seeing the lover as someone lifted from the particular into an abstract and universal experience of love, which is the ultimate joy or beatitude, a taste of Brahman itself. The aesthetic experience became a religious one, a state of total absorption in, devotion to and enjoyment of Krishna."

Radha and Krishna to a Christian Pastor in the mid west

Lifelong spiritual practitioner and teacher, Steve Bohlert (Subal Das Goswami) draws upon his interfaith background and presents everything seekers need to become full practitioners. He taught Radha-Krishna devotion internationally since 1967, lived in India, and was initiated by Lalita Prasad Thakur. He later served as a New Age leader and a

Christian pastor. He currently enjoys a contemplative life with his wife in a remote area of Hawai'i.

He has authored the Paperback work "Universalist Radha-Krishnaism: A Spirituality of Liberty, on October 23, 2009. He redefines Radha-Krishna devotion and makes it accessible to Western seekers. He revises devotional yoga and adapts it to the needs of today's cultural creatives, also known as "new progressives." A Spirituality of Liberty, Truth, and Love offers the wisdom gained from a lifetime of spiritual teaching and practice in multicultural, interfaith contexts. Bohlert presents a complete philosophical system along with spiritual practices that readers can incorporate into their daily lives to develop devotion to God-dess—Radha-Krishna, the Divine Couple. Universalist Radha-Krishnaism offers: A practical spirituality that readers may harmoniously practice in their current life situation. A vision of eternal spiritual life as an intimate associate of Radha-Krishna as well as the means to actualize it. An affirmation of God-dess' loving presence permeating this life with goodness and grace. A philosophical basis and practical techniques that allow the reader to begin the path of loving devotion. A dynamic, creative faith, free of untenable dogma, which encourages liberty of thought and practice. Realizing "the self" related to God-dess and the world through divine love leads to a sense of interconnectedness with all existence—both material and spiritual. A heightened sense of freedom, fulfillment, and enjoyment of life naturally develops from this awareness. Dr. M. Valle, who teaches philosophy of religion at Scottsdale Community College (AZ) says, "Many Westerners are attracted to diverse aspects of Hinduism and, in particular, devotion to Radha-Krishna, but soon find themselves alienated by two factors: an inescapable emphasis on "Indian-ness" and the uncompromising literalism of the movement as it has come to the West. Steve Bohlert's approach to spirituality merges Western and Eastern thought by de-emphasizing cultural trappings and literalism, while maintaining a passionate emotional bond with the Supreme Being in this especially effective form of the Divine Couple, Radha-Krishna."

Radha and Krishna Worsip in the Macrocosm

ISKCON has about 500 centers around the world, with a worldwide congregation in the hundreds of thousands devotees. It was founded in the U.S. by A.C. Bhaktivedanta Swami in 1965. Hare Krishna became popular in the U.S. and Europe among young people of the 1960s and '70s counterculture, who often appeared in public places dressed in saffron robes, chanting, dancing, and asking for contributions. Members of the group are vegetarians. They renounce alcohol and drugs and chant several hours every day. Peace and joy are to be gained by surrendering to Krishna.

Most famous temples in Europe is Radhadesh in Belgium and Bhaktivedanta Manor in England. These are marvellous worship abodes manifesting Radha and Krishna at Belgium, Netherlands, Poland, Crovacia, Zagreb, Rijeka, Czech, Brno, Slovakia, Olomouc, Bratislava, Slovenia, Denmark, France, Hungary, Spain, Switzerland, Sweden, Italy, United Kingdom, Norway, Romania, Macedonia,

Bulgaria, Canada, United States, Newzealand, Brazil, Italy, South Africa etc., in Australia, Indonesia,

Radha Krishna Ashta Shakthi Mandir at the Parashakthi Temple in Pontiac, Michigan, USA built in 1999 depicts this principle with Shri Radha Rani symbolizing Ashta (Eight) Shakthis of Shaktiman Lord Shri Krishna.

Portraits of Radha and Krishna exist widely at many Western nations like the United Kingdom, Germany, America etc., which are available to us from many sites like Krishna Darshan Art Gallery - Stephen Knapp, Radha Stock Photos And Pictures | Getty Images

www.gettyimages.com/photos/radha Native American/First Nations. Pacific Islander, Ads Krishna and radha on eBay www.ebay.com etc.,

Conclusion

There are many known modes to seek the Celestial and obtain the greatest with us. As given in HINDUISM: THE OPEN SOURCE FAITH, the blogger of Anil Kumar Cheeta to promote the sacred & scientific concept of Hinduism "Hinduism is the Only Dharma in this multiverse comprising of Science & Quantum Physics.

Josh Schrei helped me understand G-O-D (Generator-Operator-Destroyer) concept of the divine that is so pervasive in the Vedic tradition/experience. Quantum Theology by Diarmuid O'Murchu and Josh Schrei article compliments the spiritual implications of the new physics. Thanks so much Josh Schrei.", Hinduism (as considered by some western scholars) is representation of various Indian cultures and traditions. Due to the tolerance to variations in belief with broad range of traditions, as per traditional western conception, complexity is noted to define Hinduism as a religion.There are approaches like 'Prototype Theory approach' of Ferro-Luzzi to express Hinduism.It is very discernible that Radha andKrishna are at the pinnacle of love spiral, the point of their union becoming the focusfor devotion.

BIBLIOGRAPHY

References

i) God and gender in Hinduism - Wikipedia, the free encyclopedia
ii) Gender of God - Wikipedia, the free encyclopedia
iii) Radha Krishna - Wikipedia, the free encyclopedia
iv) www.radha.name/links/iskcon-temples-in-europe-and-uk
v) directory.krishna.com/temples
vi) Barbara Stoller Miller The Gitagovinda of Jayadeva Love song of the Dark Lord, UNESCO COLLECTION OF REPRESENTATIVE WORKS INDIAN SERIES – ISBN 0-231-04028-8 98765432 Copyright 1977 Columbia University Press.- First Indian edition in 1984 by Motilal Banarsidass

Citations from

www.amazon.com/Universalist-Radha-Krishnaism...

Western understanding

Sacred and Profane Dimensions of Love in Indian Traditions as

Exemplified in the Gitagovinda of Jayadeva. Lee Siegel. (OUP,1978).

Gita Govinda: Love Songs of Radha and Krishna by Jayadeva. LeeSiegel. (Clay Sanskrit Library. New York UniversityPress, 2009)

Gita Govinda by Jayadeva - Ocaso Press

www.ocasopress.com/pdf/Jayadeva-GitaGovinda-translation.pdf

www.dandabhanga.com/who-is-krishna

en.wikipedia.org/wiki/Radha_Krishna

!!राधा कृष्ण की प्रेम अनुभूति!!

कुमारी रूपा सिंह

शात्विक प्रेम अवतार द्वापर के यूगावतार श्री कृष्णा की प्रेम छाया नायिका राधा रानी के प्रेम की अनुभूति व्रज भूमि के दिव्य दर्शन से ही सम्भव है गोकुल, वृन्दावन बरसाने से थोड़ी दुरी पर मथुरा के कारागर में जन्मा श्री कृष्ण की टेर से बढ़ते स्वर यमुना पार जंगल में गाये-बछडें के स्नेह की पराकाष्ठा में श्री राधा रानी के प्रेम सर्वस्व न्यौछावर करने की समर्पित भावना गोप गोपियों के साथ करते अटखेलियाँ परमान्द की अद्‌भुति छटा राधा के संग लुका-छिपी तथा नटखट माखन चोर मनोहर की निर्मल प्रेम एक अनुभूति ही तो है।

जो कल्पना मात्र से ही अपने को राधा और कृष्ण के महारास में रास खेलते हैं उस अपार आनन्द का कोई पार नहीं है राधा स्वरूपा, आत्मा, प्रेम स्वरूप शरीर परमात्मा के बिना निषप्राण है। साँस, गत, सब तो कृष्ण ही है बदलते मौसम का हर अनुभव राधे ब्रज मोहनी का प्रेम रस ही तो है भगवान श्री कृष्ण की ब्रज लीलाएँ एवं रासलीलाएँ इतनी मधुर और मन को आन्नदित करने वाला है कि भगवान वेद व्यास से लेकर अब तक ना जाने कितने कवियों और लेखकों ने अपनी ललित एवं हृदयग्राही भाषाओं में उनका सजीव चित्रण करके अपनी वाणी एवं लेखनी को कृतार्थ किया है जिसका अनुशीलन करके आज भी हमलोग भाव-विभोर हो जाते हैं।

प्रेम के अनुभूति से ही परमानन्द की अनुभूति होती है श्री कृष्ण श्री राधे जी की प्रेम लीला लौकिक नहीं अलौकिक है, क्योंकि लौकिक आनन्द में प्रेम की अनुभूति क्षणिक होती है क्षणित अनुभूति या कोई चाहत की वस्तुएँ पाने की होती है, जैसे ही उन्हें प्राप्त होती है मन भर जाता है, और आनन्द समाप्त हो जाता है। पर स्थाई आनन्द तो उस परम सत्ता की अनुभूति या अनुभव होने से है। जैसे ही हम परम सत्ता से विलिन हो जाते है वैसे ही हम आनन्द के समुद्र में डुब जाते है और जब डुब जाते है तो उबरने का प्रश्न ही खत्म हो जाता है। हम चिर आनन्दमय हो जाते है। लौकिक जगत में श्रीकृष्ण और राधा का प्रेम मानवीय रूप में था और इस रूप ने इनके मिलन और प्रेम की शुरुआत बड़ी ही रोचक थी देवी राधा को पुराणों में श्रीकृष्ण की शास्वत जीवन संगीनी बताया गया है राधा और कृष्ण का प्रेम इस लोक का नहीं बल्कि पारलौकिक है। सृष्टि के आरंभ से और सृष्टि के अन्त होने के बाद भी दोने नित्य गोलोक में वास करते है। इस अद्‌भुत प्रेम की लीला को हम साधारण से दृष्टि से अनुभव नहीं कर सकते है क्योंकि श्री कृष्ण से ग्यारह माह बड़ी श्री राधे का जन्म बरसाने में हुआ था हर साल राधा अष्टमी भद्र शुक्ल अष्टमी को राधाकृष्ण के अनुपम प्रेम की याद करते है। राधा जिनका जन्म बरसाने में हुआ था जो वृन्दावन के निकट स्थित है। श्रीकृष्ण के माधुर्य व प्रेम की बहुत बड़ी उदाहरण है। मनोभाव से राधेकृष्ण की प्रेम उच्च कोटि का उदाहरण है। इस स्थिति में राधा को प्रमुख भूमिका में प्रस्तुत किया गया है। राधा कृष्ण की महारास को दास्य, वात्सल्य के तथा किसी भी अन्य भाव से नहीं समझा जा सकता है। इसे सिर्फ

सखियाँ ही समझ सकती है। राधा नाम का एक प्रेम कल्पतरू का है। सखियाँ पुष्प एवं पत्तियों की भाँति प्रेम वृक्ष के प्रति अपने उद्‌गार को इस तरह व्यक्त करती है जो इस प्रेम तरू के प्रेम माली यानी "कृष्ण" अपने स्नेह से सींचे तथा इस प्रेम रस से हम सब भी आनन्द की ऊर्जा प्राप्त करें। सखियाँ अपने हाव-भाव से कृष्ण को केवल राधा के लिए रिझाती है। राधारानी के प्रति अस्वाभाविक प्रेम स्वार्थी नहीं था। नन्द नन्दन के मोह पास में बँधी थी। ये गोपिकाएँ प्रेम की विस्तार है। प्रेम सच्चा हो तो बंधन में नहीं, स्वतंत्र प्रदर्शन है, इसी अनुभूति को दर्शाता है। राधा और उनकी सखियाँ कृष्ण का वृंदावन छोड़ मथुरा जाना तथा इस विरह की वेदना से तप्त राधा और गोपियों की सुधि अपने संग लगाना, यह अनुभूति ही तो है।

इधर राधा वृंदावन बिहारी, भक्त हितकारी के वियोग में यमुना तट से, कदम की डारी से, मोर, बछड़े से पूछना तथा उद्धव से योग उपदेश का आशय पूछना तथा उद्धव इस प्रेम सरिता के बहाव का अर्थ नहीं निकाल सके ये प्रेम उपन्यास से भी ऊपर की भक्ति है। ये प्रेम अनुभूति की भक्ति है।

कौन भूल अपराध नाथ नहीं आवल हे उधो-उधो
ज्यों हम रहती वनके मयूरीनी।।
कृष्ण करत श्रृंगार, मुकुट बीच शोभितो है उधो
कौन भल अपराध...

ज्यों हम रहती बाँस के बाँसुरी,
कृष्ण करत गुंजार
बसुर बीच शोभितो है उधो
कौन भूल अपराध...

ज्यों हम रहती जल के मछलिया,
कृष्ण कर स्नान
चरण हम छुविता हे उधो
कौन भूल अपराध

कृष्ण : साकार नादब्रह्म

डॉ. किरण सिंह

ऐसोसिएट प्रोफेसर
स्नातकोत्तर संगीत विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर 812007 (बिहार)

स्टीफन हॉकिंग ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ए ब्रीफ हिस्टरी ऑफ टाईम' में विशद रूप से स्पष्ट किया है कि सृष्टि का प्रारंभ महाविस्फोट (बिग बैंग) के साथ हुआ। विस्फोट के पश्चात् ध्वनि तरंगों का उठना एक भौतिकशास्त्रीय सच है। वैज्ञानिकों के अनुसार कम्पन या आघात ध्वनि का उत्पादक है। कंपन या आघात के बिना ध्वनि का उत्पन्न होना असंभव है। भारतीय धर्मशास्त्रों में नाद के दो प्रकार बतलाएँ गए हैं–आहत् तथा अनाहत्। आहत् नाद वैज्ञानिकता संदेह के परे है। पर, अनाहत् नाद का विचार आध्यात्म तथा पराविज्ञान से जुड़ा हुआ है। पतंजली योग सूत्र तथा घेरण्ड संहिता में शरीर में अवस्थित चक्रों का उल्लेख है। इन चक्रों का मूल मूलाधार में स्थित है जहाँ कुंडालिनी शक्ति सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है। यौगिक साधना के सहारे इसे जाग्रत करने पर यह शक्ति सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है। यौगिक साधना के सहारे इसे जाग्रत करने पर यह शक्ति उर्ध्वगामी होती है और चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार तक पहुँचती है, जहाँ अमृत का पान कर साधक समाधिस्थ होता है, अमर होता है, देश तथा काल की सीमाओं को पार करता हुआ परब्रह्म परमेश्व में एकाकार हो जाता है। ब्रह्म तथा नाद के बीच गहरा संबंध है। नाद ब्रह्म की अवधारणा हिंदु धर्मशास्त्रों के अनुसार एक अकाट्य विचार है। 'नादाधीनं जगत' अर्थात् नाद ही के अधीन जगत या सृष्टि है। कबीर ने भी कहा है "रस गगन गुफा में अजर अरे बिनु बाजा झंकार उठे जहँ, समुझी पड़े जब ध्यान धरे" अर्थात् नाद समग्र सृष्टि में व्याप्त है। प्रत्येक प्राणी के अन्दर सूक्ष्म रूप से सृष्टि व्याप्त है। अतः नाद सर्व व्यापी है। नादात्मकं नाद बीजं प्रयतं प्रणवस्थितम् वद्रेतं सच्यिदानन्दं माधवं मुरलीधरम नादरूपं परं योतिर्नादरूपी परो हरिः॥

अर्थात् नाद ही परम जोति है तथा नाद ही स्वयं परमेश्वर हरि है। जब से सृष्टि है तभी से नाद है। यह नादब्रह्म ही शब्द-ब्रह्म का बीज है। इस नाद से बिंदु उत्पन्न होता है। यह बिंदु ही प्रणव है।

वस्तुतः दार्शनिक मान्यता के अनुसार नाद क्रमशः सूक्ष्म से स्थूल रूप को प्राप्त करता है तथा समस्त सृष्टि में फैलता चला जाता है। कार्ल सगान तथा असिमोभ जैसे आधुनिक भौतिकशास्त्री मानते हैं कि 'महाविस्फोट' के पश्चात् 'समय' या सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। विस्फोट से उद्भूत ऊर्जा तेजी से चारों दिशाओं में फैली। क्रमशः कालान्तर में अणु से पदार्थों का निर्माण हुआ। अन्तोगत्वा जीव-जन्तु, पेड़-पौधे इत्यादि का अविभाव भी हुआ। 'विस्फोट' से उत्पन्न नाद ध्वनि का रूप लेता है। सृष्टि में मधुर स्वर सर्वत्र गुंजायमान हो जाता है। पाँच मतों में सबसे पहले महाभूत आकाश का गुण शब्द प्रकट होता है। यह नाद का ही एक रूप है। आदि नादरूप बीज से पंचतत्व क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर की

उत्पत्ति होती है। इस स्थूल नाद की उत्पत्ति अग्नि प्रेरित करती है। अग्नि में यह प्रेरणा आत्मा से प्रेरित चित्त के द्वारा होती है। प्राणवायु अग्नि से प्रेरित होकर नाद को उत्पन्न करता है। यह नाद नाभि में अति सूक्ष्म, हृदय में सूक्ष्म कण्ठ में पुष्ट, मस्तक में अपुष्ट और वदन में कृत्रिम रूप से आकर धारण करता है। कहा गया है कि 'न' कार प्राण है तथा 'द' कार वह्नि है। प्राण तथा वह्नि के संयोग से उत्पन्न होने के कारण ही इसको 'नाद' कहते हैं।

ब्रह्म की प्राप्ति के लिए योगियों ने इसी नाद की उपासना की है। इसकी साधना से सभी प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं। अनाहत् नाद योगियों का परम ध्येय है। सूरदास ने रास पंचाध्यायी में इसका सुन्दर वर्णन उपस्थित किया है—नचत सुगंध श्री नन्दनन्द वृन्दावन तट अमित मत्मथ मद विमर्दन सधन कुंजन"...। शास्त्रों मे नाद का अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष (चारों पुरुषार्थों) की सिद्धि का एक साधन माना है। नाद के बिना संसार का कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। पाँच भौतिक जगत में आकाश सर्वप्रधान है। आकाशा का प्राण नाद ही है। अतः जगत को नादात्मक कहा गया है—नादाधीनं जगत। समस्त जगत ही नादात्मक है।

यह नाद मूलतः परमात्मा का ही स्वरूप है। परमात्मा के अस्तित्व को आइंसटीन तथा न्यूटन ने भी स्वीकार किया है। हॉकिंग, सगान, असिमोभ इत्यादि ने निराकार ब्रह्म को मानते हुए नाद की वैज्ञानिक महिमा का गुणगान किया है।

श्री कृष्ण में नाद को पूर्णावतार हुआ था। उनकी वंशी का मधुर निनाद ही यह नादावतार था। इसी ने समस्त जड़ को चेतन तथा चेतन को जड़ बना दिया था। चेतन जीव भी जड़वत हो गए थे और साक्षात रसरास की रस धारा से प्लावित होकर वृक्ष ही नहीं अपितु सुखे काठ तक रस बरसाने लगे थे। वंशी की ध्वनि की महिमा अलौकिक थी।

"ध्यानं बलात् परमहंस कुलस्य मिन्दन, निन्दन, सुधामधुरिमाणमधीरधर्मा। कंदर्प शासन धुरां मुहुरेव शंसन वंशीध्वनि निर्जयति कंसनिबदनश्य वस्तुतः यह मुरलीनाद स्वयं सच्चियदानन्दमय है, ब्रह्म रूप है। यही नाद ब्रह्म है। अतः कृष्ण साक्षात साकार नाद ब्रह्म हैं। यह सनातन अकाट्य सत्य है।

मीरा बाई की प्रेम-भक्ति

रेखा कुमारी

एम.ए. स्मेस्टर I, स्नातकोत्तर संगीत विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय,
भागलपुर - 812007 (बिहार)

भक्ति-काल की कृष्णोपासक शाखा की महत्त्वपूर्ण कवयित्री मीराबाई हैं। बाल्यावस्था से ही वे कृष्ण-भक्ति की ओर उन्मुख हो गई, उन्होंने किशोर काल में ही कृष्ण को अपना पति मान लिया था। वे अपने को अविगत स्वामी की चिर सुहागिनी मानती थीं।

"जग सुहाग मिथ्या री सजनी हाँवा को मिट जासी।
वरन कर्‌याँ हरि अविनाशी म्हारो काल व्यालन खासी॥"

सुविख्यात समीक्षक रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में "मीरा का काव्य उन विरल उदाहरणों में है जहाँ रचनाकार का जीवन और काव्य एक-दूसरे में घुल-मिल गए हैं, परस्पर के सम्पर्क से वे एक-दूसरे को समृद्ध करते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि जीवन-वृत्त से अलग किए जाने पर इस काव्य की सर्जनात्मक क्षमता घट जाती है। मिलता-जुलता नारी-चरित्र होने के कारण गोपियों की विरह-भावना का अध्यारोपण मीरा पर आसानी से हो जाता है। उनका काव्य सूर द्वारा विस्तार में चित्रित गोपियों की विरहोन्मुखता का 'डिटेल' या ब्यौरा है। जीवन-वृत्त में व्रज की गोपियों से और रचना-धर्मिता में सूरदास से एकबारगी साम्य मीरा के पदों में अतिरिक्त तीव्रता भरता है।

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी हिन्दी काव्य का इतिहास लोक भारती प्रकाशन पृ.-96

भक्ति-काल की मरालिनी मीरा में आत्मबेसुधी और विसर्जन का भावुक उद्रेक है और रस के निर्झर को अप्रतिहत प्रवाहित करने वाला सहज राग भी इनके गीतों में शृंगार रस में अपनी लेखनी डुबाकर अपने भावों का प्रकाशन मीरा ने किया। प्रो. अंचल के शब्दों में–"इष्ट देव के दर्शन की ऐसी तीव्र लालसा, मिलन की ऐसी परिपूर्णा तृष्णा, कामना की ऐसी अविनाशी आग कम-से-कम हिन्दी के अन्य किसी कवि में नहीं पाई जाती हैं, "प्रो. जितराम पाठक के अनुसार" मीरा के रोम-रोम में दर्शन की प्यास और विरह की कसक है। उसने आँसू के अर्घ्य अपने प्रेम देवता के चरणों में निवेदित किए हैं। उनकी वेदना में हारे, लुटे मन का अपार विषाद् अपने प्रेम देवता के चरणों में निवेदित किए हैं। उनकी वेदना में हारे, लुटे मन का अपार विषाद् है।" और डॉ. रामकुमार वर्मा की धारणा है–"मीरा की कविता में आत्मनिवेदन है, विरह है, पर है वह आध्यात्मिक, सांसारिक नहीं। उनके काव्य में मानव जीवन की गहराई भले ही न हो, किन्तु प्रेम की तीव्रता जितनी अधिक मात्रा में उनमें मिलती है उतनी हिन्दी के अन्य कवियों में नहीं दिखलाई पड़ती है।" विरह की व्यथा में सजल बदली की तरह घुमड़नेवाली मीरा के गीतों में निश्छल हृदय की सच्चाई है, करूण निवेदन है, मार्मिक अभिव्यंजना है और है एक बेसुधी आत्म-तल्लीनता मानों मीरा रोम-रोम में 'प्रेम की पीर' को बटोरे बैठी हो। प्रिय-मिलन की अत्काण्ठा के तार झंकृत होते हैं, गीतों के पंख पर सवार वह गिरिधर गोपाल के देश पहुँच जाती है। उसकी साधना में एक निष्ठता है, एकाग्रता है, गहराई है, उसके गीतों में दर्द हैं, संगीत है, प्रेम की

विह्वल पुकार है, उसकी आत्माभिव्यंजना में गोपनीयता नहीं सरलता है, व्यापक मर्मस्पर्शिता है, प्रिय से वियुक्त आत्मा का विरहोच्छवास है मधुर भावों की करुणा अंगड़ाई में मीरा को गिरिधर का दर्शन मिलता है और मिलन की इच्छा और भी तीव्र हो उठती है। "मीरा अंतराल से गाती है, उन्हें वाहृय शृंगार की चिंता नहीं वे प्रेम की योगिनी है। वे एक कोकिल सी बैठकर अपने गिरिधर गोपाल का गीत गाती हैं। वे पृथ्वी पर नहीं हैं, वृक्ष की सबसे ऊँची डाली पर स्वर्ग के कुछ पास है।"

मीरा बाई की काव्यात्मक अभिव्यक्ति इस प्रकार है –

जो तुम तोड़ों, पिया मैं नहीं तोड़ँ।
तोसों प्रीत तोड़ कृष्ण! कौन संग जोड़ूँ॥

मीरा का प्रियतम श्री कृष्ण के प्रति बेपरवाह एकांतिक प्रेम व्यंजित है, श्रीकृष्ण के प्रेम में मस्त है। इसकी प्रवाह तक नहीं करती कि प्रियतम की ओर से उनके प्रेम का उत्तर आता है या नहीं। यह प्रेम मधुर-भक्ति की चरमसीमा है। वेदना की गायिका मीरा एक स्थल पर स्वयं कहती है–

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरों न कोई।

यहाँ नारी स्वतंत्र की घोषणा भी परिलक्षित होती है, प्रेम के क्षेत्र में मीरा निर्भीक है! तभी तो वह कहती।

अब तो बात फैल गई जाने सब कोई, प्रेम बेली सिचीं-सिचीं प्रेम मगन होई।

दिवंग भाग 1 बिहार राज्य पाठ्य-पुस्तक प्रकाशन निगम लि. से उद्धत 154

मीरा की तुलना भारतीय साहित्य में तमिल की वैष्णव भक्ति कवयित्री गोदा (अंडाल) और कश्मीरी की शिवभक्त कवयित्री ललद्यद से भी की जाती है, किंतु सबसे बढ़कर वे कृष्ण की प्रेयसी राधा से तुलनीय प्रतीत होती है।

मीरा की प्रेम-भक्ति के संबंध में

प्रख्यात समीक्षक रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन वअलोक्य है–

मीरा के अनेक पदों में अपने प्रिय के लिए जो 'जागी संबोधन' और तद्नुसार रूप विधान आता है। वह सूर के इस 'स्याम-सिव' ध्यान से तुलनीय है।

जोगिया के प्रीत कियाँ दुख होई।
जोगी मत जा मत जा मत जा,
जोगी महाँने, दरस दियाँ सुख होई॥

'जोगी ने कहज्यो जो आदेश' में पद का आरंभ जोगी या जोगिया के उल्लेख से होता है और अंत में गरिधर नागर या स्याम का ध्यान आता है। प्रेम और भक्ति के संपृक्त रूप में आलंबन के लिए कृष्ण और शिव का यह संपृक्त रूप आदर्श है। व्यक्तिगत संदर्भ से विशेषतः मीरा के कृतित्व में प्रेम और भक्ति के पक्ष सहज भाव से घुल-मिल गए है। यह संपृक्त अनुभूति, जो कबीर और जायसी में अलग-अलग रहस्यवादी प्रतीक-पद्धति में ढलतरी है और सूर में कृष्ण-राधा का प्रणय चित्र बनती है, मीरा में सहज आत्मानुभूति का गीत बन जाती है।

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी हिन्दी काव्य का इतिहास लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद पृ. 97

अतः निस्सन्देह कहा जा सकता है, मीरा की प्रेम-भक्ति आदर्श अनुपम और अद्वितीय है।

संगीत परंपरा में राधा और कृष्ण का प्रेम

श्रीनिवास सुधांशु

व्याख्याता (संगीत)

चंद्रदेव नारायण महाविद्यालय, साहेबगंज, मुजफ्फरपुर(बिहार)

प्रेम न वारि उपजे प्रेम न हाट बिकाये।
राजा परजा जेहि रूचे शीश देई लै जाये।।

प्रेम एक शाश्वत-संवेदना है, जो व्यक्ति में जीवन-ज्योति जलाने का कार्य करती है, एवं जीवन मूल्यों के संधारण की क्षमता भी भरती है, यह जीवन को विशिष्ट अर्थवत्ता प्रदान करती है तथा मानवीय-अस्तित्व को सार्थकता बनाती है। प्रेम वह नैसर्गिक शक्ति है, जो जीवन को उमंग, उल्लास, उत्साह से परिपूर्ण कर उसे गतिशील करती है एवं उचित दिशा प्रदान करती है।[1]

इस लेख के माध्यम से विशेषकर युवाओं का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ-प्रेम मानव का उत्कृष्ट गुण है इसके अभाव में हमारा हृदय एक पाषाण की तरह है, परंतु सामान्य अर्थ में प्रेम को प्यार कह देना या और भी हल्की एवं अपने अनुसार बनायी गई परिभाषा दे देना प्रेम जैसे ओजस्वी एवं महत्वपूर्ण तत्व के लिए अन्याय है।

कृष्ण के संदर्भ में माना जाता है कि वे ब्रह्म हैं, और राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति।[2] प्रेम के संबंध में अनेक विद्धानों नें अपने अलग-अलग मत प्रस्तुत किये है। प्रेम संसार की सबसे बड़ी उपलब्धि है। कविवर नेपाली ने प्रेम को हीं संसार-सार माना है, यही वह माध्यम है, जिससे जीवन अपने संपूर्ण रूपों में सार्थक होकर स्वर्ग का रूप प्राप्त करता है।[3]

प्रेम जब विराट होता है तो बाँधता नहीं मुक्त कर देता है। सच्चा प्रेम आत्मदान करता है, प्रतिदिन नहीं चाहता। प्रेम का दूसरा नाम उत्सर्ग है। प्रेम सिर्फ यौवन का ज्वार नहीं बल्कि जीवन की हर अवस्था के लिए उमंग, उत्साह और उल्लास की बौछार है। प्रेम शाश्वत है, चिर-नवीन है।[4]

मधु-ऋतु में जैसे तुम आए पतझड़ में भी आना।
पीले झरते हुए पात का, गाना सुनते जाना।।

नेपाली के काव्य में ईश्वरीय प्रेम भी यत्र-तत्र परिलक्षित होता है। उन्होंने ईश्वर को परम प्रेमी के रूप में देखा है, जिसने प्रेम वश ही सृष्टि की है। वस्तुतः प्रेम में सहजता होती है, स्वाभाविकता होती है। प्रेम निर्द्वन्द है, यह समर्पण है, सम्मोहन है, आकर्षण है, विश्वास है, आस्था है।

प्रेम के संदर्भ में-राधा-कृष्ण प्रेम के प्रतीक एवं प्रेम की पराकाष्टा है। जैसे भौरे को सभी फूलों में जानी फूल सबसे प्रिये होता है उसी प्रकार गोपांगना समूह में विचरने वाले कृष्ण को राधा हीं सर्वाधिक प्रिया हुई।[5]

निष्कर्षतः जिस प्रकार शिक्षा से सामाजिकता का गुण, प्रतिष्ठा-अर्जन, धन-अर्जन, जीवन जीने की कला, बच्चों का अच्छा लालन-पालन ये सारे गुण आ जाते है इसी प्रकार प्रेम की उत्कृष्ट परिभाषा में मानव-प्रेम, देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, दामपत्य जीवन का प्रेम, वात्सल्य-प्रेम के साथ-साथ स्त्री-पुरूष का शारीरिक प्रेम भी आ जाता है जबकि साधारण लोग सिर्फ स्त्री-पुरूष के शारीरिक मिलन को प्रेम समझ बैठे है। यह सिर्फ शारीरिक मिलन की आकांक्षा प्रेम की निकृष्ट एवं विभत्स परिभाषा है। वास्तव में प्रेम का

अर्थ समपर्ण है अर्थात् अपने प्रेमी या प्रेमिका के लिए सर्वस्व-समर्पण भाव।

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़े से पंडित होय।।

राधा-कृष्ण की विख्यात प्राणसााखी ब्रज धाम की रानी और वृषभानु की पुत्री है। राधा-कृष्ण शावत प्रेम का प्रतीक है, राधा को माता कीर्ति के लिए वृषभानु पत्नी शब्द का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत ग्रंथों, सनातन धर्मशास्त्रों के अनुसार कृष्ण एक हिन्दु देवता है। राधा एक गोपी जो कृष्ण की सर्वोच्च प्रेयसी है और यक हृष्ण के साथ सर्वोच्च देवी स्वीकार की गई है। राधा अपने प्रेम से कृष्ण को नियंत्रित करती है। यह माना जाता है कि कृष्ण संसार को मोहित करते है लेकिन राधा उन्हें भी मोहित कर लेती है। इसलिए वह सभी की सर्वोच्च देवी है।

वैदिक और पौराणिक साहित्य में राधा और इस धातु के अन्य रूप- राधा का अर्थ है पूर्णता, सफलता और संपदा भी। राधा का व्यक्तित्व संस्कृत साहित्य में सबसें अधिक गूढ़ चरित्रों में से एक है। उनका वर्णन प्राकृत या संस्कृत कविता में किया गया ही। जयदेव नें राधा-कृष्ण का संदर्भ लिया और बारहवीं सदी में भावुक भक्ति से ओत-प्रोत एक उत्कृष्ट कविता की रचना की और इस काव्य से आरंभ होते हुए एक व्रिाल आंदोन विाष्टि रूप से बंगाल में शुरू हुआ।

कृष्ण और राधा जैसे एक.ारीर और दूसरे प्राण है। जिस प्रकार ारीर के बिना प्राण का अस्तित्व नहीं होता और प्राण के बिना.ारीर के अस्तिंत्व की कल्पना निरर्थक है, इसी प्रकार संगीत रूपी.ारीर में राधा और कृष्ण नामक आत्मा निवास करते है। संगीत के किसी भी क्षेत्र अंग.ैली या प्रकार का अवलोकन करने से अनुमान होता है -राधा कृष्ण के बिना संगीत की चर्चा निरर्थक है। चाहे.ाास्त्रीय संगीत में विभिन्न रागों की बंदिंों हों चाहे उपाास्त्रीय संगीत के अंतर्गत ठुमरी या दादरा के बोल हों

सुगम संगीत का भजन, फिल्म संगीत के बहुतेरे गीत या लोकसंगीत के अंतर्गत झूला, कजरी, होली या चैती अधिकाां गीतों में.ाब्द तथा भाव के माध्यम से राधा कृष्ण का दिग्द्रान सदैव होता है। संगीत के किसी भी भाग से राधा-कृष्ण जैसे युगल प्रेमी को अगर निकाल दिया जाए तो भारतीय संगीत की कल्पना धराायी हो जाएगी। संसार में राधा-कृष्ण को मानने एवं पूजने वालों की संख्या सबसे अधिक है। राधा-कृष्ण के सारे भक्त इन्हें प्रेम की प्रतिमूर्ति एवं प्रेम का आद्रा प्रतीक मानते है। यह विचार संगीत के क्षेत्र में कुछ अधिक ही है। संसार की अन्य प्रमुख गतिविधियों की तरह संगीत का दायरा बहुत ही विस्तृत है और संगीत के इस विराट समाज के प्रथम नायक कृष्ण और राधा हीं है। जैसा कि हम जानते है-गायन, वादन एवं नृत्य के संगम को संगीत कहते है। गायन के लगभग हर क्षेत्रों में कृष्ण की चर्चा, वादन के क्षेत्र में कृष्ण जैसा महान बांसुरी वादक आज तक पैदा नहीं हुआ एवं नृत्य के क्षेत्र में रास नृत्य के आविश्कर्ता के रूप में कृष्ण की ख्याति जग विख्यात है।

राधा-कृष्ण का संगीत के क्षेत्रमें अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध करने के लिए थोड़ी सी चर्चा रास की करनी पड़गी। रास शब्द रस से बना है। रसों वै सः अर्थात् कृष्ण स्वयं रसरूप हैं, आनंद स्वरूप है। उपनिषद् में कहा गया है-आनंद रूप से समस्त प्राणी प्रकट हुए है। यह रसरूप ब्रह्मकेन्द्र है और उसकी परिधि है ब्रह्मांड का यह चक्र जिसे उसकी लीला कहा जाता है। रास के कई अर्थ हैं लेकिन यहाँ विलास तथा गानयुक्त गोलाकार नृत्य या गोल घेरा बाँधकर जो नृत्य किया जाता है तथा माधुर्य और आनंद से पूर्ण होता है, उसे रास कहते है। दूसरे मतानुसार जिससे रस उत्पन्न हो वह रास है। रास में नृत्य-संगीत द्वारा रस की वर्षा की जाती है। अतएव इसे रास कहते है। इन बातों से यह पूर्ण प्रमाणित हो जाता है कि संगीत परंपरा में कृष्ण और राधा की उपस्थिति एवं उनका प्रेमद्रान सर्वत्र व्याप्त है। इसे और स्पष्ट करने के लिए संगीत में गायन विद्या के अंतर्गत गायन के विभिन्न प्रकारों में राधा कृष्ण की मनोरम झांकी प्रस्तुत है।

ISSN 2349 - 137X

अनहद लोक

प्रतिध्वनि कला
संस्कृति की

वर्ष 3 अंक 5
2016

अनहद लोक

प्रतिध्वनि कला संस्कृति की

सम्पादक

डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल

डॉ. आशा अस्थाना, डॉ. राजेश मिश्र, डॉ. मनीष मिश्र

व्यंजना

आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी

109 डी/4, अबूबकर पुर, प्रीतमनगर, सुलेमसराय,

इलाहाबाद - 211011

अनहद लोक

प्रतिध्वनि कला संस्कृति की

सम्पादक : डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल : डॉ. आशा अस्थाना, डॉ. राजेश मिश्रा, डॉ. मनीष मिश्र

सम्पादकीय सहयोग एवं कला संयोजन : शाम्भवी शुक्ला

आवरण पृष्ठ : डॉ. आर.एस. अग्रवाल

मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

वितरक : पाठक पब्लिकेशन, महाजनी टोला, इलाहाबाद

फोन नं. 0532- 2402073

प्रकाशक

व्यंजना

आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी

109 डी/4, अबूबकर पुर, प्रीतमनगर, सुलेमसराय,

इलाहाबाद

मो. : 9838963188, 9454843001

E- mail- melodyanhad@gmail.com

madhushukla-11@gmail.com

मूल्य : 200/- प्रति अंक

वार्षिकः 500/-

तीन वर्षः 1500/-

आजीवनः 20,000/-

पोस्टल चार्जेज अलग से

© सर्वाधिकार सुरक्षित

- रचनाकारो के विचार मौलिक हैं
- समस्त न्यायिक विवाद का क्षेत्र इलाहाबाद न्यायालय होगा

मार्ग दर्शन :

पं. देबू चौधरी, डॉ. सोनल मानसिंह, प्रो. चित्तरंजन ज्योतिषी,
डॉ. कमलेश दत्त त्रिपाठी, पं. विश्वमोहन भट्ट, पं. भजन सपोरी, पं. रोनू मजुमदार, प्रो. ऋत्विक् सान्याल, प्रो. दीप्ति ओमचारी भल्ला,
पं. विजय शंकर मिश्र, पं. अनुपम राय, श्री एस. पी. सिंह

संयोजन सहयोग :

डॉ. मनीष मिश्र, डॉ. राजेश मिश्र, डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह काव्या, डॉ. रीता देव, डॉ. राम शंकर, डॉ. निशा झा, डॉ. शशी शुक्ला, डॉ. रेखा रानी, डॉ. के. शशी कुमार, डॉ. शान्ति महेश, डॉ.वीना सिंह, डॉ.योगेन्द्र मिश्र, डॉ. सन्तोष मिश्र, श्री अनूप शर्मा

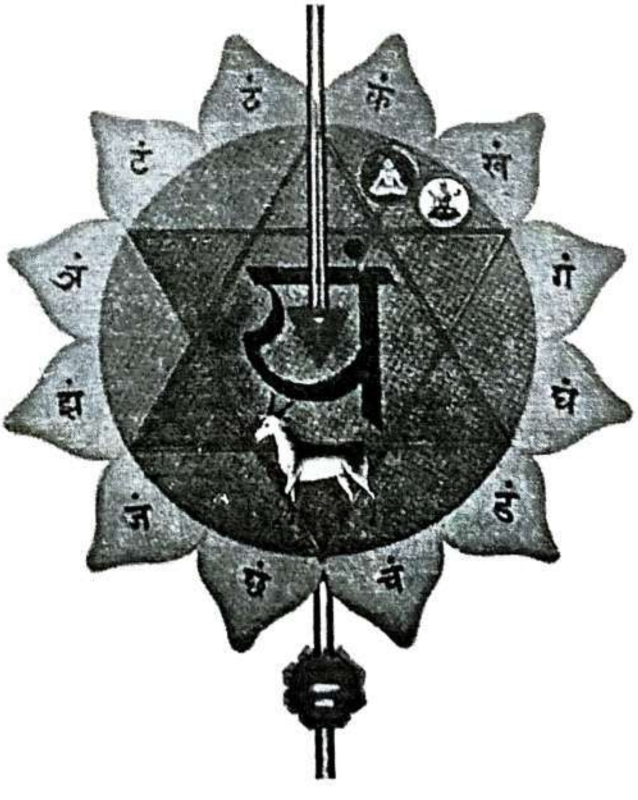

RHYTHM
EXPORTS
Manufacturer
Exporter
and Dealer of
Musical
Instruments
and their
Accessories
rhythm
Contact : 0532-6999900
095068-55555
273/349 A, Chak, Zero Road
Allahabad 211 003 U.P. (INDIA)
(Opp. Zero Road Bus Stand
Behind Shia Masjid)
E-mail :
rhythmexports@gmail.com
Log on to :
www.rhythmexports.com

राधे-राधे जपते-जपते दिख जाए चितचोर

'कृष्ण' नाम मात्र ही होठों पर मुस्कान ला देने वाला शब्द हैं जो ईश्वर के रूप में होते हुए भी मानवीय सा है **एक ऐसे देव जिन्हे आत्मिय रूप से महसूस किया जाता है ये मात्र मेरी ही भावना नहीं अनेकों की भावनाएँ हैं** कितने ही लोगों ने उन्हे बाल रूप में अपने बच्चे की तरह तो किशोर व युवा रूप में अपने सखा भाव से जोड़ा है प्रौढ़ रूप में वो एक गुरू की भाँति जीवन दर्शन का ज्ञान किया तो उनका योगेश्वर रूप इस मिथ्या जगत के प्रति निर्लिप्त भाव को जागृत कर देता है गीता के ज्ञान ने मात्र अजुर्न को ही युद्ध के लिए विवश नहीं करता है वो तो हमें भी वास्तविक जीवन दर्शन का बोध कराता है **समय, काल, परिस्थिति, मोह, माया, रति, प्रेम, घृणा, जुगुप्सा, कर्म, यज्ञ, तप, ज्ञान, ध्यान, संगीत, कला, रसिकत्व, भावना, निर्वेद का बोध कराता कृष्ण का रूप जाति धर्म, समुदाय, देश, काल, परिस्थिति स्त्री, पुरूष** अवस्था को भूलकर आत्मविस्मृति की अवस्था में पहुँचा देता है।

कृष्ण सर्वव्यापी, सर्वद्रष्टा एवं जन-जन के नायक हैं वो ईश्वरीय सत्ता के रूप में जितना स्वीकार किये गये हैं उससे अधिक मानवीय रूप में। कृष्ण अपनी **बाल लीलाओं, किशोरावस्था की लीलाओं, रास लीलाओं, योगेश्वर चरित्र में प्रायः लौकिक, दैविक, अध्यात्मिक, दार्शनिक** रूप में द्रष्टव्य होते हैं वो जन-जन के नायक है सामान्य में विशेष व विशेष में सामान्य है। कृष्ण धीर ललित नायक होते हैं जो समस्त कलाओं के अवतार हैं राधा उनकी अनुरंजक शक्ति हैं जो **शोभा, विलास, विच्छित, प्रागल्भ्य औदार्य, लीला, हाव, हेला** भाव से परिपूर्ण हैं।

राधा मात्र शरीर ही नहीं वह तो **शुद्ध भाव है शुद्ध तप व निष्ठप्रेम का विग्रह है जिसका अंग, प्रत्यंग कृष्णमय है** राधिका को साहित्य में अलग रूपों में देखा गया है **गाथा सप्तशती** में सर्वप्रथम राधा नाम की चर्चा है किन्तु ये कृष्ण की सहचरी है कि नहीं इसमें सन्देह है **ब्रह्म वैवर्त पुराण** में राधा नाम कृष्ण के साथ जुड़कर निकला है धृन्यालोक में **भाव मधुर राधिका** का उल्लेख है जयदेव की नायिका **प्रेम प्रगल्या नायिका** है जो वियोगकातर सौन्दर्य से ओत-प्रोत है **मान-अभिमानरत, उद्दाम वेगयुक्त, धृष्ट, व्याकुल, आत्मशक्ति** की विश्वासी रूप में काव्य जगत की सौन्दर्यमयी अनमोल सृष्टि हैं चण्डी दास की राधा तुरंत गल जाने वाली **शक्ति, नख से शिख** तक प्रेम की मूर्ति है तो विद्यावति की राधा विलासवती किशोरी है उसमें नवानुराग, लीला वास्यल्य है। चण्डी दास की राधा गम्भीर व व्याकुल और विद्यापति की राधा नवीन व मधुर

हो सूरदास की राधा प्रेम का वो सागर है जो कभी उद्वेलित नहीं हुई मर्यादित है जो संयोग में **विलासिनी तथा वियोग** में तपस्विनी है।

राधा कृष्ण प्रेम की चर्चा महाभारत व भागवत दोनों पुराणों में ही नहीं प्राप्त होती है किन्तु कालान्तर में विभिन्न सम्प्रदायों जैसे **निम्बार्क सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय, राधा वल्लभ सम्प्रदाय, सखी भाव सम्प्रदाय** ने राधा कृष्ण प्रेम के विविध प्रकार से वर्णित किया जो शाश्वत प्रेम के पवित्र रूप का प्रमाण बन गया। **त्याग, समर्पण, बलिदान,** संवेदनशीलता **भाव राधा** के कोमल हृदय में है कृष्ण में लिप्त होकर भी निर्लिप्त है राधा **सर्वसारतिसार** स्वरूपा है महाभाव में राधा कृष्ण एवं कृष्ण राधा रूप होकर क्रीड़ा करते है यहाँ शाश्वत प्रेम राधा कृष्ण प्रेम समुद्र के भाँति है ये दो रूप देहन्त छाया के सदृश्य है सर्वदा वियोग रहित हैं।

राधा मात्र नारी शक्ति का नाम ही नहीं वह नारी जीवन की **गरिमा, तेजोदीप्ता, समर्पण प्रेम की अनन्यता** का अभिधान है। श्री कृष्ण और राधा भारतीय आध्यात्मिक परंपरा के दो ऐसे तत्व है जो विविध प्रकार से रूपायित किये गए हैं कहीं **आध्यात्मिक, कहीं दार्शनिक कहीं सामाजिक रूप** में देखे गये। ये दो ऐसे चरित्र हैं जिनका **प्रेम लौकिक के साथ ही पारलौकिक** रूप में देखा गया है। उसके प्रेम की जितना **सहज, उदात** रूप लौकिक दृष्टि में देखा गया है **छेड़छाड़ मनोहार, रासलीला, केलि क्रीड़ा, रतिसूख** अनेक स्वरूप जहाँ उन्हे साधारण लोक जन के स्वरूप में दिखाते हैं वहीं उनकी **अध्यात्मिकता, दार्शनिकता, नीतिपरक चरित्र का विवेचन** उनके प्रेम के शाश्वत स्वरूप को प्रदर्शित करता है ब्रह्म्वैवर्त पुराण राधा-कृष्ण के सम्बन्ध को आध्यात्मिक प्रेम रूप में प्रदर्शित करता है राधा-कृष्ण के प्रेममय रूप की पुष्टि सर्वप्रथम धृन्यालोक में नवीं शताब्दी में उल्लेखित है

तेषां गोपवधूविलास सुहृदां राधा रहः साक्षिणां
क्षेमं भद्रकलिन्दशैलतनयातीरे लता वेश्मनाम्
विच्छिन्ने सारतल्य कल्पनामष्धुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने घरठिभवन्ति विगलश्रीलत्विषः पल्लवाः।

राधा को भी विभिन्न रूपों में देखा गया है ये राधिका को प्रत्यक्ष तो नहीं किन्तु परोक्ष रूप से प्रत्यक्ष कर देता है।

ललित कलाओं में स्थापत्य मूर्तिकला, चित्रकला, काव्य एवं संगीत में अभिव्यक्ति के माध्यम अधिकांशतः कृष्ण ही रहें हैं 64 कलाओं के स्वामी कृष्ण राधा का साथ में अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ है ये गढ़ी एवं अनगढ़ दोनों प्रकार की प्राप्त होती हैं। चित्रकला में भी अनेक की तूलिका ने कृष्ण राधा को ही उकेरा है वहीं साहित्य में विशेष रूप से काव्य में वर्ण्य विषय प्रायः कृष्ण ही रहे हैं संयोग श्रृंगार या वियोग श्रृंगार की बात हो वहाँ कृष्ण राधा के माध्यम से ही कवियों ने अपनी भावनाओं को गति दी है।

हरिवंश पुराण पर आधारित **चित्रों का अंकन अकबर के काल में** हुआ महाभारत के अनुवाद **राजमनामा में हो कृष्ण राधा के ही चित्रों का** अंकन है। राधा कृष्ण की भक्ति और संगीत का तो अटूट सम्बन्ध है प्रत्येक विधाओं में श्री कृष्ण राधा से सम्बन्धित पद है। अष्टछाप कवियों ने तो राधा कृष्ण को विभिन्न विविध रूपों में अभिव्यक्त किया है उनके पद संगीत की विविध शैलियों में प्रस्तुत किये जाते हैं। ध्रुपद, हवेली संगीत, धमार, ख्याल, ठुमरी, दादरा, ऋतुगीत, कजरी, झूला, सावन, मल्हार, हिंडोल, बसन्त, शरद आदि अनेक संस्कार गीत, जन्म,

विवाह आदि गीतों में भजनों में राधा कृष्ण पद के श्रृंगारिक, भक्ति परक, छेड़छाड़ आदि से समृद्ध है।

दिनांक 28,29 फरवरी 2016 को आयोजित दो दिवसीय अर्न्तराष्ट्रीय संगोष्ठी 'वैश्विक संदर्भ में राधा कृष्ण प्रेम' को विषय के रूप में स्थापित करते समय अनेक दुविधायें मन में थीं कि समाज इसका स्वागत कैसे करेगा? किन्तु जिस मुक्त हृदय, कण्ठ से वैश्विक स्तर पर इस विषय की सराहना हुई उसने हमें अभिभूत कर दिया और 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखिय तैसी' के तर्ज पर राधा कृष्ण प्रेम को लोगों ने अपने-अपने नजरिये से अलग रूप में देखा व विवेचित किया नये-नये विचारों का आगमन हुआ तथ्यों को सभी ने अपनी दृष्टि से रूपायित किया। पद्मविभुषण विदुषी डॉ. सोनल मानसिंह के विद्तापूर्ण सारगर्भित बीज वक्तव्य से शुभारम्भ हुआ जिसकी अध्यक्षता डॉ. विद्या बिन्दु सिंह ने की और समापन डॉ. गीता चन्द्रन जी के समापन वक्तव्य से हुआ राधा कृष्ण संबंधी अनेक विषयों पर प्रपत्रों की प्रस्तुति ने हर क्षण नवीनता का बोध कराया राधा कृष्ण प्रेम से सम्बन्धित विविध प्रायोगिक प्रस्तुतियों ने तो जीवन्त स्वरूप प्रदर्शित कर दिया। यु.एस.ए., कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, कोरिया के साथ ही भारत के अन्य भागों से आये विद्वत जनों ने राधा कृष्ण सम्बन्धी व्याख्यानों से ओत-प्रोत कर दिया। संगोष्ठी के आयोजन में संयोजक डॉ. मनीष मिश्र, डॉ. राजेश मिश्र, डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह काव्या, डॉ. रीता देव, डॉ. राम शंकर, डॉ. निशा झा, डॉ. शशी शुक्ला, डॉ. रेखा रानी, डॉ. के. शशी कुमार, डॉ. शान्ति महेश, डॉ.वीना सिंह, डॉ.योगेन्द्र मिश्र, डॉ. सन्तोष मिश्र, श्री अनूप शर्मा जी ने अपना अमूल्य योगदान दिया।

इस संगोष्ठी में आये अधिकांश प्रपत्रों को 'अनहद लोक' के इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है। जिनमें शोधकारियों के मौलिक विचार है। सांयकाल में 'रासलीला; के माध्यम से राधा कृष्ण प्रेम कथा जीवन्त हो उठीवो निश्चित रूप से संगोष्ठी का उत्कृष्ट पक्ष रहा।

—मधु रानी शुक्ला

अनुक्रमांक

1. राधा और कृष्ण का दैवीय प्रेम	डॉ. चंद्रशेखर तापी	13
2. राधा-कृष्ण प्रेम "आलौकिक प्रेम"	डा0 वीना सिंह	17
3. ठुमरी में राधा कृष्ण की प्रेम की अभिव्यक्ति	डॉ. शिशिर सौरभ	21
4. विद्यापति की रचनाओं में राधा-कृष्ण	डॉ. निशा झा	24
5. धमार शायन शैली में राधा-कृष्ण की प्रेम अभिव्यक्ति	डॉ. रैना कुमारी	26
6. भारतीय साहित्य में चित्रित राधा और कृष्ण का प्रेम	डॉ. दीपछन्दा घोष	28
7. नायक और नायिका के रूप में चित्रित राधा-कृष्ण	डॉ. अनुराधा आर्य	31
8. नायक और नायिका के रुप मे चित्रित राधा-कृष्ण	डॉ. मीरु दुसेजा	35
9. 'पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों द्वारा राधा-कृष्ण के प्रेम का अप्रतिम वर्णन'	डॉ. निरुपम शर्मा	40
10. भारतीय संगीत की रचनाओ का आदर्श आधार "राधा कृष्ण"	डॉ रामशंकर	45
11. भारतीय संगीत में 'कृण'	डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय	50
12. कृष्ण और रासलीला	डॉ. राम कृष्ण झा	54
13. सूरदास द्वारा वर्णित राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का रहस्य-चिंतन	डॉ. सियाशरण ज्योतिषि, डॉ. नवीन तेकाम	57
14. प्रेम की वंशी बजाते है गोविन्द	डॉ वेणु वनिता	60
15. आधुनिक विश्वसन्दर्भ में राधा-कृष्ण प्रेम	डॉ. अभिषेक कुमार त्रिपाठी 'मण्डलीक'	65
16. राधाकृष्ण-प्रेम के वैष्विक निहितार्थ	डॉ. सन्तोष कुमार मिश्र	68
17. अन्तर्राष्ट्रीय परिसंवाद वृन्दावन 'वैश्विक संदर्भ में राधा और कृष्ण का प्रेम' 28-29 फरवरी 2016	डा स्मिता पाण्डेय	71
18. प्रेमभक्ति का उद्दात्त रूप और सूर के राधा-कृष्ण	डॉ. रश्मि पुरियार	76
19. राधा कृष्ण प्रेम की आधुनिक विश्व में उपादेयता	डॉ. गीतांजलि तिवारी	80
20. संगीत परंपरा में राधा और श्री कृष्ण	डा. ममता सान्याल	83
21. कृष्ण-राधा से जुड़े वैष्णव सम्प्रदाय और उनकी उपासना पद्धति में संगीत	मनदीप कौर	85
22. राधा - कृष्ण और ख्याल शैली	डा. नीरा चौधुरी	89
23. ठुमरी विधा में राधा-कृष्ण के प्रेम पद	डॉ. शालिनी सक्सेना	92
24. सामाजिक समरसता और राधा कृष्ण	प्रो. डॉ. सुरेखा मंत्री	95

25. प्रेम-साधना में राधा कृष्ण — डॉ. रंजीता 98
26. भोजपुरी संगीत परम्परा में कृष्ण लीला — डॉ. सुरेन्द्र कुमार 100
27. Unalloyed Love of Radha- Krishna in the Poetry of Kamala Das — Dr. Gunjan Saxena 103
28. Radha and Krishna in Indian Music tradition — Dr. Amrita 107
29. Krishna and Radha: The Real Source of Love& Religion for all time. — Dr. B. Jagdish Rao 110
30. भारतीय साहित्य में चित्रित राधा और कृष्ण का प्रेम — प्रा. डॉ. एम.ए. येल्लूरे 114
31. स्वामी हरिदास जी द्वारा राधा कृष्ण की उपासना (ध्रुपद-धमार के सन्दर्भ में) — अमृता चौरसिया 118
32. प्रेम का अलौकिक रूप श्री राधा-कृष्ण (सूरदास के विशेष दृष्टिकोण से) — अमृता मिश्रा 123
33. मध्य प्रदेश के अंचलों का भारतीय संगीत जगत में योगदान — नेहा त्रिपाठी 127
34. सोलह कलाओं के अवतार श्री राधा के कृष्ण — अंजली कनौजिया 130
35. सूरदास के भक्तिपरक काव्य में राधाकृष्ण की प्रणय गाथा — अंकिता मुखर्जी 135
36. लौकिक-अलौकिक संदर्भ में राधा कृष्ण का प्रेम — अर्चना रंजन 139
37. प्रेम का उदात्त रूप और राधा-कृष्ण — श्रीमती अणिमा श्रीवास्तव 143
38. चैतन्य सम्प्रदाय में चित्रित श्री राधाकृष्ण का स्वरूप — अरूणा यादव 148
39. लौकिक और अलौकिक संदर्भ में राधा-कृष्ण का प्रेम — प्रेमदीप सिंह 151
40. ब्रज में श्रीराधाकृष्ण की सांगीतिक रासलीला — आरती वाही 156
41. भारतीय साहित्य में चित्रित राधा और कृष्ण का प्रेम — डॉली भारती 159
42. अध्यात्म एवं संगीत में राधा-कृष्ण की प्रेम अभिव्यक्ति — प्रतिभा कुमारी 163
43. कृष्ण प्रेम भक्ति में मीरा — वेता सत्यम 165
44. रास में राधा-कृष्ण — प्रगति मिश्रा 168
45. सूरदास की कृतियां में राधा-कृष्ण प्रेम — शुभांगी श्रेया 170
46. लोकगीतों में राधा कृष्ण — अनुपम कुमारी 172
47. भारतीय पौराणिक कथाओं में राधा कृष्ण का प्रेम प्रसंग — कुमार वीभा 174
48. विद्यापति के पदों में राधा-कृष्ण — अमित प्रकाश झा 176
49. रासलीला में प्रेम अभिव्यक्ति — स्वस्तिक शिववर्धन 178
50. कजरी में राधा कृष्ण को प्रेम अभिव्यक्ति — बीणा पाण्डेय 180
51. परणों में राधा-कृष्ण जी का संदर्भ — हरिओम हरि 184
52. भारतीय संस्कृति में श्रीराधा की कल्पना, पूजा, उत्पत्ति उद्भव एवं विकास-एक विमर्श — कन्हैया लाल यादव 187

53. लोककलाओं में राधा और कृष्ण नीतू कमठान 192
54. पं. जयदेव कृत गीतगोविन्द में वर्णित कृण-राधा प्रसंग में सांगीतिक तत्व निधि श्रीवास्तव 194
55. कृष्ण-राधा से जुड़े सम्प्रदाय और उनकी उपासना पद्धति निष्ठा सिंह 199
56. भारतीय संगीत का साहित्यधार- राधा कृष्ण की लीलाएं पंकज शर्मा 202
57. मध्यकालीन स्वामी हरिदास जी के संगीतात्मक पदों में राधाकृष्ण प्रीति सिंह 204
58. लोकगीत के होरी में राधा और कृष्ण प्रिया कुमारी 208
59. बृज में राधा-कृष्णः एवं संगीत एक अवलोकन पूजा द्विवेदी 211
60. सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण प 213
61. कवि जयदेव के आराध्य देव 'श्री कृष्ण' रीना सहाय 217
62. कृष्ण भक्ति में संगीत परम्परा ऋतु सोनी (शोध छात्रा) 221
63. विद्यापति पदावली में राधा-कृष्ण का प्रेम रूचि पाण्डेय 226
64. संगीत काव्य में राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण रूचि मिश्रा 228
65. राधा कृष्ण के प्रेम का सामाजिक सन्देश रूचि रानी गुप्ता 229
66. संस्कृत वाङ्मय में श्रीराधा-कृष्ण का युगल-स्वरूप संदीप कुमार यादव 232
67. निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रतिबिम्बित श्रीराधाकृष्ण का स्वरूप सौम्या कृष्ण 236
68. मध्य युगीन ललित कलाओं में राधा-कृष्ण सीमा चौधरी 240
69. पुष्टिमार्गीय वैष्णव मंदिरों की संगीत सीमा कुमारी 243
70. संगीत में राधा-कृष्ण शिवेश कुमार 245
71. ब्रज में रास की परम्परा और राधाकृष्ण शिवि तिवारी 247
72. संगीत परम्परा में राधा-कृष्ण श्रेया श्रीवास्तव 249
73. भारतीय संगीत परम्परा में राधा और कृष्ण स्मिता श्रीवास्तव 252
74. मध्यकालीन भारतीय संगीत में राधा कृष्ण का महत्व एवं राधा कृष्ण का प्रेम सम्बन्ध स्नेहा कुमारी 255
75. भारतीय संगीत की बंदिशों में निहित राधाकृष्ण प्रेम की छवियाँ (संगीत शैलियों के संदर्भ में) सुधा श्रीवास्तव 258
76. ब्रज संस्कृति में रसिया गायन शैली सुगन्धा वर्मा 261
77. प्रिय-प्रवास के राधा-कृष्ण सुप्रिया सिंह 263
78. गीतगोविन्द में श्रीराधा तत्त्व-एक विमर्श उर्मिला देवी 266
79. Sacramental Existence of Radha-Krishna in Music Aakanksha tiwari 271
80. Radha Krishna Love Theme in Sarojini Naidu's Poems Devendra Prasad 273
81. The Love of Radha andKrishna in the Global Context वैश्विक संदर्भ में राधा और कृष्ण का प्रेम Seethalakshmi 277

82. Radha Krisha Related Dhamalia folk Haridity of Undi Vided Bengal
Sanchari Choudhury 283

83. Love compatibility of Radha and Krishna:An Astrological Interpretation
Matra Aashirwad Jyotish Sansthan 286

84. Godly love of radha-Krishna — Nilesh Chandra Trivedy 292

85. The Role of Music in the love of Radha and Krishna — Sarada Prasan Das 294

86. Godly love of Radha-Krishna — 1. Mrs. Shiva Durga 297
2. Dr. Vivek Mehrotra,
3. Mrs. Kuchalata Mishra

87. ''सरस्वत्यै नमः'' ''गीतगोविन्दं व राधाचरितं काव्य के आधार पर राधाकृष्ण प्रेम की वैश्विक संदर्भ में प्रासंगिकता'' — रंजीता मौर्या 301

88. !! राधा कृष्ण की प्रेम अनुभूति !! — सारिका पटेल 305

89. राधा कृष्ण और भक्ति संगीत — अंकिता कुमारी 310

90. कृष्ण भक्त शिरोमणि सूरदास की सांगीतिक सौन्दर्यानुभूति — डॉ रश्मि दीक्षित 312

91. ब्रह्मवैवर्तपुराण में राधा तत्त्व-एक अनुशीलन — प्रभात कुमार 317

92. राधा-कृष्ण साहित्य का वैश्विक प्रचार-प्रसार (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन) — डॉ. (श्रीमती) दीपमाला मिश्रा 321

93. राधा-कृष्ण के प्रेम का आध्यात्मिक स्वरूप रसखान रचित पदों के आलोक में — डॉ. ज्योति मिश्रा 326

94. राधा-कृष्ण से जुड़े सम्प्रदाय एवं उनकी मान्यताएँ — रञ्जन द्विवेदी 329

95. मध्यकालीन संगीत शैलियों में राधा कृष्ण — डॉ. नमिता यादव 336

96. Omnipresent Cosmogonal Inamorato- Radha and Krishna — Dr. Shanti Mahesh 340

97. !! राधा कृष्ण की प्रेम अनुभूति!! — कुमारी रूपा सिंह 345

98. कृष्ण : साकार नादब्रह्म — डॉ. किरण सिंह 347

99. मीरा बाई की प्रेम-भक्ति — रेखा कुमारी 349

100. संगीत परंपरा में राधा और कृष्ण का प्रेम — श्रीनिवास सुधांशु 351

राधा और कृष्ण का दैवीय प्रेम

डॉ. चंद्रशेखर तापी

यह भारत भूमि अत्यंत पुण्य भूमि है जहाँ विश्व को एक नयी चेतना और जीवन के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिये हमेशा चैतन्यपूर्ण आध्यात्मिक वातावरण सुलभ हुआ है। इसी चेतना सम्पन्न धरा के कण-कण में मानव को इस अनमोल देह की प्राप्ति और उसके परम लक्ष्य को समझने, उस बाबत चिंतन करने और उन तत्वों को अपने जीवन में आत्मसात करने हेतु विभिन्न देवों व उनके अवतारों, ऋषियों, मुनियों, महर्षियों, साधुओं और संतों का स्पंदन व्याप्त है। हम अत्यंत भाग्यवान हैं कि हमें इस चेतना सम्पन्न धरा का संग मिला है और जीवन के वास्तविक मूल्यों को समझने का अवसर मिला है साथ ही ऐसा वातावरण सुदैव से प्राप्त हुआ है कि हम इस देह व जीवन की अनमोलता को जान सकें और उसके प्रत्येक क्षण का लाभ ले सकें। जीवन में बहुत छोटी-छोटी बातों में हमें मार्गदर्शन लगता है फिर यह तो जीवन के शाश्वत आनंद और परम ध्येय को प्राप्त करने का प्रश्न है जो अत्यंत गहन, व्यापक और सूक्ष्म होकर इसमें, प्रत्येक कर्म, व्यवहार और मन में उत्पन्न होने वाले प्रत्येक भाव में निस्वार्थता होना नितांत आवश्यक है। क्योंकि यह भाव प्राप्त करना और ऐसी मन की अवस्था प्राप्त करना अर्थात इस चैतन्यमयी आनंद की उपलब्धि के लिये जन्मजन्मांतर की यात्रा करना पडती है क्यों कि देह तो परिवर्तनशील है किंतु मन वही है और प्रत्येक जन्म में उसी मन की उपलब्धता है। जब तक मन में वासनाओं की, इच्छाओं की पूर्ति होने के लिये ललक व्याप्त है, अभिलाषा है तब तक वह मन हमारे देह को निरंतर उनकी प्राप्ति के लिये गतिशील करता रहेगा पर जब वह प्राप्ति इस जन्म में न हो सकेगी तो फिर अगला जन्म और तब भी न होगी तो फिर से अगला जन्म बस यही निरंतरता बनी रहेगी।

जब तक की मन में व्याप्त वासनायें निर्मूल नहीं हो जातीं और यह मन भगवतप्रेम से सराबोर नहीं हो जाता और जब तक यह मन भगवतप्रेममय नहीं हो जाता यानि भगवतप्रेम ही अपना मन नहीं हो जाता तब तक यह प्रेम की यात्रा अर्थहीन होगी। परमात्मा का नाम ही प्रेम है किंतु उस प्रेम का स्वरूप कैसा हो जब तक हम उसे जानेंगे नहीं तब तक प्रेम केवल शब्द ही होगा क्यों कि परमात्मा का प्रेम ही शाश्वत प्रेम है, और शाश्वत भगवत प्रेम किसे कहते हैं यह हम तब तक नहीं जानेंगे जब तक हम स्वयं उस भगवत प्रेम की अद्भुत यात्रा के पथ पर यात्री बन अग्रसर नहीं होते। जैसे हम कह सकते हैं कि वृंदावन का कण-कण नाममय है, प्रेममय है किंतु दूर से उस नाम और प्रेम के स्पंदन हमें प्राप्त नहीं हो सकते। वृंदावन की पावन भूमि में आकर ही उसका आत्मिक अनुभव करना होगा। व्यक्ति स्वयं अपने चारों ओर आकांक्षाओं का ताना-बाना बुन कर उसे ही आनंद समझ कर रह जाता है और उस परम शाश्वत आनंद व भगवत प्रेम से वंचित रहता है। भगवत प्रेम के मार्ग की यह यात्रा तभी सम्भव हो पायेगी जब हम परमात्मा पर प्रेम करेंगे और परमात्मा की असीम कृपा हमें प्राप्त होकर उसका प्रेम हमें मिलेगा।

इसीलिये इस धरा पर आज भी अनेक संत हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। महाराष्ट्र के सातारा जिले के श्री ब्रह्मचैतन्य महाराज गोंदवलेकर जी ने अपना सारा जीवन ही जगत को नाम की महत्ता बताने में लगाया है। उन्होंने कहा है कि -

'जिसे भगवान का प्रेम मिले ऐसा लगता है उसे नाम लेना ही एकमेव मार्ग है।'

परमात्मा का प्रेम हमें तब ही मिलेगा जब हम उसके पावन नाम से अपना जीवन नाममय कर लेंगे। परमात्मा ने हमारे जीवन का कल्याण करने के लिये इस धरा पर विभिन्न रूपों में अवतार लिया है जैसे राम और कृष्ण। अवतार लेकर परमात्मा ने लीलाओं के माध्यम से प्रेम, वात्सल्य, करुणा, भक्ति, सेवा, कर्म, योग जैसे विविध संदेश दिये। इनमें से दास्य भक्ति, सख्य भक्ति और नाम में तल्लीनता व शाश्वत प्रेम के उदाहरण जैसे - प्रभु राम के प्रति हनुमान जी का सेवा भाव और प्रेम, कृष्ण के प्रति राधाजी का व गोपियों का अनन्य प्रेम इस जगत के लिये आदर्श के रूप में स्थापित कर दिये। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के में उद्धरण है कि

"अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः"

हे अर्जुन, जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्त होकर सदा ही निरंतर मुझ पुरषोत्तम को स्मरण करता है, उस नित्य-निरंतर मुझमें युक्त हुए योगी के लिये मैं सुलभ हूं, अर्थात उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूं। इसी प्रकार गीता मे दिया है कि 'मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूं, न कोई अप्रिय है और न प्रिय है परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रगट हूं। श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी की पुस्तक प्रेमदर्शन में श्रीमद्‌भागवत का संदर्भ देकर उल्लेख है कि -

जो गोपियां गायों का दूध दुहते समय, धान आदि काटते समय, दहि बिलोते समय, बालकों को झुलाते समय, रोते हुए बच्चों को लोरी देते समय, घरों में छिडकाव करते तथा झाडू देते समय, प्रेमपूर्ण चित्त से आंखों में ऑसू भरे, गदगद वाणी से श्रीकृष्ण का गुणगान किया करतीं हैं उन श्रीकृष्ण में चित्त निवेशित करने वाली गोपरमणियों को धन्य है।

श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृत दृष्य सिंधु मे उल्लेख है कि -

'कृष्ण सबों को आकृष्ठ करने वाले हैं किंतु भक्ति कृष्ण को आकृष्ठ करती है। सर्वोच्च भक्ति की प्रतीक राधारानी है। भक्ति करने का अर्थ है राधारानी के पदचिन्हों का अनुसरण करना। इसी पुस्तक में उल्लेख है कि एक दिन श्रीमति राधारानी कृष्ण के लिये दही मथ रही थीं। उस समय उनके हाथ का मणिजडित कंगन घूम रहा था और वे कृष्ण के नाम का जप करती जा रही थीं। तभी उन्होने सोचा, मैं तो कृष्ण के पवित्र नाम का जप कर रही हूं, कहीं मेरे गुरुजन-मेरी सास तथा ननद सुन न लें इस विचार से राधारानी अत्यंत व्यग्र हो उठी।'

इसी प्रकार हमने विभिन्न सम्प्रदायों की मान्यताओं के द्वारा, विभिन्न ग्रंथों के माध्यम से, विभिन्न मतों के अनुसार, गीतों, नाटकों, कविताओं, लेखों के माध्यम से यही जाना है कि इस जगत ने राधा को विभिन्न रूपों मे व्यक्त किया है यह भी सर्वमान्य है कि राधा का कृष्ण पर अत्यन्त प्रेम था चाहे वो गोपी के रिश्ते से हो,चाहे वो सखी के ष्टिकोण से हो, चाहे वो प्रेयसी के ष्टिकोण से हो किंतु प्रेम तो था और वह प्रेम देह से परे था, देहातीत था, शाश्वत प्रेम था। जिस प्रेम में व्यक्ति केवल प्रेमी का ही चिंतन करता है, उसी का मनन करता है। सत्य तो यह है कि ऐसे प्रेम में व्यक्ति का प्रेमी उसके हृदय कमल के आसन पर सतत विराजमान रहता है और उस प्रेमी का मिलन बाह्य दृष्टिकोण से जगत को भले ही ष्टिगोचर न होता हो किंतु प्रेमी और प्रेयसी दोनो अंतरंग से एकात्म भाव से बंधे रहते हैं। प्रेमदर्शन पुस्तक में उल्लेख है कि -

उधौ! जोग जोग हम नाहीं।
अबला ग्यानसार कहा जानैं कैसे ध्यान धराहीं।
ते ये मूँदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं।
ऐसी कथा कपटकी मधुकर हमते सुनी न जाहीं।।

इसमें गोपियों ने कहा- 'उद्धवजी! **योग उन्हे जाकर सिखाओ, जहॉ श्यामसुंदर का वियोग हो। यहॉ तो देखो सदा ही संयोग है ,हमारा प्यारा श्याम सदा सर्वदा हमारे साथ ही रहता है।**

इस देह से परे शाश्वत प्रेम को पाना इतना सहज नहीं। सब कुछ इस प्रेम में समर्पित कर कुछ भी पाने की जब तमन्ना न हो केवल कृष्ण का साथ चाहिए, जब तक देह का संग मिला उसका परम आनंद लिया और जब दैहिक रूप से कृष्ण का साथ नही है तो भी कृष्ण का उन्हे संग मिला।

ऐसे विलक्षण प्रेम को प्राप्त करना परमात्मा की कृपा और प्रेम के बिना सम्भव नहीं है और यह भी सत्य है कि परमात्मा का वह असीम प्रेम हम तभी पायेंगे जब हम स्वयं अपने "स्व" को भूलकर भगवतप्रेम ही हो जायेंगे।कृष्ण का भी राधा के प्रति प्रेम था चाहे वो सखा के रूप में या प्रेयसी के रूप में हो किंतु वह नितांत प्रेम था। यह परमात्मा का प्रेम तब ही उत्पन्न होता है जब हमेशा उसका अनुसंधान हो, उसका सदा स्मरण और उसे पाने की मन में तडपन हो और केवल उसी के नाम का सुमिरन होता रहे, उसका अनुसंधान होता रहे। जब परमात्मा का ऐसा भाव व प्रेम युक्त पावन नाम का सुमिरन कोई साधक निरंतर करता है तो उसके शरीर,मन ,हृदय, भाव,विचारों में परिवर्तन होकर उसमें अष्टसात्विक भाव उत्पन होते हैं व समग्र वासनाओं का अंत हो जाता है और मन, शुद्ध हो जाता है। उस परमात्म प्रेम में निरंतर रहकर वह परमात्मा के शाश्वत आनंद मे रहता है। जब ऐसी अवस्था साधक की होती है तब वह अपना देहभान भूल जाता है और तब उसे परमात्मा के प्रेम की प्राप्ति होती है।

राधा का कृष्ण के प्रति नितांत प्रेम एक परमात्मा या सदगुरु और शिष्य का प्रेममय आदर्श उदाहरण है। सखा का सख्य भाव से परमात्मा के प्रेम को पाने का उदाहरण है, उनकी भक्ति, प्रेम परमात्मा के नाम की तल्लीनता का उदाहरण है, उनकी परमात्मा के प्रति देह्भान भूलकर अपने ''स्व'' अर्थात अभिमान को भूलकर अपनी गृहस्थी को करके सदा कृष्ण के चिंतन में रहने का उदाहरण है, नामप्रेम का, परमात्म प्रेम का जगत को एक आदर्शात्मक उदाहरण है। इन उदाहरणों में देह का महत्व ही नहीं है तब जाति, भाषा, सम्प्रदाय, वर्ग, धर्म, आयु, देशों की सीमाओं का प्रश्न कहॉ उत्पन्न होता है। इस अदभुत प्रेम में परमात्मा और केवल परमात्मा की चाह्त है, इस अदभुत प्रेम में परमात्मा के चरणों में पूर्ण समर्पण का आनंद है। इस अदभुत प्रेम में नाम के माध्यम से जीव और शिव का सूक्ष्म मिलन है । इस अदभुत प्रेम में अनन्यता है, तन्मयता है। इस अदभुत प्रेम में शब्द न होकर केवल भावयुक्त, प्रेमयुक्त मौन है, और सत्य तो यह है यह अदभुत प्रेम केवल शुद्ध, निस्वार्थ, भगवत नाम का, देह से परे, अलौकिक, परमात्म प्रेम है । संत, महात्मा, ऋषियों, मुनियों, महर्षियों, साधुओं, देवों, साधकों, और परमात्मा को भी इसी प्रेम को पाने की चाह्त होती है। श्री ब्रह्मचैतन्य महाराज गोंदवलेकर जी के प्रवचन की पुस्तक मे "यही बोध सद्गुरु का" में उल्लेख है कि–

प्रेम में राम बसा है, प्रेम का मोल नही दुनिया में
यही बोध है सद्गुरु का, गुरु को होती प्यास प्रेम की

तात्पर्य यह है कि सारी दुनिया उसी प्रेम की तो भूखी है, दुनिया का हर इंसान प्रेम की तलाश मे भटक रहा है। राम हो या कृष्ण हो या सदगुरु हो सब प्रेम के प्यासे हैं। वह जगत नियंता भी जिसने सारी दुनिया बनाई उसे क्या कमी होगी भला, लेकिन वह भी हमसे प्रेम की ही तो चाहत रखता है। स्वामी विवेकानंद की पुस्तक प्रेमयोग जिसका अनुवाद पंडित द्वारकानाथ तिवारी जी ने किया है उसमें उल्लेख है कि -

भगवद्भक्त तो चाहता है केवल ईश्वर को, ईश्वर से बढकर साध्य आदर्श या लक्ष्य हो ही क्या सकता है स्वयं परमात्मा ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है उसी ईश्वर का दर्शन करो उसी ईश्वर का आनंद लूटो हम ईश्वर से बढकर उच्च वस्तु की कल्पना ही नहीं कर सकते क्यों कि ईश्वर ही पूर्ण स्वरूप है। हम प्रेम से बढकर सुख या आनंद की कल्पना ही नहीं कर सकते पर इस प्रेम शब्द के कई अर्थ हैं इसका अर्थ संसार का साधारण स्वार्थमय प्रेम नही है। जो प्रेम पूर्णतया निस्वार्थ हो वही प्रेम, प्रेम है और वह ईश्वर का प्रेम है।

उस परमात्मा कृष्ण ने भी राधा पर प्रेम करके आत्मा और परमात्मा के प्रेम का, सदगुरु और शिष्य

के प्रेम का, भक्त और भगवान के प्रेम का, मित्र और मित्र के मध्य मित्रता के निस्वार्थ प्रेम का एक लोकप्रीय आदर्श जगत के समक्ष प्रस्तुत किया है। प्रेम दर्शन पुस्तक में उल्लेख है कि दास्यभाव के सम्बंध में श्री गोसाई जी महाराज कहते हैं -

मेरे जातिपाँति न चहौं काहूकी जातिपाँति,
मेरे कोऊ कामको न हौं काहूके कामको।
लोक परलोक रघुनाथहीके हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसीके एक नामको।।

इसमें स्वामी और सेवक का कुल-गोत्र एक हो गया। इसी पेज में (ब्रह्मवैवर्त 97-8-9) का संदर्भ लेकर उल्लेख किया है कि -

दास्यभाव की महिमा गाती हुई भगवती श्रीराधिका जी भक्तवर उद्धव जी से कहती हैं कि सब वरों में श्रेष्ठतम वर श्रीकृष्णभक्ति या श्रीकृष्णदास्य ही है। पांच प्रकार की श्रेष्ठ मुक्तियों से हरि भक्ति ही श्रेष्ठ एवं गुरुत्तर है। ब्रह्मत्व, देवत्व अमरत्व, अमृतत्व प्राप्ति, सिद्धि लाभ-इन सभी से श्रीहरि का दासत्व प्राप्त होना सुदुर्लभ है।

इस संदर्भ से भी हम समझ सकते हैं कि राधा जी का कृष्ण के प्रति जो प्रेम था वह दैवीय था। समर्थ रामदास स्वामी द्वारा विरचित ग्रंथ दासबोध का मराठी अनुवाद श्री के.वि.बेलसरे जी ने किया है इसमे दशक चौथे के आठवे समास के अंतर्गत नवविधा भक्ति में से सख्य भक्ति के बाबत उल्लेख है कि -

परमात्मा से गहरी मित्रता करना चाहिए, स्नेह जोडना चाहिए उसे बहुत प्रेम से अपनेपन से अपने बंधन में बांध लेना चाहिए उसे वश में करने के लिये उसे जो अच्छा लगता है वह करना चाहिए वैसा व्यवहार करना चाहिए, हमें अपने प्राण से प्रिय कुछ नही है तो जैसे उस प्राण पर प्रेम करते है वैसे ही हमें भगवान पर हमेशा करते रहना चाहिए और भक्त का प्रेम जब बढते हुए ऐसा हो जाता है कि प्राण भगवंतमय हो जाता है और भगवंत प्राणमय हो जाता है। ऐसी अवस्था होने पर फिर हमारे शरीर में प्राण है या भगवान ये उसका उसे ही नही समझ आता। यही परम प्रेम है।

स्वामी विवेकानंद विरचित प्रेम-योग पुस्तक के अनुवादक पण्डित द्वारकानाथ तिवारी जी ने पुस्तक में उल्लेख किया है कि -

प्रेम का पुरुस्कार प्रेम ही है यही एक वस्तु समस्त दुखों को दूर करती है इसी प्याले को पीने से इस संसार रूपी व्याधि का नाश हो जाता है। मनुष्य ईश्वरोन्मत बन जाता है और मैं मनुष्य हूं यह भी पूर्ण भूल जाता है। अंत में हम देखते हैं कि सभी भिन्न प्रणालियाँ अंत में उसी एक बिंदु-पूर्ण ष्ठ एकता पर पहुंचती हैं। अंतिम अवस्था यह हो जाती है कि वह अपने उपास्य के साथ एक हो जाता है।

हमारा जन्म वास्तविक रूप से प्रेम के लिये ही हुआ है और वह प्रेम शाश्वत प्रेम है, परमात्मप्रेम है इसलिये सारा जगत प्रेम की तलाश में रहता है और वह प्रेम परमात्मा के नाम के बिना मिलना संभव नहीं है। राधा और कृष्ण के पवित्र, शाश्वत और भगवत प्रेम को इसलिये जगत के स्त्री और पुरुष जाति, वर्ग, क्षेत्र, धर्म की सीमाओं के बंधन से परे एक सुखद, अलौकिक, पूजनीय मानकर आदर्श प्रेम का प्रतीक मानते हैं और उनका स्मरण कर आनंदित होते रहते हैं इसलिये राधा और कृष्ण का प्रेम लोकप्रिय है।

संदर्भ :-

1. श्रीमद्भगवद्गीता - अध्याय 8 के श्लोक 14, अध्याय 9 के श्लोक 29
2. श्री ब्रह्मचैतन्य महाराज गोंदवलेकर - 19मई का प्रवचन पेज 140
3. श्री समर्थ रामदास स्वामी विरचित सार्थ श्रीमत दासबोध - संपादक व अनुवादक - श्री प्रा.के.वि. बेलसरे - पृष्ठ 193,195
4. प्रेमदर्शन-देवर्षि नारदविरचित- भक्तिसूत्र, लेखक - हनुमान प्रसाद पोद्दार - पृष्ठ 47, 49,135
5. प्रेमयोग - स्वामी विवेकानंद विरचित - अनुवादक पं. द्वारकानाथ तिवारी - पेज 29, 30, 168
6. श्रील रूपगोस्वामी कृत भक्तिरसामृत- सिन्धु- कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद - पृष्ठ 17, 237

राधा-कृष्ण प्रेम "आलौकिक प्रेम"

डा0 वीना सिंह

प्रबन्धक, सर्वेश्वरी पी0जी0 कालेज, धनुहाँ, नैनी, इलाहाबाद

लीला पुरूषोत्तम श्री कृष्ण हम सभी को हर प्रकार से ज्ञान, वैराग्र एवं प्रेम के सभी आदर्श रूपों का पाठ पढ़ाने के लिये 3328बी0सी से 3102 बी0सी0(226 वर्षो) तक अनेक लीलाओं का प्रर्दशन किया श्री कृष्ण के द्वारा स्थापित **"आराधनं राधा"** का प्रभाव समाज पर इतना गहरा पड़ाकी कारगार में जन्म लेकर मथुरा का उद्धार, बाल्य लीलाओ का दर्शन, रास लीलाए द्वारिका आने पर भक्ति, माधुर्य एवंसभी आयामों का आदार्श रूप द्वारिका के उद्धार में लगा, एक मात्र पुत्र बचकर यदुवंश की परम्परा के बचे रहने का संकेत देता है। (सन् 1476 से 1533) **चैतन्य महाप्रभु**मधुररस राधा भाव को ही भक्ति का चरम उत्कर्ष माना।**मीरा बाई** (सन् 1498 से 1547)ने भगवान कृष्ण के प्रेम का अद्धितीय उदाहरण प्रस्तुत किया उन्होने श्री कृष्ण प्रेम कीमधुरिमा को नये रूप मे स्थापित करते हुए उन्ही की मूर्ति में समा गयीं, इन उदाहरणों को देखते हूए हम कह सकते है राधा-कृष्ण भक्ति द्वापर युग से आज तक अविरल बह रही है और राधा भक्ति से श्रेष्ठ कोई भक्ति नही है। भारतीय संस्कृति के क्षेत्र में राधा से अधिक सुन्दर सशक्त एवं अनुकरणीय आलम्बन सम्पूर्ण भारत में दूसरा नही हुआ। राधा के माधुर्य भाव में सर्वाधिकार प्राप्त होता है। गोपियों का माधुर्यभाव एवं उनका दिव्य प्रेम लोक-प्रसिद्ध है, जिसके आधीन ब्रह्म-श्री कृष्ण अपनी भगवत्ता खो बैठे। उन निरक्षर ब्रंजांगनाओ के चोरी-जारी के शब्दों को सुनने के लिये उनके धर जाते है, एवं गालीयां खाने के लिये बेचैन रहते है। अतएव इन ब्रजांगनाओ की चरण धूलि पाने के लिये ब्रह्मा-शंकर इत्यादि बड़े-बड़े परमहंस वरदान मॉगते है कि मै वृन्दावन में यदि कोई लता, गुल्म, वृक्षादि बन जाता हूं तो अपना भूरिभाग्य मानता। भागवत कहती है कि इन गोपियो की पदवी को श्रुतियॉ भी नही पा सकीं, तथा-

नाय श्रियोंऽगं उ नितांतरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगंधरूचां कुतोऽन्याः।

महालक्ष्मी को भी वह प्रेम-रस नही प्राप्त हो सका, जो गोपियों को प्राप्त हुआ।

यद्वाञ्छया श्रीर्ललानाचरत्तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता।

अर्थात् महालक्ष्मी ने धोर तप किया, किन्तु फिर भी महारास में प्रवेश नही पा सकीं।

मैं एक साधारण सी झॉकी बताता हूँ। गोपियॉश्यामसुन्दर के वियोग में कहती है—

यते सुजातचनणाम्बुरूहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथत न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः।।(भा0 10-31-19)

हे श्यामधन! तुम्हारे जिन अत्यन्त कोमल चरणो को मैं अपने हृदय में धीरे से लगाती हूँ कि कही मेरे कठोर स्तनों से उन कोमल चरणो को कष्ट न मिले, उन्ही कोमल चरणो से तुम इन कंकड-पत्थर से युक्त वनो में चलते हो यह दुःख हम लोग से देखा

नही जाता क्योकि मेरे प्राण तुम ही हो। जरा सोचिये कि कितना कोमल भाव है कि वज्र-हृदय भी इस वाक्य को पढकर पिघल जाय। यह है राधा-प्रेम उत्तम कि गरिमा!

सर्वोत्म भक्ति राधा भक्ति ही है इसके अनेका-नेक प्रमाण है उपनिषदो में भी प्रश्न किया गया कि **कस्मात् राधिकाम् उपासते अर्थता राधा रानी की उपासना क्यो कि जाती है**?

तब उत्तर दिया गया कि - यस्या रेणुं पादयोर्विश्वभर्ता धरते मूर्धिन प्रेम युक्त - अर्थात् जिसकी चरण धूलि को कृष्ण अपने सिर पर रखते है और जिसकी गोद से सिर रखकर कृष्ण अपने गोलोक को भी भुल जाते है वे राधा है-(सामवेदीय राधोपनीषद) उसके बाद फिर राधा उपनिषद् कहता है की वृषभानु सुता देवी मुलप्रकृतिश्वरी- वृषभानु की राधा ही मुल प्रकृति है।एसा भी कहा गया है की राधा और कृष्ण दोनो एक है-ईनमें भेद करने वाला कालसुत्र नर्क में जाता है ईसलिए भेद मत करना पर रस की दृष्टि से और हास परिहास में श्रीराधा ही श्रीराधा की सर्वश्रेष्ठ है लेकिन भेदभाव नही करना-अन्या पुराणो से भी प्रमाण देखिये -

यथा राधा प्रिया विष्णोः (पद्‌म पुराण)

राधा वामांश संभूता महालक्ष्मीर्प्रकीर्तिता

(नारद पुराण)

पत्रपि राधिका शश्वत (आदि पुराण)

रूक्मणी द्वारवत्याम तु राधा वृन्दावन वने (मतस्य पुराण 13. 37)

राध्नोति सकलान कामन तेन राधा प्रकीर्तितः (देवी शरण पुराण)

राध स्वरूप का वर्णन करते हुए कृष्ण नाम ही राधा नाम-यश-गुण ही राधा कर्णाभूषण है। श्याममधु-रस का ये श्रीकृष्ण को पान करती है। अर्थात् श्रंगार रस का अनुभव देती है। इनके जीवन का उद्‌देश्य है—श्रीकृष्ण की सारी कामनाओ को निरन्तर पूर्ण करते रहना। राधा-श्रीकृष्ण के विशुद्ध प्रेम-रत्नों की खानि समझो। श्री कृष्ण का प्रेम चाहो तो राधा प्रेमाकर से उसे निकालो। इस प्रकार इनका कलेवर अनुपम गुण-समूह से परिपूर्ण है। श्रीकृष्ण की परम प्रेयसी सत्यभामजी वान्छा करती है कि इन-जैसा सुहाग मुझे मिले। कला-विलास में चतुर व्रजरमणियाँ भी इनसे कला-विलास सीखना चाहाती है। और किसकी बात कहें, सौन्दर्य-माधुर्य एवं पतिव्रत्य में लक्ष्मी और पार्वती सबसे बडी सबसे उत्तम मानी गयी है! ये दोनो इनके सौन्दर्य माधुर्य की कामना करती है। जहाँ कामना का कलंक है, वहाँ सौन्दर्य नही। एक राध ही एसी है जो कामना कलक-शून्य परम सुन्दर है।कामना का लेश भी इनके मन में नही है। ये कामना जानती ही नही। से श्रीकृष्ण कामना कल्पतरू है। ये नित्य-निरन्तर श्रीकृष्ण की कामना पूर्ण करती रहती है। लक्ष्मी में कामना है, पार्वती में कामना है। वे अपने स्वामियो की सेवा चाहती है, पर इनमें कोई भी कामना नही है। अनुसूईया, अरून्धती-ये सब पतिव्रत्य-धर्म चाहती है। पर सच्चे पातिव्रत्य-धर्म का पालन तो श्रीराधा ने ही कीया। एक कथानक के अनुसार एक बार महाप्रभु के सिर में असहृय पीड़ा हो रही थी अनुरोध करने पर भी किसी ने अपनी चरण धुली श्यामसुन्दर के मस्तक पर लगाने नही दिया परन्तु जैसे ही आहलादनी शक्ति राधा रानी को पता चला उन्होने बिना कुछ सोचे बाद की बात बाद मे कहते हुए चरण धुली दे दी और श्री कृष्ण के सिर की पीड़ा हर ली यही है श्रेष्ठ भक्ति।

राधा प्रेम इतना सुदृढ़ है कि वह श्रीकृष्ण को सदा विह्‌वल किया करता है। श्रीकृष्ण कहते है कि मै रस का निधान हूँ, पूर्ण आनन्दमय हूँ चिन्मय हूँ लेकिन राधा का प्रेम उन्मत बना देता है। प्रेम का परमसार है महाभाव का चरमरूप अधिरूढ़ भाव में मिलता है इसीलिए राधा को महाभावस्वरूपिणि कहा गया है।चैतन्य महाप्रभु ने राधाभाव से कृष्ण के प्रति प्रेम निवेदित किया था उन्होने स्वयं को राधारूप में समझा और अपने सम्प्रदाय को आठ सखियों क्रमशः विशाखा, ललिता, चित्रा, इन्दुलेखा, चंपकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या सुदेवी के नाम से स्थापित भी किया। सर्वेश्वर श्रीकृष्ण तथा उनकी आह्लादिनी शक्ति श्री राधा।

तन्त्र तो इन्हे देवी तथा राधिका का स्वरूप प्रदान करते हुए कहा गया कि—श्रीकृष्ण की सेवारूपी क्रीडा की नित्य-निवास्थली होने से या श्रीकृष्ण के नेत्रो को अनन्त आनन्द देने वाली द्युति से समन्वित परमसुन्दरी होने के कारण से देवी है तथा आराधना करने के कारण ही वे राधा नाम से पुकारी जाती है नामों से अभिहित करते हुए राधा के बिना श्याम तेज की अर्चना करने वाले व्यक्ति को पातकी कहा गया है।

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्पयेत्।
जयेद्वा ध्यायते वापि स भवते पातकी शिवे।।
(सम्मोहन तन्त्र)

तीनों प्रकार की भक्ति साधारणीति (कुब्जा का प्रेम) समंजसारथी (रूकमिणी आदि रानियो का प्रेम एवं समर्थारति जिसमें गोपियों की श्रेष्ठ भक्ति और राधा की अति श्रेष्ठ भक्ति के रूप में समझा गया है।) राधा भक्ति या राधा प्रेम प्रति क्षण वर्धमान था इसीलिए राधा प्रभु की अहलादीनी शक्ति या सार छूत की शक्ति कही गयी।

महाप्रभु कृष्ण ने बाल्यावस्था में माता यशोदा को स्वयं में ब्रम्हाण्ड दर्शन कराया।सुदामा को सर्वेस्य दान देने के भाव को ही भक्ति का उतकर्ष माना। अस्सी पुत्र जो द्वारिका के विनाश के कारण बने उनमें से एक का बच पाना जीससे यदुवंश की परिपाटि चल सकें।

श्री कृष्ण अवतार ही मधुरतम अवतार है तथा लीलाएं भी इसी अवतार में सर्वाधिक हुई है। प्रारम्भ में साधक का जन्म केवल स्वरूप के घ्यान में तो स्थिर होता नही, उसे मन को बरबस इन लीलाओ में आकृष्ट हो जाता है। अस्तु, कृष्ण-लीला-ध्यान उसके लिए सुगम पड़ता है। कृष्णावतार में पॉचों भावों (शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य) की लीलाए हुई है साधक अपनी रूचि के अनुसार जिस भी लीला का चिन्तन करना चाहे कर सकता है। मधुरतम माधुर्यरसानुभूति के हेतु तथा साधना में सुगमता के दृष्टिकोण से भी अनन्तसौन्दर्य माधुर्य-रस-सिन्धु, प्रणतचितचोर, रसिकसिरमौर, बृजेन्द्रनन्दन-श्रीकृष्ण चन्द्र का पुरूषोत्तम, परात्पर ब्रह्म श्रीकृष्ण लीला क्षेत्र में राधा-कृष्ण बन जाते है। कहता है, "येयं राधा यश्च कृष्णो रसब्धिर्देहेनैकः कीडानार्थ द्विधाऽभूत।" अर्थात् राधा-कृष्ण दानो ही एक हैकिन्तु लीला हेतु वे दो रूप धारण कर लिये है। लीला नीत्य है, अस्तु, राधा-कृष्ण का स्वरूप भी नित्य है। वेदव्यास की उक्ति के अनुसार, आत्मा तु राधिका तस्य" अर्थता राधिकि जी श्रीकृष्ण की आत्मा है तथा उपनिषद भी श्री राधिका जी को हरेः सर्वेश्वरी कृष्ण-प्राणाधिदेवी अर्थात् श्री कृष्ण की स्वामिनी, श्री कृष्ण की प्राणाधिष्ठात्री देवी आदि कहता है। अस्तु, अब आप चाहे वृषभानुनन्दिनी राधिका जी तथा नन्दनन्दन श्यामसुन्दर इन दोनों का घ्यान एक साथ करें।

मीरा का कृष्ण के प्रति प्रेम अलौकिक था, और अनन्य भाव लिए मीरा कृष्ण को हर जगह देखती थी। "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई"। अगर राधा प्रसन्न थी कृष्ण को सामने पा कर यह कोई बडी बात नही थी मीरा ने पॉच हजार साल बाद भी सामने पाया यह बडी बात है। प्रेम करने योग्य श्री कृष्ण थे भी उनसे प्रेम सहज ही हो जाता है वैसा उत्सव पूर्ण व्यक्तित्व पृथ्वी पर मुश्किल से होता है, तो कोई भी प्रेम में पड़ जाता है, लेकिन कृष्ण गोकुल छोड़कर चले गये गोपियां विलखने लगी गोकुल व द्वारिका के बीच की दूरी भी समय पूरा ना भर सका। मीरा को स्थान व समय की दूरी न थी पर उसने दोनो को उलधन कर दिया दोनो से पार निकल गयी।

वर्तमान युग में राधा-कृष्ण प्रेम ही प्रासंगिक है हर क्षण बदलते समाज व परिवरेशछणभंगुर परिवर्ततन को प्रथमिकता देने वाले, छण-छण में विलुप्त होते आदर्श, बदलते रिश्ते पुनः राधा-कृष्ण का सात्विक रिश्तो से परे प्रेम का मर्म समझ कर इस पीढी को नयी दिशा मिल सकती है कृष्ण प्रेमे में भक्ति एवं शक्ति दोनो है जन्मान्धसूरदास को वात्सल्य रस की अनुभुति कराने, मथुरा वृन्दावन में वयस्क राधा के साथ अलौकिक रास लीला, महाभारत के युद्ध के

बीच गीता का उपदेश देना अर्जुन के सखा गुरू महाभारत के युद्ध के बीच मामेकं शरणं ब्रज, कह कर अर्जुन का हौसला बढ़ाना, यह करते हुये आदर्श धर्म का निर्वाह किया।

मध्य काल तक धटनाओ में श्री कृष्ण उतने ही सजीव रूप में विद्यमान है श्री जग्ननाथ पुरी जब अपने प्रभु के दर्शन न होने से बाबा तुलसी का कहना हस्त्रपादविहीन दारूदेव मेरा नाम नही हो सकता वहा एक बालक का प्रसाद ले कर आना व "विनुपद चलई सुलई विनु काना करविनु कर्य करहू विधि नाना"

और जिस प्रकार चारो तरफ हनुमान जी का पहरा दिखता है एवं राम लक्षमण जानकी के भव्य दर्शन जग्ननाथ जी बलभद्र जी एवं सुभद्रा के स्थान पर होता है। आज भी ये स्थान तुलसी चौरा के नाम से जाना जाता है (कल्याण 87/9)

आज भी इस दिव्य प्रेम की पुनः आवश्यकता है, वात्सल्य में, माधुर्य में प्रेयसी में सखा में पुनाः स्थापित होगी यह आदर्श रिश्तो की परिपाटिया जिससे बालक बालिकाये एवं किशोरावस्था के लोग भली प्रकार समझ सकें की दूर्शन टी0वी0 एवं अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणो के मध्यम से दिखाया जाने वाला प्रेम सत ही स्तर का है, मात्र मूर्ति की शक्ति से मीरा का विषपान कर जाना एवं विष का असर ना होना सूरदास को बालसूलभ कृष्ण के सभी लीलाओ का बिना देखे वर्णन करना, श्री उद्धव को तर्क में परास्त कर द्वारीका ना जाना।

संदर्भ

1. भारतीय सहित्य में राधा-सम्पादक-कल्याणमल्ल लोढ़ा-(पृ0 258)
2. ब्रह्मवैवर्तपुराण-अध्याय-16।
3. श्रीमद्भागवत पुराण-10/30/24।
4. कृष्णप्राणाधिका देवी तद्धीनों विभुर्यतः।
5. श्रीराधा सुधानिधि-स्वामी श्री हरिहरानन्द सरस्वती, (पृ0 17-19)
6. भारतीय वाड्.मय में श्री राधा-पं. बलदेव उपाध्याय, (पृ0-03)

ठुमरी में राधा कृष्ण की प्रेम की अभिव्यक्ति

डॉ. शिशिर सौरभ

विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, नेतरहाट आवासीय विद्यालय, झारखंड

भारत की सांस्कृतिक विरासत अत्यंत ही समृद्ध है। भारतीय संगीत के विभिन्न आयाम सम्पूर्ण विश्व में अपनी कलात्मकता के कारण सुप्रतिष्ठत हैं।भारत में संगीत की कई शैलियाँ प्रचलित हैं, जैसे–ध्रुपद, धमार, ख्याल आदि। इन विभिन्न गायन शैलियों में ठुमरी गायन एक लोकप्रिय गायन शैली है। यह गायकी भावपूर्ण अदायगी से ओतप्रोत तथा लावण्यमयी है। संगीत जगत में ठुमरी की उत्पति के संबंध में कई विचारधाराएँ प्रचलित हैं। कुछ मतानुसार ठुमरी संगीत की एक नवीन गायन शैली है और यह कुछेक शताब्दियों पूर्व ही प्रचलन में आया है य परन्तु उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर प्राचीन काल में भी इसके प्रचलन की जानकारी मिलती है। प्राचीन काल में संगीत के मुख्यतः दो भेद व्यवहार में थे:–सात्वती तथा कैशिकी। अगर संगीत की वर्तमान गायन शैलियों से तुलना की जाए तो सात्वती हमारे शास्त्रीय संगीत की तरह था, जो शास्त्रानुकूल था य परन्तु कैशिकी उपशास्त्रीय संगीत की तरह जिसका उद्देश्य था जन मनरंजन। सात्वती में स्वरों का सौंदर्यबोध और लयकारी की प्रधानता थी तो कैशिकी में मन के मृदु भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की क्षमता। शास्त्रों में प्राचीन काल में 'छलिका' नामक गायन शैली के प्रचार का वर्णन मिलता है। इस गायन शैली में गेय क्रिया के साथ साथ नृत्य एवं अभिनय का भी भावपूर्ण प्रदर्शन किया जाता था। तदनुसार आधुनिक युग में कुछ परिवर्तन के साथ ठुमरी गायन में विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति सुक्ष्मता एवं सुकुमारता के साथ तो होती है? परन्तु अब गायन की ही मुख्य प्रधानता होती है।वर्तमान ठुमरी गायन शैली में कलाकार की कल्पना एवं विद्वतानुसार आलप्ति की मनोहर भंगियों की सुन्दर छटा, काकू की मार्मिक उद्भावना दृष्टिगोचर होता है। हालांकि मन के विभिन्न भावों यथा श्रृंगार, भक्ति, करूणा, शान्ति आदि की अभिव्यंजना हेतु ठुमरी गायन से सुन्दर माध्यम संगीत में संभवतः नहीं हो सकता।इस गायन शैली में श्रृंगार रस की प्रधानता अन्य शैलियों से अधिक होती है तथा गायन हेतु खटका, मुर्की, मींड, पुकार आदि सांगीतिक उपकरणों का प्रचूर इस्तेमाल कर गायन को रसपूर्ण बनाया जाता है। शास्त्रीयता के आधार पर ठुमरी शब्द की उत्पति 'ठुमक' शब्द से है य जिसका अर्थ है सुन्दर पदक्षेप। आर्थात् शब्दों की कहन के साथ नायिका की नृत्यात्मक भाव भंगिमा। स्त्रैण गायिकी होने के चलते इस गायन–शैली की बंदिशें चंचल तथा क्षुद्र प्रकृति के राग तथा रागीनियों में ही प्रस्तुत किए जाने की परंपरा है। ठुमरी गायन में प्रयुक्त होने वाले कुछ प्रचलित राग इस प्रकार हैं राग खमाज, पीलू, भैरवी, तिलंग, झींझोटी, काफी, खम्भावती, जोगिया इत्यादि।

भारतवर्ष के विभिन्न कवियों की रचनाओं का आधार शाश्वत प्रेम के पर्याय राधा कृष्ण की युगल जोड़ी सदैव ही रही है तथा इसी प्रकार ठुमरी की ज्यादातर बंदिशों में श्रीकृष्ण और राधिका के

प्रेमलीलाओं का वर्णन मिलता है। इन रचनाओं में प्रेम तत्व के विभिन्न आयामों जैसे संयोग वियोग, विरह मिलन आदि भाव प्रखर होते हैं।शास्त्रीय तथा उपशास्त्रीय गीतों में भगवान शिव तथा पार्वतीजी, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम तथा सीताजी सहित कुछेक अन्य देवी दवताओं के गीत क्षेत्रानुसार उपलब्ध अवश्य हैं। लेकिन सर्वाधिक लोकप्रियता श्रीकृष्ण के लीलाओं से संबंधित पद ही रहे हैं। कान्हा के बचपन की शरारतों जैसे माखन मिश्री के लिए मचलना, ग्वाल बाल संग छींके से माखन उतारना, पनधट पर गोपियों के साथ बरजोरी, रूठे राधाजी को मनाना, अपनी वंशी के टेर से समस्त चराचर को भावविह्वल कर देना, श्रीराधे संग महारास का वृहत्तर आयोजन आदि गेय रचनाओं के मुख्य विषय रहे हैं। श्रीकृष्ण एक ओर जहाँ महाभारत युद्ध के महान रणनीतिकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं तो दूसरी ओर संसार के मायाजाल के अंतर्द्वंद में उलझे धनुर्धर अर्जुन को रणक्षेत्र में कर्तव्य बोध हेतु उपदेश देकर युद्ध हेतु तत्पर करते हैं।ऐसे कालजयी चरित्र का दूसरा एवं मनोहारी रूप प्रेम के प्रति उनका पूर्ण समर्पण है, जो सोलह कलाओं से पूर्ण है। कहते हैं कि उनकी वंशी की धुन से ग्वाल बाल, गोपियाँ मदहोश हो दौड़ी चली आती थीं। परन्तु श्रीकृष्ण के मन में तो श्रीराधाजी की मूरत बसी थी। एक बंदिश में ऐसा ही कुछ वर्णित है

स्थाई सुनियो सखी री।
राधे गवन किस ओर।।
अंतरा कुंज गलियन में खोजत फिरूँ।
नैनन ताकत चहुँ ओर।
राधे गवन किस ओर।।

वहीं दूसरी ओर कन्हैया के टेर से भावविह्वल हुई राधाजी कहती हैं बँसुरिया अब न बजाओ धनश्याम।

भैरवी में विरचित एक ठुमरी की निम्नलिखित बंदिश में कन्हैया के वियोग में बेचौन राधे के मन की व्यथा को बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णित किया गया है—

स्थाई— *श्याम नहीं आये हमरी ओर।*
राधा प्यारी बिलखत कुंजन में।।
अंतरा— *गोकुल ढुँढी वृन्दावन ढुँढी।*
खोजत फिरी गलियन में।।

उपरोक्त बंदिश में नायिका आर्थात् राधिके अपने प्रियतम की विरह में व्याकुल होकर उन्हें ढुँढती फिर रही हैं।वहीं दूसरी ओर राधारानी कन्हैया के छेड़छाड़ से परेशान होकर निवेदन भी करती हैं

स्थाई कान्हा न कर बरजोरी।
मैं तो जाती हूँ जमुना जल, हटो छाँड़ो डगर मोरी।।
अंतरा 'कदर' कहत तजी लोकलाज, न मानी मोरा कहना
गारी दूँगी तोको, ना कर अब मोसे बरजोरी।।

कदर रचित ठुमरी की इस बंदिश में राधिका प्रेमपूर्वक अपने प्रियतम को जमुना जल हेतु जाने के क्रम में तंग नहीं करने का निवेदन करती हैं तथा नहीं मानने पर गारी देने की भी बात कर अपने प्रियतम को मनाने का प्रयास करती हैं।यहाँ राधा उस प्रगल्भ नायिका की तरह व्यवहार करती हैं, जो नायक से असीम प्यार तो करती हैय परन्तु संभवतः लोकलाज के डर से मर्यादित प्रेम की भी अपेक्षा रखती हैं।वहीं दूसरी ओर एक बंदिश में वर्णित है कि कन्हैया के साथ श्रीराधाजी अपनी सहेलियाँ संग जमुना के तट पर कदम की छाँव तले विराज रहीं हैं—

स्थाई—श्याम सुंदर जमुना तट वंशी बजाई।
अंतरा—सप्त सुरन सो, अधरन मुरली बाजी।
संग में राधा साजत, सघन वन वन मुस्काई।।

सृष्टि का यह शाश्वत नियम है कि अगर संयोग है तो वियोग भी है। श्रीकृष्ण को न देख प्रेम राधाजी भावविह्वल हो व्याकुल हो उठती हैं।ठुमरी के कुछ पदों में श्रीकृष्ण विरहासिक्त हैं तो कुछ रचनाओं में राधाजी व्याकुल।शायद राधा कृष्ण के प्रेम की यह पराकाष्ठा है।व्याकुल होकर राधाजी के मन की व्यथा को इस रचना में बड़े ही सुन्दर ढंग से दर्शाया गया है

स्थाई— *कौन गली गए श्याम।*
बता दे सखी।।
अंतरा— *गोकुल ढुँढा वृन्दावन ढुँढा*
ढुँढी फिरी चारो धाम।।

जैसा की हम जानते हैं ठुमरी एक नायिका प्रधान गायिकी है तथा इस गायन शैली के अधिकतर बंदिशों में नायिकाओं के ही मनोदशाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है, परन्तु कुछ बंदिशें ऐसी भी हैं जो नायक के भावपक्ष को बखूबी उजागर करती हैं। निम्नलिखित बंदिश में नायक आर्थात् मनमोहन राधाजी के स्नेह डोर से बंधे हैं। एक सखी को संदेह है कि राधारानी के कजरारे नैन तथा उलझी हुई काली लटों में कन्हैया कहीं उलझ नहीं जाएँ। उलझ जाने का तात्पर्य है कि कन्हैया श्रीराधाजी के प्रेम में न पड़ जाएँ। एक सखी कहती हैं—

स्थाई— *सखी प्यारी प्यारी अँखियाँ राधे की।*
मन मोह लियो मनमोहन की।।

श्रीकृष्ण राधाजी के सौंदर्य लावण्य से नहीं बच सकते तथा श्रीकृष्ण का एक नाम मनमोहन है, परन्तु राधा के प्रेम ने श्रीकृष्ण के मन को मोह लिया है। यद्यपि ठुमरी की अधिसंख्य बंदिशें नायिका प्रधान हैं, परन्तु राधा तथा कृष्ण दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं।दोनों का एक दूसरे के प्रति निश्छल समर्पण प्रेम की एक सम्पूर्ण परिभाषा प्रस्तुत करता है। राधा-कृष्ण के प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए ठुमरी की पारम्परिक बंदिशें वास्तव में अपनी सार्थकता सिद्ध करती हैं। मानव सभ्यता के इन पौराणिक पात्र की क्रीडाएँ ईश्वरीय लीला थी।यहाँ का प्रेम न तो स्वार्थ के वशिभूत था और न ही सांसारिक।

श्रीकृष्ण द्वारा आयोजित महारास प्रेम के इस विराट स्वरूप का ही एक विलक्षण उदाहरण है। श्रीराधाजी के ठुमकती चाल से जहाँ एक ओर श्रीकृष्ण का प्रेमी हृदय मचल उठता है, तो दूसरी ओर श्रीराधाजी श्रीकृष्ण को न देख चारो धाम भटक जाती हैं।तात्पर्य है कि दोनों ही हमेशा एक दूसरे से दूर होना नहीं चाहते। ठुमरी गायन में श्रीकृष्ण के छेड़छाड़ एवं राधा के साथ बरजोरी नहीं करने के निवेदन को भावनात्मक रूप से लयबद्ध कर बड़े ही सुन्दरतापूर्वक बरता जाता है, तो दूसरी तरफ कन्हैया के अधरों से सटी हरित बाँस की बाँसुरी से डाहपना यानी सौतन की भाव को भी शब्द स्वर एवम् लय के साथ बहुत ही सुन्दर अदायगी के साथ गवैये द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। ठुमरी गायन शैली में श्रृंगार रस की बंदिशों की बात हो, तो राधा कृष्ण की होरी के बिना इनके प्रेम की अभिव्यक्ति की बात अधूरी रह जाएगी। श्रीकृष्ण की होली चाहे जमुना जी के तट पर हो या ब्रज की गलियों में! कान्हा के पिचकारी की रंगीन फुहार से श्रीराधाजी की चुनरी भीग जाती है और राधिके के अबीर गुलाल से कृष्ण के सिर की पगड़ी प्रेम रंग से सराबोर हो जाता है। ठुमरी गायन में इस नयनाभिराम दृश्य को बड़े ही सुन्दरतापूर्वक पिरोया जाता है। राग खम्भावती में निबद्ध एक पारम्परिक ठुमरी में कुछ ऐसा ही भाव है। विलम्बित लय की इस ठुमरी में राधाजी नन्दलाला को होली खेलने के लिए हाथों में केसर और गुलाल लिए आमंत्रित कर रही हैं

स्थाई— होरी खेलूँ तोसे नंदलाल आओ।
होरी खेलूँ तोसे...
अंतरा— केसर को रंग डारूँगी तुम पर।
और डारूँगी गुलाल लाल आओ।।

अंततः हालांकि राधा कृष्ण की प्रेम अभिव्यक्ति स्वयं में एक अत्यंत जटिल विषय है।परन्तु ठुमरी गायन शैली में विभिन्न अंगों की पारम्परिक बंदिशों द्वारा राधा कृष्ण के प्रेम की अभिव्यक्ति को बहुत ही सुन्दरतापूर्वक गाया जाता है तथा विभिन्न भावों और रसों को ठुमरी के पदों या बंदिशों से दर्शाने की कोशिश भावप्रणता के साथ की जाती है।

जय संगीत।। जय भारत।।

विद्यापति की रचनाओं में राधा-कृष्ण

डॉ. निशा झा

अध्यक्ष, विश्वविद्यालय संगीत विभाग, ति.मॉं. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

विद्यापति का काल मिथिला के इतिहास में स्वर्ण-युग कहा गया। मिथिला बिहार का एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ साहित्य और संगीत की परम्परा अविरल धारा के रूप में प्रवाहित है।

जब भारत में मुसलमानी शासन की स्थापना हो चुकी थी उसी समय विद्यापति का प्रादुर्भाव हुआ था। इस बात के भी प्रमाण मिले हैं कि उस वक्त मिथिला एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में विकसित था।

इसमें संदेह नहीं कि उस काल में वैष्णव-सिद्धांत और भक्तिवाद पर किसी-न-किसी रूप में इस्लामी चिन्तन का प्रभाव पड़ा है। सूफी लोगों के चिन्तन का प्रभाव भक्ति संप्रदाय पर पड़ा है। यह भी सत्य है, उस युग में धार्मिक एवं दार्शनिक क्षेत्र में भक्ति की प्रधानता थी।

राधा कृष्ण चौधरी ने "विद्यापति-युग का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन" में लिखा है "भक्ति और वैष्णव मत का विकास इस युग में पूर्वी भारत में हो रहा था। वैष्णवों ने भक्ति सिद्धांत को काफी बल दिया। निम्बार्क और बल्लभ ने जिस वैष्णव भक्ति का सूत्रपात किया, उसका चरमोत्कर्ष चैतन्य देव में जाकर हुआ और इस अवधि में जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति भी हुए। चैतन्य सबसे ज्यादा चण्डीदास और विद्यापति से प्रभावित हुए।

'चैतन्य चरितामृत' से यह स्पष्ट होता है कि चैतन्य देव, जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति के ऋणी थे। मिथिला में शिव और शक्ति की प्रधानता थी परन्तु विष्णु भी यहाँ काफी जनप्रिय रहे हैं क्योंकि मिथिला के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों में विष्णु के विभिन्न रूपों की मूर्तियाँ मिली है। सभी देवी-देवताओं को मिथिला में समान रूप से पूजा जाता था और विष्णु के प्रति भी समान आस्था थी। मिथिला से प्राप्त विभिन्न पांडुलिपियों और मध्यकालीन निबंधकारों की रचनाओं में भी विष्णु के प्रति आस्था व्यक्त की गयी है। जयदेव ने भी मिथिला के कवि और निबंधकारों को काफी प्रभावित किया है। उमापति ने भी अपने "पारिजात हरण" में कृष्णलीला का वर्णन किया है। किसी विद्वान के अनुसार-जयदेव के राधा-माधव के क्रीड़ा कलापों की प्रतिध्वनि मैथिल कोकिल विद्यापति की कोमल कान्त पदावली में सुनाई दी।"

मिथिला में राधा कृष्ण लीला को विद्यापति ने ही अपने पदों के माध्यम से प्रचलित किया। पूर्वी भारत का वैष्णव चिन्तन विद्यापति से काफी प्रभावित था। वैष्णव चिन्तन धारा के लोग उन्हें अपना अग्रज मानते थे।

विद्वानों का मानना है कि कविगुरू रवीन्द्रनाथ टैगोर भी विद्यापति की रचनाओं से प्रेरित थे। "हे सखि मानुष जनम अनूप" के माध्यम से विद्यापति ने सत्य को बताया है, इसी को टैगोर ने अपने विचारों में महत्ता प्रदान की है। सूफियों और वैष्णवों ने प्रेम की परिभाषा समान रूप से दी है। विद्यापति ने राधा और कृष्ण के प्रेम दर्शन को नर-नारी के रूप में हमारे सामने उद्घृत किया है। विद्यापति पर विष्णुस्वामी और निम्बार्क का प्रभाव है। विद्वानों का

मानना है कि विद्यापति वैष्णव संप्रदाय और भक्ति के प्रथम कवि थे। लेकिन विद्यापति राज दरबार में रहने वाले कवि थे। वैष्णव भक्त कवियों की तरह धूम-धूम कर वैष्णव प्रचारक नहीं थे।

विद्यापति के वैष्णव संप्रदाय संबंधी कुछ मार्मिक पद इस प्रकार हैं-

1. *माधव जाए केवाड़ छोड़ाओल*
   जाहि मंदरि बसुं राधा।
   चर उधारि अधर भुख हेरल
   चान उगल छवि आधा।।
2. *राधा सँ जब सुनतहि माधव*
   माधव सँ जब राधा
   दारून प्रेम तबहुँ नथ्श टुटत
   बाढ़त विरहक बाधा
3. *मथुरा नगर अटकि हम रहल हुँ*
   किअ न पठाओल दूती।
   माणिक एक माणिक दस पसरल,
   ओतहि रहल पहु सूती।।
   कमल नयन कमलापति चुम्बित,
   कुम्भकरण समुदाये।
   हरिक चरण धै गावथि विधापति
   राधा कृष्ण विलापे''

(मित्र-मजुमदार, पद संख्या 855)

विद्यापति सिर्फ राधा-कृष्ण के प्रेमलीला का ही वर्णन अपने पदों मॅं कर सकते थे। लेकिन अनुमान लगाया गया है कि दरबार में रहने के कारण शासक के अधीन थे इसलिए सम्राट (शासक) के आदेश का पालन करना उनके लिए आवश्यक था। अतः उन्होंने राधा-कृष्ण के अतिरिक्त शिव-पार्वती की भी रचनाएँ की हैं और भी विभिन्न रचनाओं को उन्होंने अपनी लेखनी प्रदान की है। विद्यापति ने अपने आश्रयदाता को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया है।

विद्यापति जी ने कृष्ण की विलासिता के संबंध में एक पद लिखा है जो इस प्रकार है'

हे हरि हे हरि सुनिअ स्रवन भरि
अब न विलासक बेरा।
गगन नखत छल से हो अबेकत भेल
कोकिल करइछ फेरा।।
चकवा मोर सोर कए चुप भेल
ओठ मलिन भेल चन्दा,
नगरक धेनु डगर कए संचर
कुमुदिनि बसु मकरन्दा।।
मुख केर पान से हो रे मलिन भेल
अवसर भल नहि मन्दा।
विद्यापति भन इहो न उचित थिक
जग भरि करइछ निन्दा।।

प्रस्तुत गीत में कृष्ण को कहा जा रहा है कि सारा जग जाग चुका है, सब अपने कार्य को करना प्रारंभ कर दिए हैं। तारे-नक्षत्र सभी विलुप्त हो चुके हैं। आप भी अपना विलास खत्म करें नहीं तो जग आपकी निन्दा कर रहा है।

विद्यापति की रचनाएँ मिथिला समाज की संस्कृति का अभिन्न अंग बनकर रह गयी है। इनकी पदावली में रस, छंद एवं शैली का अद्भुत संयोग हैं उनके राधा-कृष्ण प्रेम की अभिव्यक्ति के पदों में कलात्मकता एवं गीतात्मकता का सुन्दर चित्रण मिलता है। सरलता, सहजता, माधुर्य एवं भावमयता राधा-कृष्ण के प्रेम को और भी रमणीय बनाते हैं।

धमार शायन शैली में राधा-कृष्ण की प्रेम अभिव्यक्ति

डॉ. रैना कुमारी

विश्वविद्यालय संगीत विभाग

ति.माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

धमार गायन शैली शास्त्रीय संगीत का एक लय प्रधान शैली हैं मुगलकाल से ही धमार गायन शैली की परम्परा रही है। उस काल में रंगीन समय राजधानी थी-आगरा। वहाँ के शासक थे अकबर। अकबर कला-प्रेमी सम्राट थे। निबंध संगीत (एल के गार्ग) पृ. 61 पर अंकित है कि-धमार की धूमधाम केवल लोकजीवन अथवा वैष्णवों के मंदिर में ही नहीं थी, अपितु मुगलों के -उनमें भी औरंगजेब-दरबार और अंतपूर्ण संगीत धमारों से गूँजते थे।

लोकसंगीत के अंतर्गत भी एक गायन शैली है धमार। इसे सामूहिक रूप से टोली बनाकर गाया जाता था। रंग खेलती हुई ये टोलियाँ धमार गाती थी। साथ में ढोल बजाया जाता था। इस गायन शैली का विषय होली से संबंधित होता था। धमार में विशेषकर गोपियाँ संग कृष्ण के होली खेलने का मधुर चित्रण रहता था।

इसके अतिरिक्त वैष्णव संतों ने भी मंदिरों में धमार ताल में धमार गाते थे। मंदिरों में जो धमार गाए जाते थे, उसमें ढोल का प्रयोग नहीं किया जाता था। ढोल के प्रयोग के जगह पर परवावज का प्रयोग किया जाता था। एक कीर्त्तनकार का भी समूह होता था जो धमार गाते थे। ये कीर्त्तनकार धमार गाने में झाँझ का प्रयोग करते थे। ये कीर्त्तनकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी होते थे।

अबुल फजल ने लिखा है कि-कीर्त्तनियाँ ब्राह्मण संगीत जीवी होते थे और अपने साथ रबाब परवावज और झांझ बजाते थे। कुछ ऐसे भी धमार मिलते हैं जो मुगल दरबार में गाए जाते थे। इन दरबारों में जब धमार गायन होता था तो उसके साथ बीन और परवावज की संगति होती थी।

दरबार में गए जाने वाले एक धमार के बोल निम्नांकित है-

होरी खेलेई बनेगी, रूसैं अब न बनेंगी।
मेरी कहो तू मानि नवैली, जब वा रंग न सनैगी।
कैई बेरि आई-गई तू, नाहि मानत ऊँची करि ठोड़ी मौंहे तनेगी।
साहि जलालउद्दीन फगूआ दीजै, आवुतें-आप मनैगी।

कितना अनुपम, अदभुत मिश्रित संस्कृति का परिचायक है यह धमार। होली के त्योहार में हिन्दु-मुस्लिम सभी समान-भाव से आनंद का लुत्फ उठाया करते थे। सिर्फ एक संस्कृति, मनोरंजक संस्कृति। मुगलकालीन संस्कृति का बेहतरीन अंदाज। मुगलकाल में सदारंग बहुत प्रसिद्ध ख्याल गायक हुए। उन्होंने भी अनेक धमारों की रचना की। उनकी रचनाओं में मोहम्मद शाह का वर्णन रहता था, जैसे-

"फागुन मास में बरखा फ्राट दिखाई।
पिचकारी अरू मोहर चपला, अबीर-गुलाल छटा छाई।
करि सिंगार हार-मोती-माल, का पंगति छवि छाई।
सदारंगीले छबीले मुहम्मद सा उमंगी झर लाई।।"

इसी मुगलकालीन परम्परा में आगे भी अनेक धमार की रचना हुई।

यदि धमार गायन शैली को विशुद्ध शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत गायी जाती है तो वह शास्त्र सम्मत होती है। मतंग आदि विद्धानों ने इसे भिन्ना गीति के अंतर्गत रखा था। इसे धमार ताल में गाया जाने वाला प्रबंध कहा जाता था। धमार का विषय होली के ही होते थे। अनेक ग्रंथों में मिलता है कि भगवान श्री कृष्ण ब्रज में होली और रास लीला अत्यन्त ही मनोरंजक रूप से प्रस्तुत किया करते थे। धमार गायन की शास्त्रीयता मेँ आलाप, बोलबाँट एवं लयकारी की प्रधानता होती है। इसमें तान इत्यादि का प्रयोग नहीं होता। इसमें ध्रुपद गायकी के समान चार भाग-स्थायी, अंतरा, संचारी एवं आभोग होते हैं। इस गायन शैली के साथ परवावज की ही संगति की जाती है।

कुछ धमार निम्नांकित हैं—

स्थाई *एरी मैंका आज मिले बनवारी।*
जमुना तट हाथन रंग पिचकारी।

अंतरा *अबिर गुलाल मलत भुख मेरे*
देत हजारन गारी।

2. राग श्याम कल्याण में प्रचलित एक धमार—

स्थाई *मन को रिझाए री मोरे ब्रज*
गलियन में होरी राधेश्याम सुधर की।

अंतरा *ब्रज गोपिन मिल खेल रहे सब*
संग लिए भर झोरी अबीर की।

3. राग शुद्ध सारंग में एक धमार—

स्थाई *कैसे खेलत फाग हो तुम*
ढीठ लंगर हम सन

अंतरा *बाँह पकरि मेरो तन झकझोरत,*
बोरत अबीर गुलालन।

4. राग यमनी बिलावल में एक धमार-

स्थाई *ब्रज में आज मची है होरी*
धर-धर गाए मिलि फाग धमार।

अंतरा *बाजत चंग मृदंग झांझ डफ,*
तारी दै दै धमार।

ऐसे असंख्य धमार प्रचलित हैं जो राधा कृष्ण के संयोग एव वियोग श्रृंगार रस के परिचायक हैं।

एक प्रचलित पारंपरिक शैली का धमार है जिसकी नूररंग ने रचना की है-

''आली आया यह फागुन मास पिय कीनी गमन
मो पै कैसे करे जहरितु उन बिन माई।
ज्यों ज्यों सुधि आवत मोहन की
ग्रह आँगन अति दूभर विरह देत दुख दुखदाई।
चहूँ ओर डफ बाजन लागे, मन्मथ करत चढ़ाई।
जहँ दुख वैरी पाछे लगी, बड़ी कठिन है भाई।।
पल-पल छिन-छिन ऐसी बीतत, कह न सकत तेरी दुहाई।
'नूररंग' के दरस देखे बिन नैननि नींद न आई।।

कुछ ऐसे भी धमार अदारंग रचित प्राप्त हैं जिसमें राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी का वर्णन है। जो निम्नांकित है—

कहा वैठी है री तू नारि उठि चलि पिया पास खेल लै होरी।
अतर-गुलाब और चौबा-चंदन और अबीर गुलाल की भरि लै झोरी।।
मेरे कहे तू उठि चलि पिय पर मति कर मान, ऐ गोरी।
'अदारंग' मिलि करि फागु खेल लै अविचल रही राधा-कृष्ण की जोरी।

वास्तव में धमार गायन शैली में राधा-कृष्ण के अद्‌भुत प्रेम का वर्णन मिलता है। जो संगीत ही नहीं भारतीय संस्कृति में अध्यात्म की पराकाष्ठा को छूती है।

भारतीय साहित्य में चित्रित राधा और कृष्ण का प्रेम

डॉ. दीपछन्दा घोष

संगीत शास्त्र जितना ही विशाल है उतना ही मनोरम भी है। साहित्य के कोने में सौन्दर्य का दर्शन करता है और अपेक्षाकृत सुन्दर को अति-सुन्दर बनाने की प्राणपण चेष्टा करता है। वह छोटी से छोटी वस्तुओं में भी ईश्वरीय ज्योति के प्रकाश कणों की झलक देखता और वह अज्ञान, उपेक्षा और तिरस्कार के आवरण को हटाकर स्वयं अपने को ही नहीं वरन् सारे संसार को उन दिव्य ज्योति का पावन प्रकाश प्रदान करता है। वह मानव हृदय के अन्धतम् स्वरों में प्रवेश कर उनको अपने प्रेम प्रदीप से प्रकाशित करता है। उसके साम्राज्य की सीमाएँ नित्य विस्तारोन्मुखी रहती हैं।

भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। इसी ने राम रहीम की एकता स्थापित करने वाले कबीर और प्रेम के प्रचारक तथा साहित्य क्षेत्र को राम कृष्ण भक्ति की पावनी गंगा-जमुनी धाराओं को आप्लावित करने वाले तुलसी, सूर दिये जो भारतीय हिन्दी साहित्य के प्रकाशपुंजमय ज्योतिर्पिण्डों में गिने गये। इन साहित्यिक शशि और सूर्य ने भावी साहित्य को ही नहीं वरन् ह्रासोन्मुख हिन्दू जाति को एक नया जीवन रस प्रदान किया।

कृष्ण काव्य की लोकप्रियता हिन्दी, बंगला आदि प्रान्तीय साहित्यों तक ही सीमित नहीं वरन् संस्कृत और संगीत शास्त्र में दृष्टिगोचर होता है। कृष्ण की महत्ता और लोकप्रियता कृष्णोपासना की व्यापकता और प्राचीनता पर निर्भत है। विष्णु की महत्ता वैदिक काल में ही स्थापित हो चुकी थी। वैदिक काल में उनका सूर्य से तादात्म्य रहा है। गीता में भी बात स्वीकृत हुई है कि 'आदित्यानामहं विष्णु'। भगवान श्री कृष्ण सोलहों कला के अवतार हैं। दर्शनशास्त्र, संगीत शास्त्र, राजनीति शास्त्र युद्धकला सहित वे सर्वगुण सम्पन्न हैं।

राधाकृष्ण एक हिन्दू देवता हैं। कृष्ण को गौड़ीय वैष्णव धर्मशास्त्र में अक्सर स्वयं भगवान के रूप में सन्दर्भित किया गया है और राधा एक युवा नारी हैं, एक गोपी जो कृष्ण की सर्वोच्च प्रेयसी हैं। कृष्ण के साथ राधा को सर्वोच्च देवी स्वीकार किया जाता है और यह कहा जाता है कि वह अपने प्रेम से कृष्ण को नियंत्रित करती है। कृष्ण संसार को मोहित करते हैं, लेकिन राधा उन्हें भी मोहित कर लेती है, इसलिए वे सर्वोच्च देवी हैं। राधा रानी का नाम इतना पुराना नहीं प्रतीत होता। अमकोषम विशाखा नक्षत्र का राधा ही राधा का नाम न होते हुए भी श्री कृष्ण के बाल और यौवन लीलाओं का माधुर्य पक्ष श्रीमद्भागवत् तथा पद्मपुराण में विकसित हो चुका था। श्रीमद्भागवत् में एक विशेष गोपी का उल्लेख है - वह संभवतः राधा की ओर संकेत करता है।

बारहवीं शताब्दी में जयदेव गोस्वामी ने प्रसिद्ध 'गीत गोविन्द' लिखा तो दिव्य कृष्ण और उनकी भक्त राधा के बीच के आध्यात्मिक प्रेम सम्बन्ध के विषय को सम्पूर्ण भारतवर्ष में पूजा जाने लगा। यह माना जाता है कि कृष्ण ने राधा को खोजने के लिए

रास नृत्य के चक्र को छोड़ दिया है। चैतन्य सम्प्रदाय का मानना है कि राधा के नाम और पहचान को भागवत पुराण में इस घटना का वर्णन करने वाले छंद में गुप्त रखा गया और उजागर भी किया गया। यह माना जाता है कि राधा मात्र एक चरवाहे की कन्या नहीं है, बल्कि सभी गोपियाँ या उन दिव्य व्यक्तियों का मूल है जो रास नृत्य में भाग लेती हैं।

राधा कृष्ण को दो भागों में बाँटने पर कृष्ण विष्णु क आठवें अवतार हैं और उनकी सहचरी राधा है। हर देवता का अपना साथी, 'अर्द्धांगिनी' या शक्ति होती है और उस शक्ति के बिना उन्हें कभी-कभी अपरिहार्य शक्ति माना जाता है। हिन्दू धर्म में कृष्ण की पूजा स्वयं भगवान के रूप में की जाती है, जो पुरुष है, उस परम्परा में शामिल है उनकी राधा का सन्दर्भ और गुणगान जिन्हें सर्वोच्च के रूप में पूजा जाता है। इस विचार को स्वीकार किया जाता है कि राधा और कृष्ण का संगम शक्ति के साथ शक्तिमान के संगम को इंगित कर सकता है और यह विचार रूढ़िवादी वैष्णव या कृष्णवाद के बाहर अच्छी तरह से मौजूद है।

राजा गरीब निवाज ने 1709 से 1748 तक शासन किया और उन्होंने चैतन्य परम्परा के वैष्णव शाखा में दीक्षा ली जो कृष्ण की पूजा सर्वोच्च ईश्वर के रूप में करता है, स्वयं भगवान; उन्होंने लगभग बीस वर्षों तक इस धर्म का अभ्यास किया।

मणिपुरी वैष्णव कृष्ण की अकेले पूजा नहीं करते हैं, बल्कि राधा-कृष्ण की करते हैं। वैष्णव मत के प्रसार के साथ कृष्ण और राधा की पूजा मणिपुर क्षेत्र में प्रभावी पद्धति बन गई। वहाँ के हर गाँव में एक ठाकुर-घाट और एक मंदिर होता है। रास और अन्य नृत्य हमेशा क्षेत्रीय लोक और धार्मिक परंपरा की एक विशेषता है; उदाहरण के लिए, एक महिला नर्तकी एक ही नारी में कृष्ण और उनकी सहचरी राधा दोनों का अभिनय करेगी।

भागवत में मध्यकालीन राजस्थानी चित्रकला में वैदिक और पौराणिक साहित्य में राधा और इस धातु के अन्य रूप में राधा का अर्थ है पूर्णता, सकलता और संपदा। सफलता के देवता इंद्र को राधास्पति, भाग्य के देवता के रूप में महाविष्णु के सन्दर्भ में और जयदेव द्वारा जय जयदेव हरे के रूप में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त विजयी हरि और राधास्पति, सभी को कई जगहों पर देखा गया है।

गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में राधारमण का चित्र, 1542 जिन्हें न केवल कृष्ण के रूप में देखा जाता है, बल्कि राधा-कृष्ण के रूप में भी। गौड़ीय वैष्णव, बंगाल के क्षेत्र को दर्शाता है। आरंभिक बंगला साहित्य में इस चित्रण का और राधा और कृष्ण की समझ के विकास का विशद वर्णन मिलता है। संस्कृत साहित्य में राधा का व्यक्तित्व का सबसे अधिक गूढ़ चरित्रों में से एक है, उनका वर्णन प्राकृत या संस्कृत कविता में सिर्फ कुछ चुनिन्दा छंदों में ही किया गया है, कुछ शिलालेखों और व्याकरण, कविता और नाटक की कृछ कृतियों में जयदेव ने उनका सन्दर्भ लिया और बारहवीं सदी में भावुक भक्ति से ओत-प्रोत एक उत्कृष्ट कविता की रचना की और इस काव्य से आरम्भ होते हुए एक विशाल आंदोलन विशिष्ट रूप से बंगाल में शुरू हुआ।

स्वामीनारायण सम्प्रदाय में राधा कृष्ण देव का स्थान विशेष है क्योंकि स्वामीनारायण ने राधा कृष्ण को खुद शिक्षापत्री में सन्दर्भित किया जिसे उन्होंने लिखा था। इसके अलावा, उन्होंने खुद मंदिरों के निर्माण का आदेश दिया जिसमें राधाकृष्ण को देवताओं के रूप में स्थापित किया गया है। स्वामीनारायण ने बताया कि कृष्ण कई रूप में प्रकट होते हैं। जब वे राधा के साथ होते हैं, तो उन्हें राधा-कृष्ण नाम के अंतर्गत सर्वोच्च ईश्वर माना जाता है। रुक्मणी के साथ लक्ष्मी-नारायण जाना जाता है।

'बल्लभ' सम्प्रदाय में चैतन्य से भी पहले पुष्टिमार्ग के संस्थापक, वल्लभाचार्य राधा की पूजा करते थे, जहाँ कुछ संप्रदायों के अनुसार भक्तों की पहचान राधा की सहेलियों के रूप में होती है।

हिन्दू धर्म के बाहर कुछ हिन्दू विद्वानों और हिन्दू धर्म के जानकारों की राय में एक स्वर्ण युग था जब हिन्दू और मुस्लिमों ने एक आम संस्कृति का

निर्माण किया जिसका मुख्य कारण था कुछ मुस्लिम शासकों द्वारा संस्कृत और संस्कृत से फारसी में अनुवाद को संरक्षण प्रदान करना, जबकि वहाँ मुस्लिम नाम वाले ऐसे कवि थे जो कृष्ण और राधा के बारे में लिखा करते थे।

भारत में वृन्दावन और मथुरा को राधा-कृष्ण की पूजा का केन्द्र माना जाता है। श्री राधा रास बिहारी अष्ट सखी मंदिर वृदावन में, भगवान कृष्ण का लीला स्थान पर यह मंदिर है जहाँ कृष्ण के उन भक्तों के लिए जाना आवश्यक है जो 84 कोस व्रज परिक्रमा यात्रा को पूरा करते हैं। यह मंदिर सदियों पुराना है जो पहला भारतीय मंदिर है, जहाँ राधा की आठ 'सहेलियाँ' कृष्ण के साथ उनकी प्रेम लीला में अन्तरंग रूप से शामिल थीं। इस मंदिर को कहा जाता है 'श्री राधा रास बिहारी अष्ट सखी मंदिर' और यह भगवान कृष्ण और राधारानी की दिव्य रास लीला का स्थान है। किंवदंती है कि श्री राधा रास बिहारी अष्ट सखी मंदिर, मथुरा, वृंदावन में उन दो स्थानों में से एक है जहाँ भगवान कृष्ण अपनी प्रेयसी राधा और उनकी सखियों के साथ रास लीला में शामिल होते हैं।

नायक और नायिका के रूप में चित्रित राधा-कृष्ण

डॉ. अनुराधा आर्य

अध्यक्षा एवं एसोसिएट प्रोफेसर

चित्रकला विभाग, कन्या महाविद्यालय आर्य समाज, भूड़, बरेली

कला विविध रंगों से परिपूर्ण दर्शन है जिसमें जीवन को अनेकानेक रंगों से चित्रित देखा जा सकता है। धर्म जीवन के प्रत्येक स्थल पर प्राण स्वरूप विद्यमान रहा, एक क्षण के लिए भी वह मानव जीवन से अलग नहीं हुआ। धर्म जीवन का और जीवन धर्म का रूप सदैव बना रहा। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वर्णित जीवन के चार अंगों, यथा -धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में धर्म का स्थान सर्वप्रथम आता है।

देवी-देवताओं के रूप-स्वरूप साकार ब्रह्म के रूप में दर्शित हुए तथा असीमित और अनन्त शक्ति की कल्पना में निराकार ब्रह्म की भावना को बल प्राप्त हुआ। इन दोनों की रूपों में, जहाँ अभिव्यक्ति की कल्पना आयी वहाँ कला ने इस कार्य में सहायता प्रदान की। कला और धर्म का यह अटूट सम्बन्ध मानव-जीवन के प्रत्येक स्थल पर दृष्टिगोचर होता है।

धर्म मानव जीवन का प्रेरणा स्रोत एवं उसका प्राण है। यदि प्राण की यह शक्ति कला से विच्छिन्न हो गयी तो थोड़े ही समय में कला का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।"[1] धर्म ने भावनाये प्रदान कीं और कला ने उन भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए माध्यम का कार्य किया। कला और धर्म की इस मिश्रित प्रक्रिया को आन्तरिक अनुभूतियों का बाह्यीकरण कहा जा सकता है। इस रूप में कला धर्म की उद्घोषक बनी।

कला और धर्म का एक ही स्रोत है तथा कला और धर्म एक साथ ही पल्लवित हुए। यही कारण है कि समस्त आदि काव्य धार्मिक हैं एवं समस्त धार्मिक भावनाओं की कला, काव्य और संगीत में अभिव्यक्ति हुई है।

मनुष्य और समस्त प्रकृति के मध्य मधुर सम्बन्ध हिन्दू कला और संस्कृति के विशिष्ट अंग हैं। धार्मिक भावना ने आत्मा और परमात्मा के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों ने इसे प्रकृति और पुरुष का अविच्छिन्न रूप प्रदान किया। ब्रह्म तथा प्रकृति में अद्वैत की भावना हिन्दू धर्म और कला का प्रमुख तत्व है। कलाकार ने इस अविच्छिन्न रूप, अद्वैत भाव और मधुर सम्बन्ध को दैवी शक्तियों के युगल रूप जैसे शिव पार्वती, राधा-कृष्ण, सीता-राम, लक्ष्मी-नारायण, शिव शक्ति आदि के रूप में दिग्दर्शित किया।

भारतीय चित्रकला के पटल पर चमकती राजस्थानी तथा पहाड़ी चित्रकला में धार्मिकता तथा शृंगारिकता दोनों के दर्शन होते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ वैष्णव धर्म सोलहवीं शताब्दी में उत्तरी भारतम में पूर्ण विकसित हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी में श्री बल्लभाचार्य ने ब्रज को अपना केन्द्र बनाया और वैष्णव धर्म के उपदेश दिये। उनके अनुयायियों में सूरदास, मीरा, केशवदास तथा बिहारी प्रमुख हैं। इन कवियों ने भगवान को जीवन में खोजने की चेष्टा की और विष्णु के विभिन्न रूपों विशेषकर कृष्ण और राम को अपना आराध्य देव माना।

कृष्ण का जीवन भारतीय साधारण लोक जीवन के अधिक निकट है, यही कारण है कि कृष्ण भारत

वर्ष के प्रिय देवताओं में माने जाते हैं। वास्तव में कृष्ण का उद्दण्डतापूर्ण बाल्यकाल और यौवन का जीवन कृषकों, ग्वालों, गोपियों, पशु-पक्षियों से सम्बन्धित था और गरीब जनता से बहुत मिलता जुलता था, साधारण जनता के लिए सुलभ और ग्राह्य था।"[2] इस प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय राजस्थान तथा उत्तरी भारत तक ही नहीं अपितु पहाड़ी प्रदेश तक पहुँचा और चित्रकारों की प्रेरणा का मुख्य आधार बना।

मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदाय की ज्ञान ज्योति और उज्ज्वलता ने कृष्ण को अधिक महत्वूपर्ण देवता बना दिया और भागवत पुराण वैष्णवो का धर्म ग्रन्थ बन गया। भागवत पुराण के आधार पर अनेकों कवियों और कलाकारों ने रचनायें कीं। तत्कालीन कवियों की रचनाओं के अन्तर्गत नायिका भेद को प्रमुखता दी गयी और वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण प्रायः इन चित्रों में नायक तथा नायिका साधारण पुरुष या स्त्री न होकर कृष्ण और राधा जैसे आदर्श प्रेमी हैं।"[3]

मेवाड़ शैली के चित्रों में कृष्ण के चित्रण को प्रमुखता दी गयी है। प्रायः नायिका भेद, रागमाला चित्रों में कृष्ण और राधा को आदर्श प्रेमी-प्रेमिका का रूप दिया गया है। राधा एवं कृष्ण आईने में निहारते हुए, ऑख मिचौली खेलते हुए तथा रात्रि में प्रेम करते हुए अनेकों विषयों को मेवाड़ के चितेरों ने सशक्त रेखांकन, भाव प्रवण चेहरे, तीखे नाक नक्श, रौबीली आकृतियों तथा मूल चटख रंगों से उकेरा है।

मारवाड़ या जोधपुर शैली में अन्य शैलियों की अपेक्षा राधा-कृष्ण विषय का चित्रण कम हुआ है और जो चित्र बने हैं, उनका आधार जयदेव का शृंगारिक काव्य गीत-गोविन्द, केशव की 'रसिक प्रिया' तथा मतिराम का 'रसराज' है।

किशनगढ़ एक समय बल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों का प्रमुख केन्द्र था। अतः किशनगढ़ के प्राचीन चित्रों पर उसका प्रभाव है। बाद की शताब्दियों तक किशनगढ़ शैली में राधा-कृष्ण और कृष्ण सम्बन्धी विभिन्न लीलाओं के चित्रों का निर्माण इसी भावना से होता रहा। "श्याम-श्यामा के रतिभाव का विभिन्न आयामों से दिग्दर्शन ही किशनगढ़ चित्रशैली के प्रमुख विषय हैं। राधा-माधव की प्रेम-लीला, प्रिया-प्रियतम का मधुर मिलन तथा भाव चित्रण ही कलाकारों को अभीष्ट रहा है।"[4]

कृष्ण प्रेमी सावन्त सिंह उर्फ नागरी दास ने अपनी रचनाओं में प्रेमिका बनी-ठनी को राधा के रूप में वर्णित किया तथा चित्रकार निहालचंद की सुकोमलन भावपूर्ण तूलिका से राधा-कृष्ण के मार्मिक प्रेम की तीक्ष्ण अभव्यक्ति करायी। प्रेमी और प्रेमिकाओं के चित्र अपने ही ढंग से बनाये गये हैं, प्रायः नायक नायिकाओं को सुन्दर नौकाओं पर जल बिहार करते दिखाया गया है। चित्रकार ने प्रेमियों की क्रीड़ाओं में विशेष रुचि ली है और उनके मिलन स्थानों के लिए कुजों तथा लतिकाओं की झुरमुटों का सघन वृक्षों से आच्छादित पृष्ठिकाओं और भवनों का चयन किया है। रात्रि दृश्य भी अपनी एक विशेषता लिये बनाये गये हैं ।

कृष्ण लीला के चित्र हिन्दी साहित्य के आधार पर बनाये गये परन्तु इनमें राधा और कृष्ण का रूप अनोखा और नवीन है। कृष्ण और राधा को तत्कालीन प्रेमी और प्रेमिकाओं का रूप देने की चेष्टा की गई है। नागरी दास ने बनी ठनी के प्रति कृष्ण और राधा के रूप में अपने प्रेम की अभिव्यक्ति की इसी कारण नवीन कलेवर और नवीन प्रेम-क्रीड़ाओं की कल्पना के आधार पर चित्र बनाये गये।"[5] चित्रों में पुष्टिमार्ग का अनुसरण किया गया है। चित्रकारों ने आत्मा और परमात्मा का प्रतीक राधा-कृष्ण को माना है।

नारी सौन्दर्य किशनगढ़ शैली की प्रमुख विशेषता है। किंचित लम्बा, पतला चेहरा, ऊँचा तथा ढलवां ललाट, लम्बी तथा नुकीली नाक, कमल नयन, छरहरा बदन तथा लम्बे केश निःसंदेह स्थानीय नारी की सौन्दर्य छवि तथा बनी-ठनी का शैलीब(आदर्श रूप राधा ही हैं। कोटा भी पुष्टिमार्गीय वैष्णव सम्प्रदाय का केन्द्र रहा है। कृष्ण लीला सम्बन्धी असंख्य चित्र बने हैं जो पुष्टिमार्गीय भावना से ओत-प्रोत हैं। राधा-कृष्ण का एक चित्र है जिसमें वीणाधारी कृष्ण राधा के पास आये हैं, राधा बैठी हैं। सरोवर में नाव, सामने एक ग्वाला तथा पशु-पक्षी अंकित हैं।

राग-रागनियों के चित्रों के साथ-साथ नायिका भेद का भी चित्रण कोटा में हुआ। चित्र के मध्य नायक नायिका बैठे हैं। नायिका कुछ रुठी हुई है और नायक उसे मना रहा है। सेविका पंखा झल रही है।

बूँदी चित्रकारों ने विशेष रूप से नायक-नायिका, बारहमासा, ऋतु चित्रण, भागवत पुराण पर आधारित कृष्ण लीला एवं रीतिकालीन कवियों की रचनाओं से सम्बन्धित कई चित्र बनाये। कृष्ण लीला प्रसंगों और रसिक प्रिया चित्रांकन एवं कला तत्वों के संयोजन में बूँदी का कौशल अद्‌भुत हैं।

जयपुर शैली में भी कृष्ण से सम्बन्धित चित्रों की अधिकता रही। रागमाला चित्रावली, रसराज, बिहारी सतसई तथा कृष्ण लीला पर आधारित चित्र दत्तिया शैली की अपनी विशेषता हैं। मतिराम लिखित रसराज पर आधारित एक चित्र में कृष्ण एक कुंज में बैठे हैं और राधिका मुख्य भूमि में एक आम के वृक्ष के सहारे खड़ी यह सोच विचार कर रही है कि प्रीतम कृष्ण के पास जाकर अपना विरह शांत करना चाहिए या अपने मान को बनाये रखना चाहिए। चित्र में एक ओर दो सखियां खड़ी हैं जिनमें से एक दूसरी को राधा की विरह की कहानी सुना रही हैं। पहाड़ी क्षेत्र के अन्तर्गत गुलैर शैली में धार्मिक चित्र यथा गीत गोविन्द और कृष्ण चरित, नायिका भेद सम्बन्धी चित्रों की रचना हुई। काँगड़ा के राजा संसारचंद वैष्णव धर्म का अनुयायी और कृष्ण भक्त था। यही कारण था कि कृष्ण काव्य और रीति काव्य की धारा को दरबार में विशेष मान्यता प्राप्त हुई। कृष्ण प्रेम और शृंगार की भावना कलाकारों की मुख्य प्रेरणा रही। कृष्ण से बढ़कर नायक उनकी दृष्टि में कोई और नहीं था। अतः समस्त पहाड़ी कलाकृतियों में कृष्ण ही छाया रहा, कृष्ण को प्रतीक मानकर नाना सांसारिक तथा शृंगारिक लीलाओं को अंकित किया गया। गीत-गोविन्द, बिहारीसतसई और भागवतपुराण में कृष्ण जीवन की विविध लीलायें नयनाभिराम ढंग से प्रस्तुत की गईं। प्रेम का ऐसा भावपूर्ण, कलात्मक और सुन्दर चित्रण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। कला समीक्षक डॉ. आनन्द कुमार स्वामी के अनुसार "जो चीनी कला में लैण्डस्केप चित्रण में प्राप्त हुआ, वही यहां प्रेम के चित्रण में एक उपलब्धि बन गई है।"[6]

जिस प्रकार मध्यकालीन काल में शृंगार की सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रवृत्ति का विवेचन किया गया उसी प्रकार कांगड़ा शैली के चित्रकारों ने शृंगार की एक-एक मनोरंजक और भावपूर्ण दशा की सजीव चित्रमय झाँकियां प्रस्तुत कीं। चित्रकारों ने स्वकीया, परकीया तथा समाान्य तीनों प्रकार की नायिकाओं का चित्रण किया है। इन नायिकाओं की आठ अवस्थायें यथा स्वाधीनपतिका, उत्कंठिता, बासकसज्जा, अभिसन्धिता, खण्डिता, प्रेसितापतिका, विप्रलब्धा तथा अभिसारिका सभी को पूर्ण मनोयोग तथा दक्षता से अंकित किया है।

स्वाधीनपतिका नायिका जो योग्य स्वामी की प्रेमिका है वह उससे प्रेम करने के लिए बाध्य है तथा उसका जीवन साथी है। राधा रूप में अंकित यह नायिका एक चौकी पर बैठी है और नायक कृष्ण कहीं उसके पैर धो रहे हैं, कहीं चरण दबा रहे हैं, कहीं महावर लगा रहे हैं और कहीं चोटी गूँथ रहे हैं। राधा आत्माभिमान और आत्मविश्वास से परिपूर्ण है।

प्रेमी पर अविश्वास करने वाली नायिका उत्कंठिता को नदी किनारे, वृक्ष के नीचे, पत्तों व पुष्पों की चादर पर खड़े या बैठे दिखाया गया है। पशु पक्षियों के युगल के मध्य प्रतीक्षारत नायिका उत्सुक है।

अपने प्रेमी के आगमन की बाट जोहती वासकसज्जा नायिका का सफेद चंदन बदन दीपक की भाँति जलता है और नीले वस्त्र उसके कोमल त्वचा पर सूखे पत्तों के समान आघात करते हैं। मंद ध्वनि में अपनी व्यथा बाँचती यह नायिका जादूगर प्रतीत होती है। शयन कक्ष के द्वार पर आशा लगाये खड़ी नायिका का प्रेमी सुदूर नदी के दूसरी ओर सुन्दर नौका में सारस के जोड़े साथ बैठा है।

प्रेमी पर अविश्वास करने वाली अभिसन्धिता नायिका विरही तथा दुःखी रहती है। कृष्ण-राधा का झगड़ा तथा वाद-विवाद हुआ है। कृष्ण राधा के क्रोध को शांत करने का प्रयास करते हैं, परन्तु राधा और अधिक क्रोधित होती है। जब कृष्ण वापस

जाने लगते हैं तो राधा आवेश में कहे गये शब्दों पर शोक करती है।

रात्रि में प्रेमी के निश्चित समय पर न पहुँचने पर दुःखी नायिका खण्डिता है जो प्रेमी को अन्य स्त्री के साथ होने का प्रमाण पाकर टूट जाती है। व्यापारयुक्त पति की नायिका प्रेसितापतिका अपने पति के सकुशल घर आने की प्रार्थना करती है। प्रेमी की अनुपस्थिति का प्रतीक मोर तथा काले घन इन चित्रों की विशेषता हैं। व्यर्थ ही रात्रि में अपने प्रेमी की प्रतीक्षारत नायिका विप्रलब्ध पत्तियों की सेज पर अकेली है। वह दुःखी होकर आवेश में अपने आभूषण फेंक रही है। एकाकीपन तथा दुःख हेतु रिक्त पृष्ठभूमि चित्रित की गई है।

अपने प्रेमी से मिलने बाहर जाती नायिका अभिसारिका कांगड़ा चित्रकारों का प्रिय विषय रहा है। कृष्ण अभिसारिका अंधेरी रात में तथा शुक्ल अभिसारिका चाँदनी रात में बनायी गयी है। नीले वस्त्रों में कृष्ण अभिसारिका काले घने बादलों के मध्य चमकती दामिनी से निडर हैं। जंगल के सर्प और भूत-प्रेत से निर्भीक नायिका अपनी प्रेम तृप्ति हेतु प्रेमी को खोजने निकली है। प्रेम की संयोग तथा वियोग दोनों ही अवस्थाओं का चित्रण हुआ है। वियोग पक्ष के तीनो प्रकारों यथा पूर्वराग, मान तथा प्रवास का मार्मिक अंकन किया गया है। पूर्वराग अर्थात् प्रेम का आरम्भ विषयक चित्रों में कार्यों में व्यस्त राधा को कृष्ण छिप कर छज्जे से निहारते हुए बनाये गये हैं।

संयोग अवस्था को लीला हाव, विलास हाव ललित हाव, वैचित्र हाव, विवर्हया हाव, किलकिन्सता हाव, मोत्राइत्या हाव, विवोक हाव, हेल छाव तथा बोध हाव में दर्शाया है। इसके अतिरिक्त चित्रकार ने बारहमासा का सूक्ष्म दृष्टि से अंकन किया है। षडऋतुओं की पृष्ठभूमि में नायक-नायिकाओं का भावोद्दीपन अधिक सरल, सुलभ और सजीव हो गया है। बसन्त, जेष्ठ, आसाढ़, श्रावण, भादो, शरद, कार्तिक तथा हेमन्त सभी ऋतुओं के तापमान, वनस्पति तथा मनोभावों को ध्यान में रखते हुए चित्रों का निर्माण किया गया है।

बसोहली के चित्रकारों ने राधा और कृष्ण के प्रेम में मनुष्य की हृदयगत कोमल भावनाओं को बड़े मार्मिक और अनोखे ढंग से अभिव्यक्त किया है। जिस प्रकार कृष्ण के विरह में गोपियाँ व्याकुल हैं उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा भी परमात्मा के संयोग के लिए व्याकुल है। बसोहली के चित्रों में रूप और लावण्य, यौवन और शृंगार से सजी नारी जो वर्षा और तूफान, अंधेरी रात या भयानक जंगल को पार करती, अपनी बड़ी-बड़ी सजीली आँखों में प्रेम और अतृप्त वासना तथा जन्म-जन्म से अपनी आंतरिक व्यथा को छुपाये पुरुष के प्रति अधीर दिखाई गई है, वह मानव प्रेम की कोमल प्रतीक है। "यही प्रेम प्रकृति और महापुरुष आत्मा और परमात्मा का प्रतीक है। जन्म-जन्मान्तर से व्यथित रूपी आत्मा पुरुष रूपी परमात्मा या प्रियतम में विलीन होने के लिये विहल है।"[7] इस प्रकार सोहली के चित्रकार का प्रेम सांसारिक पक्ष की वासना प्रस्तुत करता हुआ लोकोत्तर, पारलौकिक और प्रेमाश्रयी आध्यात्मवाद का एक महान रूप है।

सन्दर्भ

1. कला, सौन्दर्य और जीवन : प्रो. रणवीर सक्सेना : पृ. 528.
2. भारतीय चित्रकला का इतिहास : डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा : पृ. 188.
3. वही : पृ. 146.
4. भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास : डॉ. रीता प्रताप : पृ. 2.7.
5. भारतीय चित्रकला का इतिहास : डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा : पृ. 165.
6. भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास : डॉ. रीता प्रताप : पृ. 262.
7. भारतीय चित्रकला का इतिहास : डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा : पृ. 192.

नायक और नायिका के रुप मे चित्रित राधा-कृष्ण

डॉ. मीरु दुसेजा

चित्रकला विभाग

कन्या महाविद्यालय, आर्य समाज, भूड़, बरेली

समकालीन सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का कला पर सदैव प्रभाव पड़ा है और प्रत्येक कला समकालीन साहित्य दर्शन तथा लोक भावना से प्रभावित हुई है। बुद्ध धर्म की अवनति के बाद बारहवी शताब्दी में रामानुजाचार्य ने वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना की। पन्द्रहवी शताब्दी में श्री बल्लभाचार्य ने वैष्णव धर्म के उपदेश दिए। उनके अनुयाईयों में सूरदास, मीरा, केशवदास, जयदेव तथा बिहारी प्रमुख है जिनकी रचनाओं को उत्तरी भारत में बहुत लोकप्रियता और सम्मान प्राप्त हुआ। इन कवियो ने भगवान को जीवन में खोजने की चेष्टा की और उन्होने विष्णु के विभिन्न रुपों के विशेषतया कृष्ण व राम को अपना आराध्य देव माना। परन्तु कृष्ण को राम से अधिक महत्व प्राप्त हुआ।

मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदाय की ज्ञान ज्योति और उज्जवलता ने कृष्ण को अधिक महत्वपूर्ण देवता बना दिया और भागवत पुराण वैष्णवों का धर्म ग्रन्थ बन गया। भागवत के आधार पर अनेक कवियों और कलाकारों ने रचनायें की।

कृष्ण का जीवन भारत के सरल साधारण लोक जीवन से अत्यधिक सनिकट है इसी कारण कृष्ण भारतवर्ष में बहुत प्रिय देवता माने जाते है। वास्तव में कृष्ण का नटखट बाल्यकाल और यौवन का जीवन कृषको, ग्वालो, गोपियों, पशुओं और पक्षियों से सम्बन्धित था और गरीब जनता से बहुत मिलता जुलता था, वैष्णव धर्म राजस्थान तथा उत्तरी भारत के मैदानी भाग तक ही सीमित न रहा बल्कि पहाड़ी क्षेत्रों में भी पहुँच गया और पहाड़ी चित्रकार की प्रेरणा का मुख्य आधार बना।

विश्वकला के मानचित्र में राजस्थान की चित्रकला को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। राजस्थानी शैली के चित्रों में वैष्णव सम्प्रदाय की भक्ति भावना पूरी तरह परिप्लावित है यही कारण है कि चितेरो ने जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति, सूरदास तथा मीराबाई के काव्य से प्रेरणा ली और इन शब्दो की आत्मा को अपनी तूलिका से जीवन्त किया। एक अन्य लोकप्रिय विषय था "रागमाला" जिसमें विविध प्रकार के राग और रागनियो को मानवीय रुप दिया गया। नायक-नायिका भेद के माध्यम से स्त्री पुरुष के शाश्वत सम्बन्धों को रंग और तूलिका का सहारा लेकर चित्रित किया गया। सारी राजपूत चित्रकला को अगर एक शब्द में व्यक्त करना हो तो कहा जायेगा "शाश्वत प्रेम"।

मेवाड़ शैली के चित्रों में कृष्ण के चित्रण को प्रमुखता दी गयी है। प्रायः नायिका भेद राग-रागिनी चित्रावली या रागमाला चित्रों में कृष्ण और राधा को हीं आदर्श प्रेमी तथा प्रेमिका का रुप दिया गया है। कृष्ण तथा गोपियो की लीलाओं के चित्रों में भी कृष्ण को एक महान प्रेमी का रुप दिया गया है। राजस्थानी चित्रकारों ने तत्कालीन कवियों की रचनाओं पर आधारित चित्र भी बनायें जिनमें 'नायिका भेद' को प्रमुखता दी गयी और वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण इन चित्रों में नायक तथा नायिका साधारण

पुरुष या स्त्री ना होकर कृष्ण और राधा जैसे आदर्श प्रेमी है। केशवदास की 'रसिक प्रिया' मेवाड़ के चित्रकारों का प्रिय विषय बनी। मेवाड़ शैली की 'रसिक प्रिया' की सचित्र प्रति बीकानेर के दरबार संग्रह में सुरक्षित है। जयदेव कृत 'गीतगोविन्द को भी इस समय लोकप्रियता प्राप्त हुई 'गीतगोविन्द' की अनेक सचित्र प्रतियां तैयार की गई। 'गीतगोविन्द' के आधार पर बने कुछ चित्र प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई में सुरक्षित है।

बल्लभाचार्य के अनुयाइयों में सूरदास का विशेष स्थान है। सूरदास के श्याम, जिनका जीवन सामान्य जन का जीवन है, जो ग्वाल के रुप में दिखाई पड़ते है चित्रकार ने सूरदास कृत 'सूरसागर' के पदो में रमकर भगवान कृष्ण को अपने समीप पाया और उसने 'सूरसागर पदावली' के आधार पर कृष्ण जीवन सम्बन्धी अनेक चित्रों का सृजन किया। सूरकृत 'सूरसागर' के आधार पर बने कुछ सचित्र पृष्ठ श्री गोपी कृष्ण कनेरिया संग्रह में सुरक्षित है। जयसिंह (1680-1698 ई.) के समय में कुछ भागवत पुराण के सचित्र पृष्ठ प्राप्त है। जिनमें कृष्ण गोवर्द्धन पर्वत उठाये हुए या 'गिरि गोवर्द्धन' नामक चित्र कला भवन संग्रह और 'कृष्ण दावानल को ग्रस्ते हुए' डॉ. मोती चन्द्र के निजी संग्रह में सुरक्षित है। यह दोनों चित्र अनुमानितः 1680 ईसवी से 1700 ईसवी के मध्य के है। डॉ. मोती चन्द्र के संग्रह का एक अन्य चित्र 'यमुना तट पर ग्वालो के साथ लीला' (1700 ई.) मेवाड़ स्कूल के अन्तिम समय की झाँकी है।

बूँदी शैली के कुछ सुन्दर चित्रों के उदाहरण प्राप्त है- जिनमें 'पीठिका पर नायक और नायिका' 1682 ई. श्री.जी.डी. गुजराती संग्रह बम्बई, प्रेमी और प्रेमिका द्विज का चाँद देखते हुए' (1689 ई. - प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम बम्बई) तथा एक चित्र 'राधा और कृष्ण का मिलन' (अठारवी शताब्दी) जो देसाई संग्रह बम्बई में है, भावात्मक सौन्दर्य के कारण उत्तम है। बूँदी शैली में राग-रागनियों, नायिका-भेद और 'भागवत पुराण' पर आधारित कृष्ण लीला के चित्र बनाने की परम्परा सामान्य रुप से चल ही रही थी, अतः बूँदी का चित्रकार भी इस ओर प्रवृत्त हुआ।

किशनगढ़ के चित्रकारों ने कृष्ण लीला से सम्बन्धित चित्रों की रचना की। यह चित्र हिन्दी साहित्य के कृष्ण और राधा को तत्कालीन प्रेमी और प्रेमिकाओं का रुप देने की चेष्टा की गई है। राजा सावन्त सिंह बल्लभाचार्य सम्प्रदाय के अनुयाई व एक अच्छे कवि थे। उन्होनें 'बिहारी चन्द्रिका' लिखी और अपना नाम नागरीदास रखा। परन्तु जहाँ एक ओर सावन्त सिंह के जीवन में कृष्ण प्रेम था वहाँ शीघ्र ही एक सुन्दरी आ बसी। सावन्त सिंह नागरीदास उस पर न्योछावर हो गये और उसे प्यार से 'बनी-ठनी' कहने लगे। उन्होने अपनी बनी-ठनी में राधा की छवि देखी और स्वंय को कृष्ण मानकर राधा उर्फ बनी-ठनी की स्तुति में एक से बढ़कर एक नायाब भक्ति पदों की रचना की। इन दोनों का प्यार सचमुच निश्छल, निष्कपट एवं अलौकिक था। यह सुकोमला विश्व में 'भारतीय मोनालिसा' के नाम से सहज ही प्रसिद्ध हो गयी। बनीठनी तथा नागरीदास को एक चित्र में एक साथ चित्रित किया गया है।

प्रेमी और प्रेमिकाओं के चित्र किषनगढ़ में अपने ही ढंग से बनाये गये हैं प्रायः नायक तथा नायिकाओं को सुन्दर नौकाओं पर जल विहार करते दिखाया गया है। इस प्रकार के चित्र उदाहरणों में 'लाल बाजरा' तथा 'प्रेम की क्रीड़ा' सुन्दर है। नायिका भेद पर आधारित चित्रों को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। नागरी दास के समय में राधा के रूप में बनीठनी को चित्रित किया गया। कृष्ण और राधा के तत्कालीन प्रेमी और प्रेमिकाओं का रूप देने की चेश्टा की गयी है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि नागरीदास ने बनीठनी के प्रति कृष्ण और राधा के रूप में अपने प्रेम की अभिव्यक्ति की। विषेश रूप से किषनगढ़ के चित्रकार ने कृष्णलीला के चित्र बनाये हैं। 'गीतगोविन्द',' भागवतपुराण' तथा 'बिहारीचन्द्रिका' पर आधारित चित्रों की रचना की गई। यह चित्र हिन्दी साहित्य के आधार पर बनाये गये, परन्तु इनमें राधा और कृष्ण का अनोखा

नवीन रूप है। इस प्रकार के चित्रों में 'सांझलीला', 'कृष्ण राधा का दुपट्टा पकड़ते' तथा 'कृष्ण गोपियों के साथ नृत्य करते हुये' आदि चित्र सुन्दर उदाहरण हैं।

जयपुर शैली पर वैश्णव सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव पड़ा। जयपुर षैली के चित्रों में कृष्ण से सम्बन्धित चित्रों की संख्या अधिक है और कृष्ण की विभिन्न लीलाओं, रास तथा बाल क्रीडाओं के अनेक चित्र बनाये गये है। दूसरी ओर नायिका-भेद पर आधारित विशयों पर भी चित्र बनाये गये। इन चित्रों में परमात्मा का प्रतीक कृष्ण को माना गया है। एक चित्र में भगवान कृष्ण को गोवर्धन धारण किये अंकित किया गया है। कृष्ण के चारों ओर गायें, गोपियां तथा ग्वाल-बाल है जो गोवर्धन पर्वत के नीचे खड़े हैं और गोवर्धन पर्वत को भगवान कृष्ण ने उंगली पर उठा रखा है। पर्वत छत्र का कार्य कर रहा है। ऊपर आकाष में स्वर्ग के देवता तथा बादल है और वर्शा का भीशण प्रभाव है। चित्र में यमुना का किनारा यथार्थ बनाया गया है आकाष में ऐरावत पर इन्द्र स्वयं भगवान कृष्ण की पूजा करने आ रहे हैं।

दूसरा चित्र रासमंडल का है जिसके मध्य में मानव-आत्मा और परमात्मा का प्रतीक भगवान कृष्ण और राधिका का युगल है। इस युगल के चारों ओर गोपियां कई मण्डलाकारों में नृत्य कर रही हैं। इस चित्र को आकाशीय दृश्टि से बनाया गया है। दिव्य युगल में गति है तथा मुद्रायें लावण्यपूर्ण हैं। आकाश में देवगण पुष्पों की वृष्टि कर रहे हैं। एक अन्य बड़े आकार के चित्र में गोपियों को चित्रित किया गया है। इस चित्र की मूल प्रति जयपुर पोथीखाने में सुरक्षित है।

बुन्देला शैली में 'रागमाला चित्रावली', 'रसराज' (मतिराम 1643 ई.), 'बिहारी सतसई' तथा 'कृष्ण लीला' पर आधारित चित्र बने हैं। जिनमें दत्तिया-शैली की अपनी विषेशता है इस शैली के अनेक चित्र उदाहरण उत्तरी भारत के अनेक संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

केशव, बिहारी तथा मतिराम आदि कवियों की कविता को चित्रमय लिपि प्रदान की गई है। अधिकांश चित्र मध्यकालीन हिन्दी साहित्य और नायिका भेद सम्बन्धी विशयों पर आधारित हैं, बुन्देला शैली में अनेक प्रकार की नायिकाओं को चित्रित किया गया है। परन्तु नायिका भेद सम्बन्धी चित्रों में नायक और नायिका को सामान्य मनुष्य के रूप में बनाकर कृष्ण और राधा का रूप दिया गया है।

मतिराम लिखित रसराज पर आधारित एक चित्र में कृष्ण एक कुंज में बैठे हैं और राधिका मुख्य भूमि में एक आम के वृक्ष के सहारे खड़ी है और यह सोच विचार कर रही है कि प्रीतम कृष्ण के पास जाकर अपना विरह शान्त करना चाहिये ।

भारतीय चित्रकारों ने चराचर में दिव्य अनुभूति, तन्मयता और प्रकृति से तदात्म प्रदर्शित किया है इस दृष्टिकोण से रागिनी तथा बारहमासा के चित्र केवल चित्रात्मक कल्पना ही नहीं है। बल्कि इन चित्रों में चित्रकार ने पुश्ट रेखांकन और उत्तेजक रंगों के द्वारा प्रकृति में अपनी आत्म विस्मृति का परिचय दिया है।

बीकानेर शैली में भागवत और रसिकप्रिया की प्रतियां उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त रागमाला तथा बारहमासा सम्बन्धी सुन्दर चित्र बनाये गये। इसमें गोवर्धन धारी श्री कृष्ण का सुन्दर चित्रण है।

राजस्थानी चित्रकला विशयवस्तु की दृष्टि से संसार की सभी चित्र शैलियों की तुलना में सलोनी व अनोखी है। राधा कृष्ण की विभिन्न लीलाओं तथा भागवत की विभिन्न कथाओं रागरागिनी, बारहमासा तथा नायक-नायिका भेद का सुन्दर चित्रण किया है। नायक नायिका चित्रण के लिये रीति कालीन काव्य देव, बिहारी, मतिराम आदि के काव्य ने अच्छी भूमिका निभाई है। मानिनी प्रीतम से मान कर बैठना, अभिसारिक श्रृंगार करके नायिका लुक छिपकर प्रिय मिलन को जाती हुई, उत्कंठिता सेज अथवा मिलन स्थल को पुश्प या पत्रों से सजाये प्रियतम प्रतीक्षा में, स्वाधीन पतिका नायक नायिका का श्रृंगार करते हुये, मुग्धा आदि नायिका भेदों को चित्रित किया है। बारामासा चित्रों में फाल्गुन, चैत, बैसाख, जेठ, आसाढ़, सावन, भादों आदि महीनों के

प्राकृतिक सौन्दर्य से सुखी या दुखी नायिका के मानसिक भावों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

पहाड़ी राज्यों की स्थापना सातवीं और आठवीं शताब्दी में राजपूत युवराजों ने अपने बाहुबल से की और यहां पर छोटे-छोटे राज्य स्थापित किये। मैदानी क्षेत्र में अफगानों तथा मुगलों का मुसलमान साम्राज्य स्थापित हो गया। अतः सत्रहवीं शताब्दी में वैष्णव धर्म का विशेष विकास पहाड़ी प्रदेश में हुआ और यहां हिन्दू धर्म की सुरक्षा भी हुई। वैश्णव सम्प्रदाय ने बसोहली को भावात्मकता प्रदान की। दिल्ली के निराश्रित चित्रकारों का पहला दल जम्मू और पंजाब के पहाड़ी राज्यों में जाकर बसा। अनुमानतः इन चित्रकारों ने बसोहली शैली को जन्म दिया और वैष्णव सम्प्रदाय की अभिव्यक्ति चित्रों के रूप में होने लगी। ईसवी के पष्चात बसोहली शैली का स्थान स्थानीय राज्यों की निजी शैलियां ग्रहण करने लगी। 1747 ई. में अहमद शाह अब्दाली से आक्रमण के पश्चात दिल्ली राज्य का जब विध्वन्स हो गया, तो हिन्दू एवं मुसलमान चित्रकार दिल्ली छोड़कर पुनः पहाड़ी राज्यों की ओर चले गये। चित्रकारों की यह दूसरी धारा कांगड़ा में पहुंची जिससे कांगड़ा शैली का विकास हुआ और दोनों शैलियां साथ-साथ विकसित होती रही।

बसोहली शैली में चित्रकार ने राधा और कृष्ण के प्रेम में मनुष्य की हृदयगत भावनाओं को बड़े मार्मिक ढ़ंग से अभिव्यक्त किया है। जयदेवकृत 'गीत गोविन्द' काव्य रचना पर भी सुन्दर चित्र बनाये गये। परवर्ती चित्रकारों ने बारहमासा चित्रावलीयो के निर्माण में विशेष रुचि प्रदर्शित की। इन विषयों के अतिरिक्त बसौली शैली में रागमाला पर आधारित चित्र भी प्राप्त होते है। इन रागमाला चित्रों व बारहमासा चित्रों में राधा और कृष्ण को नायक तथा नायिका का रुप प्रदान किया गया है।

कांगड़ा शैली के प्रमुख केन्द्र गुलेर, नूरपुर, तीरासुजानपुर तथा नादौन थे। कांगड़ा के राजा संसारचन्द की वैष्णव सम्प्रदाय की ओर विशेष रुचि होने के कारण कृष्ण के प्रेम और श्रृंगार की भावना कलाकारों के लिए एक मुख्य प्रेरणा थी। कृष्ण को प्रतीक मान कर नाना सांसारिक तथा श्रृंगारिक लीलाओं को अंकित किया गया है। बिहारी तथा महाकवि केशवदास की रचनाओं को भी चित्रबद्ध किया गया। इसके अतिरिक्त नायिका भेद का चित्रण भी कांगड़ा शैली के चित्रकारों ने तीन प्रकार की नायिकाओं 1. स्वकीया (स्वंय की) 2. परकीया (दूसरे की) तथा 3. सामान्य (किसी की भी) का अंकन किया है। इन नायिकाओं की आठ अवस्थाएं मानी गई हैं जो इस प्रकार है नायिका के यह आठों रुप काँगड़ा शैली के चित्रों में उपलब्ध हैं-

1. स्वाधीनपतिका वह नायिका है जिसे उसका योग्य स्वामी प्रेम करता है और उससे प्रेम करने के लिए बाध्य है और उसका जीवन -साथी है। इस प्रकार की नायिका काँगड़ा शैली के चित्रों में राधा के रुप में अंकित की गयी है। अनेक चित्र उदाहरणो में राधा एक चौकी पर बैठी है और कृष्ण उसके पैर धो रहे है या कुँज में बैठे राधा की चोटी गूंथ रहे है या राधा के चरण दबा रहे है इन चित्रों मे राधा को आत्मअभिमान और आत्मविश्वास से पूर्ण दिखाया गया है।

2. उत्का वह नायिका है जिसके प्रेमी ने निमंत्रण के निश्चित समय पर ना आकर अपने विश्वास को खोया है। ऐसी नायिकाओं को नदी किनारे, वृक्ष के नीचे, धरती पर पत्तो के ऊपर पुष्पो की बिछी सेज पर खड़ा या बैठा अंकित किया गया है।

3. वासकास्या वह नायिका है जो अपने प्रेमी या स्वामी के आगमन की बाट द्वार की सीढ़ीयों पर जोहती है यह नायिका कांगड़ा के चित्रों में अंकित की गई है घर में नायक के स्वागत हेतु तैयारी की जा रही है, प्रेमी एक सुन्दर नौका में नदी की दूसरी ओर एक सारस के जोड़े के पास दिखाया जाता है।

4. अभिसन्धिता वह नायिका है जो अपने प्रियतम के प्रेम विश्वास नहीं करती परन्तु विरह या अनुपस्थिति से दुखी रहती है। इस प्रकार की नायिकाओं के उदाहरण के लिए कृष्ण और राधिका का झगड़ा लिया गया है।

5. खण्डिता वह नायिका है जिसका प्रेमी रात्रि को निश्चित समय निमंत्रण पर पहुंचने में असफल रहता है तथा दूसरी युवती के साथ पाया जाता है।

6. प्रेसित-पतिका वह नायिका है जिसका पति सदैव समय-समय पर व्यापार ग्रस्त रहता है। गुलेर शैली के एक चित्र में यह नायिका इस प्रकार दिखाई गई है- आकाश में बादल सारस और बगुले देखकर उत्सुक नायिका छज्जे पर जाती है, इस चित्र में प्रेमी की अनुपस्थिति का प्रतीक एक मोर भी चित्रित किया गया है और वर्षा आरम्भ होने वाली है। अतः नायिका विहल होकर सर उठाये भगवान से अपने प्रियतम के सकुशल आने की प्रार्थना कर रही है।

7. चित्रलब्धा वह नायिका है जो व्यर्थ ही रात्रिभर अपने प्रेमी के आगमन की प्रतिक्षा करती है। इस नायिका को एक वृक्ष के नीचे पत्तियों की सेज के एक कोने पर अंकित किया जाता है।

8. अभिसारिका वह नायिका है जो अपने प्रेमी से मिलने के लिए रात्रि में बाहर जाती है। यह नायिका कांगड़ा के चित्रकार का प्रिय विषय रही है। कृष्ण अभिसारिका और शुक्ल अभिसारिका काँगड़ा शैली के चित्रों में क्रमशः अंधेरी रात्रि और चांदनी रात्रि में प्रेमी से मिलने के लिए जाती हुई अंकित की गई है। काँगड़ा शैली के चित्रों में कृष्ण अभिसारिका नीला आँचल डाले अपने प्रेमी को ढूंढने जा रही है, अंधेरी रात्री में काले बादलो में दामिनी चमक रही है ऐसे भयानक वातावरण में भी निर्भीक नायिका (आत्मा), अपने प्रेमी की तृप्ति के लिए अपने प्रेमी (परमात्मा) को खोजने के लिए निकलती है।

श्रंगार रस की अभिव्यक्ति के लिए परम्परागत काव्य में प्रचलित प्रतिकात्मक पृष्ठभूमि का सहारा लिया जाता था और इस प्रकार के समस्त चित्रों के लिए कृष्ण सम्बन्धी वैष्णव सम्प्रदाय एक शक्तिशाली प्रेरणा बना हुआ था। चित्रकार ने नायक (कृष्ण) और नायिका (राधा) के प्रेम में मनुष्य की हृदयगत भावनाओं को बड़े ही मार्मिक ढ़ंग से अभिव्यक्त किया है।

'पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों द्वारा राधा-कृष्ण के प्रेम का अप्रतिम वर्णन'

डॉ. निरुपम शर्मा

प्रवक्ता हिन्दी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

मानवीय अनुभूतियों में 'प्रेम' सर्वाधिक सशक्त और जगत को सकारात्मक संवर्द्धन देने वाला भाव है। जागतिक प्रेम मानव का भौतिक तुष्टि देता है, तो जगदाधार के प्रति प्रेम उसे आत्मिक आनंद और पूर्ण संतृप्ति प्रदान करता है। जगत नियन्ता के प्रति प्रेम का भाव मोह, आसक्ति, आदर, श्रद्धा से भी आगे बढ़कर भक्ति में परिणत हो जाता है और भक्त (साधक) प्रभु (साध्य) के लिए सर्वस्व त्याग कर पूर्ण समर्पण द्वारा तदाकार हो जाना चाहता है। वास्तव में प्रभु कृपा ही भक्ति की जननी है। भगवत्कृपा अर्थात् 'पुष्टि' एवं उसकी प्राप्ति का मार्ग 'पुष्टिमार्ग' है।

बल्लभाचार्य जी (वि.स.1535-1587) ने ब्रजमण्डल में कृष्ण भक्ति के जिस स्वरूप को शुद्धाद्वैत दर्शन के माध्यम से प्रतिष्ठित किया, उसका आधार उन्होंने 'पुष्टिमार्ग' को बनाया। ''साधन की दृष्टि से आचार्य बल्लभ के मत को 'पुष्टिमार्ग' कहते हैं। पोषण का अर्थ 'भगवान का अनुग्रह' है। इस मत में भगवान् के अनुग्रह को सब कुछ माना जाता है जीव को भगवान् के अनुग्रह के बिना (पुष्टि के बिना) मुक्ति नहीं मिल सकती। भगवान के पोषण (अनुग्रह) को अधिक महत्व देने के कारण ही यह मत 'पुष्टि मार्ग' कहलाता है।''[1]

''भगवान अनुग्रह पूर्वक जीव को अपने समान ही आनन्दमय बना देते हैं। इस आनन्दमयी स्थिति की प्राप्ति ही मुक्ति है। 'मुक्ति' की प्राप्ति के लिए भक्ति ही एक मात्र साधन है। भक्ति दो प्रकार की है—पुष्टि भक्ति और मर्यादा भक्ति। मर्यादा भक्ति में फल की आसक्ति बनी रहती है किन्तु पुष्टि भक्ति में किसी प्रकार के फल की आकांक्षा नहीं होती। मर्यादा भक्ति भगवान के चरणारविन्द की भक्ति हैं किन्तु पुष्टि भक्ति भगवान मुखारविन्द की भक्ति है। मर्यादा दैन्य भाव की भक्ति है, पुष्टि कान्ताभाव की-पुष्टि चार प्रकार की मानी गई है। 1. प्रवाह पुष्टि, 2. मर्यादा पुष्टि, 3. पुष्टि-पुष्टि, 4. शुद्ध पुष्टि। प्रवाह पुष्टि के अनुसार भक्त संसार में रहते हुए भगवान की भक्ति करता है। मर्यादा पुष्टि के अनुसार वह संसार के समस्त सुखों में विरत होकर कीर्तनादि द्वारा भगवान् की भक्ति करता है। पुष्टि-पुष्टि की स्थिति में उसे भगवान् का अनुग्रह प्राप्त हो जाता है, किन्तु वह भक्ति-साधना में लीन रहता है। शुद्ध-पुष्टि के अनुसार भक्त 'भगवान' की लीलाओं से अपना मानसिक तादात्म्य स्थापित कर लेता है। वह पूर्णतः भगवान पर आश्रित हो जाता है। पुष्टि-भक्ति की यह सर्वोच्च स्थिति है।''[2]

''पुष्टिमार्गीय भक्ति रागानुगा भक्ति है। इस भक्ति में किसी प्रकार के साधन या कर्मकाण्ड की अपेक्षा नहीं होती। पुष्टिमार्गीय भक्त के प्रारब्ध और सचित कर्मो का शमन ईश्वर-कृपा से स्वयं हो जाता है। पुष्टि भक्ति का लाभ यह है कि इसके द्वारा सद्योमुक्ति प्राप्त होती है। पुष्टिमार्गीय भक्ति के तीन फल हैं- रस रूप पुरूषोत्तम के स्वरूपानन्द की

शक्ति प्राप्त कर उसकी लीला में प्रविष्ट होना, दूसरा, पूर्ण पुरूषोत्तम के श्री अंग अथवा आभूषणादि का अंग बनना और तीसरा, प्राकृत देहेन्द्रियादि से मुक्त होकर अप्राकृत शरीर में भगवान के बैकुण्ठ आदि लोकों में आनन्द भोग की स्थिति प्राप्त करना। इस प्रकार मोक्ष की दृष्टि से भी पुष्टिमार्ग को अधिक सुकर बताया गया है। पुष्टिमार्गीय कृष्ण भक्त हिन्दी-कवियों ने इसी आधार को ग्रहण कर कृष्ण के रूप-सौंदर्य को श्रृंगारमण्डित किया और उस भगवान के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए काव्य रचना की। कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन भी इसी पुष्टि भक्ति को ध्यान में रखकर किया गया है।''[3]

'रामधारी सिंह दिनकर' जी के अनुसार कृष्ण निःसन्देह ऐतिहासिक पुरूष हैं और अवतार के रूप में पूजित भी सुदीर्घावधि से होते रहे हैं।

''कृष्ण नाम बहुत प्राचीन है। पाणिनि (7वीं सदी ई.पू.) ने एक जगह कृष्ण और अर्जुन का उल्लेख धार्मिक नेता के रूप में किया है। मेगस्थनीज (ई.पू.3री सदी) कहता है कि मथुरा और कृष्ण पुर में कृष्ण की पूजा होती है। महानारायण उपनिषद (ई. पू.200) का प्रमाण है कि कृष्ण उस समय विष्णु के अवतार माने जाने लगे थे। पतंजलि (ई.पू.150 के लगभग) के भाष्य में भी वासुदेव का उल्लेख आर्य जाति के देवता के रूप में मिलता है।''[4]

''पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन धर्म-साधना' में लिखा है कि ''श्री कृष्णावतार के दो मुख्य रूप हैं। एक में वे यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर है राजा हैं, कंसारि हैं। दूसरे में वे गोपाल हैं, गोपी-जन-वल्लभ हैं, 'राधाधर-सुधा पान-शालि वनमालि है'। प्रथम रूप का पता बहुत पुराने ग्रन्थों से चल जाता है पर, दूसरा रूप अपेक्षाकृत नवीन है। धीरे-धीरे वह दूसरा रूप ही प्रधान हो गया और पहला रूप गौण।''[5]

''पुष्टिमार्ग में परात्पर परब्रह्म रस रूप भगवान श्रीकृष्ण की 'सेवा' ही मुख्य धर्म है। सर्वदा सर्वभाव से ब्रजाधिप श्रीकृष्ण ही सेवा करने योग्य हैं। भगवद् सेवा ही जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य हैं।'' 6 भगवान की शक्ति स्वरूपा माया के रूप में 'राधा' की प्रतिष्ठा वल्लभ सम्प्रदाय में 'विष्ठ्ठलनाथ जी' के समय में हुई। वल्लभाचार्य जी ने राधा की चर्चा नहीं की थी। ''वैष्णवों के तीन प्रसिद्ध पुराण हरिवंश, विष्णु पुराण और भागवत हैं। लेकिन, इनमें से किसी में भी राधा नाम का उल्लेख नहीं है। भागवत में कथा आयी हैं कि कृष्ण ने सभी गोपियों को छोड़कर एक गोपी से अलग मुलाकात की।

राधा का नाम कैसे चला, यह गहरे विवाद का विषय है। नारद-पांच रात्र-संहिता में लिखा है कि एक ही भगवान पुरूष और स्त्री रूप में प्रकट होते हैं। सम्भव है, इस दार्शनिक कल्पना से ही बाद के कवियों ने, जैसे शिव के साथ पार्वती और विष्णु के साथ लक्ष्मी हैं, वैसे ही, कृष्ण के साथ एक जोड़ी मिलाने के लिए राधा की कल्पना कर ली हो। लेकिन, यह राधा नाम आया कहाँ से पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'मध्यकालीन धर्म-साधना' में यह भी लिखा है कि प्रेम-विलास और भक्ति रत्नाकर के अनुसार ''नित्यानन्द प्रभु की छोटी पत्नी जाह्नवी देवी जब वृन्दावन गयीं, तो उन्हें यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि श्रीकृष्ण के साथ राधा नाम की मूर्ति की कहीं पूजा नहीं होती थी। घर लौटकर उन्होंने नयनभास्कर नामक कलाकार से राधा की मूर्तियां बनवायीं और उन्हें वृन्दावन भिजवाया। जीव गोस्वामी की आज्ञा से ये मूर्तियाँ श्रीकृष्ण के पार्श्व में रखी गयीं और तब से श्रीकृष्ण के साथ राधिक की भी पूजा होने लगी।''

दूसरी ओर जो भी सम्प्रदाय भागवत के बाद वाले पुराणों को मानते हैं, वे राधा को भी स्वीकार करते हैं। इसलिए, यह बहुत सम्भव दीखता है कि आर्यो के वैष्णव धर्म में कृष्ण की बाल-लीला और राधा से उनके प्रेम की कल्पना किसी आर्येतर जाति से आयी हो। इस सम्बन्ध में एक मत यह है कि बाल लीला की कल्पना आधीर जाति के किसी बाल-देवता से मिली है, और राधा भी, सम्भवतः, दक्षिण के किसी आर्येतरसमाज की कोई प्रेम की देवी रहीं होंगी। कालक्रम में ये दोनों कथाएँ वासुदेव धर्म से आ मिलीं और धीरे-धीरे, बदल कर कृष्ण का

वह रूप हो गया, जिसे हम आज देखते हैं। इस अनुमान को एक समर्थन तो इस बात से भी मिलना चाहिए कि राधावाद के प्रचारक निम्बार्क महाराज दक्षिण के ही थे और उत्तर भारत में फैलने के पहले कृष्ण भक्ति के सिलसिले में राधा-भक्ति का भी प्रचार दक्षिण में ही हुआ, जिसके प्रचारक आलवार भक्त थे। दक्षिण की भगतिन ओन्दाल, जो मीरा से बहुत पहले हुई, अपने आपको राधा मानती थीं। इसके विपरीत, डॉ. फरकोहार यह कहते हैं कि ''कोई आधार नहीं मिलने से अनुमान यही होता है कि राधा की कल्पना भागवत की खास गोपी को लेकर वृंदावन में उठी और वहीं से वह सर्वत्र फैली है।''[7]

पुष्टिमार्गीय भक्ति पद्धति में ''राधा'' भगवान श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के रूप में सर्वत्र वंदित एवं पूजित हैं। ''भगवान श्रीकृष्ण और श्री राधा स्वामिनी में तत्वतः-स्वरूपतः कोई भेद नहीं है। महाभावरूपा श्री राधा, रस रूप श्री श्याम सुन्दर से ही समुद्भूत, उन्हीं की छाया अथवा प्रतिमा हैं जो स्वरूपानंद वितरण लीला के संपादनार्थ, उनसे पृथक बनी हैं। श्रीकृष्ण की परम आह्लादिका शक्ति ही 'राधा' हैं परन्तु लीला के क्षेत्र में, अनादि काल से, नित्य भेद रूप में ललित लीलाएं चलती हैं।

'ब्रह्मवैवतर्म पुराण' में कहा है-

'राधे' सम्भूय गोलोके, सा 'दधाव' हरेः पुरः।
तेन 'राधा' समाख्याता, पुराविदिद्धिजोत्तमा।।''

'राधा' नाम इसलिए हुआ कि रास मण्डल में प्रकट हुईं, तथा प्रकट होते ही पुष्प चयन कर, श्रीकृष्ण के चरणों में अर्ध्य समर्पित करने के लिए, दौड़ पड़ीं- 'धावित' हुई। 'रा' कार दान वाचक है, एवं 'धा' निर्वाण का बोधक है। ये निर्वाण का दान करती हैं, इसलिए 'राधा' नाम से कीर्तित हुई हैं।

अनन्त जन्मार्जित साधना के फलस्वरूप, चित्त में यह वासना उत्पन्न होती है कि श्री ठाकुर जी को मुझसे सुख मिले। यह इच्छा-यह प्रेम ही प्राणी का परम पुरूषार्थ है। यह प्रेम गाढ़ा होता हुआ, क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग के रूप में परिणत होता है। इस अनुराग की चरम परिणति को 'भाव' कहते हैं। भाव का सबसे ऊर्ध्व स्तर 'महाभाव' हैं। इस महाभाव की उच्चतम घनीभूत मूर्ति 'श्री राधा' हैं।''[8]

श्री वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टि मार्गीय भक्ति सम्प्रदाय में कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्द दास तथा कृष्ण दास ये चार शिष्य वल्लभाचार्य जी के थे और गोविन्द स्वामी, नन्द दास, छीत स्वामी तथा चतुर्भुज दास-ये चार शिष्य गोस्वामी विठ्ठल नाथ जी के थे, जिन पर गोस्वामी विठ्ठल नाथ जी के विशेष आशीर्वाद की छाप लगी थी, इसी कारण ये आठों भक्त कवि 'अष्ट छाप' था 'अष्ट सखा' के नाम से प्रसिद्ध हुए। ''ये आठों भक्त श्री नाथ जी की नित्य लीला में अन्तरंग सखाओं के रूप में सदैव उनके साथ रहते थे, इसी मान्यता के आधार पर इन्हें 'अष्टासखा' कहते हैं गोवर्धन में श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा के बाद ये आठों सखा वहां सेवा के लिए प्रस्तुत हो गये। अष्टछाप के ये आठों भक्त कवि पुष्टिमार्गीय सेवा-विधि में भी पूर्ण सहयोग देते थे। वल्लभ-सम्प्रदाय में सेवा विधि का बहुत ही सांगोपांग वर्णन है और अष्टयाम की सेवा-मंगलाचरण, श्रृंगार, ग्वाल, राजयोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या- आरती और शयन- को इस सम्प्रदाय में बड़े समारोह से स्वीकार किया गया है। अष्टछाप की स्थापना 1565 ई. में हुई थी।''[9] इन अष्ट सखाओं के अतिरिक्त भी अनेक पुष्टि मार्गीय कवि हुए हैं जिनके पद आठों पहर की सेवा के साथ ही विभिन्न उत्सवों के अवसर पर गाए जाते हैं। श्रीमद् बल्लभ, रामदास, हित हरिवंश, मदन मोहन, व्यास स्वामिनी, रसिक प्रभु, विप्र प्रवीण दास, स्यामदास, भगवान दास, ताज बीबी तथा तानसेन आदि इन भक्त कवियों में प्रमुख हैं।

श्रीमती रवि प्रभा बर्मन द्वारा सम्पादित 'पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा' दो खण्डों में प्रकाशित ग्रन्थ है, जिसमें इन सभी भक्त सेवकों द्वारा प्रतिदिन की जाने वाली सेवाओं में गाये जाने वाले पदों के साथ ही उत्सवों पर गाने हेतु रचित पद भी संकलित हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र श्रीमती बर्मन के इसी संकलन पर आधारित है। 'पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा' के प्रथम खण्ड में प्रार्थना, जगाइबे से लेकर शयन-दर्शन, पोढ़वे तक की ठाकुर जी की दैनिक सेवा के कीर्तन पदों के साथ ही मान, खण्डिता, रसिया आदि के पद भी हैं जिनमें श्री राधा-कृष्ण के अनन्य प्रेम का सुन्दर चित्रण है। अग्रलिखित 'मान के पद' में रूठी हुई राधा संदेश वाहिका द्वारा नायक श्रीकृष्ण को खरी-खरी सुना रही हैं-

''अरी जिन तू पठई, जाही पें फिर जाउ,
उन मो सों अकथ कथा नादी।।
तोहि पठावत, वे क्यों नहि आवत,
उनके पायन कछु मेंहदी बाँधी।।
मो ढिंग आवत, वचन सुनावत, बात कहत आधी-आधी।
'तानसेन' के प्रभु बहुनायक प्रीति फंदन कर हो फांदी।।[10]

'मान' ही प्रेम को और प्रगाढ़ करने वाला भाव है। पुष्टिमार्ग में राधा कृष्ण का दाम्पत्य प्रेम पदों में वर्णित एवं पूजित है

'मुख सों मुख मिलाय वे देखत हैं आरसी।।
विकसत नील कमल ढिंग, उदित भयौ कैंधो शशी।।
निरख वदन मुसकाय परस्पर, करत विहार गिरि जात अंक हँसी।।
'गोविन्द', प्रभु प्यारी जु परस्पर दंपत्ति परे प्रेम फँसी।।[11]

''उत्सवों के पद' द्वितीय खण्ड में नव संवत्सर-उत्सव-चैत्र मास में गाए जाने वाले पदों से लेकर 'होरी' तथा 'डोल' के पदों तक संकलित हैं। सभी सेवक कवियों ने राधा-कृष्ण के दिव्य प्रेम का सुन्दर चित्रण किया है। 'अक्षय तृतीया' के पद' में राधा के अक्षय सौभाग्य तथा सुयश का वर्णन देखिए-

'अक्षय भाग सुहाग राधे कौ, अक्षय प्रीतम को दिन रतियाँ।।
चंदन पूज प्रीतम सुख दीजे, रीझ-रीझ यह कहूँ बतियाँ।।
अक्षय सुजस कहाँ लौं भाखौं, पार न पावत सेस मुख जतियाँ।।
छूट्यो मान सहज 'परमानंद', शुभदिन नीको अक्षय तृतीयाँ।।''[12]

'रथ यात्रा के पद' में श्रीकृष्ण के साथ बलराम और सुभद्रा की रथयात्रा के स्थान पर लाड़िली-किशोर की रथ यात्रा का अंकन है। ''पुष्टि मार्गीय सेवा, विशुद्ध भावात्मक, भाव प्रधान है। अतः शास्त्रोक्त विधि-विधानों का बंधन यहाँ नहीं है।''[13]

''रथ पर राजत सुंदर जोरी।।
श्री घनश्याम लाड़िलों सुंदर, श्री राधा जू गोरी।।
व्योम विमान भीर भई, सुरमुनि जय जय शब्द उच्चारी।।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर की वानिक पर बलिहारी।।''[14]

भक्ति काव्य में पावस का विशेष महत्व है। आकाश से मानों प्रेम रस की ही वर्षा होती है। 'हिंडोरा के पद' में भक्त कवियों ने अंतः प्रकृति तथा बाह्य प्रकृति का सरस सजीव वर्णन किया है-

''अली की झूलत श्यामा श्याम।।
द्वय खंभ मर्कत मणि मनोहर, काम कुंद चढ़ाय।।
हरित चूरी जड़ित नग, बोहो लाल हीरा लाय।।
एक अचरज देख सखी री, राहु शशि इक ठौर।।
उड़त अंचल लपट वेनी, रपट, झपटे मोर।।
कनक जटित जराय बेंदी कवि जो उपमा गाय।।
'सूर' शशि, यह राहु ब्रज में प्रकट तीन्यों आय।।''[15]

श्रीकृष्ण की मोहक मुरली की तान से विवश राधा गृह काज-लाज-सब कुछ त्याग कर नैकट्य की चाह लिए दौड़ पड़ती हैं। 'मुरली के पद' में अलौकिक वेणु वादक कृष्ण और राधा के सुखद संयोग के चित्र हैं"–

''राधिका रमन की, मुरलिका श्रवण सुनि,
भवन गृह काज तज, गमन कीयौ भामिनी।।
नाद रस बिवश भई, आन गति छूट गई,
बिपिन आतुर चलीं, रूप अभिरामिनी।।
करैं वासर केलि, कंठ पर भुज मेलि,
चतुर संग 'चत्रभुजदास' की स्वामिनी।। 16

"पुष्टि मार्ग या सेवा मार्ग की शिक्षा है कि सांसारिक राग-भोग और श्रृंगार भावना का त्याग नहीं करना है। बस भगवान की ओर मोड़ देना है।"[17]

'रास के पद' में राधा-कृष्ण का अलौकिक अभिसार उत्कीर्णित है–

'रीझे परस्पर नरनारि।।
कंठ भुज-भुज धरें दोऊ, सकत नहीं निरबारि।।
गौर श्याम कपोलशोभा, अधर अमृत धार।।
परस्पर दोऊ पिय प्यारी, रीझा लेत उगार।।
प्राण एक द्वय देह कीनी, भक्ति प्रीति प्रकाश।।
'सूर' स्वामी स्वामिनी मिल, करत रंग विलास।।'"[18]

'ब्याह के पद' में दाम्पत्य-सूत्र-बन्धन में बँधते राधा-कृष्ण के नयनाभिराम शब्द चित्र अंकित हैं-

'कुंज भवन में मंगलचार।।
नव दुलहिन वृषभान नंदिनी, दुल्है श्री व्रजराज कुमार।।
नये नये पुष्प कुंज के तोरन, नव पल्लव की बंदनवार।।
दीनी भूर 'दास परमानंद' प्रेम भक्ति रत्नन के हार।।'"[19]

'होरी के पद' में पुष्टिगार्मीय भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण के परात्पर प्रेम का दिव्य चित्रण किया है-

'वन में श्री बल्लभ बाला, मिलि खोलैं फाग।
संग खरे रसरंग भरे, नवरंगी त्रिभंगी लाल।।
कंचन बेलि करे मानो केलि, परै बिच स्याम तमाला।
धाय धरे हँसि अंक भरे, छूटी केस टूटी उरमाला।।
राधा कृष्ण विलास सरोज, 'गदाधर' मंद मराला।।'[20]

युगल किशोर श्री राधाकृष्ण का यह अनिर्वचनीय, पराभौतिक, अलौकिक, अतीन्द्रिय प्रेम इहलोक में मिथक तथा प्रेम की पराकाष्ठा का सर्वोत्तम उदाहरण बन चुका है। यह अनुपमेय प्रेम निरन्तर भक्तों, रसिकों, सुधीजनों, कवियों, श्रोताओं तथा पाठकों को दिव्य प्रेमामृत में सराबोर करके उनकी भावनाओं को परिष्कृत-उच्चीकृत करता रहा है तो इसका श्रेय पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों को दिया जाता हैं श्री राधा-कृष्ण के प्रेम वर्णन द्वारा श्रृंगार को रस राज बनाने हेतु हिन्दी साहित्य सदैव इनका ऋणी रहेगा।

सन्दर्भ

1. पुष्टिमार्ग और सूरदासः रामचंद्र तिवारी, पु. सूरदासः सं. हरबंस लाल शर्मा, पृ.-270-271
2. वही, पृ.-272
3. सगुण भक्ति काव्य : विजयेन्द्र स्नातक, हिन्दी साहित्य का इतिहासः सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.-200
4. संस्कृति के चार अध्यायः रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ.-66
5. वही, पृ.-67
6. पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा (द्वितीय खण्ड, उत्सवों के पद): संकलनकर्ता-श्रीमती रवि प्रभा बर्मन, (पृ.-4)
7. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ. 67 से 69 तक।
8. पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा, द्वितीय खण्ड-उत्सवों के पद (पृष्ठ-4)
9. सगुण भक्ति काव्य : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, हिन्दी साहित्य का इतिहासः सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.-200-201
10. पुष्टि मार्गीय कीर्तन सेवा, प्रथम खण्ड : सं. रवि प्रभा बर्मन, पृ.-129
11. वही, पृ.-101
12. पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा, द्वितीय खण्डः सं. रवि प्रभा बर्मन, पृ.-33
13. वही, पृ.-4
14. वही, पृ.-50
15. वही, पृ.-66
16. वही, पृ.-194
17. वही पृ.-5
18. वही, पृ.-206
19. वही, पृ.-275
20. वही, पृ.-333

भारतीय संगीत की रचनाओ का आदर्श आधार "राधा कृष्ण"

डॉ रामशंकर

गायन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

प्रत्येक कला का लक्ष्य परमानन्द की प्राप्ति ही है और जब वह हमारे प्रत्यक्ष स्वयम सगुण रूप में उपलब्ध हो जाता है जो की खुद ही रसाधार है उससे उच्च की स्थिति वह स्वयमेव होती है और भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में तो राधा कृष्ण का प्रेम ही अधार है चाहे वह मूर्ति कला हो या साहित्य अथवा संगीत, कोई भी पक्ष उससे अछूता नही है राधा कृष्ण के लीला का केंद्र मुख्यतः ब्रज रहा।

ब्रज भूमि भावना का ऐसा लोक है जहां मानव अहंकार का त्याग कर वात्सल्यमय होता है बृज भूमि का अतीत तो कृष्णमय था ही लेकिन आज की भौतिकवादी युग का वातावरण भी उसकी मधुरता एवं अनंत प्रेम साधना की चमक को कम नहीं कर पाया है।

ब्रज सांस्कृतिक रुप से अति प्राचीन नगरी है, पौराणिक ग्रंथों में भी जिसे उल्लिखित किया गया है यह भगवान श्रीकृष्ण की जन्म स्थली एवं क्रीडा भूमि है इसी ब्रज भूमि में ही भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी अद्भुत एवं मनोहारी लीलाओं से देवताओं को भी ब्रज दर्शन के लिए लालायित किया था भक्तिकालीन कृष्णमय अष्टछाप के कवियों का कार्य संस्कृति के स्वरूप का भंडार है श्री वल्लभ संप्रदाय के संगीत की महान परंपरा के भव्य स्वरूप के निर्माता अष्ट सखा ही रहे हैं। अष्ट सखाओं के विषय में यह प्रसिद्ध है कि आठों शाखाओं को श्री कृष्ण का सानिध्य प्राप्त था अतः श्री कृष्ण की समस्त लीलाओं चाहे कितनी भी अंतरंग हों वे उनका प्रत्यक्ष अनुभव कर उसका ध्यान करते थे भारतीय संगीत का मूल आधार धर्म है संगीत का मूल आधार नाद है और धर्म का आधार भक्ति।संगीत और भक्ति को श्री कृष्ण उवाचित इस लोक के माध्यम से जाना जा सकता है। "नाहं वसामि बैकुंठे, योगिनाम् हृदय न च मदभक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद"(गीता)। अर्थात मै न तो बैकुंठ में बसता हूं और न योगियों के हृदय मे मेरे भक्त जहां गायन करते हैं वही मेरा निवास रहता है।

ब्रज अपनी सांगीतिक कलात्मकता हेतु सदैव आकर्षण का केंद्र रहा है भगवान श्रीकृष्ण की मुरली से बरसता संगीत आज भी भावुक भक्तों एवं विद्वानों के लिए अनुसंधान का विषय है। ब्रज भूमि में सदैव ही राधा कृष्ण की झांकी उत्सव एवं ऋतू गीतों का श्रवण एवं दिग्दर्शन किया जा सकता है। कृष्ण स्वयं द्वापर युग के सर्वश्रेष्ठ संगीतकार कहे गए हैं।

श्रृष्टी के चर अचर को मोहने की शक्ति संगीत में है। मुरली की ध्वनि की सरसता और उसके प्रति राधा व गोपियों का मोहक रूप इस नाद सौंदर्य के प्रभाव का उत्कृष्ट रूप है। कृष्ण के बांसुरी वादन में संपूर्ण राग रागिनी विद्यमान थी।

सामवेद से संगीत की उत्पत्ति के प्रमाण प्राप्त होते हैं पूर्व कालिक संगीत पारलौकिक था और ईश्वर उपासना हेतु साधित था श्रीकृष्ण का बांसुरी वादन भौतिकता से दूर भावना लोक पर ले जाने

वाला था जिसके वशीभूत हो राधा भावना के धरातल पर कृष्ण से एकाकार हो जाती थी।

"वेदानां सामवेदोस्मि,देवानामस्मि वासवः।" भगवान कृष्ण कहते हैं कि मैं वेदो में सामवेद हूं क्योंकि वह स्वयं भी भक्तिमय संगीत से प्रसन्न होते थे।

एक ओर भगवान् श्री कृष्ण जब स्वयं बासुरी बजाते थे न जाने इस लौकिक जगत से कहा. खो जाते थे ,माना जाता है उस समय कृष्ण स्वयम राधा मय हो जाते थे ,क्योकि वास्तव में तो एक ही थे दोनों । कहने को तो भेले ही श्री कृष्ण समस्त जगत के प्राणाधार और स्वयम परमात्मा थे ,परन्तु इस लौकिक जगत में वो मात्र शारीर रूप ही थे ,किन्तु उनकी आत्मा तो राधा में बसती थी । शरीर से आत्मा को जिस तरह अलग नही किया जा सकता उसी तरह राधा कृष्ण तो "मय स्वरूप" थे , वहां तो मै के अस्तित्व का कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

"राधा कृष्ण" के इसी प्रेम की पराकाष्ठा से ओत प्रोत जीवन के कुछ छण जो भारतीय परिवेश में आदर्श मार्ग दर्शक के रूप में सामने आए और जब हम भारतीय संगीत की बात करे तो इनके प्रसंग और लीलाओ को तो संगीत से अलग किया ही नही जा सकता क्युकि भक्ति से लेकर प्रेम और मोक्ष तक ले जाने का सरल और सुगम मार्ग मात्र इनकी लीला प्रसंगों में ही देखने को मिलता है।

भारतीय संगीत की रचनाएं नायक नाईका, संयोग श्रंगार का उदाहरन राग हमीर की रचना में प्रस्तुत है। राग हमीर की एक विलंबित रुपक की रचना है।

राधिका जी बृज में कृष्ण जी के दर्शन हेतु आती है तो वहा के लोग राधा जी को देखकर मोहित होने का प्रसंग इस ख्याल शैली की बंदिश में बताया गया है।

स्थाई - तू कौन कहां से आई, अलबेली नारि,
ब्रिज में तोहे देखी नई-नई।
अंतरा- धन धन विधना ऐसो रूप सवारे तेरो
"रामरंग" ब्रिजतीय निरख चकित भई भई।।
द्रुत ख्याल में राधिका दुत ख्याल में राधिका
जी का जवाब है।
द्रुत तीनताल स्थाई - गुन सुन आई नन्द नन्दन को,
वृषभानु नंदनि की रति कुवरि
बरसाने ते आई दर्शन को।।
अंतरा - धन ब्रजभूमि वन लता विरछन धन सर
सरित निकुंज "रामरंग" जिन बसत वृंदावन
हरी पद रज परसन को ।।

ख्याल शैली की अन्य बंदिशे भी निम्नांकित है–

राग श्याम कल्याण झपताल विलम्बित
स्थायी- जाने दी री मोहे श्याम सुन्दर मिलन की
सुरत लागी।
अन्तरा- कमल नयन मुख कोटि मदन वारूँ दरशन
की उमंग 'रामरंग' तन जागी।।
राग श्याम कल्याण एकताल
स्थायी- बेला सांझ की सुखद सुहावनो भयो री
आली आज को।
अन्तरा- अचानक आये श्याम बरजोरी अचरा थाम
सरबस लय रामरंग चले जगाय बाल को।।

राग शुद्ध सारंग

स्थायी- ऐसो ढीठ लंगर ना मानी ना मानी अरज
मोरी मोरी छल बल करि छैला
सर की सरकाई सारी लाज गई।
अन्तरा- जाय कहूँगी यशोदा आँगन बरज लेहो
अपनो लालन रामरंग मोरी बहिंया मुरकाई।।

राग मारू बिहाग

स्थाई- मन ले गयो रे सांवरा सखी री मोरा लागे
कैसे जियरा।
अन्तरा- दै गयो पीर धीर धीर लै गयो री, नींर बहे
नैना लागे दुख दैना 'रामरंग' जब सुध आये
हियरा ।

राग नन्द - त्रिताल मध्यलय

स्थायी- अजब अनोखे नैन बरनि बनै न बैन।
अंतरा- खंजन मीन मृग वारूँ 'रामरंग' वारूँ तन
मन धन।।
राग सरपरदा बिलावल एकताल मध्यलय
स्थाई- भरन नहिं देत गगरिया श्याम सुन्दर ढीठ
लंगर।
अन्तरा- लपट झपट मेरो छीन लिये है 'रामरंग'
गगर।।

राग हेमन्त - त्रिताल द्रुतलय

स्थायी- हमरी सुध लीजै मुरारी नंद नंदन यशुदा दुलारे।

अंतरा- आस लगी तुमरे चरन की रामरंग दीजे दान दरस की दीना नाथ जन के रखवारे।।

राग मियाँ की सारंग - धीमा त्रिताल

स्थायी- सिर राजे मोर मुकुट और गले सोहे वन माल।

अन्तरा- अधर धरे वो तेणु रामरंग कर धरे लकुट संग ब्रज बाल।।

राग सरस्वती सारंग

स्थायी- मंदर आयो हो पिया गावो री आज रहस रस शुभ मंगलरा।

अंतरा- धन रे बभना ऐसे बिचारे सगुन 'रामरंग' मोरा सांवरा।।

राग खमाज

स्थायी- मुरकााई हमरी बैया री लंगरवा बरजोरी कीन्ही मग
अरज न माने ऐसो नटखट है बनवारी।

अंतरा- छेल छबीले चित हरे हरे मधुर बजावे मुरली अधर धरे
'रामरंग' ब्रज के नंद नंदन ऐसो रस के रसिया बिहारी।

राग भैरवी

स्थायी- मुरकााई मारी बैंया छैलवा ने कीन्ही झकझोरी मग बिच बरजोरी धरि अँचरा गहो री मैं तो लाज मुरझाई

अंतरा- नंद ललन को अजब है चलन री हे मारे 'रामरंग'
रंग की विनती कर कर हारी मानत कन्हाई।।

राग नटभैरव

स्थायी- ललन वारी वारी जाऊँ तोरे मुख पै भोर भई जागो मेरे वारे

अंतरा- संग सखा ठाढे दरस को 'रामरंग' दरस तिहारे।

राग कलिंडगा

स्थाई - बाजी बाजी मुरली की धुन कहां सखि री
आज भोरहहि नन्द के ललन ब्रज के जीवन बंशी बजाई कहां।

अंतरा- जमुना कूल कदम्ब की छांड ढूंढ फिरी गलियन की राह
'रामरंग' सरबस तजि चलिऐ मन मोहन गिरिधारी जहां।।

राग गौरी

स्थाई - मंदरवा ना आये री
अजहूँ सांझ भई भये भनु मलिन

अन्तरा- ग्वाल बाल गौवन संग गये भोर बनवारी
'रामरंग' कहे रहे बिलम वन द्वारे बैठि मग निहारूँ नयन।।

राग बिहाग

स्थाई- नवनीत भावे न भावे तोहे माटी आज सिख देउँ लगाय तोहे सॉटी।

अंतरा- हरि मुख निहारि चौंकि नन्द रानी 'रामरंग' तीन लोक की झाँकी।।

राग बिहाग

स्थाई- मन ही मन सोचे नन्द रानी जगत पिता मैं सुत करि जानी।

अंतरा- यशुदा विसारी सुध बुध सारी हरि मुख भुवन अनेक
निहारी 'रामरंग' मातु सुमिर पछतानी।।

राग छाया बिहाग

स्थाई- हठ करे काहे लाल ऐसो धरनी पै आवे कैसे चन्द्र तेरो।

अन्तरा- सुर मुनि जाके पार न पावे ताहि नन्द रानी तमकि
बुझावे 'रामरंग' नेह की रीत है न्यारो।।

राग ताल सागर

निरत त्रिताल हरि राधे संग जमुना के तट निकट कदम्ब
एक एक गोपि ता बीच श्याम निरखे हरि मुरत नैना अविराम

शरद शशि निरख मन सुख भयो आनन्द उमग्यो तन की ताप गयो

नाचत दय दय विविध ताल ताता थइया थइया बेहाल

रास रसिक सखिन संग बसन पहिर विविध रंग

मुरली बजावे मधुर धुन मोहे सकल जन सुन सुन।

निरतहु हम संग हम संग निरतहु कहत गोप बधू ब्रज राज मानहु।

नटवर श्याम नटत सखिन संग उमगि उमगि अनेकन ढंग

निरतत शिव गोपि भेष धरे डमरू बजावे गोपी कान्ह संग।

नटराज भूले तांडव रंग निरतत गोपि कान्ह संग

कैलाश पति महेश्वर भये गोप पति गोपेश्वर।

निरखि रास भये भानु मुरत गये बिसरि अपनो काज उदय अस्त।

राधे गोपि श्याम रंग श्याम सब रंगे 'रामरंग' ऐसो रास रस पगे।

राग धानी

स्थायी- मुरकाई काहे कन्हाई, मोरी बैंया
लंगर गारी दूँगी हजारन, बरज न माने मेरो
मैं हारी विनती कर कर।

अंतरा- अरज करूँ जाय महल
नन्द के माने न तेरो छेल करे
झकझोरी गैल मैं हारी 'रामरंग' पग धर धर।।

राग खमाज

स्थाई- लंगरवा जिन छुवो मोरी बैंया देखत हैं सब नगर के लोगवा।

अंतरा- तू तो यशुदा सुमन 'रामरंग' जीवन धन मेरो मन हरन सांवरो कुवंरवा।।

राग काफी

स्थाई- मोपै ऐसो रंग जिन डारो तु तो निपत अनाडी हो खेलाडी बनवारी।

अंतरा- सब कोई खोले लाल गुलाल सों 'रामरंग'
अजब है रंग तिहारी हो बिहारी मैं तो वारी तोपै
उतन मन मेरो मन हारी हो मुरारी ।।

राग भैरवी

स्थाई- यशोदा आज तारे सुत पर जाऊँ वारी।

अंतरा 1 सांवरी सूरत लगत अति नीको मुख छवि लखि ररि पति लागे फीको आनन्द भयो है निहारी।।

अंतरा 2 कैन सुकृत कौन जप तप कीन्हो त्रिभुवन पति को वश कर लीन्हो धन ब्रज नर नारी ।।

अंतरा 3 आज सुदिन शुभ घडी सुहाई तेरे घर जनमें कुंवर कान्हाई द्वारे वधावा गाऊँ री।।

अंतरा 4 ग्वाल वाल मिल मंगल गावे सुर मुनि हरषि सुमन बरसावे 'रामरंग' सुख पाऊँ री।।

राग मारवा

स्थाई- ग्यान की तोरी बात सुनत लागे नीक ना

अंतरा- जप तप साधन गुन अरपन श्याम चरण 'रामरंग',
ग्यान धरन की चलन ना हमन में

राग मारवा

स्थाई- जोग ले आये तुम ऊधो
मैं सुहागन कैसे जोगन बनू।

अंतरा- बेन्दी भाल मांग जहं सेन्दुर 'रामरंग'
भसम रमाये कैसे जोगन बनू।।

राग देस

स्थाई- रंग डारो न डारो न विनती सुनो नन्द के ललना।

अंतरा- कर झक झोरी चूनरी रंग में बोरी और करकाई कंगना
अबिर गुलाल 'रामरंग' मुख मीजे मग ऐसी अनरीत करो ना।।

राग देस

स्थाई- निरतत श्याम आज नटवर भेष मुरली कर धारे।

अंतरा- निरतत गावे कालिया फन पै 'रामरंग' ताता उमगि ताता थइया रे।।

राग जयजयवंती

स्थाई- हमरी बात ना मानी ढीठ लंगर बरजत हारी।

अंतरा- पैंया परूं मैं बार बार काहे मग करत रार, 'रामरंग' छाडो अंग, ब्रज के बनवारी।।

राग केदार

स्थाई- पैंजनी बाजे झनन झनन कटि बजत मधुर मृदु
किंकिन निरखत छवि जननि बलिहारी।

अंतरा- किलकत बोलत हंसत मन हरत 'रामरंग' नन्द अजिर बिहरत मोहत नर नारी।।

राग हमीर

स्थाई- कौन कहाँ ते आई तू अलबेली नारि
ब्रज मे तोहे देखी नई नई।

अंतरा- धन विधन ऐसो रूप संवारे तेरो
'रामरंग' ब्रज तिय निरख चकित भई भई।।

राग हमीर द्रुत तीन ताल

स्थाई- सुन आई नन्द नादन को ब्रिस भानु नन्दन की रति कुवरि बरसाने ते आए दरसन को लू

स्थाई- धन ब्रज भूमि बन लता बिरछन. धन सर सरित निकुंज .राम रंग जिन बसत ब्रिन्दावन .हरी पद राज परसन को लू लू

राग तिलक कामोद

स्थाई- मेरो पत राखो मुरारी भीषम द्रोण बैठे पावर है।

अंतरा- सूर सभा सब क्रूर हैं बैठे 'रामरंग' बैठे पति पारथ पाथर हैं।।

राग किरवानी

स्थाई- मुकुट वारो सांवरो लागो हमारो मनवा रे साजनवा।

अंतरा- भावे न तोरा भवनवा जब से लागे उनसे नैनवा 'रामरंग' चेरी भई वाके दामनवा।।

राग गौडसारंग

स्थाई- हरि आवन की बाट एरी, बैठि जोहूँ रैन दिना, द्वार अपने माई

अंतरा- नन्द ललन की आस लगी मोहे, 'रामरंग' दरस बिना पलछिन युग माई।

राग बागेश्वरी त्रिताल

स्थाई- खेलन मांगत चान्द कन्हाई, बार बार जननी सन बोलत, लादे चान्द री माई।

अंतरा- जननी सुतही दिखावे सुधाकर, बारि मध्य परिछाई।
'रामरंग' हरि गहत पावत, मातु मनहि मुसकाई।।

राग दरबारी कान्हडा

स्थाई- कौन गांव की हो नारि तुम,
देखी ना तुम्हरी सुरत कबहूँ या ब्रज धाम।

अंतरा- शुक पिक वारूँ अधर वैन पर नयन वारूँ मृग मीना, 'रामरंग' तोरे छवि पर, वारूँ रति शत काम।

भारतीय संगीत भी अंततोगत्वा मोक्ष मार्ग तक ले जाता है कहा भी गया है " स्वर इति ईस्वर" अर्थात स्वर ही इश्वर है या यूँ कहे तो अतिशियोक्ति न होगी की स्वर और ईश्वर दोनों उसी तरह एक ही है जिस तरह राधा कृष्णकृ।

सन्दर्भ -

1. अभिनव गीतांजलि भाग १,२,३,४,५
2. राग शास्त्र . भाग १,२,
3. वार्ता--श्री राकेश अशेष (वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार)
4. सूर, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना में संगीत का योगदान, डॉ. रागिनी प्रताप, पृ.सं.-21

भारतीय संगीत में 'कृण'

डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय

असिस्टेंट प्रोफेसर, गायन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

कला मनुष्य को ईश्वर द्वारा प्रदत्त वह वरदान है जिससे सभी प्राणियों का रंजन होता है, कला जन्मों के संस्कार से प्राप्त एक अद्‌भुत, अलौकिक शक्ति हैं जो तन्मयी अनुभूति, प्रतिभा, उच्च कल्पना आदि के सम्मिश्रण से निष्पान्न होने पर ही ईश्वर की कृपा से प्राप्त होती है। कला व विद्या दोनों ही ज्ञान प्रदान करती है। परन्तु दोनों में अन्तर है। विद्या सृष्टि के विस्तार क्रम के वैज्ञानिक स्वरुप का निरुपण है। वही कला मानवीय प्रतिमा की उपज का अंकुरण है। संगीत में हम दोनों का मिश्रत रुप देख सकते है। किसी भी कला का प्रायोजन आनन्द की प्राप्ति में ही है यही आनन्द मोक्ष की अवस्था भी है जो कला का प्रयोजन का उसकी सिद्धि है।

64 कलाओं में से 5 ललित कलाओं- संगीत, काव्य, चित्रकला मूर्ति कला एवं वास्तुकला है ललित कलाओं में दो प्रमुख चित्रकला एवं संगीत कला तत्व एवं भाव की दृष्टि से समान है। जिनके पारस्परिक सम्बन्ध प्रतिष्ठित है। विष्णू धर्मोत्तरपुराण के चित्रसूत्रम में-

बिना तु नृत्यशास्त्र चित्रसूत्रम सुदुर्विदम्।

अर्थात् किसी व्यक्ति को चित्रकला सीखने से पूर्व संगीत का अभ्यास करना चाहिए। तभी वह चित्रकला में पारंगत ही सकता है। चित्र की भाव सम्पन्न सुकोमल रेखाओं में संगीत के सम्पूर्ण स्वरूप की सजीवता अकथनीय है।

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि नाटक अथवा काव्य के मूल तत्व हमें वेदों से प्राप्त होते हैं लौकिक काव्य दो प्रकार के होते हैं जिनको हम श्रव्य काव्य एवं दृश्य काव्य से समझ सकते है।

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात सामम्यो गीति मेव च
यजुर्वेदादमिनयान् रसानाथर्वणादपि।।

- नाट्यशास्त्र अ. 1.17

भरत के अनुसार देवताओं की प्रार्थना पर मनोविनोदार्थ ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीति, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नारपवेद 4 पंचम वेद की रचना की। वैदिक काल कल्प की दृष्टि से बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा। इसमें विविध प्रकार के मन्त्रों का अविर्भाव हुआ अग्नि, इन्द्र, वरूण, आदित्य, सविता आदि इस युग के प्रमुख उपास्थ देव रहे। जिनकी उपासना हेतु अनेक सूक्तों की रचना की गई।

अहत्राहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्य ततक्ष। वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अंजः समुद्रमव जग्मुरावः।।

- ऋग्वेद 1/32/21

द्वा सुपण्प्र सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषत्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्त्रन्यों अभिचाकशीति।।

- ऋग्वेद 1/64/20

सौन्दर्य की कल्पना भी हमारे वेदों में मिलती है। प्रातः बाल अरूणिमा से मण्डित, सुवर्णच्छटा से विस्फुरित प्राची नमोमण्डल पर दृष्टिपात करते समय किस भावुक के हृदय में सौन्दर्य की भावना का उदय नही होता।

शूत्र चित्र सुमगा प्रथाना सिन्धुर्नक्षोद उर्विया व्यश्रैत।

- ऋग्वेद 1/52/12

अतः हम कह सकते है कि वेदों से ही समस्त काव्य तत्वों का उद्‌गम हुआ। जिसका विस्तृत स्वरूप समय-समय पर विभिन्न आचार्यों द्वारा किया गया।

भारतीय चिन्तन के अनुसार सभी विद्याओं, शास्त्रों, कलाओं आदि का अन्तिम लक्ष्य आत्मानुभूति माना गया। ये सभी परस्पर सम्बद्ध रहे। संगीत केवल लोकरंजन की वस्तु नहीं था बल्कि आत्मानुभूति का साधन भी था।

भारतीय संगीत के बारे में लिपिबद्ध रूप से जो कुछ भी हमें प्राप्त होता है वह वैदिक काल से वेदों में ही है। संगीत की दो धाराएँ रही, वैदिक संगीत जो अनादि अपौरूषेय, अत्यन्त पवित्र, व्यवस्थित, नियमबद्ध और अपरिवर्तनीय था। वेदों का सस्वर पाठ इसका रूप था। इन ऋचाओं को जब गाया जाता था तो सामगान कहलाता था।

लौकिक संगीत- जो मनुष्य द्वारा निर्मित था जिसमें नियमों की अपेक्षकृत शिथिलता थी। लोकरूचि होने से परिवर्तन की गुंजाइश रहती थी। यज्ञ आदि अवसरों पर थाट, चारणों के द्वारा यज्ञ कर्ताओं- यज्ञ का अनुष्ठान करने वालों के विरूद्ध गानादि के रूप में जो गीत प्रयोग होता था वह लौकिक संगीत था जिसे नाराशंसि कहा गया है। परिवर्तनशीलता के कारण इसके मौलिक स्वरूप को समझना कठिन है पर इसके भिन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है। भारतीय संगीत में नृत्य के अन्तर्गत भाव प्रदर्शन के लिए वन्दना, कवित्त, गत निकास, गत भाव, पद, भजन, श्लोक होरी या धमार, कीर्तन और ग़ज़ल आदि आते हैं। साथ ही ध्रुपद, तराना, तिरवट व चतुरंग के माध्यम से भाव के साथ-साथ नृत्त अंग का भी सुन्दर समावेश होता है। नृत्य के अन्तर्गत कवित्त जिसमें प्रायः देवी देवताओं के वर्णन तथा उनकी लीलाओं की प्रधानता होती है।

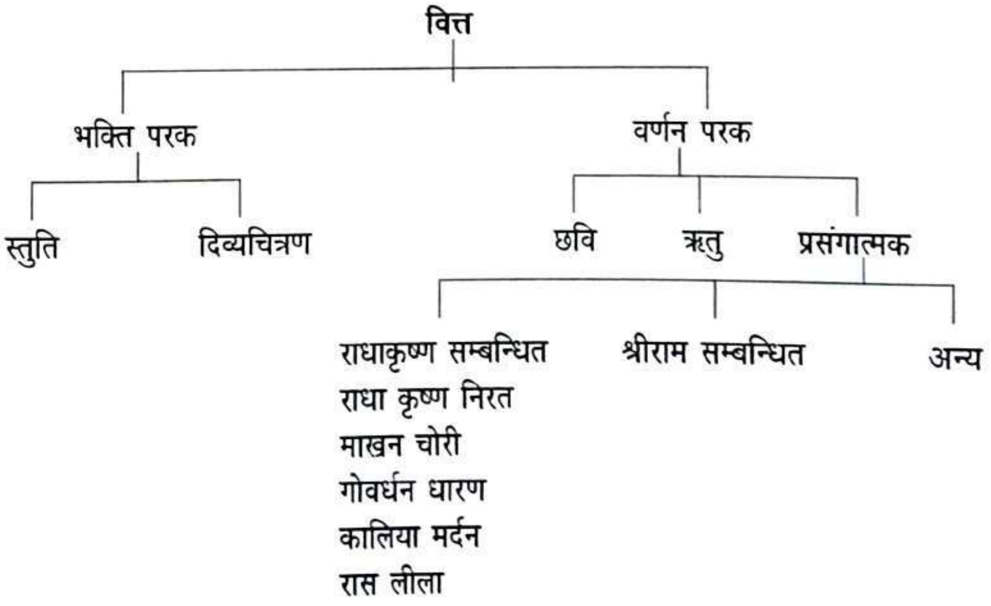

कवित्त को गतभाव के साथ प्रस्तुत किया जाता है जैसे- गोपियों द्वारा माता यशोदा से कृष्ण की शिकायत का प्रसंग गतभाव क्रमशः -

गोपियों द्वारा माखन बनसा
माखन लेकर बेचने जाना
मार्ग में कृष्ण से छेड़छाड़
दही की मटकी फोड़ा जाना

मइया यशोदा के पास शिकायत के लिए गोपियों का पहुँचना।

त्रिताल

का क हूँ कछु । सुनत नहीं सम । झाओ यशोदा । कन्हैया कि मै या

३ ग ० २

का कहूँ कछु सुनत नहीं समझाओ यशोदा कन्हैया की मैया
नितनित करत झगरो हमसो रोकत गैल हमार कन्हैया
ठाड़ रहे है ग्वाल बाल दधि बेचन को ना जाने दे
ठांड़ रही है ग्वालिन सारी मग में करी झकझोरी कन्हैयो
मार-मार के पिचकारी मारी अंगिया मोरी रंगडारी
हँसने लगे हे तारी तारी हारी मे तो हारी-हारी
सुन्दर ये छवि निरखी गिरधर की छवि लागे प्यारी
का कहू कछु सुनत नहीं समझाओ जसोदा कन्हैया की मेया ता।

(कथक में कवित्त- डॉ. गीता रघुवीर, पृ0 214)

भारतीय शास्त्रीय नृत्य कथक के विषय में यह मान्यता भी है कि इसका उद्‌गम ब्रजरास से हुआ। रास भारत की प्राचीनतम मंचीय परंपरा का जीवंत अवशेष मात्र है।

रस् धञ् रास् धञ् वा शब्दे, ध्वनो, श्रंखला वन्धवत् द्वयोर्द्वयोर्मध्यस्थित्या क्रीडा मेदे, कोलाहले च।

(शब्दस्तोम-महानिधि, पृ0 335)

रास एक क्रीडा है जिसमें उच्च स्वर में गान एवं नृत्य समाहित है 'रसानां समूहो रासः' कहा जाता है मण्डलाकार लोकनृत्य के रूप में इसकी मान्यता रही जिसमें कृष्ण मूल रहे और कृष्ण को रस के देवता के रूप में स्वीकार किया जाता है। आचार्य भरत ने रासक शब्द का उल्लेख किया जो कि नृत्य प्रधान है इसे रास के मूल रूप में माना जा सकता है। रासक नृत्य के 3 भेद ताल रासक, दण्ड रासक व मण्डल रासक—

वास्तु पंक्तीकृत सर्वा रमयन्ति मनोरमम्
गायन्त्य कृष्ण चरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यकाः
एवसं कृष्णों गोपीनां चकवालैरलंकृतः।

(हरिवंश- 2.20, 25)

गोपकन्याओं द्वारा दो-दो की जोड़ी में मंडलाकार कृष्ण चरित गाते व नृत्य करते बीच में कृष्ण को मनाने की कोशिश यह नृत्य लय ताल से सम्पूर्ण है। श्रीमदभागवत दशम स्कन्ध में 29-33 अध्याय श्री कृष्ण राम लीला का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसे रास पंचाध्यायी कहते थे। धीरे-धीरे राम का आधुनिक स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत है।

स्वयं रास नृत्य शास्त्रीयता के समस्त नियमों का निर्वाह करता है। आचार्य भरत के अनुसार नाट्यरम्भ में मंगलाचरण द्वारा देवी स्तुति का विधान ही रास में भी मंगलाचरण ही अपनी एक विशेष स्थिति है। प्रारम्भ में रास विहारी की वंदना व्रजवन्दना एवं प्रभु के स्वरूप की वन्दना की जाती है। ध्रुपद शैली का गायन रास संगीत का प्राण है। रास में इन रचनाओं का प्रस्तुतिकरण विशिष्ट गायकी में निबद्ध होता है। यह कथक के समीप है। क्योंकि रास व कथक की प्रस्तुति में पाये जाने वाले विभिन्न तत्वों में पाया जानें वाला साम्य है। नृत्य की सूक्ष्म बारिकीयों से अनभिज्ञ सामान्य दर्शक भी रास को देखकर उसे कथक से अभिन्न ही मानता है।

नृत्य गान गुन निपुन, रास में रस बरसावत
नव लीला ललितादि वलित, दम्पतिहि रिझावत।।

(नामा दास की भक्तमात)

वैष्णव परंपरा में कीर्तनी व पदों में भी ऐसे वर्ण है जिनका प्रयोग रास में बहुतायत होता रहता है। कृष्ण दास जी की रचना-

नाचत गोपाल संग, प्रेम सहित रास-रंग
तत थेई तत थेई करत धोष नागरी।।
कृष्णदास प्रभुगिरिधार मोह लिए, सुबस किए
तरनि तनया तीर वधू गुननि आगरी।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वथव नृत्य-माया टाक, पृ0-146

आधुनिक काल में दृष्टिगोचर कथक नृत्य रास की नर्तन परम्परा, वाचकों की परंपरा, धुवपद परंपरा तथा नृत्य की परंपरा तथा नृत्य की गतिविधियों पर आधारित नृत्य का समन्वित रस ही रास सामूहिक नृत्य है। रास में लोक तत्व का अधिक प्राधान्य ही रास नृत्य सम्पूर्ण कथा पर आश्रित है।

कृष्ण के स्वरूप पर विचार करते ही मन में अनेक भावों की सर्जना हो उठती है। गायक मन शब्दों में, वादक, उसे वर्णों में तो नृत्यकार नृत्य की मुद्राओं से शास्त्रकार शब्दों की गहराइयों में कृष्ण के विभिन्न स्वरूपों पर अपने-अपने तरीके से अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है।

अच्युत केशवं रामनारायणं
कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं
जननी नायकं रामचन्द्र भजे।।

मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं गधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।

कृष्ण को सम्पूर्ण कलाओं का स्वामी माना जाता है। भारतीय संगीत अपनी दिव्य धार्मिक परंपराओं, सामाजिक परंपराओं से उसकी आत्मा की तरह जुड़ा हुआ है। यहाँ जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी भाव यहाँ की परंपराओं और लीलाओं में समाहित है। संगीत अपनी विराटता, दिव्यता, रंजकता व विशिष्टताओं के साथ सदा से यहाँ विराजमान है। और सृष्टि में इस जीवन चक्र के साथ विराजमान रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. ब्रज संस्कृति और साहित्य, नन्दिनी भाटियाँ हर्ष, पब्लिशर्स-ज्ञान गंगा, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995
2. स्तोत्ररत्नावली, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. सक्सेना, डॉ. राकेश बाला, ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा, प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र. संस्करण 1996

कृष्ण और रासलीला

डॉ. राम कृष्ण झा

एसोसिएट प्रोफेसर

शासकीय महाविद्यालय, देवसर (म.प्र.)

रासलीला का क्षेत्र बहुत व्यापक है। रास शब्द अपने आप मे परम्परागत अर्थों को समावेशित किया है। रास का सीधा संबंध ब्रज प्रदेश में होने वाले रासलीला अनुकरण से है। यह विभिन्न प्रदेशों से है। नृत्य गीत एवं नाट्य से जुड़ गया है। समस्त भारत में रासलीला विभिन्न रूपों में हमें देखने को मिलता हैं डॉ. कपिला वात्सयायन के अनुसार रासनृत्य वृन्दावन से तमिलनाडू और पूर्व में मणिपूर से गुजरात तथा दक्षिण पश्चिम में मालावार तक प्रचारित है।

रास् शब्द रस् अथवा रास् धातु के साथ ''धश' प्रत्यय के योग से बना है। रस् धातु का प्रयोग शब्द ध्वनि क्रीड़ा भेद और कोलाहल के अर्थ में लिया जाता है। प्राचीन काल से ही मनुष्य अपने सुख-दुखः को शब्द और ध्वनि से व्यक्त करता है इसी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति को रास कहते है।

रस का महत्व कृष्ण भक्ति काव्य में मिलता है। श्रीमद्‌भागवत् में कृष्ण और गोपियों की रास लीला का वर्णन है। आधुनिक समय में ब्रजक्षेत्र में प्रचलित नाट्य को रास शब्द की संज्ञा दी गई है। पाणिनी के अष्टाध्याय में रास संगीत को रस से उत्पन्न मानी गयी हैं। हरिवंश पुराण में रस को हल्लीसक नृत्य की संज्ञा दी गई है। अभिनव गुप्त के अनुसार हल्लीसक नृत्य का ही एक प्रकार है। जिसमें मंडलाकार रूप में नृत्य करते हैं। भाष ने बालचरित्र में हल्लीसक का उल्लेख किया और इसका अर्थ बताया है कि गोपियाँ कृष्ण के साथ नृत्य और गान करती हैं। मध्यकाल में रास का प्रचार था। जैन लोगों ने भी अपने धर्म प्रचार के लिए रास नाट्क को ही आधार बनाया था। आगे चलकर श्रृंगार प्रधान नृत्य गीत का मिश्रण रास के नाम से जाना जाने लगा। रास मूलतः नृत्य है। नृत्य ताल और लय से बंधा होता हैं। यह नृत्य भाव एवं पदार्थभिनय के कारण नृत्य बन जाता हैं, रास लीला का महत्वपूर्ण अंग है। रास नृत्त रास नृत्य के साथ-साथ गेय रूप मे भी हैं, जिसमें गीत और बाद्य का भी प्रयोग होता रहा है।

महाकवि वान भट्ट ने हर्ष चरित में स्त्रियों द्वारा रासक पदों के नृत्य एवं गान का वर्णन किया है। इसमें उन्होंने वेणु झल्लरी, पटह अलाबु वीणा आदि अनेक वाद्यों का वर्णन किया हैं। रास लीला श्रीकृष्ण की लीला है। परम रस तत्व श्री कृष्ण स्वयं प्रकट हैं एवं अभिन्न राधा भी उनके साथ है, और प्रिया-प्रियतम रूप में रास में लीला करते हैं। इस रास लीला में गोपियाँ अथवा सखीगण प्रेम की विचित्र लीला का संचालन करती है। रास लीला में श्रीकृष्ण राधा एवं गोपियों का महत्वपूर्ण स्थान है, संयोग है। श्रीकृष्ण परात्पर तत्व है परब्रह्म है। वे ही ब्रहम की शक्ति के सचिदानन्द है। वे सदानित्य है, सदापूर्ण हैं, सर्वत्र है, अव्य है, सर्वशक्तिमान है, स्वतंत्र हैं, निर्वधि है। उनका आनन्द वैचित्र ही रसमय है। इसलिए श्रुति ने उन्हें रसोवैसः कहा है। श्रीकृष्ण आस्वाद्य रस है, रसास्वाद्यक रसिक भी।

इस प्रकार श्री कृष्ण ऐसे परम तत्व हैं जिनके स्वरूप रसत्व एवं रसीकतत्व की पूर्णता का व्यक्त करता है। इनके संबंध में लीलाशुक विल्वमंगल ने ऐसा लिखा है:-

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्मधुरं मधुरं बदनं मधुरम
मधुगान्धि मृदुस्मितमेतदये मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्।।

इस अनुपम माधुर्य रूप में रस ही रस है। श्रीकृष्ण के माधुर्य गुण है- सोभा, विलास, माधुर्य, ललित, तेज, मंगल, स्वर्थ और औदार्य

श्री राध आद्य शक्ति है, वे कृष्णमयी हैं।
राधा के बिना श्रीकृष्ण जड़वत् हैं।।

ब्रह्म वैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड में ये श्लोक दिया गया है:-

त्वया बिना जड़श्चाहं सर्वत्र च न शक्तिमान।
सर्व शक्ति स्वरूपाल त्वभागच्छ ममास्तिकम।
राधा का स्वरूप आनन्दमय हैं

रास लीला तथा रासानुकरण विकास मे डॉ. वसन्त यामदग्नि ने लिखा है-

राधा शब्द के मूल में राधस् शब्द हैं जिसका अर्थ आचार्य बल्लभ के अनुसार सिद्धि अर्थ में रूपानतर प्राप्ति हैं। राधा रूप में यह रूपान्तर प्राप्ति रसस्वरूप श्री कृष्ण की रसनीयरूपता की परिणति है। अतः रस स्वरूप को रसनीय रूप प्राप्ति ही सिद्धि अथवा राधा है, जो स्वरूपा भिन्न हैं। यह ऐसी सिद्धि है, इसके न तो कोई बराबर है और न इससे बढ़कर श्रीकृष्ण अपनी इसी स्वरूपा भिन्न श्री राधासे अक्षरात्मक ब्रह्मधाम अथवा व्याप्ति वैकुण्ठ में रमण करते है। वस्तुतः राधा को श्री कृष्ण के बिना स्थिति ही संभव नहीं है। श्री राधा ही लक्ष्मी स्वरूपा होकर नीरूप अथवा रूपरहित ब्रह्मानन्द की रूपवती मुर्ति है। स्वभोगार्थ जगत की रचना करते समय भगवान स्वशक्ति रूप में सदा आविर्भूत होते है। तभी शक्तियों में प्रथम शक्ति लक्ष्मी का आविर्भाव होता है। पहले अपने उसी रसस्वरूप में स्थित और रसतत्व के आविर्भूत होने पर भार्या रूप में अक्षरानन्द रूपा वही लीलाशक्ति आविर्भूत होती है।

गोपी

श्री कृष्ण की लीलाओं के सम्पादन मे गोपियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। गोपी शब्द का सामान्य अर्थ 'गोप-पत्नी' है, परन्तु गो शब्द से इन्द्रिय एवं किरण जैसे अर्थो की भी प्राप्ति होती है। जिसमें गोपियों का परमात्मा श्री कृष्ण की इन्द्रियाँ और री कृष्ण-सूर्य को किरणों के रूप में वर्णित किए गए हैं। लीला-प्रसंग में गोपियों का व्यक्तित्व ही कृष्ण प्रेम का दूसरा नाम कहा गया है। पृष्ठ संख्या 58 में लिखा गया है कि राधा की सहचरा के रूप में वे लीला की विधायिका हैं वैष्णवों का समस्त लीला-दर्शन इन्हीं गोपियों के तत्सुख सुखित्व भाव पर आधारित है। 'गोपी और सखी' इन दो शब्दों से ब्रज और निकुंज के धरातल पर प्रेम के दो स्वरूपों को प्रकट किया गया है।

आचार्य बल्लभ ने ब्रज की इन गोपिकाओं को तीन श्रेणीयों में विभक्त किया है। ये है-अन्यपूर्वा, अनन्यपूर्वा तथा सामान्या। अन्यपूर्वा गोपियाँ वे हैं जो विवाहिता होते हुए भी केवल श्री कृष्ण में ही पूर्णतः आसक्त है। अनन्यपूर्वा द्विविध बतायी गयी हैं इसमें प्रथम कुमारिकाएँ है, जिनमें श्री कृष्ण के साथ विवाह करने की सदा साध बनी रही है और इस साध पूर्ति के लिए वे कात्यायनीव्रत आदि की उपासना में लगी रही है। सामान्या गोपिकाएँ श्री कृष्ण के प्रति मातृभावना रखती है। श्री कृष्ण का पुत्र के रूप में लालन पालन करना ही गोपिकाओं की चरम जिज्ञासा है।"

रास लीला में कुल 19 प्रकार की गोपीयाँ भाग ली है। ऐसा आचार्य बल्लभ की मान्यताएँ हैं। श्री मद्भागवत् के गोपीगीत के उन्नीस श्लाकों में उन्नीस प्रकार की गोपियों के विभिन्न मनोभावों की अभिव्यंजना हुई है।

श्री मद्भागवत् में रस का उल्लेख इस प्रकार है–

तत्रारभत गोविन्दों रास क्रीड़ामनुव्रतैः।
स्त्रीरत्नैरवितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः।।

रासोत्सव सप्रवृत्तो गोपीमंडलमंडित
योगेश्वरे कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः
प्रविष्टेनग्रहीताना कण्ठ स्व निकट स्त्रियः।।
वलयानां नुपूराणं कि किणीनां च योषिताम्
सप्रियाणाममृच्छब्दस्तुमुलो रास मण्डले
तत्राति शुशुभे ताभि भगवान देवकी सुतः
मध्ये मणीनां हैमान्यं महामरकतो यथा।।

कुछ विद्वानों का मानना है कि गोपियों और सखियों के साथ एक वृत्ताकार नृत्य है। रास के नायक श्री कृष्ण हैं कृष्ण की रसात्मक लीलाएँ रस की उत्पत्ति करते है। रस का समूह ही रास कहलाता हे।

अतः कहा जा सकता है कि रासलीला का क्षेत्र बहुत व्यापक है इसमें श्री कृष्ण राधा एवं गोपियों का महत्वपूर्ण स्थान है। रास लीला में सबों का स्थान अपने-अपने जगह पर महत्वपूर्ण है। रूक्मिणी, सत्यभामा आदि पटरानियों की रति संमजसा रति के उदाहरण रूप में प्रस्तुत की जाती है। इस रति प्रेम में पत्नी होने का अभिमान विद्यमान रहता है और यहाँ ब्रजगोपाङ्गनाओं को एक मात्र श्री कृष्ण सुख-सुखित्व वासना से अनुप्राणित होने के कारण समर्था रतिमती कहा जाता है, और श्री राधा तो आद्याशक्ति है। मूल प्रकृति है। कृष्णमयी है। मधु रस की मूल आश्रय मूर्ति है। श्री कृष्ण भी उनके बिना जड़वत् माने गये है। यही तो रास लीला है।

सूरदास द्वारा वर्णित राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का रहस्य-चिंतन

डॉ. सियाशरण ज्योतिषि, डॉ. नवीन तेकाम

रानीदुर्गावती स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मण्डला, मध्यप्रदेश

हिन्दी साहित्य में जितना महत्व ब्रज भाषा का रहा है उतना किसी अन्य भाषा का नहीं रहा। ब्रज भाषा के इस महत्व का कारण भी दैवीय प्रेम के प्रतीक राधा और कृष्ण रहे हैं जिनके श्रृंगारमय चित्रण से लगभग सभी मध्यकालीन और कवियों ने हिन्दी साहित्य को न केवल समृद्ध किया बल्कि ऐसी अनुपम रचनाएँ प्रदान की जिनसे साहित्य वाटिका आज भी सुगंधित हो रही है। चाहे भक्तिकालीन भक्त या संत कवि हों या रीतिकालीन त्रिधाराओं के कवि राधा-कृष्ण के बिना रस, छंट और अलंकारों का चित्रण विशेषकर श्रृंगार का चित्रण सभी कवियों का प्रिय रहा है। इनमें से कुछ ने संयोग कुछ ने वियोग एवं कुछ ने दोनों का चित्रण करते हुए राधा और कृष्ण को अपने कथ्य का आधार बनाया।

महाकवि सूरदास ने अपने हृदय-चक्षुओं की दिव्य ज्योति से कृष्ण के सभी रूपों का मनभावन चित्रण किया है। केवल भ्रमरगीत ही नहीं उनके अन्य भी कई ऐसे पद मिल जाते हैं जहाँ राधा और कृष्ण के प्रेम की अलौकिकता का श्रृंगारमय चित्रण मिलता है। उनके एक पद में वे राधा और कृष्ण के एकरूप हो जाने संबंधी लोकप्रचलित मान्यता का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि गोपिकाएँ जानती हैं कि भले ही सबके मन मे कृष्ण का वास हो किंतु कृष्ण के मन में राधा का ही वास है। वे अपने दुःख से राधा के दुःख को बड़ा मानतीं हैं और स्वयं को भूलकर राधा के प्रति चिंतित हो उठतीं हैं। उद्धव के अपने पर वे राधा को सांत्वना देते हुए कहती हैं कि- "राधा, मोहन के रूप को तो तू पी चुकी है अतः मथुरा में कृष्ण रूप-विहीन हो चुके हैं। सचमुच उद्धव उसी निरूप को रूपवान् बनानके के लिए तेरे अन्दर से उस रूप को निकालने आये हैं, क्योंकि रूप ही तो रूपविहीन को रूपवान् कर सकेगा।"

'मोहन मांग्यो अपनो रूप।
यहि ब्रज बसत अच्यै तुम बैठीं तादिन तहाँ निरूप।
ताऊ पर तुम पर लैन पठाये मनौ धारि का सूप।।'[1]

राधा उद्धव से कहतीं है कि कृष्ण से बिछुड़ने का दंश हृदय में गड़ा हुआ है। उनका वह सलोना मुखड़ा मेरे दृष्टिपटल से विस्मृत ही नहीं हो पाता। मैं पश्चाताप की अग्नि में जल रही हूँ यदि इस पश्चाताप को खो दूँ तो मुझे अपनी पीड़ा का एक निदान मिल सके परंतु ऐसा मेरे लिए संभव नहीं है। सूरदास जी राधा के शब्दों में लिखते हैं-

"हरि बिछुरन की सूल न जाई
बलि-बलि जाऊँ मुखारबिन्दु की वह मूरति चित्त रही समाई।।
एक समै वृंदावन महियाँ गहि अंचल मेरी लाज छुड़ाइ।
कबहुंक रहसि देत आलिंगन कबहुंक दौरि बहोरत गाइ।।
वै दिन ऊधौ विसरत नाहीं अंबर हो जमुन-तट जाइ।।
सूरदास-स्वामी गुन सागर, सुमिरि, सुमिरि राधे पछिताइ।।"

सूरदास जी के लगभग सभी ग्रंथों में राधा और कृष्ण की रास और लीलाओं का अलौकिक चित्रण हुआ है। सूरदास जी के अनुसार राधा और कृष्ण के बीच प्रेम रूपी बीज का अंकुरण उन दोनों की बाल्यावस्था में ही हो गया था और कुछ ही दिनों में सबको इस प्रेम की जानकारी भी हो गई थी। स्वयं यशोदा इस प्रेम को जानकर राधा से कहने लगती हैं- "तू अपने जलज-जीत नयनों को चपला से भी अधिक चमकाकर न जाने श्याम का क्या करेगी। इस तरह से तू श्याम की ओर न देखा कर, श्याम के साथ हिल-मिलकर खेती है जिससे काम में बाधा पड़ती है। न जाने तू कौन सा मंत्र जानती है जो पढ़कर श्याम पर डाल देती है। उसे गाय दुहने दे और बार-बार यहाँ न आया कर।"[2] राधा भी यशोदा का ऐसा उत्त्र देती हैं कि यशोदा छटपटा जाती हैं किंतु यशोदा स्वयं राधा और कृष्ण के युगलबद्ध भावी जीवन की कल्पना को संजोये राधा को कहतीं हैं कि घर आते रहना। सूरदास जी के कृष्ण और राधा दोनों ही परमात्मा और जीवात्मा के प्रतीक हैं, दोनों में कोई अंतर नहीं किंतु लौकिक स्वरूप में मान का भाव दोनों को पृथक दिखा देता है। सूरदास ने अपने सूरासागर में राधा और कृष्ण का विवाह तक कराया है किंतु चैतन्य संप्रदाय राधा को परकीया मानकर चलता है। इस परकीया प्रेम के सूत्र ऋग्वेद तक पहुँचते हैं। किंतु वल्लभ संप्रदाय में राधा को परकीया नहीं माना गया है। भागवत् में भी इस संबंध में एक लोककथा उल्लखित है जिसमें बताया गया है कि एकबार ब्रह्मा ने कृष्ण की गायों और ग्वाल सखाओं को चुरा लिया। कृष्ण को पता चल गया और उन्होंने अपनी शक्ति के द्वारा इस बात को जानकर स्वयं ही उन गायों और गोपालों का रूप रख लिया। ब्रह्मा ने लगभग एक वर्ष तक सभी को अपने पास रखा। तब तक कई गोपियों की शादी उन गोपालों से हो चुकी थी ब्रह्मा ने उन्हें लौटा तो दिया किंतु तब तक वे उन गोपालों के रूप में उन सभी से विवाह कर चुके थे। इसीलिए भागवत् में न केवल राधा को बल्कि गोपियों को भी परकीया नहीं माना गया है।

राधा को स्वकीया माना गया हो या परकीया किंतु उनके प्रेम की पराकाष्ठा उन्हें और उनके साँवरे को एक कर देती है महारास में दोनों में कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता। सूरदास जी लिखते हैं कि राधा ओर कृष्ण दोनों मिलकर एक हो गये हैं। कृष्ण के कुण्डल और राधा के ताटंक अब पृथक-पृथक दिखलाई नहीं देते। दोनों कपोलों पर उनकी झक भर पड़ रही है, यह झलक सर्प के समान लहरें ले रही है। राधा के पर्वतों पर दोनों के मुख चंद्रमा के समान उदित हो रहे हैं। दोनों की आँखे मिलकर चार हो रही हैं। चंद्रमा लज्जित है कि पृथ्वी पर दो-दो चंद्र एकसाथ उदित हो गये हैं।

"कुण्डल संग ताटंक एक भये युगल कपोलन झाई।
एक उरग मानों गिरि ऊपर द्वै ससि उदय कराई।।
चारि चकोर परे मनो फंदा चलत है चंचलताई।
उड़पति गति तजिरह्यो निरखि लजि सुरदास बलिजाई।।"[3]

यमुना के पुलिन का राधा-कृष्ण के जीवन में विशेष महत्व रहा है। राधा के प्रसंग में सदा यही बाताया जाता है कि कृष्ण राधा से आखिरी बार यमुना के पुलिन पर मिले थे किंतु एक और बड़ी घटना है जिसके कारण राधा और कृष्ण दोनों के लिए यमुना के इस पुलिन का महत्व है। महारास का दिन भी एक विशेष महत्व का है जिसके लिए कृष्ण ने अपनी बाँसुरी बजाकर सभी गोपियों को आमंत्रित किया था। उनकी महारास के समय जब राधा और कृष्ण आलिंगन बद्ध होकर जिस गोल घेरे में चक्कर लगाते हैं उसका, वृंदावन की महक का, महारास में गोपियों के द्वारा कृष्ण को दी जाने वाली गारियों का सभी का राधा के जीवन में बड़ा महत्व है जिसके कारण राधा ने उसी स्थान को अपना निवास बना लिया। वह राधा का विवाह संस्कार था जिसे महारास के नाम से जाना जाता है। कृष्ण की मुरली ने स्वयं सभी गोपियों को इस विवाह का निमंत्रण दिया था। उनके द्वारा लगाये चक्कर उनके विवाह के फेरे थे। समूचा वृंदावन विवाह की वेदी था। विवाह के बाद गोपियों ने गारी गाकर संस्कार संपन्न किया और फिर सभी ने मिलकर इस खुशी में रास भी खेली यह घटना यमुना के पुलिन पर हुई थी इसीलिए राधा के जीवन में यमुना के पुलिन का विशेष महत्व रहा है। राधा के विवाह के पश्चात् उसकी प्रसन्नता का उल्लेख करते हुए सूरदास जी लिखते हैं-

''तब नागरि जिय गर्व बढ़ायी।
मे समान तिय और नाहिं कोउ, गिरिधर मैं ही बस करि पायी।।
जइ जोन कहत, करत सोइ सोइ पिय, मेरे हित यह रासय उपायौ।
सुंदर चतुर और नहिं मो सी देह धरे की भाव जनायौ।।''[4]

परंतु नारी रूप में अवतरण के पश्चात् राधा नारी स्वभाव से विवश हो कृष्ण को अपने अधीन जान कहती हैं कि नृत्य करते करते मैं थक गयी हूँ पैरों में पीड़ा हो रही है। धरा पर चलते ही नहीं बनता। मुझे जरा अपने कंधों पर बैठा लो थोड़ी देर विश्राम करना चाहती हूँ। राधा के गर्व वचन सुनकर कृष्ण मुस्काने लगते हैं क्योंकि यहाँ उनको अपना शिकार(अहं) मिल गया और वे उसका शिकार कर वहाँ से अंतर्धान हो गये। राधा यह देख मूर्छित हो गईं और बाकी गोपियाँ रुदन करने लगीं। सूरदास लिखते हैं-

''कहै भामिनी कंत सों मोहि कन्ध चढ़ावहु।
निरत करत अति भ्रम भयौ ता भ्रमहि मिटावहु।।
धरनी धरत बनै नहीं पग अतिहि पिराने।
तिया वचन सुनि गर्व के पिय मन मुस्काने।।''[5]

परंतु उनके दर्प-शून्य होते ही कृष्ण दोबारा अपनी राधा के पास दौड़े चले आते हैं और रास लीला पुनः प्रारंभ हो जाती है। रासलीला का समय भागवत् की गणना के अनुसार छह माह के बराबर था किंतु सूरदास जी ने इसे एक कल्प के बराबर माना है। वे लिखते हैं- ''निसि वर कल्प समान बढ़ाई गोपिन को सुख दीन्हों।''

रमाकांत रथ आधुनिक उड़िया साहित्य के शीर्षस्थ कवियों में से एक रहे हैं और उनकी सर्वाधिक चर्चित कृति 'श्रीराधा' का भारतीय ज्ञानपीठ के द्वारा हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है जिसमें राधा के प्रबल पक्ष का उल्लेख करते हुए रमाकांत जी लिखते हैं कि- ''मैं किसी ऐसी राधा की कल्पना नहीं कर सकता जो कृष्ण को वृंदावन छोड़ने के लिए, उस पर निष्ठा न रखने के लिए चिड़चिड़ाती हो और उसके प्रति प्रेम को मान्यता दिलवाने के लिए या उसके साथ रहने के उपाय ढूँढने के लिए उससे कहती हो। ऐसा कोई भी आचरण उसके लिए अप्रासंगिक है। प्रारंभ से ही वह ऐसी कोई आशा नहीं पाले रखती : कुंठित होकर निराश होने की भी उसके लिए कोई संभावना नहीं है। अगर वह निराश हो सकती है तो केवल इसीलिए कि कृष्ण को जिस सहानुभूति तथा संवेदना की आवश्यकता थी, वह उसे न दे सकी। न दे पाने की पीड़ा कुछ लोगों के लिए न ले पाने की पीड़ा से बड़ी होती है।''[6]

सूरदास जी ने दानलीला के कई पदों में राधा-कृष्ण के लिए चिर-संयोग का उल्लेख कर उन्हें भक्ति-युगल का आश्रय बताया है। उन्होंने ''राधा, कृष्ण और गोपियों के प्रेम की समस्त प्रकार की अवस्थाओं का विशद चित्रण किया है।''[7] सूरदास जी के सूरसागर में 'श्रीकृष्ण राधामिलन', 'पनघट-प्रस्ताव', 'दानलीला', 'मानलीला', 'रासलीला' आदि राधा और कृष्ण के अलौकिक प्रेम के जीवंत दस्तावेज हैं। 'चकई-भौंरा' के खेल के समय हुई राधा और कृष्ण की मुलाकात का चित्रण करते हुए उन्होंने कृष्ण के द्वारा राधा को फुसलाने और 'खरिक' के बहाने मुलाकतों के दौर से उनके प्रेम के अंकुर का वर्णन किया है जिसके कारण आज पूरा जगत् राधा और कृष्ण को एक ही नाम से जानता है। राधा के सर्प-दंश की घटना हो या रासलीला की या उद्धव प्रसंग राधा और कृष्ण के प्रेम का जैसा चित्रण सूरदास ने किया वह दोनों आँखों वालों के लिए भी दुर्लभ है।

संदर्भ-

1. सूरदास का काव्य वैभव, डॉ. मुंशीराम शर्मा, ग्रन्थम प्रकाशन कानपुर, संस्करण-1965, मूल्य-12.25 रुपये
2. सूरदास, ब्रजेश्वर वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण- 1979, मूल्य- 35 रुपये,पृ.-267
3. सूरसागर(ना. प्र. सं. 1756)
4. सूरसागर,(ना. प्र. स. 1718)
5. सूरसागर(ना. प्र. अ. 1719)
6. श्रीराधा, रमाकांत रथ, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण- 1990, मूल्य- 90 रुपये, पृ.- 265-266
7. सूरदास, ब्रजेश्वर वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण- 1 979, मूल्य- 35 रुपये, पृ.- 61

प्रेम की वंशी बजाते है गोविन्द

डॉ वेणु वनिता

सहायक आचर्य संगीत तबला, बरेली कॉलेज बरेली

कृष्ण भक्ति कर कृष्णहि पावे,
कृष्ण ही ह्वे यह जगत प्रगट है,
हरि मे लय ह्वे जावै,
यह हट ज्ञान हुय जसो ही,
लीला जग देखें,
तो तेहि सुख-दुख निकट ना आवे,
ब्रह्म रूप कर लेखें ।। सूरदास।।

आज वैश्वीकरण और आधुनिकता की व्यस्त जीवनशैली में भारतीय समाज मानवीय संवेदनाओं से रिक्त होता जा रहा है। माननीय मूल्यों का ह्रास प्रतिदिन हो रहा है, ऐसे समय में यह विचार गोष्ठी एक शुभ लक्षण है मैं सर्वप्रथम इसके आयोजक को को साधुवाद प्रदान करती हूं । कि उन्होंने सभी को इस और विचार करने के लिए प्रेरित और उनमुखकिया।

श्री कृष्ण चरित्र इतना विस्तृत और अथाह है कि उसे एक लेख में समझना असंभव सा लगता है और जब श्री राधा और प्रेम की वंशी भी साथ हो तब यह कार्य और अधिक दुष्कर प्रतीत होता है वैश्विक संदर्भ, सामाजिक समरसता, सामाजिक संदेश, मानवीय मूल्य, प्रेम एवं संगीत किसी एक पर विचार करना असंभव सा लगने लगता है क्योंकि श्री कृष्ण तो सभी गुणों की खान हैं यह सब कुछ एक साथ उन में समाहित है।

प्रेम और संगीत सदेव से भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताएं रही हैं हम जब भी श्री राधा कृष्ण का कोई मनोहारी दर्शन करते हैं तो साथ में राधा रानी और हाथ में वेणु हमें शुद्ध प्रेम और विशुद्ध संगीत की प्रेरणा प्रदान करते हैं स आधुनिक युग में जब समाज अपने ही लोगों से दूर होता चला जा रहा है तब कृष्ण राधा का चिंतन हमें जीवन में सौहार्द, प्रेम, संगीत की ओर अभिप्रेरित करता है । जब भी हम संगीत के उद्गम के बारे में विचार करते हैं तो सर्वप्रथम पौराणिक देवी देवताओं को संगीत से जुड़ा पाते हैं सर्वप्रथम मां सरस्वती जी के साथ वीणा महादेव शिव के साथ डमरु एवं सबसे लोकप्रिय लोक रंजक सबके मानस में राज करने वाले मुरली मनोहर कान्हा अपनी वेणु से सब का मन मोह लेती हैं।

श्री कृष्ण की रास संगति और बांसुरी वादन विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में अदभुद है । किसी भी अन्य धर्म एवं संप्रदाय में गीत गाता हुआ वाद्य बजाता हुआ तथा नृत्य करता हुआ परमात्मा नहीं मिलेगा स भारतीय संस्कृति में श्रीकृष्ण से पूर्व शिव नटराज के रुप में उपस्थित थे एवं वीणा वादन करती हुई ज्ञान की देवी सरस्वती विद्या मान है।

भक्ति साहित्य और संगीत सभी कृष्ण के गुणगान से भरे पड़े हैं। जिस ओर भी जाएं राधा कृष्ण और उनकी प्रेम की वंशी के वशीभूत ही यह सारा जगत दृष्टिगत होता है ब्रज के तो कहने ही क्या वृंदावन की रज रज में प्रभु एवं गोपियों की पद रज रहती है।

द्वारिका की माटी में वह झूम कहां यह झूम तो ब्रज में है ब्रज रस में है। इसी झूम में झूम झूम कर सब अपनी तरह बखान करते हैं इसे वेद कहते हैं "यशिमन्नित ब्रिजारू" गौचारण की स्थली ही ब्रिज है। अष्टछाप के कवि कहते हैं कि गौ सेवा की भूमि

है वृज। ऋग्वेद, यजुर्वेद, शुक्ल यजुर्वेद, वैदिक संहिता, रामायण, महाभारत, हरिवंश और भागवत जैसे अनेकानेक ग्रंथ सब एकजुट हो कर कहते हैं कि ब्रिज है गौशाला, गोचर भूमि या गोप बस्ती स महर्षि शांडिल्य कह रहे हैं वो जो भरा है सत रज और तम से वही व्यापक है वही ब्रहम है वही ब्रज है ।

कृष्ण जन्म मथुरा में, लेकिन जन्म लेते ही भेज दिया गया यमुना पार की इसी गोप बस्ती में इसी भूमि पर हुआ लीलाओं का खेल स अपने रस से सीच कर इसी स्नेहिल भूमि ने बाल कृष्ण को कृष्ण के लोक रंजक रूप को अपने विशाल आंचल में इतने समेट कर रख लिया कृष्ण की लीलाओं का अमृत। महाराज के पियूष को पीकर सदा सदा के लिए तृप्त परितृप्ति होगी कि यह भूमि।

ब्रज भूमि मोहनी में जानी।।
मोहन कुंज मोहन वृंदावन, मोहन जमुना पानी।।
मोहन नारी सकल गोकुल की, वोलत अमृतवाणी।।
श्री भट्ट के प्रभु मोहन, मोहिनि राधा रानी।।

ब्रज राधा का हृदय है भागवत में सूरदास के यहां ब्रज के अनेकानेक कवियों के यहां, मथुरा नहीं मथुरा के पास बसा वन्य प्रदेश और उसकी गोप बस्ती है ब्रज सघन वन संपदा के ऐश्वर्या में डूबी सुगंधित निकुंजो की भूमि, पग - पग पर महा प्रयाग रचते चरण करोड़ों कल्पवृक्षों का दर्प नाश करने वाले वन उपवन कोयलों भ्रमरो और मयूरो का समवेत गान यही था ब्रज धाम । कृष्ण का प्राण ।

ब्रज भाषा कवियों और भक्तों के भाव का रस जहां जहां तक गया, वहां वहां तक मानो ब्रज के बीज जा छिटके। सूरदास ने कहा --

जो सुख ब्रज में एक घरी,
सौ सुख तीन लोक में नाहीं।।

इसी सुख की अनुभूति में लिपट कर रसखान ने कामना की –

मानुष हो तो वही रसखानि, बसौ संग गोकुल गांव के ग्वालन ।।
जो पसु हो तो कहा बसु मेरो, चरौ नित नंद की धेनु मझारन ।
पाहन हो तो वहीं गिर को, जो धरयौं कर छत्र पुरंदर धारना।
जो खुग हौ तो बसेरो करौ, मिल कालिंदी,- कूल कदंब की डारन।।

जो भाग ब्रज से जुड़ा, उसने ब्रज को स्थान ना रहने दिया अनुभूति बना दिया ब्रज बाहर नहीं है भीतर है। जो चेतना है, चौतन्य है, जो बोध की छुपी हुई सत्ता, है जो आलोक है वही है ब्रज। ब्रज मन के भीतर बहती हुई सतत धारा है जीवन के आनंद की। जीवन के आह्लाद की जीवन के माधुर्य और प्रेम की इस धारा का अनुभव करना कृष्ण का अनुभव करना है। कृष्ण का अनुभव ब्रज के बिना अधूरा है कृष्ण ब्रज का आधार है लेकिन ब्रज के बगैर अधूरे हैं, ब्रज रस का देश है।

जहां काल व्यापै नहीं"। युग युगांतर बीते पर रस का प्रथम छण ना कभी रीता ना कभी बीता रस की अनुभूति को काल कभी बूढ़ा नहीं कर सका इतनी सामर्थ कहां है काल में की ब्रज को बूढा कर दे। ब्रज के भावों को बूडा दे।

वंशी की टेर कालिंदी का कलरव और कदंब कृष्ण के ब्रज का यह उन्मुक्त भाव ही है, जो रोम-रोम छूता है। उन्नति और परिवर्तन की दौड़ में कितना कुछ बदला लेकिन ब्रज के मूल में आज भी वही रस है, वही माधुरी है वही प्रेम है वही भक्ति और संगीत है इस प्रेम में ठहराव नहीं "सा" तत्व है। भारतीय संस्कृति में अध्यात्म और संगीत का जितना महत्व है उतना अन्य किसी का नहीं इस कारण हम अध्यात्म और संगीत को भारतीय संस्कृति की जडें कह सकते हैं। दूसरी बात यह है कि आध्यात्म और संगीत परस्पर संयुक्त हैं अध्यात्म और संगीत दोनों ही भौतिकता से अभौतिकता की ओर ले जाते हैं। मध्य युगीन भक्ति आचार्यों तथा महाराष्ट्रीय संतो एवं चौतन्य भक्तों में संगीत के इस महत्व को ग्रहण करते हुए इसे अध्यात्म साधना का पूरक बना दिया। स्वामी हरिदास, सूरदास, मीरा आदि अनेकों ने ऐसा किया स वस्तुता उसकी परंपरा का सूत्रपात भिन्न भिन्न धाराओं में हुआ, एक धारा संस्कृत से १३ वीं शताब्दी के भक्त कवि जयदेव के द्वारा उनकी रचना गीत गोविंद से बही जिसे मैथिल कवि विद्यापति ने आगे बढ़ाया, वहां से सूरदास आदि

कृष्ण भक्त कवियों के द्वारा उसका पर्याप्त विकास और प्रसार हुआ महाराष्ट्रीय संतो तथा दक्षिण में आलवार संप्रदाय के भक्तों ने भी संगीत को अध्यात्म से जोड़ा पुष्टिमार्गीय कृष्ण भक्ति कीर्तन सेवा भी संगीत पर आधारित है और विभिन्न रोगों और तालों में निबंध है।

श्री कृष्ण के प्रति विशुद्ध प्रेम ही पुष्टिमार्गीय भक्ति है श्री वल्लभाचार्य की पुष्टि मार्गीय भक्ति में संगीत का सर्वाधिक महत्व दिया गया कृष्ण भक्ति गीत काव्य में सूरदास आदि अष्टछाप के कवि मीराबाई स्वामी हरिदास आदि की रचनाओं में संगीत तत्वों को स्पष्ट दर्शन होते हैं स सूर का सूरसागर तो संगीत का सागर है ही -

1. मुरली हरी को भावे री, छयो राग छत्तीसौ रागिनी। एक एक नीकै गावै री।।

2 नंदनंदन सुध राई बांसुरी बजाई, सरगम सुनी कै साधि, सप्त सुरनि गाई ।

अतीत अनागत संगीत, बिच तान मिलाई। सूर ताल डमरु नृत्य धय ई,पुनि मृदंग बजाई।

सकल कला गुन प्रवीन, नवल बाल भाई।
सूरदास प्रभु अरस परस, रीझि सब रिझाई।।

सूर की दृष्टि में श्रीकृष्ण ही परम तत्व हैं व जगत के अभिन्न निमित्तोपादान शुद्धसद्वेत तत्व हैंस उनका मधुरत्तम स्वरूप रसमय है।

ब्रजजनों के आनुगत्य पूर्वक प्रेम सेवा ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। एवं यही परम प्रयोजन पदार्थ हैं ।इसके परम प्रमाण श्रीमद् भागवत गीता है।।

श्रीकृष्ण जहां पर परम तत्व है, वहां श्री राधा उनसे अभिन्न लीलार्थ द्वैत धारण किए हुए उनकी आह्लादिनी शक्ति हैं -

पुनि पुनि कहति ब्रजनारी, धन्य बडभागिनी राधा तेरे वश गिरिधारी।
हम विमुख तुम करुण संगनि, प्राण एक द्वै देह।।
एक मन, एक बुद्धि ,एक चित्त, दुहिन एक स्नेह।।

श्रीमद् भागवत पुराण के लेखन के पश्चात कभी लौकिक साहित्य मे राधा नामक पात्र का अवतरण हुआ,और वह इतना लोकप्रिय हुआ कि राधा को जीवंत ऐतिहासिक पात्र मन लिया गया। महापुरुषों और कवियों ने बताया कि श्री कृष्ण की बाँसुरी के स्वरों का अर्थ राधा समझती है। इस प्रकार श्री कृष्ण के साथ राधा भी संयुक्त हो गयी। साथ ही आध्यात्मकता के साथ जो संगीत पहले से ही अविभाज्य थअ,वेगवान होकर प्रखर रूप मे मुखरित होने लगा।

सूरदास जी भी कन्हैया और उनकी मुरली के वशीभूत हैं। सूरसागर के अतिरिक्त आपने कृष्ण गीतावली एवं श्री कृष्ण बाल माधुरी की भी रचना की जो गेयता से परिपूर्ण हैं।

संत कवित्री मीराँबाई संस्कृति का ज्वलंत उदाहरण है वह संस्कृति है प्रेम की, भक्ति की, समर्पण की और क्रांति की।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई, जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बंधु, अपनों नहीं कोई । छाडदई कुल की कान, का करेगा कोई।।

मीरा में कृष्ण भक्ति के प्रति अनन्यता की रागात्मक चेतना का संस्कार जगा और दूसरी और नारी मुक्ति की कामना का तेज भी प्रोद्भासित हुआ। मीरा संस्कार गत कृष्ण की अनन्य उपासिका ही नहीं वरन नारी मन पर अधिकार जमाने वाली सामाजिक वर्जना से जूझने वाली साधिका भी थी। मीरा ने अपने काव्यो में गेयता का संविधान सम्मत रूपेण किया है ।

1 राग बिहाग ताल दीपचंदी

श्याम मोरी बाँहडली जी गहो।
या भवसागर मंझधार मे थे ही निभावण हो।।
म्हाँ में औगण घडा छै हो प्रभु जी थे ही सहो तो सहो।।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, लाज बिरद की बहो।।

2 बसौ मेरे नैनन में नंदलाल स

मोर मुकुट मकराकृति कुंडल अरुण तिलक दिए भाल।।
मोहिनी मूरत सांवरी सूरत नैना बने विशाल।
अधर सुधारस मुरली राजत उर वैजयंती माल।।

इसके अतिरिक्त गीत गोविंद महाकवि जय देव की समर्थ कृति है। जिसमें राधा-कृष्ण विषयक प्रीति लीला के गायन द्वारा अप्रतिम आनंद की सृष्टि हुई है कवि जयदेव ने वृंदावन स्थली का गायन कर रुप माधुरी ,नाम माधुरी ,तथा वेणु माधुरी के वैशिष्ठ को प्रकट किया है।।

वृंदावन वासी रसिक शिरोमणी स्वामी हरिदास जी भी एक रस सिद्ध कृष्ण भक्ति गायक थे। और तो और कृष्ण का जादू ऐसा कि उसने धर्म संप्रदाय और उसकी रुढ़ीवादिता को भी तोड़ दिया, वली मोहम्मद नजीर अकबराबादी जी कहते हैं -

तारीफ करूं अब मैं क्या क्या उस मुरलीधर बजैया की।
नित सेवाकुंज फिरैया की ,और वन वन गउ चरैया की।।
गोपाल बिहारी बनवारी दुखहरण मेहर करैया की।
गिरधारी सुंदर श्याम बरन ,और हलदर जी के भैया की।।
यह लीला है उस नंद ललन मनमोहन जसुमत छैया की।
रख ध्यान सुनो दंडौत करो जय बोलो किशन कन्हैया की।।

कृष्ण सब के साथ चलते हैं पर किसी के आगे जाना नहीं चाहते। वे नहीं चाहते की सब उनकी उंगली थामें रहे वह मार्ग दिखाते हैं लेकिन मार्गदर्शक बने रहने का मोह नहीं पालते सबको मोह में डालकर मोह से छूटते रहे श्री कृष्ण सब कुछ भोगकर त्यागते रहे, सब कुछ त्याग कर भोगते रहे। कृष्ण ने इतना प्रेम बाँटा इतना प्रेम बटोरा कि सब के भीतर वही प्रेम रंग रस भर गया।

साहित्य, संगीत, कला जिधर देखिए उधर बस श्याम रंग रस है। संगीत की तो हर विधा राधा कृष्ण के प्रीतम वर्णन से भरी पड़ी है शास्त्रीय संगीत या उप शास्त्रीय संगीत हो भजन एवं लोक संगीत साथ ही फिल्मी संगीत भी श्याम रस रंग में सराबोर है।

1. श्याम तेरी बंसी पुकारे राधा नाम
2. मोहे पनघट पे नंदलाल छेड़ गयो रे

जैसे अनेको गीतो से फिल्मी संगीत भरा पडा है। शास्त्रीय गायन में ध्रुवपद, विलंवित एवं द्रुत ख्याल की अनेकों बंदिशें विभिन्न रागों और तालों में निबंध एवं प्रचलित हैं जो श्रोताओं को सदैव से भाव विभोर कर देती हैं। ध्रुवपद।

राग मियां की सारंग चार ताल
स्थाई - कुंजन में रचो रास, अदभुत गति लिए गोपाल,
कुंडल की झलक देखी, कोटि मदन अटक्यो।
अन्तरा- अधर तो सुरंग रंग, बांसुरी संग ऐसी छवि, देखि देखि इंद्रधनुष पटक्यों।
राग - शुद्ध सारंग द्रुत ख्याल तीन ताल
स्थाई - ऐसो डीढ लगर ना माँनी, ना माँनी अरज मोरी,
छलबल करि छैला, सर की सरकाई सारी लाज लई
अंतरा - जाय कहूंगी यशोदा अंगना, वरज लेहु अपनों ललना
रामरंग मोरी बहियाँ मुरकाई।
राग मिश्र गारा -दादरा
स्थाई - अजब निहारी माई, आज बगियन में ,
अंतरा - पहरे श्याम चुनर और लहंगा राधा मुरली धारी
राग देश वंदिश की ठुमरी तीनताल
स्थाई - लंगर तोहे लाज ना आई रे, कैसे भरूं में जल की गगर।
अंतरा- कानन सुनी नाआंखन देखी, जैसी बरजोरी करत छैल हमी सन
कठिन भई पनघट की डगर।

भजनों मे तो राधा कृष्ण एक दूसरे के पूरक है-

मेरो कान्हा गुलाब का फूल किशोरी मेरी कुसुम कली।
होली भी कृष्णा के बिना पूरी नही होती-
होली खेल गयो मोसे नागर नट, नागर नट, वंशी वट, यमुना तट के निकट।

संगीत तुम जैसे एक प्रश्न के बिना अधूरा सा प्रतीत होने लगता है भारतीय संगीत शब्द और नाथ की उपासना से मानव के अंतस में विराजित किंतु सुप्तप्रायरू देवत्व को जागृत करने का प्रयास करता रहा है । और यही वह उदात्तता है जिसने विश्व

संगीत बिरादरी में भारतीय संगीत को सिर मोर बना दिया है। वेदो में सामवेद यह प्रमाणित करता ही है कि संगीत आध्यात्मिक विकास से असंदिग्ध रुप में संयुक्त है।

संगीत ध्यान की एक अति उत्तम विधि है जिस प्रकार ध्यान में व्यक्ति निर्विचार होकर एक लय हो जाता है, संगीत की तल्लीनता में भी वैसा ही होता है स भौतिक अनुभूतियों का लेश मात्र भी नहीं रह जाता। रजस और तमस के अनुवेध से सत्वोंद्रेक होने लगता है। संगीत हमें ब्रह्मानंद की ओर उन्मुख कर देता है। प्रयारू समझा जाता है, कि अध्यात्म की यात्रा संसार की यात्रा से भिन्न है। कठिनाइयां और समस्याएं हमारे जीवन को इतना आंदोलित करती हैं कि मन और बुद्धि उद्विग्न, चिंतित तथा अशांत हो जाते हैं, कभी कभी यह अवसादग्रस्त तथा विछिप्त होने लगता है। अध्यात्म और संगीत ऐसे में हमारे चित् को स्थिर तथा मन को शांति एवं बुद्धि को स्पूर्ति देते हैं। अध्यात्म एक भावभूमि का निर्माण करता है जो मन से असंपृक्त तथा बुद्धि से परे होती है, वस्तुतः यही हमारा हृदय है जो प्रभु प्रेम में समर्पित होता है। संगीत का स्वभाव ऐसा होता है कि वह हमारी सांसारिक अनुभूतियों से हमें प्रथक कर आध्यात्म की उच्च मनोभूमि पर प्रतिष्ठित कर देता है। तथा हम एक अदभुद शांति एवम आनंद का अनुभव करते हैं।

आज की युवा पीढ़ी भागमभाग और अतिव्यस्तापूर्ण इस जगत में समय प्रबंधन तथा मन को नियंत्रित ना कर पाने की समस्या से परेशान दिखाई देती है। संगीत ऐसे में मन को शांत, स्थिर तथा नियंत्रित करने में सर्वाधिक उपयोगी हो सकता है। मन के शांत होते ही मन की शक्तियां एकाग्र होने लगती है, और जीवन की अस्त व्यस्तता में एक सुव्यवस्था आने लगती है जिससे समय प्रबंधन की समस्या का समाधान होने लगता है।।

श्री कृष्ण की बांसुरी का क्या संकेत है? श्रीकृष्ण संसार में रहे अस्रों का संहार किया, इंद्र के प्रकोप से बृज को गोवर्धन पर्वत उठाकर बचाया, कंस की अराजकता से प्रजा को मुक्त किया, जरासंध की आक्रामक प्रताड़ना से मथुरा वासियों की रक्षा की और आगे बढ़कर धर्म संस्थापना हेतु महाभारत युद्ध में पांडवों के कर्णधार बने स संपूर्ण युद्ध उनकी नीतियों और विचारधाराओं से संचालित हुआ। इस सब में श्रीकृष्ण को कितनी कठिनाइयो और समस्याएं ना आई होंगी, पर वह सदा मुस्कुराते रहे और समस्याओं का समाधान भी सहज रुप में निकालते रहे। यह तभी संभव हो सकता था जब उनका मन शांत और बुद्धि स्थिर रहे ।श्री कृष्ण स्थिर बुद्धि और शांत मन वाले हैं ,उनके आध्यात्मिक दृष्टिकोण का प्रतीक है बांसुरी अर्थात् संगीत उनका सहायक उपकरण है। संगीत उनके मन को शांत और उनकी बुद्धि को स्थिर रखता है।

मन को अपने अनुरूप तथा अनुकूल बना लेने की अद्भुत शक्ति संगीत में है, और मन ही वह केंद्र है जो हमें हतोत्साहित या प्रोत्साहित करता है, मन ही वह केंद्र है जो हमें क्रियाशील होने के लिए प्रेरित करता है। ऐसे में यदि संगीत हमारे मन को सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है तो हम अपने जीवन की अनेक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। अपने जीवन का सुप्रबंधन कर सकते हैं और समस्याग्रस्त होने से बचा सकते हैं। तथा अपने जीवन को आनंद पूर्ण बना सकते हैं।

आज आवश्यकता है कि हम संगीत की शक्ति को पहचाने तथा उसका सकारात्मक उपयोग कर जीवन का लाभ उठाएं संगीत की मधुर संवेदनशीलता का प्रतीक श्री कृष्ण और उनकी मधुर वंशी की धुन ही है। जो सारे जगत में अविरल रूप से बह रही है निरंतर, चिरंतन।

संदर्भ

1. वार्ता--श्री राकेश अशेष (वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार)
2. लेख--कृष्ण गाथा, सुश्रीअनुपमा ऋतु, पत्रिका-(अहा जिंदगी)
3. भैरवी अंक एक-मीरा के पदों मे रागात्मकता--रिशु रानी
4. भैरवी अंक एक--भक्ति कालीन गेय काव्य मे संगीत डॉ, अरविन्द कुमार
5. भैरवी अंक सात-पुष्टिमार्गीय भक्ति संगीत अंकित पारीख

आधुनिक विश्वसन्दर्भ में राधा-कृष्ण प्रेम

डॉ. अभिषेक कुमार त्रिपाठी 'मण्डलीक'

प्राचार्य

एस.जी.एस. कालेज, इलाहाबाद

निखिल ब्रह्माण्ड में निरादिकाल से ही स्नेहाभिषिक्तिगत दृष्टि समवलोकित की जाती रही है। प्रायेण निःशेष प्राणियों तथा उन्नत योनियों में भी स्नेहाभिवर्षण परिलक्षित होता रहा है। चतुर्दश भुवनों में सर्वदा से ही यह सेवित रहा है। देवभूमि भारतवर्ष में इसका रूप अत्यन्त विलक्षण रहा है जिसका अनुकरण विविध देशों द्वारा समय-समय पर किया जाता रहा है। भारत में इसके तीन रूप पुरातन से ही देखे जाते रहे हैं-

(1) भक्तिगत प्रेम जो ईश्वरादि दैवी शक्तियों के साथ प्रायः किया जाता रहा है।

(2) वात्सल्यगत प्रेम जो प्रायेण पुत्रादि के साथ किया जाता है।

(3) रतिगत प्रेम जो प्रायः नायक-नायिका, प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी आदि के साथ किया जाता है।

प्रकृत रतिविषयक प्रेम का वैश्विक सन्दर्भ भारतवर्ष में आमूलतः परिलक्षित होता है। सामान्य जन से लेकर अवतारी व्यक्तियों में भी प्रकृतविध प्रेम का प्रस्फुरण अवलोकित किया जाता है। प्रत्येक युग में यह प्रेमगत रूप सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्थितियों का भारतीय शिखरी रहा है। द्वापर युग में विष्णुदेव के अवतारी पुरुष श्रीकृष्ण का निर्निन्ध विलक्षण प्रेम राधा के साथ दिखाई पड़ता है जिसमें हृदगत भावों का समुद्रेक अवलोकित होता है। राधा और श्री कृष्ण का प्रेम एक बाह्य प्रेम या शारीरिक प्रेम नहीं रहा है, अपितु यह प्रणय आध्यात्मिकता से आपृक्त रहा है। कृष्ण को ब्रह्म रूप और राधा को जीवात्म रूप मे स्वीकार करते हुए उनके प्रेम को तद्वत कहा गया है। कृष्ण और राधा का मिलन ब्रह्म और जीव का मिलन है। जीवात्मा परमात्मा से मिलन के अनन्तर परमाद अर्थात् आत्यन्तिक सुख को प्राप्त करता है। भारतीय शास्त्र परम्परा मोक्ष को चरम लक्ष्य की स्वीकर्त्री रही है जिसे ब्रह्म प्राप्ति के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय पत्नियाँ पति में परमात्मा का दर्शन अनुभव करती हैं और अलौकिक सुख का अनुभव करती हैं। चन्द्रमा के दिन भगवान शिव की उपासना करते हुए उनमें अपने पति का दर्शन करती हैं।

अलौकिक का लौकिक सादृश्य साहित्यगत कवियों की लेखनी का वैशिष्ट्य रहा है। गीतगोविन्दकार जयदेव ने जीवात्मा-परमात्मा रूप राधा-कृष्ण के प्रेम से परिप्लुत एक जीवन्त निदर्शन व्यक्त किया है-

त्वमसि मम जीवनं त्वमसि मम भूषणं
त्वमसि मम भवजलधिरत्नं
भवतु भवतीह मयि सतत मनुरोधिनी।
तत्र मम हृदयमतियत्नम्।

यह कृष्ण का राधा के प्रति अद्वतीय प्रेमवाक्य है। आज जैसा क्षणिक कथनरूप शब्दाडम्बर भर नहीं है क्योंकि प्रकृत का निर्वहन नायक द्वारा

यावज्जीवन किया गया है। तुम मेरा जीवन हो, भूषण जो, संसारसागर का रत्न हो, मेरा प्राण हो आदि शब्दवाक्यों द्वारा कृष्ण का अलोक प्रेम राधा के प्रति प्रदर्शित किया गया है।

भारतीय शास्त्र पति की उच्चता के साथ ही पत्नी के सम्मान को भी आवश्यक मानता है। उनका समादर करना पति और कुटुम्बियों का कर्त्तव्य है। वे कल्याण-कारिणी हैं। सत्य ही कहा गया है-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

राधाकृष्ण-प्रेम से सन्दर्भित एक श्लोक द्रष्टव्य है जिसमें कृष्ण के प्रति राधा की व्याकुलता से व्यापृत प्रेम की अप्रतिम व्यञ्जना हो रही है-

गोवर्धनोऽयं यमुनानदीयं
वृन्दावनं चारुकदम्बवृक्षाः।
त्वया विना कृष्ण तुदन्ति चित्तं
न केवलं मेऽपितु सर्वनृणाम्।।
(राधाचरितम्, हारिनारायण दीक्षित, 4/8)

राधा कह रही है कि यह विशाल और चित को उत्फुल्ल करने वाला गोवर्धन पर्वत विद्यमान है, गम्भीर जलवाली यमुना नदी वर्त्तमान है, अह्लादक वृन्दावन अवस्थित है, सुन्दर कदम्ब के वृक्ष विराजमान हैं, किन्तु हे कृष्ण ! तुम्हारे बिना ये सभी चारुतायुक्त होते हुए भी मेरे चित्त को कष्टित ही कर रहे हैं। न केवल मेरे ही अपितु सभी मनुष्यों के चित्त इनसे दुःखित हो रहे हैं। व्यङ्ग्यार्थ कि पूर्व में इनसे कृष्ण का संयोग अतिशयित्व को प्राप्त था, अस्तु तद्व्यतिरिक्तता आज कष्टोत्पादिका हो गई है। हृदयस्पर्शितान्वित ये वाक्य कृष्ण के प्रति हृदगत भावों के व्यञ्जक हैं न कि शरीरानन्दविधायी सामान्य प्रेम के। एक अन्य सन्दर्भित पद्य भी अवलोकनीय है–

कैशोरकेलीरनुचिन्त्यकार्ष्णीः
तास्ता विशेषेण च रासलीलाः।
निजां दशां साम्प्रतिकीं च दृष्ट्वा
चिराय राधा विकलेन्द्रियाऽभूत।।
(राधाचरितम्, स्मृतिसर्ग, 55)

कृष्ण की किशोरक्रीड़ा, उनकी रासलीला और अपनी वर्तमान स्थिति को देखकर राधा चिकाल तक व्याकुल इन्द्रियों वाली हो गई। चूंकि राधा का कृष्ण के प्रति हृद्गत प्रेम है, इसलिए निरनुकूल स्थितियों में वह विकलेन्द्रिय हो गई। उक्त दृश्यों के अनुचिन्तन से, संयोगातिरिक्त वियोग से मानस पीड़ा का होना हृदयस्पन्दन पर ही निर्भर है, वास्तविक अन्तःस्थलीय प्रेम से ही सम्भव है, आडम्बरिक शारीरिक प्रेम से नहीं।

इसी प्रकार विविध भारतीय ग्रन्थों में राधा कृष्ण प्रेम का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है जो निखिल विश्व के लिए भी अत्युपादेय है। ब्रह्माण्ड पुराण में राधा और कृष्ण को एकीकृत रूप में अवगाहित करते हुए भक्ति की गई है। इसमें राधा को कृष्णात्मिका (जिसकी आत्मा में कृष्ण हों) और कृष्ण को राधात्मक (जिसकी आत्मा में राधा हो) कहकर गम्भीर आन्तरिक प्रेम की व्यञ्जना की गई है-

राधाकृष्णत्मिका नित्यं
कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा
राधैवाराध्यते मया।।
(ब्रह्माण्डपुराण, पृ0.210)

प्राचीनकाल में प्रेम की यह अवस्था सम्पूर्ण समाज को एक विशिष्ट सूत्र में आबद्ध करती थी। राधाकृष्ण प्रेम की स्थिति सम्पूर्ण विश्व के प्रेमियों को एक अद्भुत मानस प्रेम की ओर अग्रसारित करने हेतु पर्याप्त थी जिससे सामाजिक ऐक्य का भाव बना रहे।

वर्तमान में विशेषेण वैश्विक पटल पर सूक्ष्म समीक्षण करने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रेम की उक्त परिभाषा परिवर्त्तित हो चुकी है। सैकड़ों वर्षों से कुछ लोगों में यह देखा जा रहा है कि उनके अनुसार प्रेम एक शारीरिक सन्तुष्टि का नाम है। अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों में पति और पत्नी सम्पूर्ण जीवन प्रेम-निर्वाह नहीं करते। पत्नियों के

जीवन में अनेक पति और पतियों के जीवन में भी अनेक पत्नियाँ आती जाती रहती हैं। तदनुसार शारीरिक सन्तुष्टि ही प्रेम का मुख्य प्रयोजक बन जाता है। भारत में विवाह (प्रेम) एक संस्कार माना जाता है और सम्पूर्ण जीवन उसका निर्वाह किया जाता है, जबकि अन्यान्य देशों में इसे एक समझौता कहते हैं और शारीरिक-मानसिक सन्तुष्टि पर्यन्त ही इसका निर्वाह करते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह वैदेशिक प्रेम तो बाह्य रूपात्मक है और हृद्गत भावों का सार्वकालिक संस्पर्शी कम तथा इन्द्रियगत सन्तुष्टियों का संस्पर्शी अधिक है। यही कारण है कि आज भी भारतीयों जैसा प्रेम विश्व स्तर पर कुछ ही देशों में हो रहा है। प्रेमी-प्रेमिका और पति-पत्नी के मध्य गुरुतर आन्तरिक रतिभाव न्यून हो रहा है और क्षणिक सुखानुभव हेतु वाचिक प्रेम का आडम्बर किया जा रहा है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राधा-कृष्ण प्रेम आधुनिक विश्व-समुदाय के लिए एक विशिष्ट प्रेरणा स्रोत है। आडम्बर तथा धोखा देने की स्थिति से सर्वथा व्यक्तिरिक्त रहने वाला प्रकृत प्रेम सर्वसमाज को एक सशक्त सूत्र में आबद्ध करता है। आत्मपरमात्म भाव से भावित पति-पत्नी प्रेम के विशिष्ट समवलम्बन द्वारा एक सुदृढ़ समाज के सर्जक हो सकते हैं। अतएव सम्पूर्ण विश्व के लिए राधाकृष्ण प्रेम का सन्दर्भ उपादेय हो सकता है जो इस शोध पत्र का मन्तव्य है।

राधाकृष्ण-प्रेम के वैष्विक निहितार्थ

डॉ. सन्तोष कुमार मिश्र

श्री लाल बहादुर शास्त्री इ.का., चायल, कौशाम्बी

जिस प्रकार एक कलाकार अपनी अनुभूति और कल्पना से अपने ही गुणों को साकार करता है, उसी प्रकार जगत्स्रष्टा जीव-सर्जना में स्वगुणों की ही स्थापना करता है। इन गुणों में प्रेम-तत्व का प्राधान्य है। सब कुछ प्रेम में प्रतिष्ठित है। यह विभु, शाश्वत दीप्त निरकाङ्क्ष आह्लादस्वरूप, परमार्थसाधन व जनकल्याण का हेतु है। परमात्मा जीवों में विशुद्ध प्रेम का वितरण करता है, किन्तु संसार-प्रभाव से उसमें विकार आ जाता है। अतः हम वास्तविक प्रेम के बिना जन्म-जन्मान्तर तक पुनः उसके सानिध्य को प्राप्त नहीं कर पाते। वह बारम्बार अवतार लेकर प्रेम के आदर्ष को हमारे सम्मुख रखता है। प्रभु के इस निःस्वार्थ प्रेम को तत्वतः जानकर मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।[1]

कृष्णावतार में यह प्रेम सर्वाधिक मुखर है। यह प्रेम मातृ-पितृ-गुरु-सखा-गो-वन आदि जड़ चेतन सभी जीवों, पदार्थों में वर्तमान है। गोपियों के साथ की गयी कृष्ण की लीलाओं[2] में हृदयस्थ भावों का सौन्दर्य-स्फुरण अधिक रोचक है, मुग्ध कर देने वाला है। गोपियों में राधा का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वह प्रेम की प्रतिमूर्ति, सौन्दर्यशीला, चतुर, परमानंदस्वरूपिणी वृन्दावनविनोदिनी, कृष्णप्रिया है। कृष्ण और राधा एक दूसरे से सर्वथा अपृथक्‌ हैं, पूरक हैं, कृष्ण राधा हैं तो राधा कृष्ण। श्रीभगवान् ने स्वयं कहा है-

'यथा त्वं च तथाऽहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति।।
यथा पृथिव्यां गन्धष्च तथाऽहं त्वयि संततम्।'[3]

अर्थात् जो तुम हो, वहीं मैं हूँ। हम दोनों में किंचित-भी भेद नहीं। जैसे दूध में सफेदी, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथ्वी में गन्ध रहती है, उसी प्रकार मैं सदा तुममें रहता हूँ, राधा श्रीप्रभु की आत्मा हैं। प्रभु सदा उनमें रमण करते है। यह राधा शब्द की व्युत्पत्ति से भी स्पष्ट है। राधा शब्द राधा (राध् साध् संसिद्धौ) धातु से निश्पन्न है। जिसका अर्थ है-संसिद्धि अथवा आराधना।

अतः राधा का अर्थ हुआ आराधना करने वाली या जिसकी आराधना की जाय। यह राधा और कृष्ण के प्रेम में स्पष्ट देखा जा सकता है। उनके प्राण सदा एक दूसरे में निवास करते हैं। वे तन-मन से एकाकार हैं, उनको अलग करके नहीं देखा जा सकता। कतिपय विद्वान् श्रीराधा रानी को श्रीभगवान् के प्रेम-विग्रह का प्राकट्य मानते हैं। श्रीमद्‌भागवत पुराण में राधा का नामोल्लेख न होना राधाकृष्ण की आत्म-परमात्म भाव की पुष्टि करता है। इसी प्रकार गीतगोविन्द में राधा कृष्ण प्रेम को अध्यात्म से जोड़ा गया है। जयदेव की राधा पूर्णयौवना है। पूर्णयौवना का आषय परमात्मा के रहस्य को समझने वाली है। डॉ. प्रेम शंकर द्विवेदी लिखते हैं-"गीत गोविन्द में प्रेम मार्ग को भागवत-उपलब्धि का मार्ग बतलाया

गया है। कृष्ण-तत्व की प्राप्ति के लिये राधा की व्याकुलता को आत्मा की प्रबल आकंक्षा का रूप दिया गया है।''[4]

जो भी हो राधा और कृष्ण का प्रेम निःस्वार्थ है, अकाम्य है। उनमें परस्पर मिलन की प्रबल कामना है। वे एक दूसरे के सौंदर्य से भूषित होते हैं। एक दूसरे के रूप-रस-रंग- राग-गंध में पगे हैं -

'माधविका परिमलललिते
नवमालिकयातिसुगन्धौ।
मुनिमनसामपि मोहन कारिणि
तरुणाकारणबन्धौ।।'[5]

वस्तुतः प्रेम में द्वैत नहीं होता। स्वार्थ का विरह देह की तृप्तावस्था है। अपने शरीर पर प्रिय का सर्वाधिकार, बदले में किसी चाह का अभाव, प्रियतम पर गर्व, उसके मधुर वचन को सुनने, दर्षन की उत्कट इच्छा, उसके उत्कर्ष-पराभव में सुखी, दुःखी होना एक अच्छे प्रेमी का लक्षण है। राधिका की कृष्ण के प्रति प्रीति ऐसी ही है। श्रीकृष्ण जो कुछ भी चाहते हैं, वह राधा को भी प्रिय हो जाता है। वे कृष्ण की प्रषंसा, आदर, पूजा, विजय और यष को सुनने के लिये सदैव उत्कण्ठित रहती हैं:-

'यद्-यत्कामयते कृष्णस्
तत्तदेव मम प्रियम्।
पयोधेः कामना - भिन्ना
तद्-वीचीच्छा कथं भवेत्।।
प्रषंसामादरं पूजां
कृष्णस्य विजयं यषः।
उत्कण्ठेते सदा श्रोतुं
कर्णावितौ च मामकौ।।'[6]

इसी प्रकार कृष्ण भी राधा से अनन्य प्रेम करते हैं उनके लिये राधा चित की चेतना हैं, संसार-रक्षा के लिए प्रेरणा हैं, समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली साधना हैं तथा सब प्रकार से साध्या हैं-

'त्वमेव राधे! मम चित्तचेतना
त्वं प्रेरणा मे जगतां सुरक्षणे।
त्वं साधना मेऽखिल सिद्धिदायिनी
त्वमेव साध्या च ममासि सर्वदा।।'[7]

वियुक्तावस्था में प्रेमीजन के प्रेम की पहचान की जा सकती है। तड़प, विह्वलता, खिन्नता, कार्यो में अनुत्साह, उद्विग्नता आदि प्रियतम के प्रति निर्विकार प्रेम को प्रकट करते हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर राधा के लिये सबकुछ सारहीन, असह्य हो जाता है। यमुना नदी, कदम्ब के वृक्ष, वृन्दावन, तुलसीवन आदि रमणीय प्रदेष उन्हें व्याकुल कर देते हैं-

'गोवर्धनोऽयं यमुनानदीयं
वृन्दावनं चारु कदम्बवृक्षाः।
त्वया विना कृष्ण!तुदन्ति चित्तं
न केवलं मेऽपितु सर्वन्नणाम्।।'[8]

वस्तुतः राधा और कृष्ण का यह वियोग भी केवल दिखावा है, बाह्य है। वे दोनों इस दषा में भी अन्तर्मन में रमते हैं। भारतीय भक्ति परम्परा में राधा को आत्म-तत्व रूप में मान लेने पर भी प्रेम की पराकाष्ठा (अनन्य भक्ति) से ही परमात्म-भाव की सिद्धि हो सकती है, यह स्पष्ट है। श्रीमद्भागवत में लिखा है -

'न तपोभिर्न वेदैष्च न ज्ञानेनापि कर्मणा।
हरिः हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः।।'[9]

इस प्रकार हम देखते हैं कि राधा और कृशण का निष्छल, निर्विकार और शुभ्र प्रेम एकरस व एकतान है, वह अद्भुत है, दिव्य है, मधुर है। उनकी रति काम से सर्वथा भिन्न है। काम में स्वार्थ की प्रधानता होती है जबकि प्रेम में त्याग की। **''काम दूसरे के द्वारा अपनी तृप्ति चाहता है परन्तु प्रेम अपने द्वारा प्रेम-पात्र की तृप्ति चाहता है।''[10]**

आज इस विश्व में राधा और कृष्ण जैसे प्रेम की अवस्थिति नहीं दिखाई पड़ती बाह्य-आकर्षण, काम-पिपासा की तृप्ति, स्वच्छन्दता प्रेम का स्वरूप हो गया है। राधा का कृष्ण से विवाह हुआ था या नहीं, इस विवाद में न पड़कर उनके प्रेम भाव को दाम्पत्य प्रेम में ही उतार कर देखना चाहिए। पश्चिम

के अधिकतर देशों में विवाह का कोई अभिप्राय ही नहीं रह गया है। यही कारण है कि वहाँ के पति-पत्नियों को प्रायः चिन्ता, असन्तोष, कुण्ठा, अवसाद का सामना करना पड़ता है। अलगाव तो आम बात है। पाश्चात्य देशों के प्रभाव से भारत में भी इस तरह की समस्या उत्पन्न हो गयी है। यहाँ भी पति पत्नी में परस्पर प्रेम, विश्वास, सम्मान, सहयोग, क्षमा, आदि भाव की न्यूनता देखी जा रही है, जबकि पति पत्नी में शरीर और मन की एकरूपता ही वास्तविक दाम्पत्य है।

वस्तुतः सभी जीवों में परमात्मा अपने प्रेमांश रुप में निहित है। श्रीराधा और श्रीकृष्ण के प्रेम द्वारा प्रेम तत्व को प्रदर्शित करना ही उसका प्रयोजन है। अतः प्रेम को दाम्पत्य जीवन क्या, समस्त प्राणियों में उतार कर देखने पर उस परमतत्व से एकरसता प्राप्त की जा सकती है -

'मुझमें समा जा इस तरह तन-प्राण का जो ठौर है,

जिसमें न कोई यह कहे तू और है मैं और हूँ।'

सन्दर्भ

1. 'सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।'
   - श्रीमद्भगवत गीता - 6.29
2. सामान्यतः 'लीला' शब्द केलि, विलास तथा शृंगार-भाव चेष्टा के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु भगवान् के वे समस्त कर्म जो अवतार लेकर किये जाते हैं, लीला कहे जाते हैं।
3. 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' (कृष्ण-खण्ड)-14.58-59
4. 'गीतगोविन्दः साहित्यिक एवं कलागत अनुषीलन'-प्रेम शंकर द्विवेदी, कला प्रकाषन, वाराणसी, 1988, भूमिका भाग, पृष्ठ-12
5. 'गीतगोविन्द'-1.3.7-जयदेव, संस्कृत परिषद् उस्मानिया विष्वविद्यालय, हैदराबाद, 2003, पृष्ठ-73
6. 'राधाचरितम्- संवाद सर्ग-188-189, हरिनारायण दीक्षित, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली 2005, पृष्ठ-169
7. वही, प्रियदर्शन सर्ग-67, पृष्ठ -225
8. वही, चिन्तन सर्ग-4, पृष्ठ-3
9. श्रीमद्भागवत - माहात्म्य भाग-18वाँ श्लोक
10. 'कल्याण- भगवल्लीला अङ्क, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी-फरवरी-1998, पृष्ठ-97

अन्तर्राष्ट्रीय परिसंवाद वृन्दावन 'वैश्विक संदर्भ में राधा और कृष्ण का प्रेम' 28-29 फरवरी 2016

डा. स्मिता पाण्डेय

पी.एच.डी., संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

संगीत परंपरा में राधा और कृष्ण

भारत वर्ष में सभ्यता, संस्कृति व संगीत तीनों ही सर्वश्रेष्ठ व सर्वप्रिय कारक है। भारत का सम्पूर्ण इतिहास इन्हीं तीनों कारकों के आशीष से भविष्य की सींचता है। भारत में सभ्यता, संस्कृति व संगीत जीवन का दर्शन ही नहीं अपितु स्वयं को जीवित व ऊर्जावान रखने की प्रक्रिया भी है।

भारतीय संगीत की प्राण संपोषिका भक्ति धारा का रसास्वादन ही अनूठा है। संगीत को माँ सरस्वती के वरदान स्वरूप प्राप्त मधुरता, सरसता, कोमता और भावसत्ता की अनुरागमयी छटा भक्तिकाल के कारण हुई और उस भक्तिकाल का हृदय प्रदेश है, ब्रज काव्य की मनोरम राधा कृष्ण भक्ति धारा जिसके अन्तर्गत लोकरंजक राधा-कृष्ण की माधुर्यपूर्ण क्रीड़ाओं के भव्य चित्रांकन ने जनमानस को उद्वेलित कर जीवन के विविध क्षेत्रों में अपनी अमिट छाप लगा दी।

संगीत की परंपरा में राधा-कृष्ण के विविध रूपों उनके काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। कृष्ण काव्य मानव जीवन का भावयोग है, जिससे ज्ञान योग और कर्म योग सम्पर्कित होकर दिव्य योग बन जाते हैं। कृष्ण भक्ति काव्य में निहित दार्शनिक विचारधारा, अवतारवाद, भक्ति तत्व, राधा की उपस्थापना, ब्रज प्रदेश की संस्कृति और कला उसे मानव की चिरन्तन अनुभूति का सजीव लोक बना देती है।

संगीत के क्षेत्र में भक्तिकालीन कवियों के योगदान का ऐतिहासिक महत्व है। उन्होने न केवल पारम्परिक संगीत धाराओं को अपनें पदों में प्रवाहित होने दिया, बल्कि रागों, तालों, वाद्यों, नृत्य प्रकारों और गायन शैलियों को अपने पदों के माध्यम से प्रस्तुत किया कि अद्यतन उत्तर भारतीय संगीत उनके प्रभावों से मुक्त नहीं है। उन्होनें तत्कालीन संगीत प्रवृत्तियों को भी अपने संगीत में स्थापित किया।

चौदहवीं शताब्दी के लगभग राधा-कृष्ण की प्रतिष्ठा सभी वैष्णव सम्प्रदायों में परम शक्ति के रूप में हो चुकी थी। यह वह समय था जब राधा कृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं रह गये थे और 16वीं शताब्दी तक तो ये दोनो शक्तियां भक्ति सम्प्रदायों में अपना-अपना विशेष स्थान प्राप्त कर चुकी थी। वैष्णव सम्प्रदायों ने राधा कृष्ण को ही उपास्य बनाया। यह अवश्य है कि किसी सम्प्रदाय में कृष्ण की प्रधानता है तो किसी सम्प्रदाय में श्री राधा की या किसी अन्य सम्प्रदाय में कृष्ण की युगलोपासना की गई है।

सभी वैष्णव सम्प्रदायों में कृष्ण की विभिन्न रूपों में उपासना की गई है। मध्ययुग से पूर्व ही कृष्णोपासना अपने विभिन्न रूपों में समस्त भारत में

फैल चुकी थी-अतः कृष्णोपासना के विभिन्न रूप इस प्रकार माने जाते है-

1. समस्त अवतारों के साथ श्रीकृष्ण की सामान्य भाव से उपासना।
2. अवतारों को सामान्यतः मानते हुए श्री कृष्ण की विशिष्ट रूप से शांत भाव की उपासना।
3. श्री कृष्ण को परब्रह्म मानकर उनकी दास्य भाव से उपासना।
4. श्री कृष्ण की बालरूप की वात्सल्य भाव से उपासना।
5. श्री कृष्ण को सखा मानकर सख्य भाव से उपासना।
6. श्री कृष्ण की रूकमणि, सत्यभामा, आदि महर्षियों के साथ द्वारिका लीलानुसार उनकी दास्य भाव से उपासना।
7. श्री कृष्ण को पति मानकर पत्नी भाव से उपासना।
8. श्री राधा कृष्ण की गोपी भाव से उपासना।
9. ब्रजभाव की उपासना करते हुए गोलोक या वृन्दावन बिहारी की भी उपासना।
10. सखी भाव की उपासना करते हुए राधा-कृष्ण को ब्रज का स्वीकार करना।

अर्थात् मध्यकाल में राधा-कृष्ण की उपासना, दास्य, सख्य, माधुर्य, वात्सल्य, दाम्पत्य, गोपी भाव से विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा संगीत के माध्यम से की गई।

राधा कृष्ण की प्रधानता वाले विभिन्न सम्प्रदाय निम्न हैं-वल्लभाचार्य जी का पुष्टि सम्प्रदाय, श्री हित हरिवंश जी से राधावल्लभ सम्प्रदाय, रामानन्द से रामावत सम्प्रदाय, महाराष्ट्र का वारकरी सम्प्रदाय में नामदेव ने विठोवा नाम से राधाकृष्ण की उपासना की ये सभी प्रमुख सम्प्रदाय कृष्ण भक्ति संप्रदायों के रूप में ब्रज की पावन भूमि में विकसित हो रहें थे जिनमें कृष्ण के साथ राधा के महत्व को भी विशेष रूप से स्वीकार किया जाता है।

चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचलित संप्रदाय "चैतन्य सम्प्रदाय" या "गौड़ीय सम्प्रदाय" कहलाता है। ब्रज मंडल में "राधा-कृष्ण" की भक्ति का सर्वाधिक प्रचार चैतन्य महाप्रभु ने किया था। इसके अतिरिक्त राधा-कृष्ण की युगल उपासना के दो अन्य प्रमुख संप्रदाय हरिदासी या सखी सम्प्रदाय और गोस्वामी हित हरिवंश द्वारा प्रचलित राधा वल्लभ संप्रदाय भी आलोच्य काल में विकसित हो रहे थे। राधा वल्लभी सम्प्रदाय के संबंध में डा. विजयेन्द्र स्नातक का मत है "इस सम्प्रदाय में न तो दार्शनिक जटिलता है और न भक्ति सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन ही। हृदय की रस स्निग्ध भावनाओं की सहज स्वीकृति और सरल अभिव्यक्ति ही राधा वल्लभीम भक्ति सिद्धान्त की नींव और रसोपासना का आधार है।" (डॉद्र विजयेन्द्व स्नातक, राधा वल्लभ सम्प्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य, पृ. 126)

वल्लभ सम्प्रदाय-इस संप्रदाय की स्थापना महाप्रभु वल्लभचार्य जी ने कि और इन्होने कृष्ण के बालरूप की उपासना की। इनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की जिनमें सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, और कृष्णदास, महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य एवं नंददास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी और चतुर्भजदास ये चारों विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इन कवियों ने पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर लोकरंजक भगवान श्रीकृष्ण के माधुर्यस्वरूप का प्रमुख रूप से चित्रण किया। इन भक्त कवियों का विशाल पद साहित्य आज भी वल्लभ संप्रदाय के कीर्तन संग्रहों के रूप में, कांकरौली विधा विभाग में और नाथ द्वारा पुस्तकालय में सरंक्षित है।

निम्बार्क सम्प्रदाय-इस सम्प्रदाय के प्रमुख कवि श्री भट्ट जी आलोच्य काल की परिधि में आते हैं। इन्होंने अपनें काव्य में राधा कृष्ण की युगल लीलाओं के मनोरम चित्र प्रस्तुत कर प्रेम की मधुर अभिव्यंजना की है।

चैतन्य सम्प्रदाय-इस सम्प्रदाय में भक्ति-काल के अर्न्तगत श्री राम राय जी, गदाधर भट्ट, सूरदास मदन मोहन, और चन्द्र गोपाल का नाम उल्लेखनीय है। इन कवियों ने राधा-कृष्ण की उपासना में राधा को महत्ता दी है। राधा-कृष्ण की श्रंगार लीलाएं ही इनका प्रमुख संगीत विषय है।

राधा वल्लभ सम्प्रदाय-इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोस्वामी हित हरिवंश स्वयं ब्रज भाषा कृष्ण साहित्य के उत्कृष्ट कवि हैं। इसके अतिरिक्त श्री दामोदरदास, श्री हरिराम व्यास, श्री चतुर्भुजदास, ध्रुवदास और नेह नागरी दास आदि कवियों ने अपने काव्य से इस संप्रदाय की गौरववृद्धि की है। इन कवियों का प्रतिपाद्य विषय माधुर्य भक्ति, राधा-कृष्ण की वृंदावन की र्निकुंज लीलाओं का चित्रण करना रहा है।

हरिदासी सम्प्रदाय-इस सम्प्रदाय को सखी सम्प्रदाय भी कहा जाता है। इसके कवि स्वामी हरिदास जी है जो एक महान संत, रसिक भक्त, संगीतज्ञ, शिरोमणि, और सुविख्यात धर्माचार्य थे। इनके अतिरिक्त भक्तिकाल में वीठल विपुल, बिहारिनदास इस संप्रदाय के उल्लेखनीय कवि है। इन कवियों ने नित्य निकुंज बिहारी, नित्य किशोरी श्यामा की प्रेम क्रीड़ाओं का चित्रण किया है। इस प्रेम निरूपण में इन भक्त कवियों ने सखियों के महत्व को सर्वोपरि माना है।

भक्तिकाल में कृष्ण की माधुर्य भक्ति का जो स्त्रोत उमड़ रहा था, वह धर्म संप्रदाय जैसी संकुचित सीमाओं को लांघ गया और रहीम, तुलसी, मियां रसखान एवं मीरा आदि भक्त भी इसी स्त्रोत में बह चलें। इन कवियों ने सम्प्रदाय मुक्त होकर जिस अप्रितम कृष्ण भक्ति काव्य का सृजन किया वह भारतीय संगीत की अमूल्य निधि है।

भक्त कवियों द्वारा रचित राधा-कृष्ण के पद निम्नवत् हैं-

कब हौं देखि हौं भरि नैननु।
सुंदर स्याम मनोहर इह अंग-अंग सकल सुख दैननु।।
वृन्दावन विहार दिन-दिन प्रति गोपवृन्द संग लैननु।
हसि-हसि पतौश्रा पीवनु बाँटी-बाँटी पय फैवनु।
कुभंनदास किते दिन बीते किये रैनि सुख सैननु।
अब गिरिधर बिनु निसि अरु बासर मन न रहत क्यों-हू चैननु।।

राजित राधे अलक अली री।
मुक्ता माँग तिलक पन्नारी, नासि सुत समेत मधु लेन चली री।

X X X X X X

सूरदास प्रभु को सिख दीन्हौ, नख-सिख राधै सुखन फली री।।

कुंभनदास जी का काव्य कृष्ण की माधुर्य भक्ति से अनुप्राणित है जिसमे कृष्ण के बाल स्वरूप एवं प्रमुखतः राधा कृष्ण के युगल रूप की अत्यन्त मनोरम अभिव्यक्ति हुई है।

इन संप्रदायों में विभिन्न ग्रन्थों की भी रचना की गई जिनमें राधा-कृष्ण संबंधी श्लोकों का वर्णन है। राधा वल्लभ संप्रदाय में आनन्द स्वरूप कृष्ण की रस शक्ति राधा को विशेष महत्व दिया गया है उसे कृष्ण की आराध्या मानकर राधा चरणों की भक्ति को प्रमुखता दी गई है। इस संप्रदाय के ग्रंथ **राधा सुधानिधि, हित चौरासी,** इत्यादि है। इसी सम्प्रदाय के श्री हरिराम व्यास द्वारा रचित पदों में राधा कृष्ण, वृन्दावन, निकुंज लीला, राधा वल्लभ जुगल किशोर उपासना, माधुर्य भक्ति का वर्णन है।

संगीत में इन कवियों के राधा-कृष्ण पदों का गायन अपना प्रमुख स्थान रखता है। रागात्मक तत्व का जितना सन्निवेश कृष्ण की माधुर्य भक्ति में देखने को मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं। **जयदेव कृत गीतगोविन्द, सातवाहन हाल रचित गाहा सतसई और भास के उरूभंग तथा दूत वाक्य नाटकों में कृष्ण चरित्र निरूपण हुआ है।**

भक्त कवियों ने कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं के जो स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चित्र निर्मित किये हैं उनमें उनकी उत्कृष्ट वात्सल्य भक्ति लक्षित होती है-पालने में झूलते बालकृष्ण माता को सन्मुख देखकर प्रकृतिवश गोद की लालसा में उनकी ओर भुजा पसार देते हैं। इस शिशु क्रीडा को सूर ने तथ्यपरक रूप में व्यक्त किया है।

पलना स्याम झुलावती जननी
अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुलित होती नंद घरनी,
उमंगी उमंगी प्रभु भुजा पसारत, हरषि जसोमति अंकम भरनि।।

कृष्ण का राधा वल्लभ एवं गोपी वल्लभ रसिक शिरोमणि नटनागर स्वरूप को प्रायः सभी कृष्ण भक्ति संप्रदायों में सर्वमान्य है।

खेलत हरि निकसे ब्रज होरी

X X X X X X

औचक ही तहं देखि राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी

X X X X X X

सूर स्याम देखत ही रीझै, नैन नैन मिली परी ठगौरी।

भारतीय धर्म साधना में राधा के आविर्भाव ने मध्यकालीन संगीत को पूर्णतया प्रभावित किया है। वैष्णव सम्प्रदाय में कृष्ण तो परम ब्रह्म रूप में स्वीकार्य हैं, परन्तु माधुर्य लीलाओं की महत्ता प्रतिष्ठित करने में उनकी आह्नादिनी शक्ति श्री राधा को भी कृष्ण भक्त कवियों ने अपने सम्प्रदायी सिद्धान्तानुसार विभिन्न रूपों में चित्रित किया है जो भक्ति संगीत का गौरव है।

ब्रज संगीत में राधा कवियों द्वारा नट नागर कृष्ण की प्रेयसी, स्वकीया एवं परकीया नायिका के विभिन्न रूपों में चित्रित की गई है। ब्रज संगीत राधा-कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं का अक्षयकोष है-

"खंजन मीन मृगज मद मेटत,
कहा कहौ नैननि की बातैं।
सुनि सुंदरी कहां लौ सिखई,
मोहन बसीकरण की घातै"।

(गो. हित हरिवंश, हित चौरासी पद-73)

ब्रज के देवालयों में कालान्तर से पल्लवित रासलीला का महत्वपूर्ण स्थान है। श्री राधाकृष्ण की रसात्मक लीलाओं का चित्रण संगीत के माध्यम से किया जाता है। रासलीला चार विधायक तत्वों पर आधारित है-श्री कृष्ण, श्री राधा, सखियाँ तथा वृन्दावन धाम। इन चारों रूपों में एक ही तत्व का प्रकाश हैं, वह है-'परम तत्व'। श्री राधा श्री कृष्ण की आहलादिनी शक्ति है और श्री कृष्ण श्री राधा के आहलादक स्वरूप हैं। संगीत की गायन शैलियों में धमार में राधा कृष्ण के होरी पदों का गायन किया जाता है। उदाहरण स्वरुप कृष्णदास द्वारा 'राग केदार' में पद-

"खेलत मोहन राधा होरी।
इत ही गोपिका जुर जुर आई
उत ग्वाल मंडली चांचर जोरी।
पिय प्यारी पर प्यारी पिय पर
अबीर गुलाल की झोरी।।
"कृष्णदास" बलि जाय इन पर
श्यामा श्याम बनी है जोरी"।।

लोक होरी के पद- (राग गौरी)
हो हो हो हो हो हो होरी।

खेलत आत सुख प्रीति प्रगट भई, बीच बीच बांसुरि धनि थोरी।। हो.

गावत दे दे गारि परस्पर उत हरि, इत वृषभानु किशोरी।

मृगमद साख जवादि कुमकुमा, केसरी मिलै मिले मथि घोरी।। हो.

कृष्ण की लीलाओं का वर्णन कृष्ण-भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण के अलौकिक प्रेम का वर्णन किया है। श्रृंगार रस की प्रधानता कृष्ण काव्य की विशेषता है। रागात्मक प्रधानता के कारण माधुर्य ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का प्राणतत्व हो गया है। कृष्ण भक्ति काव्य की विशिष्ट संगीत परता गुण के कारण ही यह काव्य रामकाव्य की अपेक्षा जनमानस को अधिक आकर्षित कर सका जिसने समकालीन एवं परवर्ती भारतीय संगीत कला को प्रेरित एवं प्रभावित किया है, तभी तो आज भारतीय संगीत कृष्ण भक्ति भावना से अनुप्राणित जान पड़ता है।

लोक रंजक कृष्ण भारतीय सांस्कृतिक एकता के केन्द्र बन गए और इसका आधार बनी ब्रज भूमि जो अपनी भावमयी भूमिका के कारण कृष्ण भक्ति, कृष्ण भक्तों और भावुक कवियों की प्रेरणा बन गई। कृष्ण के साथ ब्रजभूमि भी दिव्य हो गई। कृष्ण भक्ति की इस दिग्विजय ने सभी भाषाओं को अभिभूत कर लिया। फलतः जन-जन का मानस कृष्ण भक्ति से सरोबार हो उठा और वह ब्रज रज के माहात्म्य का गायक बन गया। इस ब्रज रज से लिप्त कृष्ण भक्ति

ने जातिपांति, निर्धन, धनवान, उच्च-नीच वर्ग की समस्त सीमाओं को मनोभूमि पर धवस्त कर दिया। ब्रज का संगीत राधा एवं कुंज बिहारी श्री कृष्ण की निकुंज लीलाओं से अनुप्राणित है। कृष्ण काव्य में राधा स्वकीया, गौरवशालिनी, मानिनी, आदर्श प्रेमिका एवं गंभीरता की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित की गई हैं। राधा के चरित्र ने भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों को प्रभावित किया है। ''आध्यात्मिकता की दृष्टि से कृष्ण परम ब्रहम का स्वरूप है राधा उनकी अनन्त शक्ति है।

भक्तिकालीन कृष्ण काव्य ने जीवन की जड़ता को यंत्रवत् करके उसे गतिशील बनाया और ऊँचा लक्ष्य बनाया। जीवन की असुन्दरता और नीरसता मिटाकर उसे सौन्दर्य एवं आनन्द से अनुप्राणित किया। कृष्ण काव्य में भक्ति-युग की सर्वोच्च जन भावना सुरक्षित है, वह धर्म तथा समाज के क्षेत्र में सर्वोत्तम लोकतन्त्रात्मक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। मध्यकाल के कृष्ण काव्य का अन्तप्रान्तीय महत्व है। मथुरा और वृन्दावन कृष्ण भक्ति के केन्द्र रहे हैं तथा यहाँ से ललित भाव सम्पन्न जो साहित्य मानवीय प्रवृत्तियों की सहायता के फलस्वरूप उदात्तीकरण की मंगल भावना तथा भक्ति के पुनीत तत्व को लेकर निर्मित किया गया उसका देशव्यापी प्रभाव अध्ययन की विशिष्ट अपेक्षा रखता है। भारतीय संगीत को ब्रज संस्कृति ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। फूल डोल, रास लीला एवं मुरली वादन तो भारतीय संगीत का अभिन्न अंग है जिसका कृष्ण काव्य में व्यापक स्तर पर प्रस्तुतीकरण हुआ है। प्रायः सभी कृष्ण भक्त श्रेष्ठ कीर्तनकार एवं गायक थे। इसीलिये उन्होनें अपने काव्य से भारतीय संगीत कला को अभूतपूर्ण समृध्दि प्रदान की। वर्तमान कोलाहल पूर्ण वातावरण में ब्रज प्रदेश की यह मधुर संस्कृति प्रेम और शांति का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक सिद्ध हो रही है।

प्रेमभक्ति का उद्दात्त रूप और सूर के राधा-कृष्ण

डॉ. रश्मि पुरियार

संगीत विभाग

सुन्दरवती महिला महाविद्यालय, भागलपुर

भक्ति शब्द 'भज्' सेवापाम् धातु से त्तिन् प्रत्यय लगाकर बनाया गया है जिसका अर्थ है भगवान् का सेवा-प्रकार। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में लिखा है, कि ईष्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति है। जिस परम प्रेम रूपा और अमृत स्वरूपा भक्ति को पाकर मनुष्य तृप्त हो जाता है, सिद्ध हो जाता है और अमर हो जाता है, जिस भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है और न किसी वस्तु में आसक्त होता है; विषय भोगों के प्रति उसका कोई उत्साह नहीं रहता और आत्मानन्द के साक्षात्कार से वह संसार के विषयों से निरपेक्ष होकर मस्त रहता है, वही भक्ति है। भक्ति की अनेक कोटियों में प्रेम भक्ति का सर्वोच्च स्थान है। नारद भक्ति सूत्र में प्रेम भक्ति का विषद विवेचन हुआ है। इस ग्रन्थ के चौरासी सूत्रों में भक्ति तत्व की व्याख्या भक्ति के अन्तराय, भक्ति के साधन, भक्ति की महिमा और भक्तों के महत्व को भली-भांति प्रकट किया गया है। इसलिए इस ग्रन्थ को प्रेम दर्षन भी कहते हैं। प्रेम स्वरूपा भक्ति में अनन्यता का भाव निहित रहता है। यह भक्ति कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों से ही श्रेष्ठ है। भागवत में श्री कृष्ण कहते हैं "योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप और त्याग मुझे इतना प्रसन्न नहीं कर सकते, जितना मुझे मेरी दृढ़ भक्ति प्रसन्न करती है। मेरी भक्ति चण्डालादि को भी पवित्र कर देती है।" गीता में भी श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं "हे अर्जुन! जैसा तुमने मुझे देखा है, वैसा वेद, तप, दान, यज्ञ, आदि से भी नहीं देखा जा सकता। हे अर्जुन अनन्य भक्ति के द्वारा ही मेरा इस प्रकार से देखा जाना, मुझे तत्व से जानना और मुझमें प्रवेष पाना सम्भव है। यही प्रेम भक्ति पराभक्ति कहलाती है और इसी को भूमानन्द कहते हैं। इसमें भक्त अपने प्रियतम भगवान के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, इसी को भागवत में अहैतुकी निर्गुण-भक्ति तथा गीता में ज्ञानी की भक्ति का नाम दिया गया है। इसमें भक्त की चित्तवृति और कर्म-गति का प्रवाह अविछिन्न रूप से भगवान की ओर बहता रहता है और उसकी समस्त क्रियाएँ कृष्णोन्मुख हो जाती हैं।

प्रेम भक्ति की सुरधारा में राधा-कृष्ण के प्रेम की महिमा अतुलनीय है। राधा-कृष्ण चरित एक अटूट प्रेम की व्याख्या है। राधा के कृष्ण का परिचय उस समय होता है जब वे भौंरा-चकडारी खेलने के लिए जाते हैं, अचानक ही समवयस्क बालिकाओं के साथ उन पर कृष्ण की निगाह पड़ जाती है। विषाल नेत्र, मस्तक पर रोली का टीका, पीठ पर लटकती वेणी, गोरे शरीर पर नील वर्ण की फरिया और वस्त्र, यह थी राधा की सज्जा।

श्याम की दृष्टि पड़ी, आंखों से आँखें मिली और ठगोड़ी पड़ गई, कृष्ण मुग्ध हो गये जैसे किसी ने जादू कर दिया हो। रसिक षिरोमणी कृष्ण ने भोली राधिका को बातों में ही भुला दिया और प्रतिदिन आकर मिलने का मार्ग बता दिया, यहां पर

गुप्त रीति का संकेत है, जिसका अर्थ पुरातन प्रीति किया गया है। राधा कृष्ण से मिलने के अनेक बहाने बनाने लगी और उस नागर के साथ नागरी बन गई।

''सूर श्याम नागर नागरि सों करत प्रेम की बातें''

प्रेम की उत्पत्ति में रूप लिप्सा और साहचर्य दोनों का योग है। प्रेम व्यापार का आरम्भ हास-परिहास और छेड़-छाड़ के साथ होकर बाल क्रीड़ा से यौवन काल तक का मार्ग तय कर अंतरंग रूप में देखा जाता है। यह मिलन प्रेम संगीत में रच बस जाता है। कहते हैं :- प्रेम संगीत में जीवन एक गहरी चलती धारा है जिसमें अवगाहन करनेवाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। यह प्रेम चित्रण राधा का प्रथम बाल सहचरी रूप कहा गया है। राधा का दूसरा रूप परकीया भाव से चित्रित हुआ है, परकीया रूप में नहीं, इस रूप में राधा का प्रेम गम्भीरता में चित्रित हुआ है। जैसे-जैसे प्रेम गम्भीर होता गया, वैसे-वैसे राधा में निपुणता भी आती गई। राधा का तीसरा रूप स्वकीया भाव का, जब राधा मानवती और गौरवषालिनी के रूप में चित्रित की गई है। परन्तु कृष्ण बहुनायक के रूप में ही देखे गये हैं। राधा के विषय में कृष्ण को प्रियतमा का रूप दिया गया है और दम्पति विहार का वर्णन करके कवि ने राधा के मान का विषद वर्णन किया है। वसंत कालीन फाग क्रीड़ा के वर्णन में भी राधा-कृष्ण को नव दम्पति का नाम दिया गया है। वसंत लीला ब्रज के सुख का चरमोत्कर्ष है। राधा का अंतिम चित्र वियोगिनी का है। इस रूप में राधा परमोच्च अवस्था में चित्रित की गई है। राधा का कृष्ण प्रेम अर्न्तमुख हो गया है। इस रूप में राधा गम्भीर प्रेम की एक दयनीय मूर्ति के रूप में दीख पड़ती है। कृष्ण के मथुरा गमन के समय गोपियों की आतुरता के साथ-साथ नन्द और यषोदा की भी व्याकुलता देखी गई है, परन्तु कवियों ने चित्रलिखी सी गोपियों के बीच में राधा को खोजने का प्रयत्न ही नहीं किया है। बाद में जब कवि को उनकी याद आई तो विरहिणी राधा गम्भीर सोच में मग्न, नीचा सिर किए नख से हरि का चित्र बनाती हुइ दिखी। इस प्रकार कवियों ने राधा को एक आदर्ष प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है।

राधा का चित्रण जयदेव, विद्यापति एवं चण्डीदास ने भी किया है। परन्तु उनका प्रेम वर्णन दूसरे प्रकार का है। जयदेव राधा-कृष्ण स्वरूप के उपासक थे अतएव उन्होंने साहित्य के सुरम्य मंदिर में युगल किषोर प्रतिमा की प्रतिष्ठा की है। राधिका को उन्होंने स्वकीया रूप दिया अथवा परकीया यह तो उनके ग्रन्थ से स्पष्ट भाषित नहीं होता, परन्तु इतना अवष्य है कि राधा के प्रेम की धारा गीत गोविन्द में इतनी तीव्रता के साथ बही है जिसमें लोक लाज, 'कुल-कानि' आदि का अवरोध विलीन हो गये हैं। इसी तरह चण्डीदास की राधा में प्रेम का आधिक्य है। उसका हृदय-सरोवर प्रेम रस से लबालब है, उसमें भावुकता की पराकाष्ठा है, मान करने की क्षमता नहीं, कृष्ण का व्यापक स्वरूप उसकी आँखों में समाया है। उसे हम प्रेम का अवतार कह सकते हैं। उनमें विलासिता की मात्रा इतनी अधिक नहीं जितनी भक्ति भावना की है। कृष्ण का साम्य प्रकृति देखकर वह व्याकुल हो जाती है। चण्डीदास की राधा और कृष्ण में अभेद है। कृष्ण के प्रेम के सामने संसार का अपवाद कुछ भी नहीं। उसमें आत्म समर्पण की पूरी भावना है।

बंधु कि आर बलिवे आमि।
मरने जीवने, जनमें-जनमें, प्राणनाथ हइओ तुमि।
तोमार चरने आमार पराने बांधिल प्रेमेर फांसी।
सव समर्पिया एक मन हइआ, निष्चय हरलाम दासी।

कृष्ण भी राधा में उतने ही अनुरक्त हैं। राधा ही उनका सर्वस्व है। कालिदास की ''सा सा सा सा जयति सकले कोऽयमैद्वतवादः'' वाली उक्ति उन पर सोलह आने चरितार्थ होती है। मान की कल्पना तो चण्डीदास की राधा में की ही नहीं जा सकतीं, यदि कभी वह मान का ढोंग रचाती भी है और कृष्ण लौट जाते हैं, तो वह पछताती हुई कहती हैं:-

"आपन सिर हम आपन होते काटीनू, काहे करिनू हेन मान।
श्याम सुनागर नटवरषेखर कहाँ सीख! करल पयान?"

इसी तरह विद्यापति की पदावली में भी परकीयां राधा का चित्रण हुआ है। इसमें अधिकांष पद राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं से सम्बन्धित है। कहते हैं 'चैतन्य महाप्रभु' विद्यापति के पदों को गाते-गाते इतने विभोर हो जाते थे कि मूर्च्छित हो जाते थे। इन सारे कवियों ने राधा का अलग-अलग चित्रण किया है, पर इन सबों में सूर की राधा के अंदर सारे कवियों की विशेषतएँ निहित पाई गई हैं। और उन सब के उपर स्वभाविकता और मनोवैज्ञानिकता के स्वर्णिम वर्ण से सूर ने अपनी राधा को ऐसा रूप दिया है कि उनसे पहले के सभी चित्र फीके पड़ गये हैं। उन्होंने कैषोर्य की संयत चपलता और यौवन के उद्याम भवसागर में डूबती हुई राधा का ही चित्रण नहीं किया अपितु अपने भोलेपन से सबके मन को हरनेवाली और सहन निर्बाध तरलता से श्याम को आकृष्ट करने वाली राधा का भी चित्रण किया है।

राधा-कृष्ण का प्रेम का वर्णन अत्यंत मनोरम एवं हृदयग्राही चित्रित किया गया है। दूसरी ओर इस प्रेम को अध्यात्म का पक्ष भी प्रदान किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में रास का भी वर्णन किया गया है। वृन्दावन के रास का विषद वर्णन भी अनेकों पुराणों में किया गया है। ब्रम्ह वैवर्त पुराण, विष्णु पुराण, हरिवंष आदि तो रास का वर्णन हुआ ही है, चैतन्य सम्प्रदाय के गोस्वामी ने भी उसका आध्यात्मिक रूप बड़े विस्तार से प्रतिपादित किया है। "उज्ज्वल नीलमणि" में कृष्ण विषयक श्रृगांर रस का बड़ा विस्तार है और मधुर अथवा भक्तिरस की श्रेष्ठता का तर्कपूर्ण प्रतिपादन हुआ है। जहाँ तक रास का प्रष्न है सूर की रासलीला 'रासपंचध्यायी' को आधार मानकर लिखी गई है किन्तु उसमें सूर की मौलिकता भी है और बंगीय प्रभाव भी। भागवत में राधा का उल्लेख नहीं है। बंगीय वैष्णव साखा में परकीया भाव को प्रधान्य दिया गया है जबकि वल्लभ- सम्प्रदाय वालों ने स्वकीया भाव को अपनाया है, किन्तु इस लीला पर बंगीय प्रभाव अवश्य मानना पड़ेगा। 'श्रीमद्भागवत' में तो स्वकीया-परकीया का भाव उपस्थित ही नहीं होता क्योंकि भागवतकार ने प्रारंभ से अंत तक रास में आध्यात्मिकता का निर्वाह किया है। श्रीकृष्ण को परम पुरूषोत्तम परमात्मा स्वीकार कर लेने पर स्वकीया और परकीया का प्रश्न ही असंभव है। क्योंकि वह सबकुछ उनका अपना ही विलास है और उनकी ही अंगभूता अंतरंग शक्ति। रासलीला तथा उनका उसमें प्रवेश करना सुर का चरम लक्ष्य है। उसी स्थिति को उन्होंने सबसे बड़ी मुक्ति मानी है। वेद सुर नर मुनि शिव आदि इस रस रास की अंश कला को भी प्राप्त नहीं कर सकते। रास-रस का वर्णन सुर अपनी शक्ति से बाहर की वस्तु समझते हैं। रास का प्रभाव सर्वाधिक एवं सार्वभौमिक है; उसके प्रभाव से यमुना भी उलटी बहने लगती है, सूर-नर और मुनियों का ध्यान टूट जाता है और चन्द्रमा भी आत्मविभोर होकर आकाश में अपना भाग भूल जाता है। सूर ने रास वर्णन भागवत के आधार पर ही किया है और उसी के आधार पर रास के श्रृंगार-परक भावों को परब्रह्म कृष्ण के संसर्ग के कारण निर्दोश ठहराया है। सूर सागर में मुरली की ध्वनि सुनकर गोपियों का आकुल होकर कुल मर्यादा, गृह व्यापार आदि को तिलांजली देकर कृष्ण के समीप दौड़ जाना तथा बाद में कृष्ण द्वारा उन्हें उपदेश देना भागवत के अनुसार ही है। भागवत पर आधारित होने पर भी सूर के रास वर्णन में पर्याप्त मौलिकता है, उसमें लौकिक और आध्यात्मिक भावो का सुन्दर सामंजस्य है। आध्यात्मिक रूप में कृष्ण घन है और गोपियाँ दामिनी स्वरूपा तथा भौतिक पक्ष में कृष्ण नायक एवं गोपियाँ नायिकाएँ। यह रास शाश्वत है:-

वृंदावन हरि यहि विधि क्रीड़त सदा राधिका संग।
भोर निसा कबहूँ नहीं जानत सदा रहत इक रंग।।

मुरली का भी सूर ने लौकिक और अलौकिक दोनों रूप से वर्णन किया है। जहाँ एक ओर उन्होंने

बल्लभाचार्य के अनुसार मुरली को आध्यात्मिक रूप दिया है, वहाँ दूसरी ओर लौकिक दृष्टि से मुरली को लेकर बड़ी खिलवाड़ की है। राधा को तो उन्होंने प्रकृति माना है और कृष्ण को पुरूष। फिर प्रकृति पुरूष की एकता भी प्रतिपादित की है। कहीं-कहीं उन्होंने राधा को कृष्ण की शक्ति कहा है और उसी रूप की उपासना की है। बल्लभ सम्प्रदाय में राधिका को स्वामिनी माना है। स्वयं गोस्वामी बिट्ठल दासजी ने राधा के विषय में 'स्वामिन्यष्टक' और 'स्वामिनी स्त्रोत' द्वारा राधा की उपासना की है। सूर की गोपियों का विभाजन भी अनन्यपूर्वा-अन्यपूर्वा तथा गुणानतीता के रूप में हो सकता है।

श्रीमद्भागवत, बल्लभ सम्प्रदाय तथा अन्यान्य सम्प्रदायों को आधार मानते हुए भी हमें सुर के सिद्धांतों में पर्याप्त मौलिकता मिलती है। सूर ने अपने इष्ट के अतिमानवीय रूप के साथ मानवीय रूप का भी चित्रण किया है। उनके कृष्ण एक ओर तो भागवत के श्री कृष्ण और बल्लभ के इष्टदेव, परब्रह्म पुरूषोत्तम स्वरूप तो है ही, दूसरी ओर उनके कृष्ण में मानवता का भी पूरा-पूरा पुट मिलता है। कृष्ण के बालरूप का वर्णन करते हुए कवि उन्हें अबोध, सुकुमार, चंचल तथा धृष्ट शिशु के रूप में चित्रित करता है। उस चित्रण में इतनी मानवीयता और मनोवैज्ञानिकता है कि कृष्ण हमें अपने बीच खेलते हुए प्रतीत होते हैं। संभवतः इसीलिए सूर उनकी अलौकिकता की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। विभिन्न संस्कारों, उत्सवों और समारोहों का सांगोपांग वर्णन समसामयिक समाज का प्रतिबिम्ब स्वरूप है। गोचारण प्रसंग में भी कृष्ण साधारण ग्वाले के रूप में चित्रित किये गए हैं। उनकी श्रृंगार लीलाओं के चित्रण को देखकर सहसा विश्वास नहीं होता कि वे केवल आठ-नौ वर्ष के हैं। प्रेम की ऐसी बातें, नये-नये दाव पेंच और विचित्र रतिक्रीड़ाएं सोचने पर विवश कर देती हैं कि कृष्ण को रसिक शिरोमणि, चतुर रतिनागर के रूप में देखें। यही बात गोपियों के विषय में भी है। इसे हम सूर की मौलिकता कह सकते हैं। अंततः यह कहना उचित होगा कि प्रेम भक्ति साहित्य में सूर के राधा कृष्ण से इतर कोई साहित्य नहीं हो सकता, भक्ति एवं प्रेम की पराकाष्ठा इन दोनों के प्रेम से बढ़कर कहीं देखी नहीं जा सकती। सूर का हृदय जिस प्रेम में अभिभूत होकर, डूबकर इस काव्य की रचना में मग्न हुआ है वह संसार के किसी भी अन्य भक्ति या प्रेम काव्य की अपेक्षा श्रेष्ठ है। सदियों पुराना होता हुआ भी यह प्रेम ग्रंथ आज भी नया-सा प्रतीत होता है।

आज इस संदर्भ में इस विषय का चयन अत्यंत ही सुन्दर एवं मनोहारी प्रतीत हो रहा है। वर्षों पुरानी यह कथा आज भी नई एवं हृदय को छूनेवाली लगती है। एक पंक्ति में कहा जा सकता है कि "जब-जब भक्ति एवं प्रेम की चर्चा होगी यह नाम निश्चय ही लिया जाएगा, इस काव्य की चर्चा के उपरान्त ही यह विषय पूर्ण हो पाएगा।

राधा कृष्ण प्रेम की आधुनिक विश्व में उपादेयता

डॉ. गीतांजलि तिवारी

पूर्व प्रवक्ता-संस्कृत
इमामबाड़ा गर्ल्स पी.जी. कालेज, गोरखपुरे

'श्रीराधाकृष्णाभ्यां **नमः**'। जहाँ कहीं श्रीकृष्ण की पूजा होती है, श्रीराधा जी के साथ होती है- यह तो सर्वविदित है। परन्तु कृष्ण-चरित्र-निरुपक ग्रन्थों में श्रीमद्भागवत सबसे प्रसिद्ध है- इसमें राधा जी की चर्चा प्रायः नाम मात्र ही है। इससे कुछ लोगों के मन में यह सन्देह होने लगता है कि राधा की उपासना कृष्ण की उपासना से बहुत नवीन है।

यद्यपि देवीभागवत देखने से श्रीराधा जी का स्थान बहुत ऊँचा हो जाता है। इस पुराण के अनुसार 'राधा' केवल बरसाना निवासी वृाभानु जी की पुत्री मात्र नहीं हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ईश्वर के अवतार हैं उसी प्रकार श्रीराधा जी भी पराशक्ति की अवतार हैं। आद्या 'प्रकृति' के पाँच रूप हैं- 1. दुर्गा, 2. राधा, 3. लक्ष्मी, 4. सरस्वती और 5. सावित्री।

''गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पंचधास्मृता।।''[1]

संसिद्धयर्थक राध् धातु से 'राधा' पद सिद्ध होता है। जो सर्व परिणाम का साधन करती हैं, वह राधा है। इससे राधा मूल-प्रकृति हैं, यह ज्ञान हो जायेगा। 'राधा' शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ हैं, वह उनकी विभिन्न विभूति की वाचक हैं, परन्तु मूल-अर्थ के साथ किसी का भी विरोध नहीं है। जो भक्ति की समस्त मंगल-कामनाओं को सिद्ध करती है, वह राधा हैं। 'आराधन', 'संराधन' प्रभृति शब्दों का अर्थ सभी को ज्ञात ही है। यह आराधन वा संराधन, मुक्ति वा परमानन्द की प्राप्ति जिनका उद्देश्य है, उन्हें राधा वा मूल-प्रकृति की शक्ति के द्वारा ही यह प्राप्त हो सकता है। जो सबको उनका ईप्सित अर्थ प्रदान करती है। 'रा' शब्द दानवाचक है तथा 'धा' शब्द धारणार्थक है, जो मायिक लोगों के लिए निर्वाण-मुक्ति धारण किये रहती हैं वही राधा है। शास्त्र में 'राधा' नाम की इसी प्रकार की व्युत्पत्ति पायी जाती है।

भक्ति मार्ग के साधन हेतु 'राधाभाव' के स्वरूप का पूर्णज्ञान आवश्यक है। उस सहजानन्ददायक सम्बन्ध सांख्य परमतत्त्व के ज्ञान की प्राप्ति मात्र से ईश्वर के चरणों में अचल प्रीति हो जाती है। इसके पाँच भेद हैं- 1. शान्त, 2. दास्य, 3. सख्य, 4. वात्सल्य और 5. श्रृंगारक।

इनमें भी बहुत से भेदोपभेद हैं। जो मुख्य रस स्वरूप तत्त्व हैं, वही यथातथ्य ध्यातव्य हैं-

क्रमानुसार साधु-संगति, निरहंकार, निर्वेद प्रभृति विभाव[2] के द्वारा समन्वित स्थायी आदरभाव को 'दास्य-भाव' कहते हैं।

इसी प्रकार क्रमानुसार मधुर वचन, परिहास एवं हर्ष 'विभाव' द्वारा सदा युक्त स्थायी भाव को 'सख्य-भाव' कहते हैं।

क्रमशः चापल्य, पुलक और अनिष्ट शंका प्रभृति 'विभव' द्वारा युक्त स्थायी वत्सलता को 'वात्सल्य' भाव कहते हैं क्रमशः माधुर्य, भृकृटिक्षेप, हर्ष इत्यादि विभावों के द्वारा समन्वित रतिरूप स्थायी भाव को 'श्रृंगार' भाव कहते हैं। उपरोक्त पाँच प्रकार के रसों के आश्रित भक्तों के लक्षण क्रमशः वर्णित हैं-

जो भक्त परमात्मा को सर्वपरात्पर साक्षात् ब्रह्म जानकार उनका भजन करते हैं, वह शान्तरस के आश्रय हैं। ईश्वर सदा-सर्वदा अपने भक्तों की रक्षा करते हैं, वह करुणा सिन्धु हैं- इस प्रकार जानकर जो इस श्रेष्ठ सम्बन्ध से उनका भजन करते हैं, वह दास्यरस के आश्रय हैं। जो परमात्मा को अपना सूहृद मित्र और प्रेमपात्र जान परम स्नेह से उनके साथ नित्य रमण करते हैं, वह सख्यरस के आश्रय हैं (उदाहरणार्थ कृष्ण-अर्जुन)। बालस्वरूप, परम सौन्दर्ययुक्त, कोमल अंगो वाले परम आनन्ददायक रूप में भगवान को अपना बाह्यसंचारी प्राण मानकर जो भजन करते हैं वह वात्सल्यरस के आश्रित हैं। माधुर्यमय, मनोहर छवि वाले ईश्वर को अपना प्रियतम मानकर जो सदैव उनका भजन करते हैं, वह श्रृंगार रस के आश्रय हैं।

इनमें से किसी एक भाव से भगवान के साथ सम्बन्ध जोड़ने से ही वे प्राप्त हो सकते हैं। मनुष्य के समस्त मनोभावों का समावेश इन भावों के अंदर हो जाता है। संसार में यही चिरपरिचित भाव हैं, इनके ही पूर्णभाव भगवान हैं।

इन पाँच प्रकार के भावों में जो एक 'प्राकृतिक क्रम' है, उस पर ध्यान देना चाहिए। पहले जनक-जननी भाव है, उसके बाद आचार्य भाव (गुरुभक्ति) है, तत्पश्चात् सख्य भाव इत्यादि भाव हैं। एक भाव की साधना हो चुकने पर दूसरा भाव स्वयं ही आ जाता है। सबके अन्त में श्रृंगार भाव आता है, यही भक्ति का श्रेष्ठ भाव है, इसी का नाम 'राधाभाव' है।

''जयति जयति श्रीराधिके, बंदौ पद-अरविन्द।
चहत मुदित मकरन्द मृदु, जेहि ब्रजचंद मलिन्द।।''

श्रीवृन्दावनाधीश्वरी श्रीराधारानी के चरण- कमलों में बारम्बार सप्रेम वन्दन है। जिन चरणारविन्द के मधुर मकरन्द को स्वयं श्रीआनंदकंद श्रीकृष्णचन्द्र मलिंदवत् आस्वादन करने के लिए आसक्त हो सदैव आकांक्षी रहते हैं।

जिनकी सेवा में सुन्दर श्रृंगार सुसज्जिता सहचरियाँ सदा संलग्न रहती हैं। श्रीराधा महारानी गोलोकस्वामिनी परमतत्त्वाभिरामिणी, श्रीकृष्णानुगामिनी, सच्चिदानन्दघन-स्वरूपिणी, स्वेच्छाविलासिनी, वृन्दावन विहारिणी, दिव्य-आह्लादिनी, पराशक्ति प्रमोदिनी, परमप्रिय प्रियतमा, श्रीकृष्ण की प्राणेश्वरी भामिनी हैं। गोलोकधाम में इनका नित्य-नवीन क्रीड़ा-कौतुक निरन्तर होता ही रहता है। परम कारुणिक कंजाभकलित कमनीय कृपा कटाक्ष के आश्रय, अखिल अनादि अनन्त ब्रह्माण्डनायक, परब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्णचन्द्र इन्हीं अपनी आराध्या अखिलेश्वरी आदिशक्ति श्रीराधा जी की अपरिमिता दिव्यपराशक्ति के आधार पर अखिल विश्व को धारण करते हैं।

इस प्रकार इन दोनों की लीला चलती है। श्रीकृष्णकान्ता तथा श्रीराधाकान्त के अखण्ड नित्य-विहार, अपार सुखमासार, उज्ज्वल श्रृंगार और लीला चमत्कार का तदाकार अभेद सावयव पारस्परिक व्यवहार है। ये दोनों एकप्राण, एकात्मा और एकतत्त्व हैं। स्नेह-विवश हो असीम परमानन्द-प्रेम-पीयूष-पान करने हेतु एक ही प्राण दो शरीर रूप में प्रकट होकर अप्रमेय दिव्य रस को अनन्त रूप से प्रवाहित कर रहें हैं। जैसे- चन्द्र चन्द्रिका, प्रभाकर-प्रभा, अमरकोश और उसका धूम्र एक-दूसरे से पृथक नहीं है, उसी प्रकार हमारे युगल सरकार के युगल शरीर होने पर भी ये वस्तुतः अभिन्न हैं। इनकी विभिन्नता असम्भव है। ये एक क्षणमात्र भी एक-दूसरे से विलग नहीं हो सकते।

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणदसौ।
आत्मरामतया चाप्तैः प्रोच्यते गूढ़वेदिभिः।।[3]

इस प्रकार प्रिया-प्रियतम का परस्पर प्रगाढ़ प्रेम परस्पर अन्योन्याश्रित है, प्रशंसनीय है और प्रवीण मीन-जलवत् अविचल, अनादि तथा अखंड है। वास्तव में यदि श्रीकृष्ण-प्राणेश्वरी श्रीराधिका के परम तत्त्व के आविर्भाव-पृथक्करण की कल्पना की जाये तो स्वयं श्रीकृष्ण भगवान स्वयमेव अपनी अर्द्धांगसंभूता प्रिया के अनुभूत दिव्य-आत्मविभूति के अभाव से शक्तिहीन हो जाते हैं। यहाँ तक कि यदि युगलनामात्मक 'राधेकृष्ण' शब्द से 'रकार' वर्ण का

लोप कर दिया जाये तो 'रकार' के स्थान पर केवल 'आ' रह जाता है जिससे 'आधेकृष्ण' प्रतीत होने लगते हैं।

श्रीराधा नाम अनादि है, कल्पित नहीं। इसका अर्थ है 'श्रीकृष्ण की प्राप्ति के निमित्त विद्वान जिसकी आराधना करते हैं।' राधा की आराधना बिना श्रीकृष्ण की प्राप्ति दुर्लभ है।

"राधा कृष्णात्मिका नित्यं, कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा, राधैवाराध्यते मया।।
यः कृष्णः सापि राधा च या राधा कृष्ण एव सः।
एकं ज्योतिर्द्विधाभिन्नं राधामाधवरूपकम्।।"[4]

अतः राधाकृष्ण प्रेम का जो यह परमानन्द रूप रस है उसको मेरा नमन है। राधामाधव रूप से एक ही ज्योति दो प्रकार से प्रकट है।

भौतिकता से विरत होकर अन्तर्गमन करने को राधा कहा जाता है, धारा के प्रतिकूल चलने से राधा मिलती है। आज के युग में आत्ममन्थन बहुत आवश्यक है, आत्ममन्थन कर आत्म-निरीक्षण करने से आत्मबल बढ़ता है। जिससे इस जगत की सभी समस्याओं का निराकरण सरलता से हो जाता है। जोकि मानव जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची

1. देवीभागवत 9।1।1
2. 'विभावो हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते।' (अग्निपुराण)
3. स्कन्दपुराण
4. ब्रह्मण्डपुराण

संगीत परंपरा में राधा और श्री कृष्ण

डा. ममता सान्याल

एसोसिएट प्रोफेसर

संगीत, गायन, आर्य महिला पी. जी कालेज, वाराणसी

विष्णु वैदिक देवता हैं। आभीरों के पुराण से जब श्री कृष्ण आर्यो के पुराण में आये तो विष्णु के साथ एकात्म हो गये। दसवीं शताब्दी के उपरान्त वैष्णव धर्म का विकास हुआ तो कृष्ण और राधा केवल पौराणिक चरित्र ही नहीं वरन् तात्विक प्रतीक बन गए। कृष्ण कथा और कृष्ण काव्य में कृष्ण और राधा को प्रतीकात्मक दृष्टिकोण से ही देखा गया है।

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि संसार में जो भी उज्जवल है, पवित्र है, वही श्रृंगार रस है। वही श्रृंगार रस है। वैष्णवों ने समस्त कृष्ण काव्य को 'अन्योक्तिपरक' अर्थात् 'एलिगोरिकल' माना है। साधारण विचार में कृष्ण-राधा पौराणिक चरित्र है किन्तु वैष्णव इन्हें तत्व के रूप में देखते हैं। वैष्णवों के विचार से संसार में जितने प्रकार के प्रेम हैं, माँ बेटे का प्रेम, दो बन्धुओं के बीच का प्रेम, स्वामी-स्त्री का प्रेम, प्रेमी-प्रेमिका के बीच का प्रेम और प्रभु भृत्य का प्रेम, इन सभी प्रकार के प्रेम को यदि एकत्र कर दिया जाए और उसे मनुष्य रूप दिया जाए तो वह होंगे श्री कृष्ण, कृष्ण काले हैं, कृष्ण का रंग एक ऐसा अंधकार है जिसके चारों ओर इन्द्रधनुष हैं, जैसे कि मोरचंद्रिका जिसके केन्द्र में नीला रंग है और यह झिलमिलाते इन्द्रधनुष से घिरी होती है। कृष्ण के रंग में वस्तुतः यही आभा उभरती है और यह आभास देने के लिए ही कृष्ण स्वयं मोर पंख अपने मुकुट पर धारण करते हैं।

कृष्ण का आयुध बाँसुरी है। बाँसुरी मनुष्य के शरीर का प्रतीक है जिस प्रकार बाँसुरी में छेद होते हैं उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में भी छः द्वार हैं आँख, नाक इत्यादि। दो भृकुटि के बीच में जो आसाचक्र है वह बाँसुरी के मुखरंध्र में फूँकते हैं तो यह रोगभू शरीर रागभू हो जाता है।

भागवत पुराण में एक ऐसा प्रसंग है कि जब एक शरतपूर्णिमा की रात्रि में कृष्ण बाँसुरी बजाते हैं तो गोपियाँ उसके पास दौड़ी चली आती हैं। कृष्ण गोपियों को उनके कर्तव्य बोध का एहसास कराना चाहते हैं और वापस घर लौट जाने को कहते हैं। गोपियाँ उत्तर देती हैं कि यदि श्री कृष्ण को कर्तव्य ज्ञान ही देना था तो उन्होंने बाँसुरी क्यों बजाई ? बाँसुरी बजाने से उनका शरीर रागभू हो गया, निर्वैयक्तिक हो गया।

यह जिज्ञासा होती है कि कृष्ण माखन क्यों चुराते थे ? क्या उन्हें माखन नहीं मिलता था? इसमें एक गहरा प्रतीक है। भारत में जितने भी पुराण है उसमें दूध को मानव की चेतना का प्रतीक माना गया है इसलिए विष्णु क्षीरसागर पर शयन करते हैं। सागर के मंथन से 'पेन्सिलिन' तथा पोटेशियम साइनाइड दोनों प्राप्त हुआ। यह चेतना सामूहिक चेतना है। एक व्यक्ति की चेतना के मंथन से प्रेम की उत्पत्ति होती है। मक्खन गर्म करने पर वह घी बनता है। मक्खन स्नेह का प्रतीक है और घी मनुष्य की चेतना का प्रतीक है। होम करते समय घी को अग्नि में डालते हैं। अग्नि देवताओं में अग्रणी है। अग्नि पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण को काटकर आकाश की ओर जाती है। यह किसी व्यक्ति की उच्चाकांक्षा

की भाँति है । अग्नि का विशेष गुण यह है कि वह कभी धरती नहीं छोड़ती। कृष्ण यह नहीं चाहते थे कि चेतना रूपी संसार के मंथन से जो स्नेह रूपी मक्खन निकला उसका रूप परिवर्तित हो अतः वह मक्खन अर्थात् स्नेह चुराते थे। वह चाहते थे कोई पूजा-पाठ न करे, केवल उनसे प्रेम करे, अपना सर्वस्व उन्हें समर्पित कर दे तो उसका उद्धार हो जायेगा।

गोपियाँ जब दूध और दही बेचने जाती थीं तो श्रीकृष्ण मटकियाँ फोड़ देते थे। प्रतीकार्थ है कि चेतना का विक्रय नहीं होता है। उसे घड़े (शरीर) में ही समाहित रहने दो। उसका व्यवसायीकरण न करो। भागवत में आत्मा और परमात्मा के बीच के संबंध को समझाने के लिए कृष्ण कहते हैं यह शरीर एक घड़े के समान है। उसमें जल जीवन है, आकाश परमात्मा है। घड़े में जल भरने पर उसमें हमें आकाश का प्रतिबिम्ब दिखायी देता है।

राधा और कृष्ण के सम्बन्ध को जानना भी आवश्यक है। राधा प्रेम का प्रतीक है। प्रेम अपनी ओर आकर्षित करता है। अहंकार दूर कर देता है अर्थात् प्रेम एक शक्ति है जो अपनी ओर आकर्षित करती है। शक्ति का रंग स्वर्णिम होता है इसलिए राधा गोरी हैं। कृष्ण राधा के रंग के वस्त्र पीतांबर धारण करते हैं और राधा कृष्ण के रंग के वस्त्र नीलांबरी धारण करती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि राधा-कृष्ण पृथक नहीं वरन् एक हैं। वैष्णव राधा और कृष्ण के सम्बन्ध को मधु और मधुरता का सम्बन्ध मानते हैं, दोनों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है।

कृष्ण राधा के दो अलग-अलग रूप हैं- नित्य और लीला रूप। नित्य रूप में दोनों एक हैं और लीला रूप में दोनों एक हैं और लीला रूप में दोनों अलग-अलग हैं। जयदेव की एक अष्टपदी में भगवान श्री कृष्ण राधा को वन में ढूंढते हैं, जबकि वह जानते हैं कि राधा तो उनके भीतर ही हैं। लीला रूप में राधा कृष्ण से पृथक हैं क्योंकि उनमें अहंकार आ जाता है। गीत गोविन्द में राधा कैसे अपने अहंकार को त्याग कर कृष्ण में लीन हो जाते हैं इसका वर्णन मिलता है।

आत्मा और परमात्मा के विषय में कबीरदास जी की एक साखी है "जल में कुंभ, कुंभ में जल है, भीतर बाहर पानी" एक घड़े में समुद्र का जल भरकर समुद्र में रखने से घड़ा सोचता है " भरे हृदय में सागर है और सागर सोच सकता है मेरे हृदय में घड़ा है" ठीक यही सम्बन्ध कृष्ण-राधा का है। सागर श्रीकृष्ण है और राधा घड़ा।

संदर्भ ग्रंथ-

अलाउद्दीन खाँ स्मृति व्याख्यान माला, 16 जुलाई 1993, भोपाल

कृष्ण-राधा से जुड़े वैष्णव सम्प्रदाय और उनकी उपासना पद्धति में संगीत

मनदीप कौर

Asst. Prof. in Music Vocal
G.N.G. College Yamuna Nagar, Haryana

वैष्णव सम्प्रदाय से तात्पर्य भगवान विष्णु अथवा उनके किसी अवतार के प्रति आस्था से है। यह एकेश्वरवाद है जो किसी एक आराध्य की भक्ति पर केन्द्रित होता है। वैष्णव सम्प्रदाय को वैदिक काल में सनातन धर्म के नाम से जाना जाता था। वैष्णव धर्म, वैष्णव धारा तथा भागवत् धर्म के नाम से भी इसे जाना जाता है। वैष्णव धर्म के प्रधान उपास्यदेव भगवान विष्णु हैं। वैष्णव धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय पृथक-पृथक धाराओं में वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। इन सभी सम्प्रदायों के मूल प्रवर्तक भगवान विष्णु ही हैं, इसलिए ये सभी सम्प्रदाय वैष्णव सम्प्रदाय कहलाते हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय भक्तियोग के पथ पर चलता है जहाँ मनुष्य समर्पण के पथ पर चलकर परम परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। कृष्ण-राधा से जुड़े वैष्णव सम्प्रदायों में भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को सर्वशक्तिमान तथा अन्य अवतारों का स्त्रोत माना जाता है। वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत पाँच सम्प्रदाय आते हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. निम्बार्क सम्प्रदाय
2. वल्लभ सम्प्रदाय
3. चैतन्य सम्प्रदाय
4. हरिदासी सम्प्रदाय
5. राधवल्लभ सम्प्रदाय

1. निम्बार्क सम्प्रदाय : निम्बार्क सम्प्रदाय को ब्रज के सभी सम्प्रदायों में प्रचीनतम् माना गया है। निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य थे। इन्होने ब्रजभूमि में गोवर्धन की तलहटी के निकट नीमगाँव को अपनी तपस्थली बनाया। वहीं देवर्षि नारद ने इन्हें दीक्षा प्रदान की। निम्बार्काचार्य भगवान के युगल स्वरूप श्रीराधामाधव के उपासक थे। आपने सर्वप्रथम माधुर्यमय रसोपासना प्रारम्भ की। इस सम्प्रदाय में भगवान की नित्य प्रातःकालीन आरती से लेकर शयन आरती तक अष्याम सेवाओं में समयानुसार रागों का गायन होता है। इस सम्प्रदाय की मुख्य गायिकी ध्रुपद-धमार शैली पर पर आधारित है। यहाँ दो प्रकार की शैलियाँ प्रचलन में चली आ रही हैं - एकल गायन और समाज गायन। दोनों ही इस सम्प्रदाय की विशिष्ट गायन शैलियाँ हैं। इसके अलावा वाद्यवादन की प्रथा भी प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। सर्वप्रथम नारद जी ने वीणा वादन करके भगवान का गुणगान किया। यह परम्परा आज भी निर्बाध रूप से चली आ रही है। इस सम्प्रदाय के प्रमुख वाद्य मृदंग या पखावज, वीणा तथा सारंगी आदि हैं।

वादन के साथ-साथ नृत्य और लीलानुकरण की भी अपनी परम्परा है। सम्प्रदाय में किसी विशिष्ट उत्सव पर विभिन्न प्रकार के नृत्य जैसे ढाँडी नृत्य, नरसिंह नृत्य, कहरवा नृत्य तथा लीलानुकरण में बसन्त रास, नित्य रास, महारास आदि का प्रचलन है।

रास की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भगवान कृष्ण के अनन्तर उनकी लीलाओं के आधार पर

उनका अनुकरण करने की परम्परा रास के रूप में चल पड़ी। निम्बार्क सम्प्रदाय में रासलीला का सूत्रपात करने वाले श्री घमण्डदेव थे। ये हरिव्यासदेव के शिष्य थे। निम्बार्क सम्प्रदाय में रासलीला विष्यक सामग्री का आधार 'श्रीमद्भागवत' है। उनकी सम्पूर्ण लीलाएँ संगीतमय और माधुर्य रस से पीरपूर्ण हैं। निम्बार्क देवालयों में दो प्रकार के रास विद्यमान है : नित्यरास और महारास।

श्रीकृष्ण की किसी भी लीला से पूर्व नित्य रास अवश्य किया जाता है। गोकुलधाम के निवासी श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा राधा की इच्छानुसार ही रास करते हैं। रासलीला के विधायक तत्वों में श्री कृष्ण और श्री राधा रानी लाडिली लाल के रूप में रासलीला के केन्द्र हैं। रासलीला को मण्डित करने के लिए परम तत्त्व का एक अन्य रूप सखियों का है जो प्रिया-प्रियतम् की नित्य रासकेलिक्रीड़ा की संचालिका हैं। इसके अतिरिक्त रास में वृन्दावन धाम का विशेष स्थान है जहाँ कृष्ण तथा राधा नित्य लीलारत रहते हैं। श्रृंगार रस तथा माधुर्य रस ही रास के केन्द्र हैं कभी-कभी रास में हास्य रस का प्रयोग भी मिलता है।

जहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय में ध्रुपद-धमार शैली के रूप में शास्त्रीय संगीत विद्यमान है, वहीं रास में लोकसंगीत शैली के माँझ, लावणी, रसिया, कवित्त, सवैया, दोहे आदि भी विद्यमान हैं।

2. वल्लभ सम्प्रदाय : वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य का जन्म संवत् 1535 में हुआ। इनका दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धावैत कहलाता है। श्री भागवत से प्रभावित होकर उन्होने पुष्टि भक्ति आलम्बन किया जिसमें सर्म्पण का उच्च स्थान है। आत्म सर्म्पण के लिए कृष्ण का गुण कीर्तन, नामोच्चारण भजन आदि का प्रावधान बताया।

महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित 'पुष्टिमार्ग' की सेवा पद्धती में राग और संगीत सेवा को सर्वोपरि माना गया है। इन्होने ब्रज के गोवर्धन ग्राम की गिरि ब्रज पहाड़ी पर श्री नाथ मंदिर बनवा कर उसमें कीर्तन की आरम्भिक व्यवस्था की। इन्होंने ने विभिन्न राग-रागनियों एवं तालों में निबद्ध पद-गान की सेवा अपने चार प्रमुख संगीतज्ञों कुम्भनदास, सूरदास, परमानंद और कृष्णदास को दी। तत्पश्चात् आपके पुत्र विट्ठलदास ने अपने सनिध्य में शरनस्थ चार भक्त संगीततज्ञ-नंददास, गोविन्द स्वामी, चतुर्भजदास और धीतस्वामी को संगीत सेवा प्रदान कर श्री नाथ जी के सम्मुख अष्टप्रहार सेवा की एक अत्यन्त सुव्यवस्थित कीर्तन गान पद्धती का शुभारम्भ किया। ये तीनों कीर्तनकार अष्टछाप या अष्टसखा कहलाए। एक मत के अनुसार मुगल दरबार के सुविख्यात गायक तानसेन ने भी पुष्टिमार्ग में शरण लेकर गोविन्दस्वामी से ध्रपद-धमार गायन की शिक्षा प्राप्त की।

पुष्टिमार्गीय मार्गीय मंदिरों को हवेली भी कहा जाता है। 1950-55 के लगभग आकाशवाणी संगीत सेवा द्वारा इनके संगीत को हवेली संगीत कहा जाने लगा। हवेली संगीत के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ आचार्य गोकुलदास के अनुसार पुष्टिमार्गीय हवेली संगीत अपने आप में एक परिपूर्ण विधा है, जिसमें प्राच्य शैलियों प्रबन्ध, विष्णुपद, रूद्रपद, अष्टपदी, धुवपद-धमार, राग-माला, तालमाला इत्यादि अनेकानेक विधाओं का स्वरूप निहित है।

3. चैतन्य सम्प्रदाय : चेतन्य महाप्रभु द्वारा चलाया गया सम्प्रदाय 'चैतन्य सम्प्रदाय' अथवा गौड़ीय सम्प्रदाय कहलाया। इनका दार्शनिक सिद्धान्त 'अचिन्त्यभेदाभेद' है। माधवेन्द्रपुरी इस सम्प्रदाय के आद्याचार्य माने जाते हैं तथा इनके शिष्य इश्वरपुरी से वैष्णव धर्म की दीक्षा लेने वाले चैतन्य ने बंगाल ही नहीं, अपितु समस्त उत्तर भारत में भक्ति के विमलरूप का प्रचार एंव प्रसार किया। इस प्रकार इस सम्प्रदाय के अनुयायी बंगाल से वृन्दावल, उड़ीसा आदि समस्त भारत में फैले हुए हैं।

बंगाल में विद्यापति तथा जयदेव को लोकप्रिय बनाने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म बंगाल के नदिया नामक स्थान पर हुआ। सन्यासमार्ग में दीक्षित होने के बाद ये 'कृष्ण चैतन्य' के रूप में बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय के सर्वोच्च साधक कहलाए।

इन्होंने अपने सिद्धान्तों एवं उपासना में राधा भाव को प्रधानता दी श्री राधा की महाभाव दशा को भक्ति के साध्यतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठत किया। राधा-कृष्ण का निकुन्ज विलास ही चैतन्य सम्प्रदाय के वैष्णवों का उपास्य है। भक्त समाज को मंजरी

भाव की उपासना श्री चैतन्य महाप्रभु की विशेष देन है। उनके अनुसार परब्रह्म स्वयं श्रीकृष्ण हैं।

बंगाल का कीर्तन संगीत संस्कृति के क्षेत्र में एक अद्वितीय देन रहा है। श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार वाद्ययन्त्रों के साथ सामूहिक रूप से अपने भगवन्नाम का गायन करते हुए प्रेम-विह्वल हो जाना ही 'हरिनाम-संकीर्तन' है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण नामसंकीर्तन की संजीवनी देकर बंगाल को नई चेतना प्रदान की। इन्हें संकीर्तन का पिता भी कहा जाता है।

कीर्तन मूलतः दो प्रकार का माना गया है - नाम कीर्तन और लीला कीर्तन। नाम कीर्तन में भगवान कृष्ण का नाम और करूणा ही प्रधान माने गए है, जबकि लीला कीर्तन में रूप, गुण एवं विधि लीलाओं का वर्णन होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने 'हरेर्नाम हरेर्नामैक केवलम्' - चेतावनी देकर नामसंकीर्तन साधना द्वारा इस भौतिक युग में जप-ताप से मुक्त होने का एकमात्र सहज उपाय महामंत्र का सतत् संकीर्तन बताया :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

बंगाल की संगीत परम्परा मधुर, संवेदनशील, परिष्कृत पदावली, कीर्तन की संगीत संरचना, धातु, ताल, राग और विभिन्न भाव तत्त्वों द्वारा समन्वित हैं। चैतन्य महाप्रभु ने गान एवं नृत्य के साथ संकीर्तन को भी स्थान देकर जन सामान्य तक अपने विचारों को अत्यन्त मनोरंजक ढंग से पँहुचाया।

4. हरिदासी सम्प्रदाय : हरिदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास वृन्दावन के रसिक भक्तों के शिरोमणि, महान् संगीतज्ञ और सुप्रसिद्ध धर्माचार्य थे। जब धरती पर सच्चे रसिक भक्तों की सच्चे प्रेम की प्यास बुझाने की आवश्यकता पड़ी तब दैवी प्रेम को धरती पर फैलाने के लिए 'ललिता सखी' श्री हरिदास जी के रूप में अवतरित हुए। ये अपने आराध्य की उपासना सखी भाव से करते थे। इन्होंने सच्चे रसिक भक्तों को सच्चे प्रेम का अर्थ समझाया। स्वामी हरिदास के आशीर्वाद के बिना कोई भी सच्चे प्रेम और उसके अन्दर छिपे सार की गहराई को नहीं समझ सकता। स्वामी हरिदास श्यामा कुंज बिहारी के युगल स्वरूप की उपासना में लीन रहते थे। उनकी भक्ति माधुर्य भाव की थी। ये कुंज बिहारी श्री कृष्ण का नाम सदा जपा करते थे। गान विद्या में ये गन्धर्व थे और अपने गान से सखी की तरह सेवा करते हुए श्यामा श्याम को प्रसन्न किया करते थे। रास के पदों की गानयुक्त परिपाटी के प्रवर्तक आप ही हैं। 'केलिमाल' इनकी सुप्रसिद्ध रचना है।

एक मत के अनुसार स्वामी हरिदास जी का जन्म वृन्दावन के राजपुर नामक एक सम्पन्न गाँव में हुआ। उनके पिता गंगाधर जी तथा माता चित्रा जी थी। कहा जाता है कि दैवी बालक के जन्म की बात सुनकर श्री स्वामी आशुधीर जी बालक को आशीर्वाद देने के लिए पँहुचे। उन्होंने बालक को अपनी बाहों में लिया और परमानन्द से भर गए। उन्होंने बालक के माथे पर तिलक लगाया, प्रसाद और एक कण्ठी दी, उसके कानों में मन्त्रेच्चारण कर उसे हरिदास पुकारा। एक अन्य मत के अनुसार इनका जन्म खैर तहसील के पास उत्तरप्रदेश में पिता आशुधीर और माता चित्रा देवी के घर हुआ। एक अन्य मत यह भी है कि ये एक सारस्वत ब्राह्मण, जो मुल्तान से थे, के पुत्र थे। इनकी माता का नाम गंगा देवी था। ये स्वामी आशुधीर के शिष्य थे। इनके पिता निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे। कालान्तर में ये वृन्दावन में आकर बस गए और स्थाई रूप से निधिवन-निकुंजों में निवास करने लगे।

स्वामी जी की उपास्य श्यामा कुंज बिहारी की जोड़ी अनादि और अनन्त है। नित्य विहार और निकुंज लीला प्रिया प्रीतम् की प्रेम क्रीड़ा है, जो सखियों द्वारा संचालित और क्रियान्वित की जाती है। प्रिया प्रीतम को श्यामा श्याम, लाडली लाल, कुंजविहारी कुंजविहारिणी,किशोर किशोरी, कुंवारी कुंवर आदि नामो से सम्बोधित किया जाता है। परमपरमेश्वर से सम्बन्ध स्थापित करने के पाँच भाव माने गए हैं : शांत भाव, दास्य भाव, वात्सल्य भाव, सखी भाव और माधुर्य भाव। भक्ति का अर्थ प्रेम और भाव है। स्वामी जी की रास रीति प्रेम रस, सखी भाव और अनन्यता पर आधारित है।

प्रेम रस से तात्पर्य शास्वत प्रेम से है, जिससे हमें परमानन्द की प्राप्ति होती है। निकुंज लीला में जो भाव दर्शाया जाता है वह सखी भाव है, जो 'तत् सुख सुखीत्व' पर आधारित है। सखी का लक्ष्य अपने सुख की चिंता न करते हुए अपने प्रिया प्रीतम की सेवा करना, उनके आपसी प्रेम व आकर्षण को बढ़ाना होता है। सखियाँ लाडिली लाल के दैवी प्रेम की साक्षी होती हैं। इसी में सखियों का परमानन्द है। अनन्यता से तात्पर्य श्यामा श्याम के प्रति सखियों के समर्पण से है।

स्वामी हरिदास जी की रचनाओं को विष्णुपद कहा जाता है। उनके द्वारा गाए गए प्रबन्ध विष्णुपद कहलाए, जो ध्रुवपद के समकक्ष हैं। उन्होंने त्रिवट तथा रागमालाओं की रचना भी की। उनकी रचनाओं में किन्नरी वीणा, अघोती वीणा, मृदंग, डफ, राग केदार, गौड़ी, मल्हार और बसन्त आदि का प्रयोग और वर्णन मिलता है। ऐसी मान्यता है कि अकबर के सुप्रसिद्ध दरबारी गायक तानसेन इन्हीं के शिष्य थे। ध्रुवपद गायन की शिक्षा तानसेन ने स्वामी हरिदास से ही प्राप्त की थी।

स्वामी हरिदास कहते हैं कि संगीत को राधा से अधिक कोई नहीं जानता। राधा जितना राग, ताल और नृत्य को जानती है उतना ओर कोई नहीं जान सकता। इन सबकी शोभा राधा जी से ही है।

5. राध वल्लभ सम्प्रदाय : राधा वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हितहरिवंश महाप्रभु हैं। इनके पिता देवबंद के गौड़ ब्राह्मण थे। इनका दार्शनिक सिद्धान्त 'सिद्धाद्वैत' कहलाता है। इनका उद्देश्य 'रसोपासना' की स्थापना करना था। इस सम्प्रदाय में राधा को कृष्ण से अधिक महत्व दिया जाता है। ये प्रेमाभक्ति के उपासक थे और श्री राधा को सर्वशक्तिमान मानते थे। वे इस दर्शन के अनुयायी थे जिसके आलम्बन राधा और कृष्ण थे। स्वामी हितहरिवंश जी को श्री कृष्ण जी की बाँसुरी का अवतार माना जाता है।

वृन्दावन के नित्य निकुंज में श्यामा श्याम का नित्य विहार ही श्री हरिवंश जी का उपास्थ है। इसे वृन्दावन का रस कहा जाता है। इस सम्प्रदाय में राधा तथा कृष्ण दोनों ही उपास्थ हैं परन्तु प्रधानता श्री राधा की उपासना की है। श्री कृष्ण की उपासना उनका प्रिय होने के कारण अनुषांगिक है। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों ने प्रेम श्रृंगार की केवल संयोग लीलाओं का ही आलम्बन किया है तथा इस परमानन्दानुभूति को ' परम रस माधुरी ' माना है।

अधिक्तर लोगों ने श्री श्री राधा की अवधारणा को ठीक से समझा नहीं और स्वामी हितहरिवंश जी ने सही पथ प्रदर्शन किया तथा भक्तों को समर्पण के सही अर्थ समझाए। श्री राधा जी के चरणों, जो संसार में उपासना के लिए सर्वोतम् वस्तु है, की समर्पण भाव से उपासना करने से परमानन्द की प्राप्ति होती है। श्री राधवल्लभ मंदिर वृन्दावन का एक बहुत ही प्रसिद्ध मंदर है। 'नित्य सेवा' के अन्तर्गत श्री राधा वल्लभ जी की मौसम तथा दिन के प्रहर के अनुसार सेवा की जाती है। अष्टायाम सेवा के अन्तर्गत आठ आवश्यक सेवाएँ देवी को प्रदान की जाती हैं जो इस प्रकार हैं : मंगला, धूप, श्रृंगार, राजभोग, उथापन, धूप, संध्या, श्यन। इन सेवाओं के अन्तर्गत भोग, श्रृंगार तथा राग, संगीतादि की सेवाएँ श्री राधा वल्लभ जी को प्रदान की जाती हैं। सहचरि सुख, रसिक दास, हित अनूप, अनन्य अली, भावक, हित रूपलाल,आनन्द बाई आदि भक्त कवियों की रचनाओं का गायन इस सम्प्रदाय में किया जाता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार कृष्ण - राधा से जुड़े विभिन्न सम्प्रदाय अपने श्यामा श्याम को प्रसन्न करने के लिए संकीर्तन, रास नृत्य, लीलाओं, गायन के अन्तर्गत ध्रुपद, धमार, विष्णुपद, त्रिवट, रागमाला, रूद्रपद, अष्टपदी, लोकसंगीत शैली के माँझ, लावणी, रसिया, कवित्त, सवैया, दोहे तथा वाद्यों के अन्तर्गत मृदंग, डफ, वीणा, सारंगी पखावज के अतिरिक्त समयानुसार रागों का प्रयोग भी किया जाता है। स्वामी हरिदास जैसे भक्त शिरोमणि, सुप्रसिद्ध धर्माचार्य की भक्त समाज के साथ - साथ शास्त्रीय संगीत को भी बहुत बड़ी देन है जिसके लिए संगीत जगत उनका हमेशा ऋणी रहेगा।

राधा - कृष्ण और ख्याल शैली

डा. नीरा चौधुरी

संगीत विभाग, मगध महिला महाविद्यालय
पटना विश्वविद्यालय, पटना

विश्व के हृदयस्थल में संगीत का स्थान काफी पवित्र माना जाता है, संगीत किसी बन्धन में नहीं बंधा है यह तो नदियों की भाँति स्वच्छन्द है या यह कहे कि संगीत सृष्टि के सारे जीवों का मन मोहित करनेवाला होता है तथा यह किसी धर्म, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय के बन्धन में बाँधने की वस्तु नही है।

संगीत का कार्य शान्ति एवं सुकून प्रदान करना होता है, यह आनन्द के माध्यम से आत्मा को तृप्त कर मोक्ष की प्राप्ति दिलाता है।

भारतीय संगीत की उत्पत्ति देव संगीत के रूप में माना गया है, यहाँ का संगीत अनूठा व समस्त ज्ञान की शक्तियो को एकाग्र करने में सर्वोत्तम माना गया है, मुरली की तानो में सारा जगत समाहित है, हाँ यह वही मुरली है जो भगवान श्री कृष्ण को होठों पर रची बसी है, तथा जो भारतीय संगीत को परिपूर्ण करता है। श्री कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन ही संगीत के लय में बंधा था उनके वात्सल्य प्रेम में संगीत पराकाश्ठा पर था उनकी युवावस्था में ही उनके बाँसुरी की तानो पर श्रृंगार रस का पान किए संगीत सारी सृष्टि में थिरकता प्रतीत होता हैं। उनके भावों में समाहित होकर सूरदास जी ने अपनी आभा से राधा- कृष्ण के प्रेम को बड़ा ही निर्मल रूप में लिखा है। उन्होंने अपने प्रेम रूपी हृदय में राधा- कृष्ण के प्रेम धर्म की पवित्रता को बड़े ही मनोरम रूप में लिखा है, उनके - अनेक पदों में उन्होने श्री कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन को संगीतमय बतलाया गया है। भारतीय संगीत की शक्ति से समग्र जगत को साम्यवस्था में रखा जा सकता है।

विश्व के महान साहित्यकारो ने अपने साहित्य में एक या अनेक ऐसे चरित्रो का सृजन जिनके प्राण में श्रृश्टा का प्राण समाया हुआ है, जिनके प्रत्येक स्पन्दन में श्रृश्टा की आत्मा का संगीत सुनाई देता है और जिनके व्यक्तित्व में कर्त्ता एंव कृति का तादात्म्य दिखाई देता है, सूरदास ने राधा- कृष्ण के प्रथम दर्शन में ही श्री राधा के मोहक लावण्य का आकर्षक रूपांकन किया, श्री कृष्ण ने विशालाक्षी श्री राधा को देखा, जिसके ललाट पर रोली, बिन्दु है, नीलाम्वर बेष्ट्रित देहयष्टि दीर्घ लहरेदार वेणि, अल्पव्यम और गौरवर्ण है, इस मनोरम रूप को देखते ही श्री कृष्ण रीझ गये।[1].

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राधा- कृष्ण की अनेक बन्दिश है। जिनमें उनके रूप का वर्णन मिलता है उनकी प्यारी छवि, ख्याल, ध्रुपद, धमार, ठुमरी तथा भजन में उनके श्रृंगार रस से परिपूर्ण शब्दो के समावेश में बन्दिशों की रचना देखी जा सकती है, उदाहरण के लिए **राग केदार की प्रसिद्ध ख्याल तीनताल** में निबंद्ध है:-

कान्हारे नंद नंदन।
परम निरंजन।।
हे दुखः भंजन।
कंठ बनी मोतियन की माला।।
पहरत मुद्रित भई ब्रजबाला।

सूरदास जी के अनुसार श्री कृष्ण गोपी बल्लभ है किन्तु श्री राधा उनकी विशेष प्रिया है, राधाकृष्ण की प्रेमलीला को उन्होने क्रमशः विकसित किया है और शेष, गोपीकृष्ण लीला से उसको भिन्न रखा है, श्री राधा की अभिलाषा पूर्ण हुई, कृष्ण मिले, राधा ने कृष्ण से अपनी मनोदशा और मनोव्यथा व्यक्त की, ब्रज मे इनके प्रेम की व्यापक चर्चा है सभी यही कहते हैं कि राधा- मोहन एक है.[2]

(2 पेज न. 82.) (पाण्डे मैनेजर, श्री कृष्ण कथा की परंम्परा और सूरदास का काव्य)

श्री कृष्ण की छवि व उनके मुरली की धुन को महसूस कर श्री राधा का हृदय आप्लावित हो जाता है, और श्री राधा अपने मन की दशा व्यक्त करते हुए श्री कृष्ण से कहती है 'छेड़ो न मोहे नन्द के लाल' प्रस्तुत है **राग कलावती में एक ताल में** निबद्ध रचना -

छेड़ो न मोहे नंद के लाल
मै तो हुँ तेरो गुण की दासी,
दौड़ी - दौड़ी आयी मे,
बॉसुरी की धुन सुन के आज,
जमुना के तट ना जाई
मधुर तान देत न सुनाई
तन मन धन न लाग्यो तेरो
सुध बुध सब खोई जाए।।

वास्तव में वह प्रेम और प्रेमी धन्य हैं, जो एकमात्र नंदनंदन के ही रंग में पूर्णरूप से रंग गए है, जिनका चित्त जगत के विनाशी प्रलोभनों और झुठे क्षणिक सुखों को भूलकर भी खोज नही करता, जिनके नयन सर्वत्र प्रियतम श्याम सुन्दर के दिव्य स्परूप को ही देखते हैं और जिनकी सारी इन्द्रियॉ सदा केवल उन्हीं का अनुभव करती हैं।

उन लाडली-लाल के रग - रग में संगीत का ही निवास है और हो भी क्यों नहीं, जब स्वयं महाभावा श्री राधा और रसराज श्री कृष्ण का मेल ही सातों स्वर, बाइसो श्रृतियॉ, तीनो ग्राम, सारे ताल, सब तो उन्ही 'नटराज नंदकुमार और भानुदुलारी श्री राधा' से प्रकट हुई है, उनके अपूर्व और दिव्य प्रेम में हर क्षण संगीत विद्यमान है और रहेगा[3]।

३ पोद्दार श्री भाई हनुमान प्रसाद जी - श्री राधामाधव चिनतन

गोकुल की सम्पूर्ण लीला प्रेममयी है किन्तु अनुरागी श्री कृष्ण और प्रेम प्रतिमा श्री राधा की प्रेमलीला अत्यन्त मनोहर है, राधा- कृष्ण की प्रेमलीला ही ब्रजलीला का केन्द्र है, श्री कृष्ण और श्री राधा एकदिन ब्रज की गलियों में अचानक मिले, एक ने दूसरे को देखा एक दूसरे के रूप पर रीझ गये और इससे जो प्रेम विकसित हुआ उससे सारा ब्रजमंडल प्रेममय हो गया, श्री कृष्ण में सौन्दर्य, वाकचातुर्य और आकर्षण शक्ति है जिससे राधा प्रभावित होकर कृष्णमय हो गयी।

माखन चोरी की लीला से ही गोपियों के हृदय में कृष्ण के प्रति अनुराग का उदय दिखाई पड़ता है, जो विकासशील है। गोपियॉ श्री कृष्ण के प्रेंम में विकल हैं, उनको पति के रूप में प्राप्त करने के लिए शंकर की पूजा करती है, श्री कृष्ण गोपियों की इस प्रेम भावना को जानते हैं और उनकी मनोभावना की पूर्ति के लिए संयोग के विभिन्न अवसरो का उपयोग करते है, कृष्ण यमुना स्नान के समय गोपियों की पीठ मिलते हैं, गोपियॉ प्रेम विवश हैं उनके अंग - अंग से कृष्ण प्रेम की ब्यंजना हो रही है, कृष्ण ने चीर हरण लीला के द्वारा गोपियों की कामना को सफल किया, उदाहरण स्वरूप वन्दिश है **राग देशकर में तीनताल** निबंध्द रचना

तुम परवारी कृष्ण मुरारी
इतनी हमारी सुनो बनवारी
लेकर चीर कदम पर बैठे
हम जल मॉझ उछाड़ी,

नंदनंदन श्री कृष्ण और 'कीर्तिकुँवर श्री राधा' की रासलीला मे मधुर स्वरों का आभास मिलता है, निम्मलिखित रचना से यह स्पश्ट होता है,

रागा मारूबिहाग एकताल (द्रुत)

आज कुंजन में रास रच्यो।
सखियन के संग।।
मधुवन में रास रच्यो।
कुँवर कन्हाई,
गोपियन के संग।।

कहा जाता है कि जैसे ही संगीतविद् भगवान श्री कृष्ण ने अपनी दिव्य बॉसुरी बजाई, वैसे ही उसी क्षण उनकी बॉसुरी सुनकर श्री राधा सहित सभी गोपियॉं अपना सुध - बुध खोकर श्री कृष्ण के उदेश्य में चल पड़ी। जो गोपियॉं श्री कृष्ण तक पहुँच नही पायी उन्होंने अपने गुणमय शरीर का त्याग दिया।

जहॉं प्रेम भक्ति के मूर्तिमान स्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु श्री राधा के भावो का स्मरण, श्रवण तथा गान करके ब्रह्मज्ञान शून्य होकर आनन्द राज्य में पहुँच जातें हैं और जहॉं 'श्री विद्यापति' सरीखे भावुक कवि बड़ी ही पवित्र भावना से मधुरतम भावों का गान करते हैं, वही अनेक प्रसिद्ध विद्वानो तथा प्रख्यात कवियों ने उन्ही प्रेंम - रसमय श्री राधा माधव का वर्णन साधारण नायक - नायिका के रूप में किया है, परन्तु श्री राधा और श्री कृष्ण का यह दिव्य प्रेंम रस वाणी तथा चित से अतीत है,

श्री कृष्ण और राधा का एक दूसरे के लिए सहज भाव से अनायास सब कुछ त्यागकर एक - दूसरे को सुख पहुँचाने में दत्तचित छलकता रहता है, दोनों के हृदय में अनुराग छलकता रहता है, दोनो ही उस दिव्य रस के अटूट स्रोत है, जो नित्य और अनन्त है, उस रस का त्रिकाल में भी कभी अभाव और अन्त नहीं होगा।

ठुमरी विधा में राधा-कृष्ण के प्रेम पद

डॉ. शालिनी सक्सेना

अतिथि व्याख्याता, तबला विभाग,
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,खैरागढ़,

श्री कृष्ण की लीलाओं के अध्यात्मिक सन्दर्भ पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि इनके द्वारा पृथ्वी लोक मनुष्य रूप में जन्म लेकर, मत्युपर्यन्त तदनुरूप जीवन यापन करते हुए विविध कार्यों को सम्पन्न करना ही उनकी लीलाएँ हैं जो मानव जीवन हेतु आदर्श स्वरूप स्थापित हैं। वैसे तो श्रीकृष्ण की लीलाएँ अनन्त हैं जिनमें गूढ़ रहस्य छिपे हुए हैं। इनमें असुर वध लीलाएँ, माधुर्य एवं श्रृंगारिक लीलाएँ, विस्मयकारी लीलाएँ, उद्धार लीलाएँ आदि के अतिरिक्त अनेक विशेष लीलाएँ हैं, जो हमारे काव्य ग्रन्थों एवं कलात्मक अंकनों के प्रमुख आधार रहे हैं। भारतीय संगीत में कृष्ण के श्रृंगारिक प्रेम प्रसंग लीलाओं का वर्णन मिलता है। गायन शैली की सुप्रसिद्ध विधा ठुमरी गायन शैली में राधा-कृष्ण के पदों को भावाभिव्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। ठुमरी में कृष्ण के चंचल स्वभाव राधा के साथ छेड़-छाड़ का मनोहारी चित्रण को बड़े भाव के साथ गाया जाता है।

ठुमरी शब्द का व्यवहार हिन्दुस्तानी संगीत की एक विशेष गेय विधा के लिए किया जाता है। ठुमरी का उद्‌गम, विकास और प्रचार हिन्दी क्षेत्र से हुआ और सभी पुरानी ठुमरियां हिन्दी की उपभाषाओं में ही मिलती है। ठुमरी मूलतः ब्रज भाषा का शब्द माना जाता है। ठुमरी की बहुत सी पुरानी रचनाएँ ब्रजभाषा में मिलती हैं। इसमें ब्रज के प्रेम और श्रृंगारमयी कृष्णलीला और उससे सम्बन्धित कथक नृत्य से ठुमरी का अत्यंत घनिष्ठ संबन्ध रहा है।

ठुमरी शब्द ठुमरी इन दों शब्दों के योग से बना है। ठुम शब्द 'ठुमकत चाल' अर्थात 'राधा जी की चाल' तथा री शब्द का अर्थ 'रिझावत' अर्थात 'भगवान कृष्ण के मन को रिझाने' की ओर इंगित करता है। अतः ठुमरी शब्द में 'राधा के ठुमक कर चलते हुए कृष्ण के मन को रिझाने की अभिव्यंजना है।

प्रसिद्ध ठुमरी गायक स्व. गिरिजाशंकर चक्रवर्ती के मतानुसार ठुमरी शब्द की व्युत्पत्ति ठुमक और रिझाना से हुई है। ठुमक 'लय' का और रिझाना 'अर्थभाव' का द्योतक होने के कारण ठुमरी शब्द 'लयकारी और भावाभियंजना' दोनों को व्यक्त करता है। अतः ठुमरी शब्द के अर्थ बहुत से विद्वानों ने अपने अनुसार बताए हैं, परन्तु विस्तृत रूप से विचार करने पर ठम, ठमक अथवा ठुम, ठुमक शब्दों के अन्तर्गत तीन गुण दिखाई देते हैं। पहला 'हर्षोत्फुल्लता' या उमंग' दूसरा 'थोड़े- थोड़े समय के अंतर पर रूकावट' और तीसरा 'आघातमूलक गुंजनपरक ध्वन्यात्मकता'।

उच्चारण, ध्वनिसाम्य और अर्थ में एक दूसरे के पर्यायवाची होने पर भी जिस प्रकार ठं शब्द से ठुं शब्द में अधिक सूक्ष्मता और लघुता का भाव दिखाई देता है। उसी प्रकार ठम की अपेक्षाकृत ठुम शब्द से किंचित लघु और मृदुतर ध्वनि का आभास होता है। इसलिए नृत्य वर्णन के अन्तर्गत, जहाँ गुजराती और बंगला आदि भाषाओं के काव्यों में ठम, ठमक या ठमकि का प्रयोग है, वहाँ ब्रजभाषा के काव्य में ठुम,

ठुमक या ठुमकी शब्द के प्रयोग की अधिकता है जैसे-

गुजराती - **'इहाँ ठम ठम ठमके रे'** (नरसी मेहता)

बंगला - **'धनि ठमक ठमक चली जाए'** (वैष्णव पदावली)

ब्रज भाषा - **'पियारी चले ठुम ठुम चाल है'** (गहर गोपाल)

'ठुमक चलत गत ललित त्रिभंगी' (मदन गोपाल)

अतः ठुमरी एक श्रृंगारिक गीत है जिसमें राधा कृष्ण के प्रेम प्रसंग व उनकी छेड़-छाड़ का अद्‌भुत वर्णन देखने को मिलता है जिसे गायक व नृतक अपनी कला द्वारा भावाभिव्यक्ति करते हैं।

ऐसे तो ठुमरी में अलग-अलग जगह की बोली भाषा का प्रयोग किया गया है परन्तु विशेष रूप से ठुमरी लखनऊ, बनारस एवं पंजाब में विकसित हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में लखनऊ के सुप्रसिद्ध ठुमरीकार 'कदरपिया' ने ठुमरी में कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन किया है जो की मिश्रित जनबोली में है। आज ठुमरी रचनाओं की भाषा का जो व्यापक रूप हमारे सामने है, उसमें साधारणतः ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी, अवधी तथा कहीं-कहीं उर्दू का प्रभाव परिलक्षित होता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है-

ब्रजभाषा में ठुमरी -

स्थाई- बाकी छवि दिखलाय साँवरों, मेरो मन ठगौ री।

अंतरा- भौंहें कमान, बान पलकन, बेघत प्रान हियौ री।।

इस ठुमरी में श्रीकृष्ण के सुन्दर रूप, साँवला रंग तथा भौंहें कमान के समक्ष हैं जो हर किसी के मन को हर लेती हैं, ऐसा मनोहारी वर्णन किया गया है।

ठुमरी का यह उदाहरण 'वाज़िद अली शाह' अख़्तर द्वारा रचित ठुमरी का है, जिसमें ब्रज भाषा की प्रधानता है-

मोरी आली, मैं पनिया कैसे जाऊँ री।
सखी री, नागर नटखट मुकुट वारौ,
मोसो करत ढिठाई बंसी बट जमुना तट,
पनिया कैसे लाऊँ री।

जहाँ तक ठुमरी की विषय वस्तु का संबन्ध है, वे विविध प्रकार के होते है, जिनमें साधारण नर-नारी के लौकिक प्रेम अथवा भक्ति मार्गीय तथा सूफ़ी व रहस्य-मार्गीय संतों के अलौलिक ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है। भक्ति मार्गीय प्रेमाभिव्यक्ति के लिए प्रायः ठुमरियों में नायक के रूप में कृष्ण और नायिकाओं के रूप में राधा व गोपियों को प्रतिष्ठित किया गया है। एक ठुमरी का उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें राधा व गोपियों की विरह व्यथा को दर्शाया गया है-

स्थाई- श्याम के संदशों ऊधो, पाती ना पठाइ रे।
अन्तरा- गोकुल उजाड़ गए, मथुरा बसाई रे।
कुबरी से प्रीति कर राधा बिसराई रे।।

अनेक ठुमरियाँ ऐसी हैं जिनमें कृष्ण और राधा के नखशिख व रूप का वर्णन भी पाया जाता है-

स्थाई- लचक लचक मोहन आवे।
भावे मन अधर मुरली, मधुर मधुर बाजे।।

अन्तरा- श्रवण कुण्डल चपल डोलन, मोर मुकुट चन्द्र किरन
मंद हसन जिया ही बसन, मोहनी मुरति राजे।।

होली के पर्व से संबंधित गीतों में होली क्रीड़ा का वर्णन देखने को मिलता है। ऐसी बहुत सी ठुमरियाँ हैं जिसमें राधा-कृष्ण की होली की छेड़-छाड़ का वर्णन है-

स्थाई- मोपै डारि गयौ सारी रंग की गगर।
कैसो धोखा दियौ, मैं तो भूले से देखन लागी उधर।।
अन्तरा- बिना रंग डारे जाने न दूंगी।
श्याम कहो तुम जात किधर।।

एक अन्य ठुमरी जो राग भैरवी में बहुत प्रसिद्ध है-

बांट चलत नयी चुनरी रंग डारी,
ऐसो है बेदर्दी बनवारी।

पारंपरिक ठुमरियों के अतिरिक्त मध्यकालीन संत कवियों द्वारा रचित कुछ पदों को ठुमरी शैली में गाया जाता है जिसमें कृष्ण प्रेम का वर्णन देखने को मिलता है। कृष्ण भक्त संत कवि सूरदास के पद को भैरवी में ठुमरी के रूप में गाए जाने की परंपरा है-

मुरलिया कौन गुमान भरी
सोने की नाहीं, रूपे की नाहीं, नाही रतन जरी
जड़ तोरी जानूँ पेड़ पहचानू, मधुबन की लकरी
कबहूँ मुरलिया प्रभू कर सोहे, कबहूँ अधर धरी
सूरदास प्रभू अधरन बैठी, याही तैं गरब भरी।

सुप्रसिद्ध कृष्ण भक्त मीराबाई का यह पद राग पीलू की एक पुरानी ठुमरी के रूप में प्रसिद्ध है-

स्थाई- पपिहा रे पी की बोली न बोल।
अंतरा- जो सुन पावे कोई विरहा की माती, डारेगी पंख मरोर।

उत्तर प्रदेश की क्षेत्रीय लोक भाषाओं से प्रभावित होकर उपरोक्त ठुमरी में थोड़े शब्द परिवर्तन भी किए गए हैं।

इस प्रकार व्यापक दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि संगीत में राधा-कृष्ण की छवि, श्रृंगारिकता, प्रेम-प्रसंग आदि का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है, परन्तु गायन में ठुमरी विधा में मुख्यतः श्रृंगारिक पदों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है इसलिए ठुमरी के पदों में राधा-कृष्ण के प्रेम भाव को गायन शैली द्वारा प्रकट किया गया है। इसके अतिरिक्त भी अन्य विषयों पर भी ठुमरी की रचनाएँ है परन्तु विशेष तौर पर राधा-कृष्ण पर आधारित ठुमरियाँ बहुत लोकप्रिय हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1 शुक्ल, शत्रुघ्न, ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ, पृ. 1,211
2 Pant Chandra Shekhar, Literary Aspect of Thumri, Kala Bharti Thumri Sammelan magazine 1965, P. 42
3 Willard, N. Augustus, A treatise on the music of Hindustan of the various species, p. 103
4 Bose, Sunil K. , Thumri- The Love lyrics on Radha and Krishna, p.1

सामाजिक समरसता और राधा कृष्ण

प्रा. डॉ. सुरेखा मंत्री

श्रीमती नानकीबाई वाधवानी कला महाविद्यालय, वतमाल

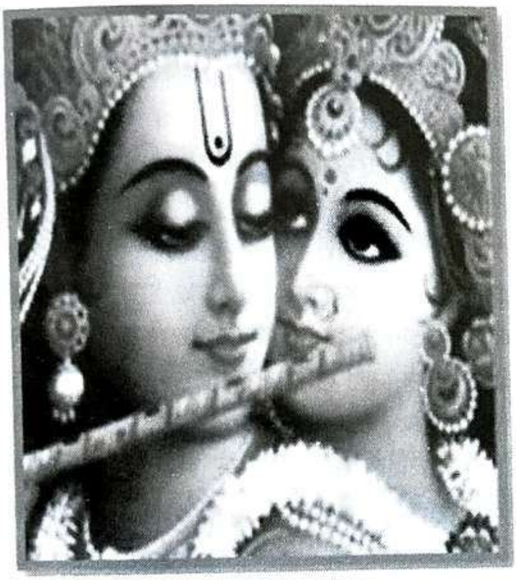

राधा और कृष्ण यू तो जन्म जन्मांतर के प्रेमी है। पुराणों के अनुसार गोलोक में दोनो साथ रहते है लेकिन कृष्ण ने जब मथुरा में अवतार लिया तो राधा का जन्म बरसाना में हुआ। कंस के कोप से बचने के लिए कृष्ण के पिता ने उन्हें नंदगांव पहुँचा दिया जहॉ से बरसाना गांव महज चार मील की दूरी पर था। जब राधा और कृष्ण कुछ बडे हुए तो एक दिन बरसाना और नंदगांव के बीच में एक स्थान पर दोंनो पहुँचे। यहा पहली बार अवतार लेने के बाद राधा और कृष्ण का मिलन हो रहा था। एक दूसरे को देखने के बाद दोंनो में सहज ही एक दूसरे प्रति आकर्षण बढ गया। यही से राधा कृष्ण के प्रेम लीला की शुरूआत हुई। माना जाता है कि अवतार लेने से पहले ही राधा कृष्ण ने इस स्थान पर मिलने की योजना बनाई थी। इसलिए बरसाना को संकेत स्थान नाम से जाना जाता है।

श्रीकृष्ण एक हिंदू देवता है। कृष्ण को गौडाय वैष्णव धर्मशास्त्र में अक्सर स्वयं भगवान के रूप में माना गया है और राधा एक युवा नारी है, एक गोपी जो कृष्ण की सर्वोच्च प्रेयसी है। धीरे-धीरे कदंब-कुंजों में गॉव की गलियों में पनघट पर यमुना तट पर कृष्ण और राधा की भेट होती है और प्रेम अंकुरित होता है। कृष्ण के साथ राधा को सर्वोच्च देवी स्वीकार किया जाता है और यह कहा जाता है कि वह अपने प्रेम से कृष्ण को नियंत्रित करती है। यह माना जाता है कि–''कृष्ण संसार को मोहित करते है, लेकिन राधा उन्हें भी मोहित कर लेती है। इसलिए वे सभी की सर्वोच्च देवी है।''

कृष्णराधा की प्रेम कहानी अमर है। चरवाहे कृष्ण का गोपी राधा के साथ प्रेम संबंध ऐतिहासिक और बहुत समय से प्रसिध्द है, हजारों लोग जो इनकी इस अमर प्रेम कथा की सराहना करते है, कभी ना कभी बस इस बात पर चिंतित हो उठते है कि ''कृष्ण और राधा ने विवाह क्यो नही किया?''कृष्ण ने राधा से शादी क्यो नही की? पर इस बारे में भिन्न-भिन्न लोगों से किये एक सर्वेक्षण से उनके कई विचार सामने आये तो आइये इस दिलचस्प विषय के बारे में जानते है-

मधुराव ने कहा-''भगवान कृष्ण ने राधा से इसलिये शादी नही की ताकि साबित कर सके कि प्रेम और विवाह दो अलग-अलग बाते है, प्यार एक निःस्वार्थ भावना है, जब कि विवाह एक समझौता या व्यवस्था है।''

प्रतीक कुमार कहते है-"राधा यह जान चुकी थी कि कृष्ण परमेश्वर है और वह एक भक्त के रूप में उनके साथ प्यार में थी और भक्ति भाव में खोई हुयी थी, जिसे लोगों ने प्यार समझ लिया था मीराबाई की तरह।"

जय बागरी का कहना है-"प्रेमियों के रूप में राधा और कृष्ण की कहानी मध्यकालीन युग के दौरान भक्ति आंदोलन के बाद से लोकप्रिय है। कवियों ने इस आध्यात्मिक संबंध को एक भौतिक रूप दिया है और औसत दशकों के लिये उस तस्वीर को विकृत कर दिया। प्राचीन प्रार्थना रूक्मणि, सत्यभामा श्रीकृष्णमसरा में राधा का कोई जिक्र नही है। वे कहते है कि दस साल की उम्र तक ही राधा को जानते थे, उसके बाद वह नंदनवन के लिये कभी लौटे ही नही और ना ही राधा द्वारका गयी।"

राधाकृष्ण को दो भागों में बाटा जा सकता है-जिस प्रकार कृष्ण विष्णु के आठवे अवतार और उनकी सहचरी राधा वृंदावन में कृष्ण के बाएँ तरफ खडी राधा के साथ चित्रित किया जाता है, जिनकी छाती पर लक्ष्मी विराजमान है। कहने का तात्पर्य यह है, कि शक्ति और शक्तिमान की आम व्युत्पत्ति, अर्थात भगवान में स्त्री और पुरूष सिध्दांत का अर्थ है कि शक्ति और शक्तिमान एक ही है। हर देवता का अपना साथी, अर्धांगिनी या शक्ति होती है और उस शक्ति के बिना उन्हें कभी-कभी अपरिहार्य शक्ति के बिना माना जाता है। हिंदू धर्म में यह असामान्य बात नही है कि जब किसी एक व्यक्तित्व के बजाय एक जोडी की पूजा से भगवान की पूजा की जाती है, राधाकृष्ण की पूजा ऐसी ही है। वह परंपरा जिसमें कृष्ण की पूजा स्वयं भगवान के रूप में की जाती है, उस परंपरा में शामिल है उनकी राधा का संदर्भ और गुनगान जिन्हें सर्वोच्च के रूप में पूजा जाता है। इस विचार को स्वीकार किया जाता है कि राधा और कृष्ण का संगम, शक्ति के साथ शक्तिमान के संगम को इंगित करता है।

"मन से मन का मेल सही है, प्रीत ऐसे ही दिल में जले
राधा ने जब कृष्ण को देखा, ऑखों में सौ दीप जले
होठों पर ठहरी बातों को, नयनों की भाषा मिले।"

सखा भाव पर आधारित राधाकृष्ण का प्रेम अमर है। कला की हर विधा में इस प्रेम का चित्रण मिलता है। असंख्य गोपियों के संग रास रचने वाले, रूक्मणि, सत्यभामा के पति और मीराबाई की भक्ति में रची रचनाओं के पात्र थे कृष्ण। खुद से बडी उम्र की राधा से उनके प्रेम को सामाजिक मान्यता मिली, यहॉ तक कि उनका नाम ही राधा के साथ लिया गया। राधा और कृष्ण के इस प्रेम ने कई मायनों मे परंपराओं को तोडा था। महाकवि सूरदास के प्रभु महाभारत में अर्जुन के मार्गदर्शक, राधा के शाश्वत प्रेमी और द्रौपदी की लाज बचानेवाले कृष्ण संभवतः स्त्री पुरूष समानता के प्रबल पक्षधर भी थे। गोविंददास, चैतन्य महाप्रभु और गीत गोविंद के रचनाकार जयदेव की रचनाओं में राधाकृष्ण के इस प्रेम का चित्रण बखूबी देखने मिलता। कृष्ण काव्य और विशेषतया सूरदास के राधा और कृष्ण के जीवन के श्रृंगारिक पक्ष का चित्रण था। कृष्ण काव्य में जाने कौन-सा जादू था जो खत्री वधू पर मोहित होनेवाले नंददास, वणिक पुत्री पर आसक्त रसखान और सुजान वैश्या के विश्वासघात से व्यथित घनानंद सभी ने वैष्ण काव्य में ही शांती पायी थी। उसमें सहज जीवन का सौन्दर्य था, एक स्वस्थ सौन्दर्य, जो मनुष्य की चेतना को उर्ध्वमूखी बनाता था, एक ऐसा सौन्दर्य जो अपने अंक मे शिवम् को छिपाये हुए था।

भगवान श्रीकृष्ण के पहले हमेशा भगवती राधा का नाम लिया जाता है। कहते है कि जो व्यक्ति राधा का नााम नही लेता है सिर्फ कृष्ण-कृष्ण रटता है, वह उसी प्रकार अपना समय नष्ट करता है, जैसे कोई रेत पर बैठकर मछली पकडने का प्रयास करता है। जो भक्त राधा का नाम लेते है भगवान श्रीकुष्ण सिर्फ उसी की सुनते है। इसलिए कृष्ण को पुकारना

है तो राधा को पहले बुलाओं। जहाँ श्री भगवती राधा होंगी वहाँ कृष्ण खुद ही चले आयेगे। पुराणों के अनुसार भगवान कृष्ण स्वयं कहते है कि राधा उनकी आत्मा है। वह राधा में और राधा उनमें बसती है। कृष्ण को पंसद है कि लोग भले ही उनका नाम नही ले लेकिन राधा का नाम जपते रहे। आरंभ से भक्ति करना सर्वश्रेष्ठ है। गीता ज्ञानयोग से कर्मयोग को और कर्मयोग से भक्ति योग को सर्वश्रेष्ठ मानती है। भगवान में प्रेम होने का नाम 'भक्ति' है। प्रेम के समान कोई चीज है ही नही। प्रेम के बिना ज्ञान सूखा है। यदि प्रेम शरीर मे है तो भले ही ब्रम्हा की बातें कर लो,कुछ लाभ नही। ऐसे ही भगवान का प्रेम बडां है, भगवान नही।

एक प्रश्न जरूर उठता है। वह है प्रणय में मर्यादा का ! इस विषय में हमें सदा यह ध्यान रखना होगा कि कृष्ण की ये श्रृंगारिक लीलीऍ सांकेतिक है, प्रतीकात्मक है, वे नैतिक या सामाजिक दृष्टि से नही लिखे गये थे। राधा और कृष्ण के सारे चित्रण हे बाद सूर ने कहा था-

"तब नागरि मन हरषि गयी,
आदि पुरूष वे, प्रकृति रूप हौं, काहे बिसरी गयी।"

अर्थात यह सारा आख्यान वास्तव में सांख्य का रूपक है। वैसे तो हर पुरूष के हृदय में राधा है और हर नारी के हृदय में कृष्ण और सभी हृदय में वृंदावन है। भावनाओं का महारास कहाँ नही होता और उल्लास की 'शरदोत्फुल्ल मल्लिका' कहाँ नही खिलती! सूर के काव्य की सबसे बडी सुंदरता है कि कृष्ण और राधा के मानवीय रूप और अलौकिक संकेतो का इतना अच्छा गुंफन किसी कवि ने नही किया है, वो सूरदासजी ने कर दिखाया। व्यापक सत्य और सौर्वभौमिक दार्शनिक तत्वों को व्यक्तियों में समरसता के साथ गूँथ दियाा।

इस घटना से पता चलता है, कि राधा और कृष्ण के बीच का प्यार समर्पण जादा था और कोई भी रिश्ता इतना शक्तिशाली नही था जो उन्हें बांधने का सामर्थ्य रखता हो, वे दोनों एक ही है। सच्चे प्रेम का सबसे अच्छा उदाहरण है। राधा ने कृष्ण को भक्ति से जीता और सच्ची भक्ति ही प्रेम है। जो कृष्ण की सर्वोच्चता राधा-कृष्ण के रूप में चैतन्य की पहचान स्वयं की वास्तविकता, नित्यता, सर्वप्रथम और महत्वपूर्ण रूप से एक व्यक्ति के रूप में एकमात्र सत्य और ईश्वर तक पहुँचने की घोषणा करता है।

संदर्भ ग्रंथ-

1 हिंदी साहित्य का इतिहास-डॉ. नगेन्द्र
2 कृष्ण को याद आया नंदगांव- आई. बी. एन. खबर
3 कुछ मेरी कलम से कविता संग्रह

प्रेम-साधना में राधा कृष्ण

डॉ. रंजीता

व्याख्यात्री, संगीत विभाग
शासकीय महाविद्यालय, गुलजारबाग, पटना

कल्याण के भगवत् प्रेम अंक में कहा गया है–

''जित देखौं तित स्याममई है।
स्याम कुंज बन, जमुना स्यामा, स्याम गगन, घनघटा हुई है।।
सब रंजन में स्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है।
मैं बौरी, की लोगन ही की स्याम पुतरिया बदल गई है।।
चंद्रसार रबिसार स्याम है, मृगमद स्याम काम बिजई है।
नीलकंठ को कंठ स्याम है, मनों स्यामता बेल बई है।।
श्रुति को अक्षर स्याम देखियत, दीप सिखा पर स्यामतई है।
नर-देखन की कौन कथा है, अलख-ब्रह्म-छवि स्याममई है।।

स्याम से प्रेम सिर्फ राधे का नहीं संपूर्ण जगत का है। प्रेम का प्रस्फुटन ही भगवद्भक्ति है। प्रेम भगवान् का साक्षात स्वरूप ही है। कल्याण के भगवत् प्रेम अंक में लिखा है कि ''वास्तव में प्रभु रसरूप है। श्रुतियों में भी परमपुरूष की रसरूपता का वर्णन मिलता है- 'रसौ वै सः। प्रेम का निजी रूप रसस्वरूप परमात्मा ही है। इसीलिए जैसे परमात्मा सर्वव्यापक है, वैसे ही प्रेम तत्व (आनन्द रस) सर्वत्र व्याप्त है। हरेक जन्तु में तथा हरेक परमाणु में आनन्द अथवा रसस्वरूप प्रेम की व्याप्ति है। संसार में बिना प्रेम या आनंदरस के एक-दूसरे से मिलना नहीं हो सकता। स्त्री, पुत्र, मित्र, पिता, भ्राता, पशु-पक्ष आदि में भी प्रति या स्नेह इस प्रेमरस की व्याप्ति के कारण ही है।

इसलिए यह शाश्वत सत्य है कि ईश्वर में प्रेम होना ही विश्व से प्रेम होना है क्योंकि समस्त प्राणियों में भगवान ही सबके आत्म स्वरूप से विराजित रहते हैं।

योगी पुरूष को संपूर्ण संसार एक वासुदेव रूप ही दिखता है क्योंकि उसमें समान भाव का बीज उत्पन्न होता है और पल्लवित पुष्पित होता रहता है। उद्धव जी भगवान् श्री कृष्ण के सखा भक्त थे। एक बार श्री कृष्ण ब्रज से मथुरा आए थे तो उन्हें ब्रज की गोपियों की चिंता सता रही थी। वे सोच रहे थे कि हमारे विरह के कारण ब्रज में गोपियाँ भी व्याकुल होंगी, इसलिए उन्होंने उद्धव को भेजा कि गोपियों से कहिए कि मैं सर्वव्यापक, मुझसे प्रेम करोगे तो मुझे सर्वत्र देखोगे। वृंदावन की समस्त भूमि पर श्रीकृष्ण विराजमान है। उद्धव जी श्रीकृष्ण के ऐसे प्रेम वचन को सुनकर अपना सारा ज्ञान भूल गए और कहने लगे कि भगवन् मैं आपसे एक क्षण भी अलग नहीं रहना चाहता।

श्री राधा तो श्रीकृष्ण के लिए प्रेममूर्ति स्वरूप हैं। यही आद्याशक्ति हैं। श्रीराधा प्रेमतत्व का सूक्ष्म दर्शन करने वाली प्रेमस्वरूपा है। जिनके भाव भगवान् के लिए जैसे है, उन्हें वैसा ही भाव भगवान की ओर से भी मिलता है। गुरू रामदास जी कहते हैं कि-

"जिसके पास जैसा भाव है, उसके लिए भगवान् भी वैसे ही हैं। वे अन्तर्यामी प्राणिमात्र के हृदय के भावों को जानते हैं। उनके साथ छल का भाव होगा तो वे भी महाछली होंगे। जिसका शुद्ध भाव होगा, उसके साथ वे भी प्रेम करेंगे, क्योंकि वे तो 'जैसे-को-तैसे' है। जो जिस प्रकार भजन करेगा, उसका वह वैसा ही समाधान करेंगे। भाव में जरा-सी भी न्यूनता होगी तो वे दूर रहेंगे। जिस भाव का प्रतिविंब हृदय में है, भगवान् वैसे ही बन जाते हैं। जो उनका जैसा भजन करता, भगवान् वैसा ही फल देते हैं।

यही अनन्य प्रेम राधा के कृष्ण के प्रति एवं कृष्ण का राधा के प्रति रहा। राधा, श्रीकृष्ण के प्रेम की अनन्य उपासक थीं। प्रेम के प्रतिबिंब स्वरूप श्रीकृष्ण भी राधा के इस प्रेम को अनन्य शाश्वत प्रेम में परिणत कर दिया। इसलिए राधा-कृष्ण की प्रेमलीला, रासलला कभी खत्म नहीं हो सकती। यह प्रेम तो सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है। भगवद्भक्ति, प्रेममयस्वरूप, सृष्टि का परिचायक है। वास्तव में राधा-कृष्ण के प्रेम की पूर्णता नहीं। प्रेममय स्वरूप परमब्रह्म है।

भोजपुरी संगीत परम्परा में कृश्ण लीला

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

संगीत विभाग

जयनारायण व्यास विष्वविद्यालय, जोधपुर

राधा और कृष्ण का प्रसंग समस्त पौराणिक कथाओं से अधिक रोचक है। देश के कोने-कोने में यह कथा बसी हुई है। गुजरात में स्त्रियाँ गरबा नाच राधा-कृष्ण के लिए ही नाचती हैं। दक्षिण में कथककली के नर्तक, मणिपुर में रास रचाने वाले और उत्तर प्रदेश में कृष्ण लीला करने वाले सब कृष्ण-भक्त हैं। मन्दिरों में तीर्थों पर त्यौहारों के अवसर पर राधा-कृष्ण का पूजन होता है। गाँवों में चित्रकार राधा-कृष्ण के चित्र आँकते हैं। कुम्हार मिट्टी के बर्तनों पर नाचती हुई राधा और मुरली बजाता हुआ कृष्ण बनाते हैं, स्त्रियाँ ओढ़नियों और फुलकारियों पर इनकी मूर्तियाँ काढ़ती है। उडीसा में जगन्नाथपुरी के आस-पास के गाँवों के कलाकार ताश के पत्तों के पीछे भी राधा-कृष्ण के चित्र बनाते हैं।

मथुरा और वृन्दावन में कृष्ण लीला पूरे एक महीने तक खेली जाती है। इस अवसर पर यात्रियों का भारी जमाव होता है। खेलने वाले कलाकार दर्शकों की भीड़ को नाटक से सम्बन्धित सब स्थानों पर लेकर जाते हैं, कभी-कभी वन में, कभी पुराने मन्दिर में, कभी यमुना के तट पर, कभी किसी ध्वस्त ऐतिहासिक महल में। यहाँ वे कृष्ण के जीवन की भिन्न-भिन्न घटनाएँ खेलते हैं। दर्शक यात्रा करते हैं, पाठ सुनते हैं और नाटक देखते हैं। कई स्थानों पर राजा और धनिक लोग प्रतिवर्ष कृष्णलीला करवाते हैं, उत्तर प्रदेश में हाथरस की कृष्ण लीला सारे देश में प्रसिद्ध है। कृष्ण के भक्त और लीला के रसिक दूर-दूर से इस अवसर पर आते हैं। अल्पवस बालक, 'जो कृष्ण राधा और गोपियाँ बनते हैं। लीला के आरम्भ होने के एक माह पूर्व आकर मन्दिर ठहरते हैं ताकि वे पवित्र हो जाएं। वहाँ के उद्यान, सरोवर, मन्दिर, गलियाँ और चौगान एक महान रंगमंच के भिन्न-भिन्न कार्य-स्थलों में परिवर्तित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए कृष्ण और कलियानाग नाथने और गोपियों के वस्त्र चुराने वाले दृश्य किसी नदी या सरोवर के किनारे पर प्रस्तुत किए जाते हैं।

भारतीय साहित्य एवं कला में कृष्ण एक ऐसे चरित्र नायक रहे हैं जो न केवल अपनी लीलाओं के लिए विख्यात हैं बल्कि दर्शन साहित्य और राजनीति में भी उनका प्रवेश निःसंदेह प्रभावी रहा। मध्यकालीन उत्तर भारत में कृष्ण लीलाएँ अपने लौकिक रंगमंच का विषय बनी। रासलीला उसी परम्परा की संपत्ति है। इस रासलीला और कृष्ण लीला का सम्बन्ध न केवल श्रीमद्भागवत् से है बल्कि द्विवेदी जी का अनुमान है कि भागवतमहापुराण में कृष्ण लीला की जो परम्परा अभिव्यक्त हुई है उससे भिन्न एक और भी परम्परा थी। जिसका प्रकाश जयदेव के गीत गोविन्द में हुआ। भगवत् परम्परा की रासलीला शरद पूर्णिमा को हुई थी। गीत गोविन्द परम्परा का रास बसन्त काल में हुआ। सूरदास आदि परवर्ती भक्त कवियों में ये दोनों परम्पराएँ एक दूसरे से गुंथकर एक हो गयी है। ब्रज तो इन लीलाओं का केन्द्र रहा है। द्वापर में भगवान कृष्ण का अविर्भाव होते ही

समय के पश्चात् जन-जन में उनकी लीला अभिनय को रूप में प्रश्रय पाने लगी। दानलीला, मानलीला, माखनचोरी, ग्वाल-बालों के साथ ठिठोली आदि के अभिनय एवं अष्टछाप कवियों की रचनाओं पर विशेषतः सूर के पदों का आधार लेकर विविध लीलाएँ की जाती रही हैं। 15 वीं- 16 वीं शताब्दी में ब्रजभूमि में यह परम्परा नये उत्साह के साथ प्रकट हुई। नन्ददास, ब्रजवासीदास, ध्रुवदास आदि भक्तों ने रासो की रचना कर रास-परम्परा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जहाँ कहीं भी रासलीला का प्रदर्शन होता है श्रद्धालु जनता मंत्र मुग्ध होकर देर तक बैठी रहती है। पात्रों के पद्यात्मक संवाद लोगों को प्रभावित करते हैं, रासलीला के नायक कृण और प्रधान नायिका राधा होती हैं। राधा गोपियों के साथ मंच पर प्रवेश करती है। खलनायक कंस है जो नटनागर कृण का एकदम विरोधी है अतः उसके संवाद पद्यबद्य न होकर गद्यमय होते हैं।

कृष्णलीला की उत्पत्ति के विषय में श्रीमद्भागवत् की यह कथा उल्लेखनीय है, जिसमें राधा एवं अन्य गोपियों में अंहकार और अभिमान उत्पन्न होने के कारण प्रधान नायक कृष्ण अर्न्तध्यान हो जाते हैं। उन्हें स्मरण करने और उनकी लीलाएँ करने से वे पुनः प्रकट हुए। इससे कहा जाता है कि रासलीला की उत्पति वियोग श्रृंगार से हुई।

भोजपुरी क्षेत्र विशेषतः काशी अथवा बनारस में कृष्णलीला का मंच अत्यन्त साधारण कोटि का होता है। मन्दिर अथवा किसी उँचे स्थान को इस आयोजन के लिए चुन लिया जाता है। इन स्थानों के आभाव में ऊँचे तख्तों और बाँसों के सहारे कपड़े बांध कर मंच बना लेना कठिन नहीं होता। पात्र परदे के पीछे से आते रहते हैं। दृश्यान्तर की सूचना पात्रों के चले जाने पर कोई निर्देशक देता है। रंगभूमि में एक गायक और वादक बैठे होते हैं और सामने प्रेक्षकों के लिए खुले आकाश का प्रेक्षागृह रहता है। वास्तविक कृष्णलीला आरम्भ होने से पूर्व उपस्थित जनता के मनोरंजनार्थ रंगभूमि में भजन-गान, ढोलक, मंजीरा, हारमोनियम, सितार आदि के साथ होता रहता है। लीलारम्भ से कुछ पहले सूत्रधार की भाँति एक ब्राह्मण या पुरोहित व्यवस्थापक के रूप में आता है जो राधा कृष्ण की दिखलायी जाने वाली लीला का निर्देश करता है, और उसके पात्रों और लीला (कथा) की प्रशंसा कर प्रेक्षकों को उनकी ओर आकृष्ट करता है। तत्पश्चात् परदा उठता है, और राधाकृष्ण की युगलछवि की आरती की जाती है, आरती के समय रंगभूमि के गायकादि तथा प्रेक्षक उठ खड़े होते हैं, परदा फिर गिरता है और उसके अनन्तर निश्चित लीला का कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता है। पात्रों में राधाकृष्ण और गोपिकाएँ रहती है, बीच-बीच में हास्य का प्रसंग भी रहता है, विदूषक के रूप में मनसुखा रहता है जो विभिन्न गोपिकाओं के साथ प्रेम एवं हंसी की बातें करके कृष्ण के प्रति उनके अनुराग को व्यंजित करता है, साथ ही दर्शकों का भी मनोरंजन करता है। जब कभी परदे के पीछे नेपथ्य में अभिनेताओं को केशविन्यास या रूपसज्जा करने में विलम्ब होता है तो उस अवकाश के क्षणों के लिए कोई हास्य या व्यंग्यपूर्ण दो पात्रों के प्रहसन की योजना कर ली जाती है किन्तु यह कार्य लीला से सम्बन्धित नहीं होता। लीला में हास्य का पुट और श्रृंगार का प्राधान्य रहता है। उसमें कृष्ण का गोपियों-सखियों के साथ अनुरागपूर्ण वृत्ताकार नृत्य होता है। कभी कृष्ण गोपियों के कार्यों एवं चेष्टाओं का अनुकरण करते हैं और कभी गोपियाँ कृष्ण की रूप चेष्टादि का अनुकरण करती है और कभी राधा सखियों के कृष्ण की रूप-चेष्टाओं का अनुकरण करती है, यही लीला है। इन लीलाओं की कथावस्तु प्रायः राधाकृष्ण की प्रेम क्रीड़ाएँ होती हैं, जिनमें सूरदास आदि कृष्ण भक्त कवियों के भजन गाये जाते हैं। कार्य की अधिकता नहीं, वरन् पद-प्रधान, संवाद, सौन्दर्य, नृत्य, गीत, वेणुध्वनि, ताल, लय, रस की अबाध धारा बहती रहती है। रंग-संकेतों के लिए पर्दे के पीछे निर्देशक रहता है, जो अभिनेताओं के भूल जाने पर संवादो के वाक्य या भजन एवं पद

की पंक्ति स्मरण करा देता है। लीला में अभिनय कम संलाप अधिक रहता है। कृष्ण धीर-ललित नायक होते हैं जो समस्त कलाओं के अवतार माने जाते हैं। राधा उनकी अनुरंजन शक्ति के रूप में दिखायी जाती है। वहीं समस्त गुणों एवं कलाओं की खान नायिका बनती है। गोपियाँ-सखियाँ सभी प्रगाढ़ यौवना ओर भावप्रगल्भा होती हैं। उनमें शोभा, विलास, माधुर्य कान्ति, दीप्ति, विच्छिति, प्रागल्भ, औदार्य, लीला, हाव, हेला, भाव आदि सभी अंलकार होते हैं।

लीला के अंत में युगल-छवि की पुनः आरती होती है। इस बार प्रेक्षक जनता भी आरती लेती है और आरती के बाद लीला के विषय में मंगल कामना की जाती है। यह एक प्रकार का भरतवाक्य है। पश्चात् लीला का कार्य समाप्त हो जाता है, और पटाक्षेप हो जाता है। अस्तु, ब्रज की रासलीला के वर्तमान स्वरूप में संगीत, नृत्य और अभिनय की त्रिवेणी बनी हुई है। इस रूप के अतिरिक्त, राजस्थान के रासधारी ब्रज के कुछ अंश सुरक्षित लगते हैं। बंगाल में लीला का रूप तनिक अभिनयात्मक है। मणिपुर क्षेत्र प्रचलित लीला संगीत प्रधान है। कृष्ण लीला विविध प्रसंगों से पूर्णतः आवृत्त है। अहीरों के नृत्य व गोप-गोपिकाओं की लीलाएँ, कृष्ण संबंधी विभिन्न प्रहसन वस्तुतः कृष्णलीला के अन्तर्गत आते हैं। कथोपकथन का अपना अस्तित्व इन नाट्यों में प्रायः मौखिक है।

कृष्णलीला का आज के ग्रामीण-जीवन में जो महत्व है, उसके मूल में श्रद्धा और भक्ति तो है ही पर कई शताब्दियों से पोषित लगाव भी दृष्टव्य होते हैं। तनिक परिवर्तन-परिवर्धन के साथ यह शैली और भी अधिक प्रभावशाली बनायी जा सकती है। लोकनाट्यों में कीर्तनिया, जात्रा और भवाई के ढंग के नाट्य इस लीला के निकट जान पड़ते हैं। खोज करने पर कृष्णलीला के प्रति और भी अधिक संभावनाएँ उभर सकती हैं।

इस प्रकार ये स्पष्ट होता है कि भोजपुरी क्षेत्र में कृष्णलीला की एक दीर्घ श्रृखंला है, जो अत्यन्त पुरातन है। आज के वैज्ञानिक विकासशील युग में यद्यपि वैज्ञानिक उपकरणों से ग्राम्य जीवन भी प्रभावित हुआ है, जिसके कारण लोकनाट्य भले ही अपने प्राचीन स्वरूप को अक्षुण बनाये रखने में समर्थ सिद्ध न हो पा रहे हों परन्तु ये सभी लोकनाट्यों के प्रकार अपने परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित प्रारूप के साथ अपना अस्तित्व कहीं ना कहीं बनाये हुए है। लोक नाट्यों की इस अनूठी धरोहर को बचाये रखने के लिए लोक नाट्य मंडलियाँ भी अपने सीमित साधनों के साथ इस विधा के संरक्षण के लिए प्रयासरत है, ऐसा मानना कदाचित अनुचित ना होगा।

Unalloyed Love of Radha-Krishna in the Poetry of Kamala Das

Dr. Gunjan Saxena
Asst. Prof. (English)
Bareilly College, Bareilly

"O Krishna, I am melting, melting, melting
Nothing remains but you
You......"

(A Request : The Descendants)

Kamala Das endeavours to manifest the painful purgatorial quest for the extreme ideology of love in her poems. The repitition of the word melting denotes the notion of gradual dissolving of the finite into the infinite. In the Devotional Poetry of Bhaktikal, the love of Radha-Krishna symbolises the spiritual bliss. The 'reciprocation of love' between them is dipped in the essence of celestial love. It has no concern of carnal or commercial love of a worldly lover and beloved. It is beyond bodily approach *'Although one may profess true love, inwardly one's real desire is to relish his own senses. When such sensual pleasure dwindles, the so-called love dwindles with it.'* (Jayadvaita Swami) But pure devotees of Krishna on the spiritual plateform have no desires to please themselves. They have a penchant only to please Lord Krishna. This is true, unalloyed love. De facto, such kind of love is nothing but 'the expansion of the self'. The divine relation of Radha-Krishna establishes the immortal ties of true love. It does not lie in satisfying our physical needs rather it can be felt in the pleasure of pleasing the person whom we love. As it is said-*"Tat sukhe sukhitvam, tat dukhe dukhitvam"*

The bliss of pure love is realised when we feel happy to the core of our heart in beholding one's jovial mood and our eyes fill with tears to peep the sorrow in one's eyes. What we speak of 'love' in the materialistic world, is actually 'lust'. It has no permanent basis. In the modern term, the sexual intercourse is referred as 'lovemaking' as though 'the gross friction of two hot bodies could generate love.' Love and lust can be compared with gold and iron respectively. Both are metals but are quite different in nature and quality. Same happens with love and lust. Jayadvaita Swami in his 'Love or Lust - What is the Difference' declares- *'The conditioned souls in the material world are generally misdirected and frustrated in love because they try to get pleasure by satisfying their material bodily senses. They do not know that they are different from the bodies. The body is changing -*

from childhood to youth and to the old age- but the same person is always present in each body. Therefore no matter how diligently he tries to be happy by gratifying his bodily demands, he is never successful. For example, one cannot satisfy a bird by cleaning its cage and not feeding the bird itself.' In order to relish the real pleasure in the realm of love, one must dive into the crystal clear ocean of love and for this one must endeavour to comprehend the love theory of *Radhakrishna. 'Such devotional service is under the control of Radharani. She is the presiding deity of devotional service. Because she is very merciful, devotees especially take advantage of Her merciful nature to attain the service of Krishna.'* In fact, we have to enhance our spiritual level of consciousness to achieve the devotional favour and it is rarely achieved but it becomes very easy by the grace of *Radharani. Bhagvat-gita confirms that those who are truly great souls, take shelter of Krishna's 'Daivi Prakriti' or spiritual energy- Shrimati Radharani. "Always chanting My glories", Lord Krishna declares, "endeavouring with great determination, bowing down before Me, these great souls perpetually worship Me with devotion." (B.g. 9.14) This devotional service is not an activity of the material world, it is fully spiritual because it is directly under the control of Krishna's spiritual energy - Shrimati Radharani.'* In this reference to be the true devotee of deity, the devotional dedication of Radharani is to be followed by human beings by giving up the expectations of material profits. As a crux of matter, Krishna should not be worshipped without the company of Radha because Radha is just like the sunshine and krishna is like the sun. They are inseparable to each other. They are complete 'Absolute Truth'.

It seems that Kamala Das' obsessive quest for spiritual love compels her to analyse love in her poems. The topic of the spiritual love affair between the divine *Krishna* and his devotee *Radha* has become a theme celebrated througout India. Kamala Das frequently depicts the complex relationship between 'body and beyond' i.e. lust and love. Her poems clarify the futility and meaninglessness of physical love. Actually she does not experience eternal bliss in her marital relationship. This frustration and traumatic experience in love lead her to the deep-rooted belief in the ideal love-lore of *Radhakrishna*. A deep penchant of experiencing such eternal love seems to emerge through her poems. For her, love is a pious feeling like '*tapasya*' and *Radhakrishna* are ultimate lovers. She utters-

> *"I grew up reading Geetha- Govinda*
> *about Radha-Krishna. Which*
> *Hindu girl has not been interested*
> *in Krishna, the great lover? so to*
> *us Krishna has not been vulgar*
> *at all to us, it has just been normal."*

Das' poems justify her dexterity to delve deep into her own self and to evaluate her own thoughts and images according to the levels of consciousness. In the initial stages, she finds herself victim of sexual desires and carnal pleasures. In 'Composition', she states-

> *"Now here is a girl with vast*
> *sexual hungers*
> *a bitch after my own heart."*

She finds it impossible to experience 'love' at its apex within the framework of marriage. She strives to seek its height outside wedlock. She realizes that love is an everlasting passion and in order to feel its transcendental aspect she passes through physical domain (*annamaya kosa*), sensory domain (*pranmaya kosa*) psycho-synthetic domain (*manomaya kosa*) and tries to reach the intellectual domain (*vijyanmaya kosa*) where she gets the possibility to seek this passion of love dwelling into spiritual domain (*anandmaya kosa*). When she analyses minutely with this point of view, she opines that this desire for each other cannot be called love but lust. In 'Love' she clarifies-

"this skin- communicated
thing that I dare not yet in
his presence call our love."

Das seems to pine for true and ideal love that bounds *Radha* and *Krishna*. For her, body is subjected to lust and soul represents true love. *'Love is rooted in the soul and is an ennobling experience while lust is associated with body and is an abominable and obnoxious experience'*. Physical love is just one aspect of love and her sustained endeavour is to transcend the body. In fact, love transcends the carnal and involves such emotional attachment that leads to spiritual union like that of Radha and Krishna. She explored love and its multiple aspects in her inner cosmos. The situation is like what Iyengar said in 'Indian Writing in English'-

....."*under the Indian sun, although sensual lures irresistibly, yet is fails to satisfy; feeling and introspection but sounds the depths of oceanic frustration and the calm fulfillment eludes forever. Love is crucification in sex, and sex defiles itself again.*" (677) In her poem 'Krishna', the poet expresses her deep penchant to merge with Krishna for emotional solace and eternal bliss. She utters-

"Your body is my prison, Krishna
I cannot see beyound it
Your darkness blinds me
Your love words shut out the
wise world's din."

In this beautiful expressions, Das elaborates her existence to be captured in the body of *Krishna* which is a prison where she feels safe and secure. His presence both mental and physical overshadows her identity. Her 'journey of life ends when she is united with *Krishna*'. Under the spell and charm of *Krishna*, she is unable to hear the voices of the world and human world appears meaningless to her. There is only Krishna all around her. Krishna says in the 'Gita' that such elevated thoughts take origin in mind *"when a man of self cantrol tames his sense -organs through his mind and serves the world unattached. It means that he serves the world without ego and ego-centric desires and lusts. Such an individual excels because for him the work-field serves as a theatre for the exhaustion of his existing Vasnas, without creating any new ones"*. (Chinmayanand-55) Similar notions about unalloyed divine love *Radha* and *Krishna* are expressed in her another poem "*Radha - Krishna*' where she celebrates the freedom of the two lovers from the human bondage. These supreme lovers want to rise above the physical trappings so that their souls may be free for the unification.

"This becomes from this hour
Our river and this old kadamba

tree, ours alone, for our homeless
souls to return some day
to hang like bats
from its pure Physicality."

It seems the firm belief of Das that by confessing by peeling off her layers and by going deeper into the levels of consciousness, she can reach closer to the soul. Bodily love cannot quench such yearnings rather it makes us deprived of ultimate bliss. For Das, the mythical world of *Krishna* and *Radha* becomes the source to achieve that transcendent love. 'Anamalai Poems' attain a particular importance in this reference. In these lines, she discloses her faith in love beyound flesh-

'There is a love greater then all you know
that awaits you where the road finally ends
its patience proverbial; not for it
the random caress or the lust
that ends in languor." (111)

In 'My Story', Das clarifies that earthly love passions are mere stepping stones to the celestial reconciliation of the poetic persona with *Krishna*, the replica of ideal love - *"Physical integrity must carry with it a certain pride that is a burden to the soul perhaps it was necessary for my body to defile itself in many ways, so that the soul turned humble for a change*." Thus lustre of divinity that is wrapped in the love myth of *Radha-Krishna* enlightens her poems spontaneously. As Fritz Blackwell in 'Krishna Motifs in the Poetry of Sarojini Naidu and Kamala Das' puts it-

"......her (Kamala Das) concerns is literary and existential, not religious; she is using a religious concept for a literary motif and metaphor" (4)

In nut shell, Das' poems highlights the hightened aspect of true love and her inclination towards mythic lovers- *Radha* and *Krishna* grows stronger and deeper in her poems. In 'Sex; Mindless Surrender or Humming Fiesta', she says-

'.....but illogical that I am from birth on words. I have always thought of Krishna as my mate. When I was a child I used to regard Him as my only friend. When I became an adult, I thought of Him as my lover...... now in middle age, having no more desire unfulfilled I think of Krishna as my friend, like me grown wiser with years, a house- holder and a patriarch. And illogically again, I believe that in death I might come face to face with him.' (19) Thus her love goes beyond lust, passion, desire and sex to a greater spiritual level a transformation from a transient world to eternity.'

Work Cited:

Das, Kamala. 'Summer in Calcutta'. Kerala : DC Books, 2004 Print.

Das, Kamala. 'Sex : 'Mindless Surrender or Humming Fiesta'. Femina, dated June 6, 1975. Print.

Blackwell, Fritz. 'Krishna Motifs in the Poetry of Sarojini Naidu and Kamala Das', Journal of South Asian Literature, vol.13, No. 1-4, 1978. Print.

Iyengar, Sreenivasa. 'Indian Writing in English'. New Delhi: Sterling Publishers, 1983. Print.

Arya P.A. 'Body and Beyond : A feminist Reading of Kamala Das' Love Poems'.

Swami, Jayadvaita. 'Radha- the Feminine Aspect of the Absolute Truth'

Chakravarty, Joya. 'A Quest for True Love in the Poetry of Kamala Das in Indian Writing in English' : Perspectives, 2003.

Das, Kamala. 'Obsenity and Literature' Weekly Round Table, April 1972 ; 32.

Das, Kamala. 'I have Lived Beautifully' Debonair III No. 5, May 15, 1975; 41

Chinmayananda. 'A Manual for Self - Unfoldment'. 1977

Radha and Krishna in Indian Music tradition

Dr. Amrita

Adhoc Asst.Professor Dept. of Music
J.D. Womens' College, Patna. (Bihar)

The combination of Radha and Krishna is Devine. It is Adwait and Brahmswaroop. It means the Entity of Radha- Krishna is one and Idivisible. That's why the Entity of Radha Krishna is merged in the very origin of 'OM' because Radha- Krishna is Imortal and 'OM' is the very source of Pranav sound.

Although Indian Music tradition is traced as far back as vaidic period . Samveda is entirely a Musical collection where Vaidic yaggya was performed with the Musical sound of vaidic shlokas . However the tradition of Indian Music can be traces back from the period of Radha Krishna and we can say the source of Music is the tradition of Radha – Krishna . Music is essentially an integral part of Bhakti and Love. Love and truth are the two sides of the same coin, and love and truth is the very source of Music. So Music is spontaneous flow of Devine and imparerell love of Radha – Krishna.

In Vaidic and Puranic literature Radha Krishna has meaning of perfection, success and wealth. Radha – Krishna collectively known as the combination of both the feminine as well as the masculine aspect of lord krishna . Achrya Jankivallabh Shastri a prolific poet and Musician as well in his poetry described very beautifully about the imparerell love of Radha Krishna .The lines are as follow:- " Radhika koee na Nari ek , bhawna wa hridya hari ek

Rakt majja ki nahi wah deh, Radhika ka arth nischal neh Swarn warna jo baney Ghanshyam, Haaye, Radha hai usi ka naam."

These lines once lord Krishna Himself described about Radha to His wife Rukmini and told her that" Radha is not only muscles , bone or blood she is full of love and bhakti the Supreme Goddess. So it is believed that Krishna enchants the world but Radha enchants even Him. Therefore Radha is the Goddess of all.

The enchanting songs on the theme of Radha Krishna kil all cares and grief of heart.

Radha- Krishna are worshipped through Music in almost all traditions of India. Some of them are :

1. Bishnupriya Manipuri Vaishnavas : The Manipuri Vaishnavas do not worship krishna alone , but both Radha - Krishna. Manipuri regional folk dance form is very famous which depicts the immortal love of Radha krishna. Gokulnanda was a great singer of this tradition. His song was simple and direct. His song immortalized mother Bisnupriya "The Godess Radha". His book named Gitiswami became the major source of inspiration to present day poets and singers.

2. Bhagvata : In this tradition The name of Tyagraj comes in the forefront. He was a prolific composer and highly influential in the development of classical Music of this tradition. He composed thousands of devotional songs of Radha – Krishna mostly in Telegu.

3. Gaudia Vaishnava : It refers to the region of Bengal. Early Bengali literature gives a vivid description of Radha Krishna. Jaidev s' Geet Govind of twelveth century is very famous in this context in which the topic of spiritual love between the devine Krishna and His devotee Radha is sung. It is believed, however, that the source of Jaidev Goswamis ' heroine in his poem 'Geet Govind is Radha as depicted in the following lines ..

'Dheer samirey, jamuna teerey , vasat vaney ban maali
Gopi teer payodhar pagdhar chanchal kar yugshali'.

Baru Chandidas is another name who was a great poet and historical figure as also singer of this tradition. Sri Krishna kirtan composed by Baru Chandidas on the theme of Radha Krishna is very popular but its origin is still under question. He wrote 412 songs on krishnakirtan which are divided into 13 sections that represent the core of Radha Krishna legendry cycle. Many songs were meant to be sung and implies particular ragas for the recitations. The Bengali tradition of Chaitanya Vaishnavism has been established by Krishnadas in his Chaitnya Charitamrit where he represent the doctrine that prevailed among the vrindavan.

4. Swamynarayana sampradaye : In this tradition Krishna appears in many forms but when he is together with Radha He is regarded as Supreme Lord under the name of Radha - Krishna . In this tradition Krishna dances with Radha with-devotional songs which enchants gopes and gopies for the realization of the truth.

5. Vallabh Sampradaye : The founder of this tradition is Vallabhacharya who came even before chaitnya Mahaprabhu. The followers of this tradition are called Radhavallabhis who share with vaishnav co -religionist and have great regard for Bhagvat Puran .They performs Raslilas- devotional songs on the theme of Radha Krishna. One of the prominent poets and singers of this tradition is Dhruvdas who sang songs on the theme of Radha Krishna devine love. His collection of poems called 84 pad is commentaries of his followers.

Muslim singers , instrumentalist and poets do not lag behind in worshipping and singing songs on the theme of Radha Krishna. Amongst them the notable are Raskhan, Ustad Allauddin Khan, and Nazrul Islam of Bengladesh.

Nazrul Islam sang some songs relating to Radha Krishna is highly notable. One of them is as under :

''Khele cho ae vishwa loye,
Anandmoye Anandmoye."

Which means Lord Krishna plays with the world blissfully on his own.

Raskhan was one of the great poets and singers who sang many songs on the theme of Radha Krishna. One of his beautiful song is :

''Manush hau toe wahi Raskhani ,
Baso Braj gokul ki gwalan"

It means even if I take another life I wish to be born in Vrindavan so that I may see the devine dance of Krisnha with Radha and Gopies and also hear their Devine enchanting songs.

Allauddin khan was a prolific classical instrumentalist used to worship

Krishna and was keeping the photo of Radaha Krishna in his room.

In the field of Indian Music, the tradition of Radha - Krishna is very rich . There are many combinations and singing styles in Indian classical Music, semi classical Music and light Music where the theme of Radha Krishna is beautifully portrayed in such a way that Radha - Krishna becomes vivid and lively before the audience. Many a times on hearing the enchanting songs of Radha- Krishna audience starts singing and dancing with great love and devotion , with tears in their eyes.

Many mahakavis have composed innumourous poetries and epics on the theme of Radha Krishna devine love which is very valuable and worth keeping. The foundation of Sangeet - Ras was led with the tradition of devine love of Radha – Krishna whose main object was ' ranjakta ' creation of spiritual satisfaction. Most of the Bandishes of classical ragas is based on the beautiful appreciation of the character of Radha – Krishna.

Dhamar is a beautiful singing style in which the whole songs are depicted on the theme of Radha Krishna, in which Radha is represented as prakriti and Krishna as Purush. In Dhamar we find mainly the description of Holi festival and the beautibul colors (abeer gulaal)where Krishna is considered as Nayak and Radha as nayika. Some of the beautiful bandish in Dhamar singing style are...:

1.'Aaj mosey Holi khelat Nandlal (Krishna) haathan me ley pichkaari".

2. ....".Braj me holi khelan aayo kuwar kanhayee , Radha sang.

Holi is the Indian national festival throughout celebrated in India with chanting songs related to Radha Krishna and their raas leelas .During this festival the only song relating to Radha Krishna sung is called ' Hori'.

The Jhula geet poularily known as 'kajri' is being sung in the time of rain is also performed mainly with the theme of Radha - Krishna which is very enchanting.

Specially In the tradition of Thumri and Dadra gayeki most of the lyrics are based on the merry making and devine love of Radha – Krishna which is very enchanting. Such as...

* Vyakul bhyee Brajbaam, 'muraliya ab na bajao shyam'

* 'kanha teri radha tose na bole , jab – jab basuri bajaye to manwa mora doley'

In the tradition of light Music we can find a large range of poetries in praise of Radha Krishna. Beautiful Bhajans , geets and kirtans is being sung by a number of great and popular singers in praise of Radha – Krishna and their immortal love.

The Raas leela or Raas dance is the part of traditional story of Radha - Krishna described in Hindu scriptures such as Bhagvat Geeta and Puran literature where Krishna dance with Radha and her sakhis. The term Raas meaning aesthetics and Leela meaning act , play or dance. The Indian classical dance of Kathak evolved from the Ras leela of Braj and Manipuri classical dance (Vrindavan) also known as Natwari Nritya is based mainly on the theme of Radha Krishna. So we have many compositions in Indian Music tradition which can be traced back to the alleys of Mathura and Vrindavan where Radha with Gopies tap their feet to the melody of Krishna s' flute. So Radha – Krishna is famous love legend of all times and the essence of Music lies behind the immortal love of Radha – Krishna.

Therefore we can see number of such examples on the theme of Radha-Krishna Devine love and the combination of the two becoming 'Bramh' the supreme Entity, the summumbonum of life.

Krishna and Radha: The Real Source of Love & Religion for all time.

Dr. B. Jagdish Rao

Asst. Prof. Department of Commerce, Sunbeam College for Women, Varanasi

In life we tend to select a part, a segment not the whole. We used to take that part of the life of Krishna, which does suit with our customs and creation so we are confined till that which we want in our social serials not beyond that. And this is the reason to miss the understanding of the real meaning of Love. The love of 'Radha and Krishna'.

"To be creative means to be in love with life. We can be creative only if we love life enough that we want to enhance its beauty, we want to bring a little more music to it, a little more poetry to it, a little more dance to it." And when I think and talk about beauty or music or poetry or dance the faces which come to my mind is the faces of Radha and Krishna. Yes! I mean Lord Krishna. He is the real source of Religion and Inspiration in the history of human civilization and the relevance of the love of Radha and Krishna is still in need to feel and follow.

To me describing love is also a form of love but the fact is that describing love is an attempt to describe the indescribable. It is an ongoing step towards surrender and sacrifice for reaching the ultimate satisfaction. Coming to the love of Krishna and Radha, in India, we used to say that Krishna and Radha are believed to be eternal lovers. And I am positive in my thought that even Krishna cannot express it. Because the moment he expresses it, the love becomes confined to words.

To feel Love is easy, to dene love is difcult indeed. If we ask a a flower what the fragrance is like, the flower will say, This is the fragrance. The fragrance is all around. And that's that." But if we insist –"Please dene the fragrance" – then the problem becomes very difcult indeed.

Love is the finest and the most beautiful things in life can be lived, can be known, but they are difcult to dene, difcult to describe.

In order to describe 'LOVE' a number of poems, a number of stories and a number of books have been written and published but still the description of the fragrance of love is yet to described and read. In fact the reason behind is not the incapability of the poets or writers

but the intrinsic fact is that Love is inherent, eternal. It can be felt and realized anywhere or any moment surprisingly but cannot be expressed.

I am and in fact we are the witness of love which is perpetually involved in the cry of newly born child, where the newly arrived existence is crying in search of that divine bomb in which he was taking breath for an approximate period of nine months, in the smile of any baby, who is unknown to us but spreading fragrance of love with his or her innocent smile, in the rhythm of music, which is the vibration of unconscious mind and soul of the composer who hardly bothered about the class or mass of the listener, in the flow of water of any river, which is moving to meet and surrender its existence by melting with the water of sea. Yes! These are the lively examples of love which is reflected in the form of a satisfaction against surrender.

So in my paper I would rather be trying to express the title "Love of 'Radha and Krishna' is the Symbol of Surrender and Satisfaction". Because I strongly believe that the love of Krishna and Radha cannot be expressed, no reference of the affair can be sufficient to describe but we can simply take it as a symbol of Surrender and Satisfaction, so I am trying to co-relate love of Krishna and Radha as a Symbol of Surrender and Satisfaction. In fact the eternal soul of a true love is the mixture of these two S: Surrender and Satisfaction.

A girl would dream of having a partner who is colorful and juicy like Krishna. But is it easy to be a Radha? The answer is hopefully not. Radha was one such extraordinary woman, whose entire life was surrender before Krishna and sacrifice for the ultimate satisfaction. She was like a prayer and still she is a prayer.

People say Meera's love is considered as onè of the greater significance because she could love the man, who had passed away centuries before. I am not against the love and dedication and sacrifice of Meera. But to me to love the image of a man is relatively easy. Because the other part is imaginary, ego can easily disappear and the feedback is same as we feel. In other words the respondents will response in the same way as we regard. But to love a living person, with the variety of personas is rather more difficult. It is that a form of love with person the reality of which may not be similar to the imagination, it is that a form of love-with all his dark and bright sides-is a walk on the rope.

Like every great love story, the Radha-Krishna relationship too ends with separation. Krishna is not for dead continuity. He is for lively changes. Perhaps Radha would have become aware of this in the middle of relationship that the fragrant rose that has blossomed between them is not going to last for much time. And it didn't. They separated. Did she cry at that moment? I think she did. But her tears would not have been the tears of pain, tears of losing the relationship rather the tears of fulfillment and satisfaction, the ultimate satisfaction. The man had showered so much on her that she would have felt nothing but contented.

Krishna is a treasure of love but in the same time he is the representation of flux, a freely flowing stream. We can

relate by being with the flow but we can't possess by asking him to flow as our wish.

The greatest poverty of all is the absence of love. The man, who has not developed the capacity to love, leads and lives in a private hell of his own.

Krishna is a spirit for us a spirit of God. We use to call him Lord Krishna and the fact is very much interesting to feel that the status he got is from his conduct and characters. In fact the transformation of Krishna is reflected from epics, he was born in as a human and converted himself as God with the virtues and values. Krishna is utterly incomparable, he is so unique. He taught us how to pray and how to love. In fact it was the first time in the history of human existence that Krishna has set an illustration to not to ask love in life rather make the life in love. To do the love in life with the tremendous amount of innocence that ultimately leads us to the salvation. He taught us how to love and become lovely. Love in itself is a celebration, it brings such great joy and ecstasy, that one prays for the prayer's sake. One does not pray out of fear and one does not pray out of greed. One prays because one enjoys it. One does not even bother whether there is a God or not.

The love of Radha Krishna is flowing and thus spreading the fragrance because they accept the whole. It is important to understand that Radha and Krishna does not give up anything, neither pain nor happiness. He does not renounce that which is. With him the question of renunciation does not arise.

A religious man of our old concept was one who had renounced life and fled the world. How could he sing and dance in a miserable world? He could only cry and weep. He could not play a flute; it was impossible to imagine that he danced. It was for this reason that Krishna could not be understood in the past; it was simply impossible to understand him. He looked so irrelevant, so inconsistent and absurd in the context of our whole past.

Krishna is the sole great personality in our whole history who reached the absolute height and depth of religion, and yet he is not at all serious and sad, not in tears. By and large, the chief characteristic of a religious person has been that he is somber, serious and sad-looking - like one vanquished in the battle of life, like a betrayer from life. In the long line of such sages it is Krishna alone who comes dancing, singing and laughing. And there is a reason for saying so. Krishna has accepted and absorbed everything that life is.

The way of living the life of Krishna reflected that life is the output of love, love is prayer and prayer makes the life beautiful. So the entire life is a basically a dance, it is a song, it is music, it is love. We enjoy it, and there it is finished. Love is the means and prayer is the end. The ends and the means are not separate. Only then do you know what prayer is. And prayer is far more important than God.

The man who thirsts for truth must first develop his capacity to love—to the point where the difference between the lover and the beloved disappears and only love remains. When the light of love is freed from the duality of lover and the beloved, when it is freed from the haze of seer and seen, when only the light of

pure love shines brightly, that is freedom and liberation. That is the love

The love of Radha and Krishna taught us that love does not mean restricting rather it is acceptance to all. The love of Radha-Krishna taught to the world that without love man is an individual, an ego. He has no family; he has no link with other people. This is gradual death. Life, on the other hand, is interrelation. Love surpasses the duality of the ego.

Love involves surrender and surrender means bowing down to existence. Surrender means gratitude. Surrender means thankfulness. Surrender means silence. Surrender means, "I am happy that I am in you". Surrender simply means, "This tremendous gift of life is so much for such an unworthy man like me." Seeing it, gratitude arises. This alone is truth and this truth is reflected through the love of Radha Krishna. The love is the sign of surrender with tremendous amount of freedom. Who at the end created a faith of belongingness: I am in you; you are in me. This love is religious. Therefore, I want to say that "Krishna and Radha: The Real Source of Love & Religion for all time". I learn that **if I love you, there is no 'I' and there is no 'you'. Only love exists.**

References:

1. Bhagavad Gita.
2. Bhagwan Srikrishna, a book 'Krishnkripa SriMurthi' written by A.C. Bhaktivedant Swami.
3. Discourses of OSHO for Krishna.

भारतीय साहित्य में चित्रित राधा और कृष्ण का प्रेम

प्रा. डॉ. एम.ए. येल्लूरे

हिन्दी विभाग

सहायक प्राध्यापक

बी.एस.एस. कला विज्ञान एवं वाणिजयमहाविद्यालय, माकणी जि. उस्मानाबाद

प्रस्तावना :

विश्व प्रसिद्ध प्रेमकथाओं में राधा-कृष्ण, शकुंतला-दुष्यंत, सावित्री-सत्यवान जैसी पौराणिक कथाओं के अलावा रानी रूपमती-बाज बहादुर, सलीम-अनारकली, हीर-रांझा, लैला-मजनू, सोनी-महिवाल, ढोला-मारू जैसे प्रेम चरित्रों की गाथाएँ अमर हैं। सखाभाव पर आधारित राधा-कृष्ण का प्रेम अमर है। कला ही हर विद्या में इस प्रेम का चित्रण मिलता है। असंख्य गोपियों के संग रास रचाने वाले, रुक्मिणी-सत्यभामा के पति और मीराबाई की भक्ति में रची पची रचनाओं के पात्र थे कृष्णा खुद से बड़ी उम्र की राधा से उनके प्रेम को सामाजिक मान्यता मिली, यहाँ तक कि उनका नाम ही राधा के साथ लिया गया। वृषभानु की पुत्री राधा और कृष्ण के इस प्रेम ने कई मायनों में परम्पराओं को तोड़ा था। महाकवि सूरदास के प्रभु, महाभारत में अर्जुन के मार्गदर्शक, राधा के शाश्वत प्रेमी और द्रौपदी की लाज बचाने वाले कृष्ण सम्भवतः स्त्री-पुरुष समानता के प्रबल पक्षधर भी थे। गोविंद दास, चैतन्य महाप्रभु और गीत गोविंद के रचनाकार जयदेव की रचनाओं में राधा-कृष्ण के इस प्रेम का चित्रण बखूबी है।

भारत की विभिन्न भाषाओं में राधा और कृष्ण को लेकर सैकड़ों चेतोहारी काव्य-कृतियाँ निर्मित हुई हैं। नंदकिशोर कृष्ण से सम्बन्धित विपुलकाव्यों में कृष्ण के साथ राधा का ही नाम अकसर जुड़ा रहता है यद्यपि रुक्मिणी उसकी विवाहिता पट्टमहिषी थी। अधिकांश रचनाओं में इनका वर्णन साधारण नायक-नायिका के यप में ही किया गया है और एक लौकिक प्रेमिका के ही यप में, परकीया के रूप में राधा का अधिक चित्रण हुआ है। कृष्ण-भक्ति कालिन कवि सूरदास, नंददास, विद्यापति आदि के काव्यों ने श्री राधा व कृष्ण का परम परात्पर रूप प्रस्तुत करके उज्ज्वल भक्तिरस से भक्तजनों के हृदयों को आप्लावित कर दिया है।

मध्यकालीन साहित्य को यदि किसी एक शब्द में अभिव्यक्त करना हो तो निःसंकोच भाव से कहाँ जा सकता है, अधिष्ठाती है एवं साथ ही वह नारी की एक मांसल मूर्ति है जिसके शरीर के प्रत्येक अणु में सच्ची मिट्टी की गंध और आत्मा के हर चेतन-परमाणु में दिव्य प्रेम की अलौकिक छटा छठवीं शताब्दी से सत्रहवीं तक का समग्र भारतीय वाङ्मय इस अनुपम नारी-रत्न की छाया-व्यक्ति पर सौन्दर्य-सृष्टि से अनुप्रमाणित हुआ है। राधा भारतीय प्रेम साधना की परिणती का नाम है। इस साधना का आरंभ वैदिक साहित्य में ही दिखाई पड़ने लगता है। राधा किसी नारी का नाम नहीं है, यह नारी जीवन की सम्पूर्ण गरिमा, तेजोद्दीप्तता, समर्पण, प्रेम की अनन्यता का अभिधान है।

प्राचीन साहित्य में चित्रित श्री राधिका भगवान की अल्हादिनी शक्ति है, सत् चित-एवं आनंद-स्वरूप परब्रह्म की अल्हादिनी शक्ति ही उसकी विशेषता है। मध्यकालीन भक्तों ने अपने को गोप या गोपी समझकर

श्रीकृष्ण से प्रेम किया, पर अपने को राधा समझकर साधना करनेवाले केवल बंगाल के महाप्रभु चैतन्य देव ही एक निकले। जयदेव कृत "गीत गोविंद" सैकड़ों वर्षों से भक्तों का कंठहार बना हुआ है। जयदेव ने स्पष्टतः हरिस्मरण एवं कामकला कुतूहल को समन्वित कर दिया। राधा जयदेव के गीत गोविंद में ही पहली बार एक सामान्य मानवी अपने सम्पूर्ण मांसल-पार्थिक शरीर-सौन्दर्य समारंभ के साथ प्रभुकृष्ण की प्रियतमा के यप में दैवीशक्ति का आधार स्थल बनकर आई। जयदेव की राधा सांसारिक मानवी की तरह प्रेमविह्वल, मानिनी, प्रेमिका बेलि रतिसुख की विदग्धा आलिंगन सुख माननेवाली बाला है।

विद्यापति पदावली की नायिका राधा है, जिसका अपार रूप चित्रित किया गया है। पदावली में कृष्ण-काव्य है, पर यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि पदावली में कृष्ण चरित्र गौण एवं राधा चरित्र प्रधान है। राधा के वर्णन में कवि की वृत्ति रमी है। "राधा की वंदना" के पद में कवि विद्यापति के दक्ष्य में स्थित भक्तिभाव के दर्शन नहीं होते बल्कि उनकी सौन्दर्यवृत्ति उभरकर सामने आती है–

> *"देख-देख राधारूप अपार।*
> *अपुरूष के बिहि अनि मिला ओला खिति*
> *तल-लाबनिसार।"*[1]

राधा के अपार रूप को तो देखो। ब्रह्माने समग्र विश्वभर के अपूर्व सौन्दर्य तत्त्व को लेकर राधा के रूप में एकत्र कर दिया है समस्त विश्व के सौन्दर्य को लेकर राधा का निर्माण किया है। राधा के एक-एक अंग प्रत्यंग को देखकर कामदेव भी अस्थिर हो जाता है और मूर्च्छित होकर गिर जाता है। करोड़ों कामदेव का जिसने मंथन कर दिया है, ऐसे कृष्ण भी राधा के रूप को देखते ही पृथ्वी पर न्योछावर कर देती है। रंगीली राधा को देखकर सुधबुध खो बैठती है। वाकइ में विद्यापति की राधा, सौन्दर्य व लावण्य की प्रतिमा है राधा की सौंदर्यातिशयोक्ति का यह एक सरल चित्र है। राधा का सौन्दर्य स्थिर या अवरुद्ध नहीं है। बल्कि सतत विकासशील है दूसरी बात यह है कि, वह रूप भाव किया व्यापार की दृष्टि से अत्यन्त संश्लिष्ट व चित्रण में वस्तुधर्मी है। विद्यापति की नजरों से राधा के बाहर-भीतर होनेवाला कोई बदलाव नहीं छूटा है। वस्तुतः विद्यापति की सौन्दर्य-उद्भाव ना मौलिक है।

कृष्ण की राधा :

राधा कृष्ण लीला की प्रधान नयिक है। राधा भोली चंचल, चतुर है।

आध्यात्मिक अर्थ में वह कृष्ण की अर्धांगिनी हैं। उसकी सिधाई में धीरे-धीरे चतुराई आने लगी। श्याम नागर के साथ राधा भी नागरी बन गई। वृषभानुकुमारी राधा दो भाइयों के बाद अकेली पुत्री थी। राधा की गूढ़ता को उसकी माता नहीं जान पाती। व्यंग्य विनोद में राधा ने यशोदा को भी हरा दिया। राधा अवसर के अनुसार बातें करने में अत्यंत कुशल हैं।

राधा-प्रेम-विवश, परम सुंदरी है। राधा का रूप वर्णन दो प्रकार से हुआ है। राधे तेरे नयन हैं, या बाण? सबसे अधिक तो उसके सुभग रतनारे नयन हैं। "सुरंग-रस-माते, अतिशय चारु विम, चंचल खंजन नयन पलकों के पिंजरे में समाते ही नहीं।

चतुर गुढ़, अतृप्त परकीया :

सुरदास ने राधा को मतवाली मीरा नहीं बनने दिया। सखियाँ मान जाती हैं। कि राधा की चतुराई का पारवाना कठिन हैं। सखियाँ को हार माननी पड़ी। राधा की चतुराई से भरी बातें बड़ी गूढ़ और गुणों की पूर्णता ही राधा की प्रेम-व्यथा अचेत बालक की वेदना जैसी है, जो बिना कहे चुपचाप सहनी पड़ती हैं। राधा को विनोद में भी कृष्ण वियोग सहन नहीं होता।

मानवती, गौरवशालिनी स्वकीया :

मानवती राधा का स्वकीया नायिका की भाँति चित्रण किया गया है। राधा को मनाने के समस्त उपाय व्यर्थ जाते हैं। अंत में कृष्ण प्रेम के रस-प्रवाह में मान बह जाता है। संयोग में राधा हर्ष, आनंद, रस, विनोद, कौतुक तथा गूढ़ और गम्भीर, प्रेम की साकार

मूर्ती लगती हैं। कृष्ण दर्शन बिना राधा, सोच में ही घुलती जा रही हैं।

धीरे-धीरे यह प्रेम गाढ़ से गाढ़त्तर हो जाता है। राधा और कृष्ण का मिलन एकदम अनूठा है। इसमें चिन्ता नहीं आशंका नहीं भीति नहीं राधा जब कृष्ण के साथ खेलती है, रोती है, छेड़-छाड़ करती है तो एक शुद्ध प्रेममयी के रूप में दिखाई देता है, राधामान करती है। हजार मनाने पर भी नहीं मानती। इतियाँ थक जाती हैं। कृष्ण मूर्च्छित हो जाते हैं। इस मानिनी ने ज्यों ही सुना कि कृष्ण दवाजे पर से लौट जा रहे हैं, बस सारा मान भंग हो गया।

विद्यापति की अपार सौन्दर्य की साम्राज्ञी भूवन मोहिनी राधा ने एक दिन वयः सन्धि की देहली पर कदम रखा वयः संधि नाही जीवन का वह अवस्था है जब शैशव शरीर को पूर्णतः छोड़ नहीं पाता और यौवन आ उपस्थित होता है। राधानिरी अबोध हैं जयदेव की राधा पूर्ण यौवन व काम-कला में निष्णात है किन्तु विद्यापति की राधा को न हम बालिका कह सकते हैं, न किशोरी एवं न युवती ही उस शैशव यौवन का संगम हो रहा है। उसे कुछ हो रहा हे, पर उसे नहीं मालूम क्या हो रहा है। उस परिस्थिति में राधा के अंतर्द्वंद्व का कवि ने कितना स्वाभाविक वर्णन किया है।

"सैसब-जोबन दुहू मिलि गैल, स्त्रवनक पथ हुहूलोचन लेल बचकन चातूरि लहूलहू हास, चरनिचं चाँद कएल परशास जब करई सिंगार, सखि पुछइ कइसे सुरत - बिहार।

निरजन उरज हेरत कतबेरी, हँसइ अपना पत्रोधर हेरी।

पहिल बदिर सम पून नवरंग दिन-दिन-अनंग अगोराल अंग

माधव पेखल अपरुब बाला सैसब-जीवन दुहू एक भोला।"[2]

विद्यापती ने राधा को उनके अनन्य प्रेमी कृष्ण के दिल दिमाग व आँखों से देखा है मुकूर लेकर शृंगार करने में कवि ने राधा की उस उत्सुकता का वर्णनकिया है जो कि किसी युवती में यैवनागमन के समय स्वतः जागृत हो जाती है।

जब राधा अपने यैवन के दुरतिक्रम बोझ को सँभालने में असमर्थ ब्रज की खोरियों में घूम रही थी, की अचानक कृष्ण पर दृष्टि पड़ गई। राधा कृष्ण के तरुण हृदयों के इस मिलन पर दोनों के मंथन कुतूहल, रूपासक्ति और पेम विह्वलता का विद्यापति ने अत्यंत विशद चित्रण किया है।

विद्यापति के राधा सौन्दर्य की पुतली हैं। वह त्लवंगी पीन पयोधरा है। राधा के रूप को कृष्ण विजदीत चित्त से देखते रह गए, चूँकि एक क्षण का यह मिलन पीड़ा का नया संसार दे गया। मेघमाला की सान्द्र नीलिमा में जैसे तडित-लता एक क्षण के लिए झिलमिलाकर छिप जाएँ राधा के रूप ही वह झलक हृदय की बर्छी की तरह चीरती चली गई। वे उसे अच्छी तरह से देख भी न सके - निम्नपंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

"सजनी भल केए पेखल न भेलि
मेघमाल स्वयं तडित लता जनि
हृदय सेल दई गेलि।"[3]

कवि विद्यापति ने राधा का नखशिख वर्णन खूब जमकर किया है। किन्तु यह सौन्दर्य वर्णन नख या शिख से शुरू नहीं हुआ क्योंकि विद्यापति की उरोजों के प्रति अधिकाधिक आकर्षण है। अतः उनकी दृष्टि सर्व प्रथम उरोजों पर ही स्थिर हो जाती है–

"पीन पयोधर दूबरिगता, मेरू उपजल कतक-लता। एक कान्हू ए कान्हू तोरि दोहाई, अति अपुरुष देखलि-साई।"[4]

राधा का शरीर दुबला है एवं उसके उरोज पुष्ट व उन्नत है। उसके कृश शरीर पर पृष्ठ एवं उन्न पयोधर ऐसे भाषित होते हैं। मानो स्थर्णलता में उन्नत सुमेरू पर्वत फूट निकला हो। कवि कान्ह से आग्रहपूर्वक कहता है–"हे कान्हा, तुम्हें सौगंध है वह अत्यंत अपूर्व है, उसे देख लो।"[5] कितने यत्नपूर्वक ब्रह्मा ने उसका निर्माण किया है। उसके चरण कमल है। उसकी चाल हाथी जैसे है। राधा के ओष्ठ बिंबाफल के समन एवं दाँत अनार के समान है।

उसके चंद्रमा जैसे मुखपर सूर्य जैसा दीप्तपूर्ण तिलक लगा है। कवि विद्यापति कहते कि काम की रमणी रति (जैसा राधा) के कौतक को (रचना-सौन्दर्य को) रसिक जान सकते हैं। उस गुणवती स्त्री को कोई पुण्यात्मा ही प्राप्त कर सकते हैं।

मैथिली कोकिल विद्यापति की राधा अपूर्व चतुर स्त्री है। उसने नहाते समय कृष्ण को देखा। गुरुजनों के बिच कृष्ण के मुख्य रूपी चंद्रमा का उसके नेत्र रूपी चकोर अमृतपान करना चाहते थे। उसने अपने गले का हार तोड़ा। गिरे हुए मोतियों को एक-एक कर चुनने में लोग लग गए। राधा ने जी भर कृष्ण को देख लिया। राधा अपने यैवन धन को सँभालने में असमर्थ है। उसका आधा आँचल गिर गया, अर्थ उन्मिलित नेत्रों से उसने कृष्ण को देखा। कृष्ण ने उसके अधखुले उन्नत, यीन, युष्ट यदोधव देखे। कृष्ण कामन पंचल हुआ, नेत्र विकल हुए हृदय में आग लग गई, सारा शरीर जलने लगा—

''पथगति पेखलू मो राधा
तखनुक भाव परान परि पीडलि,
रहल कुमुद निधि साधा।''[6]

कृष्ण भी कम रूपवान नहीं, कृष्ण दर्शन के लिए राधा इन्द्र से हजार आँखें और गरुण से पंख माँगती है। खेल ही खेल मे बेचारी अपने प्राण पराये हाथों में दे बैठी। विद्यापति ने कृष्ण विहर में राधा की मरणासन अवस्था तक का चित्रण किया है। प्रेम में राधा ने प्राण प्रिये के लिए क्या नहीं निछावर किया है।

श्री राधा और कृष्ण से सम्बन्धित जितने भी ग्रंथ उपलब्ध हैं उनके अवलोकन से कृष्णप्रिया राधा के विविध प्रकार के रूप मन में अंकित हो जाते हैं।

सबसे पहले वह गोपकन्या, वृषभानुकन्या, फिर कृष्ण की अभिन्न रूपा, प्रेयसी, आराधिका, भक्ता, स्वयं श्रीकृष्ण की आराध्या, सर्वजन उपास्या, विश्वजननी, विश्वातीता, योगमाया, देवी माया, परमात्मा कृष्ण की आल्हादिनी शक्ती उसी की आतम और सबसे बढ़कर कवियों की रसिक मोहिनी भी है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त सारे विवेचन के बाद हम सारांशतः इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि विद्यापति की राधा एक सामान्य नायिका है, जो विलासी व शृंगारी व्यक्तियों को आनंद विभोर करनेवाली क्रीड़ायें करती है। राधा सामान्य स्त्री ही हैं। उसका प्रेम का भौतिक पक्ष ही उभरकर आता है। विद्यापति दरबारी कविये। अपने आश्रयदाता व रसिकजनों के लिए ही उन्होंने राधाकृष्ण के रूप की रचना की ओर उसे शास्त्रीय परम्परा से हटकर रस की दशातक ले गए। विद्यापति की राधा एक कामकेली विशारदा नायिका है। उनका सौन्दर्य रूप सौन्दर्य कवि ने अपनी नायिका को एक साथ इतना माँसल, इतनी विदग्ध, इतनी सरल, सुन्दर नारीत्वपूर्ण, कामिनी, सारे विक्षोभकारी सौन्दर्य उपकरणों की मूर्ति इतने स्पष्ट हृदयवाली दूध की तरह शुभ्र व स्वस्थ पृथ्वी की गंध की तरह मुग्ध करनेवाली, विद्युत की तरह चंचल, धरती की तरह क्षमाशील, ग्रामीण की तरह निश्चल और साथ ही कीर्ति की तरह आकर्षक, शुभ्र ज्योति की तरह शांतिदायिनी, विरह पीड़ित राधा की तरह पवित्र और पार्वती की तरह, साधना रत बनाया होगा। वस्तुतः राधा का प्रेम एक निष्ठ है, वह उससे न तो हीरा चाहती है, न मणि-माणिक्य। राधा आदर्श भारतीय नारी के समान पति छोड़ अन्य सभी चित्रों को तुच्छ मानती है।

संदर्भ संकेत :

1. डॉ. शिवप्रसादसिंह विद्यापति — पृ. 245
2. सं. कुमुद विद्यालंकार - विद्यापति पदावली प. — 103
3. डॉ. शिवप्रसाद सिंह - विद्यापति — पृ. 118
4. पृ. शरद कणबरकर - विद्यापति, सूर, बिहारी का काव्य सौन्दर्य, पृ. 127
5. वही पृ. 127
6. द्वारिका प्रसाद मीतल - हिंदी साहित्य में राधा पृ. 146
7. डॉ. शिवकुमार शर्मा - हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ अशोक प्रकाश, नई दिल्ली।

स्वामी हरिदास जी द्वारा राधा कृष्ण की उपासना (ध्रुपद-धमार के सन्दर्भ में)

अमृता चौरसिया

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

स्वामी हरिदासजी एक भक्त, कवि, शास्त्रीय संगीतकार तथा कृष्णोपासक, सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे, जिन्हें 'हरिदासी सम्प्रदाय' भी कहते हैं। इन्हें 'ललिता सखी' का अवतार माना जाता है। इनकी छाप रसिक है।

स्वामीजी ने राधा कृष्ण की उपासना का प्रमुख माध्यम संगीत को माना। उनका संगीत प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ था। कई पदों में कोकिला का आलाप करना, मेघ का गरज कर मृदंग बजाने का आभास देना, मोर का नृत्य एवं पपीहा का सुर देना उन्हें प्रकृति के साथ मग्न होने का आभास कराते हैं। स्वामीजी के अधिकांश पद ध्रुवपद-धमार एवं द्रुत ख्याल गाने योग्य है और उन्होंने अपने पदों के भावों के अनुरूप ही रागों का चयन किया है। उनके सभी पद गेयात्मक हैं। विषय वस्तु की दृष्टि स स्वामीजी के पदों में एक ही भाव है- 'श्री श्यामा-श्याम का नित्य विहार'।

डॉ अलकनन्दा पलनीटकर के शब्दों में-''संगीत और काव्य स्वामीजी की उपासना के माध्यम थे और इसी कारण वह सामान्य जन के प्रिय भक्त गायक रहे।[1]

यद्यपि भक्ति युग में रास का पुर्नगठन किसने किया तथापि रास के पुर्ननिमाण की प्रथम प्रेरणा स्वामी हरिदासजी के हृदय में उत्पन्न हुई तथा ऐसा माना जाता है कि ब्रज के पुनः प्रचलित प्रथम रासोत्सव में स्वामी जी ने सक्रिय भाग लेते हुए प्रियाजी का श्रृंगार स्वयं किया। इसका उल्लेख रास-सर्वस्व में इस प्रकार है-

श्री स्वामी हरिदास, कियौ श्रृंगार प्रिया कौ।
अरू आचारज देव, कियौ मोहन रसिया को।।

यदि रास मंच के वर्तमान रूप को देखा-परखा जाये, तो उसके संगीत के मंचीय विधान पर स्वामी जी का प्रभाव देखने को मिलता है। रास का प्रारम्भ ही ध्रुवपद गायन से होता है। रास के प्रारम्भ काल का समय भी वही है जो स्वामी जी के वृन्दावन रहने का है।[2]

आचार्य बृहस्पति के अनुसार- ''श्रीकृष्ण और गोपियों का परस्परिक प्रेम कृष्ण भक्ति साहित्य का मेरूखण्ड है। स्वामी हरिदासजी सखी सम्प्रदाय के प्रणेता थे। राधा-कृष्ण की युगल उपासना पद्धति, अन्य सम्प्रदायों में थी परन्तु स्वामीजी द्वारा प्रचलित उपासना सखी भाव में जोड़ी जाती थी इसलिए इस सम्प्रदाय का नाम सखी सम्प्रदाय पड़ा।[3]

उपास्य श्री राधा-कृष्ण के पास्परिक सम्बन्ध की विभिन्न सम्प्रदायों में अलग-अलग रूप से कल्पना की गई है। स्वामी हरिदासजी के सम्प्रदाय के उपासना रस का नाम है-निरवधि नित्यविहार।[4] इनकी ठकुराईन कुंजविहारिणी राधा तो स्वकीया है किन्तु वे वृषभानु गोप के घर जन्म नहीं लेती और न इनके ठाकुर कुंजविहारी ही नन्द बाबा के घर प्रकट हुए। ये युगल

अजन्मा हैं और सदा एकरस होकर एक वयस में स्थित सदा से वृंदावन में विहार करते चले आये है, कर रहे हैं और करते रहेंगे।

स्वामी हरिदासजी केलिमाल के पदों में सर्वप्रथम पद ही इस रहस्य को इस प्रकार प्रकट करता है-

माई री सहज जोरी प्रकट भई रंग की गौर श्याम घन दामिनी जैसे।
प्रथम हू हुती अबहु आगै हू रहिहै न टरिहै तैसें।
अंग-अंग की उजराई सुघराई चतुराई सुंदरता ऐसें।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी सम वैस वैसे।।1।।

और अनादिकाल से ही ये युगलअपनी रूचि के वंश परस्पर विहार कर रहे हैं–

रूचि के प्रकास परसपर खेलन लागे।
राग-रागिनी अलौकिक उपजत, नृत्य संगीत अलग लाग लागे।
राग ही में रंग रह्यौ रंग के समुद्र में ये दोऊ झागे।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी पै रंग रह्यौ रस ही में पागे।।2।।[5]

सम्प्रदाय में उपास्य युगल को श्यामा-कुंजविहारी, विहारी-विहारिणी, प्रिया-विहारिणि, प्रिया-प्रियतम, लाडिली लाल, श्यामा-श्याम, बाँकेविहारी-स्वामिनी जू, छबीलौ-छबीली, प्यारे एवं प्यारीजू आदि इसी प्रकार के स्नेह भरे नामों से पुकारा जाता है। राधानाम तो अनेक स्थानों पर मिल जायेगा किन्तु 'कृष्णनाम' एकाध जगह ही आया होगा।

भारतीय कला, संस्कृति व आध्यात्म की महान विभूति भक्त गायक स्वामी हरिदास ने अपनी निरंतर साधना से आध्यात्म की आत्मा को आत्मसात कर भारत की संस्कृति व संगीत को अक्षुण्य किया। राधाश्याम की रास लीलाओं का आपने व्यापक रूप में प्रसार किया एवं प्राचीनकला को जन-जन में प्रचारित व प्रसारित किया। यही कारण है कि शायद स्वामीजी भक्तों व संगीतज्ञों की आत्मा में आज तक बसे हुए किया और उसे जीवन में एकाकार किया।

स्वामीजी के रचनाओं में साहित्यिक व सांगीतिक सौन्दर्य समान रूप से विद्यमान है। स्वामीजी की कृतियों में **अट्ठारह पदों** का संग्रह **'सिद्धान्त के पद'** तथा **एक सौ दस** पदों का संग्रह **'केलिमाल'** के नाम से जाना जाता है। संगीत निकुंज में एक स्थान पर लिखा है–**"पदावली की रचनात्मक शैली, ध्रुवपद धमार शब्दों का प्रयोग, पदाक्षरों व तालों की उपयुक्तता को दृष्टिगत् रखते हुए यह सर्वभैम है कि एक सौ अट्ठाइस पद ध्रुवपद धमार शैली में रचे गये हैं।**[6] महान संगीताचार्य श्री स्वामी हरिदास जी तब अवतरित हुए उस समय उनकी गहन चिन्तनशीलता, अद्वितीय संगीत ज्ञान ने संगीत को एक आध्यात्मिक, अद्भुत एवं दिव्य आधार प्रदान किया। काव्य की दृष्टि से केलिमाल के पद अत्यन्त उच्च श्रेणी के हैं।

श्री राजेन्द्ररंजनजी, स्वामीजी के संगीत के बारे में बताते हैं, "केलिमाल के अनेक पदों में विविध वाद्यों के साथ रागालाप की परिचर्चा से उस समय के समाज गान की परिपाटी का बोध होता है।"[7]

स्वामी हरिदासजी की सम्पूर्ण रचना यद्यपि केवल 128 पदों में सीमित है किन्तु उनका शब्द भण्डार बड़ा व्यापक है। उनकी रचना ब्रजभाषा में है, किन्तु संस्कृत के तत्सम शब्द भी प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं।

नदित मन मृदंगी रास भूमि सुकांत, अमिनै सुनव गति त्रिभंगी।
धापि राधा नटति ललिता रसवती, नागरी गाइतेग्रनाभि तान तुंगी।।
रसद बिहारी बंदे वल्लभा राधिका निशिदिन रंग रंगी।
श्री हरिदासके स्वामी स्यामा कुंजविहारी संगीत संगी।।94।।[8]

एक दो जगह जहाँ उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग हुआ है, धातुओं का रूप खड़ी बोली का है-

बंदे अख़त्यार भला चित न डुला।
आव समाधि भीतर न होहु अगला।
न फिर दर-दर पिदर दर न होहु अंधला।
कहि श्री हरिदास करता किया सो हुआ सुमेरू अचल चला।।6।।

स्वामीजी के पद सिर्फ पढ़ने के लिए नहीं लिखे गये थे, उन्हें स्वामी हरिदासजी ने स्वयं गाने के लिए लिखा है। अतः उसमें केवल गायन के सौन्दर्य का आग्रह है। ये पद ध्रुपद शैली में गाये जाने के लिए लिखे गये थे। अतः ध्रुपद में प्रयुक्त होने वाले तालों के अनूकुल इनकी लय हो, यही ध्यान में रखा गया है।

पद है-

देखि देखि फूल भई।
प्रेम के प्रकास प्रीति के आगै होय लई।
सुनरी सखी बागौ बनौ आजु तुम पर त्रन टूटत है जु नई।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी
सकल गुन निपुन के ताता थेई थेई गति जु ठई।।

उपर्युक्त पद को यदि धमार ताल में बैठाये तो उसकी संगीत की मात्राएँ, यति और सम इस प्रकार होंगे-

देखि । देखि । फूल । भई ।
3 4 3 4

(धमार में 3 व 4 मात्राओं के क्रम से 7-7 मात्राओं पर यति आती है। इस पंक्ति में प्रथम 'दे' पर 'सम' तथा 'फू' पर खाली आयेंगे। आगे भी इसी क्रम से 7-7 मात्राओं के बाद सम और खाली पड़ेंगे)

प्रेम के प्र । क्रास प्रीति के । आगे । होइ लइ ।
7 7 7 7

(इस पंक्ति में 'प्रे' पर 'सम', 'का' पर 'खाली', 'आ' पर 'सम' व 'हो' पर खाली पड़ेगा। इस पंक्ति को गाने के बाद गायक पुनः 'देखि देखि फूल भई' की आवृत्ति करेगा, तब पुनः प्रथम 'दे' पर 'सम' आयेगा)

सुन री सखी । बागौ बनौ । आजु तुम पर ।
7 7 7

त्रन टूटत है । जो । नई ।
7 7 7

(इस पंक्ति में 'सु' पर 'सम', 'बा' पर 'खाली', 'आ' पर 'सम', 'त्र' पपर 'खाली', 'जो' पर 'सम' तथा 'न' पर 'खाली' पड़ेंगे तथा 'देखि देखि फूल भई' की पुनरावृत्ति होने पर पुनः 'दे' पर 'सम' आयेगा। तीसरी पंक्ति में 'जो' में छन्दशास्त्र के अनुसार तो केवल दो ही मात्रा होंगी परन्तु संगीतज्ञ इसे बढ़ाकर गाने में 7 मात्रा में गायेंगे। इसी प्रकार 'नई' को भी बढ़ाकर 7 मात्रा में गाया जायेगा)

श्री हरिदास । के स्वामी । स्यामा कुंज वि । हारी स ।
7 7 7 7

कल गुन निपुन । ताता थेई ताता थेई । गति जु । ठई ।
7 7 7 7

(इस पंक्ति में 'श्री' पर 'सम', 'के' पर 'खाली', 'स्या' पर 'सम', 'हा' पर 'खाली', 'के' पर 'सम', 'ता' पर 'खाली', 'ग' पर 'सम', 'ठ' पर 'खाली' तथा पुनः 'देखि-देखि फूल भई' की आवृत्ति होने पर 'दे' पर 'सम' आयेगा।)

इस प्रकार देखते हैं कि पंक्तियां चाहे छोटी हो या बड़ी, गाने के समय उनके समाप्त होने पर सम हमेशा उसी स्थान पर आयेगा। उपर्युक्त मात्रा विभाग में यह ध्यान देने योग्य है कि प्रथम पंक्ति में 7-7 मात्राओं के दो टुकड़े हैं, दूसरे में में 4, तीसरे में 6, व चौथी में 8.

उपर्युक्त पद को 'त्रिताल' में भी गाया जा सकता है और उसमें 7-7 के स्थान पर 8-8 मात्राओं के टुकड़े लगभग इसी क्रम में आयेंगे। जो पद छन्दशास्त्र की दृष्टि से छोटे-बड़े लगते हैं, उन्हें संगीत में समान मात्राओं में बैठा लेना तनिक भी कठिन नहीं होता। स्वामी हरिदासजी के अन्य पदों की परीक्षा करने पर सिद्ध होगा कि वे गायन के लिए लिखे गये हैं, सिर्फ पढ़ने के लिए नहीं।

कुछ पद-

(अ) हित तौ कीजे कमल नैन सो, जा हित के आगे और हित लागै सब फीकौ।
(ब) मेरो तेरो न्याव दई के आगै जो कछु करै सो करि हमारे सिर ऊपर।
(स) अद्भुत गति उपजत अति नृतत दोउ मंडल कुँवर किशोरी।

सकल सुगंध अंग भरि भोरी पीय नृतत मुसकन मुखमोरी परिरंभन रस रोरी।

इस प्रकार से स्पष्ट होगा कि ये पद सिर्फ गायन के लिए लिखे गये थे। प्रथम उदाहरण में 'तौ' की योजना संगीत की यंगीत की लय की सुविधा के लिए ही हुई है। द्वितीय उदाहरण में 'जो कछु करै सो करि हमारे सिर ऊपर' इन शब्दों को लय-ताल का सहारा लिये बिना पढ़ना थोड़ा अजीब सा लगता है। तृतीय उदाहरण में 'अद्भुत', 'नृतत', 'मंडल', 'सुगंध', 'अंग', 'परिरंभन' आदि शब्दों की योजना मृदंग के बोलों से इतना मिलता है कि साधारण रीति से पढ़ने पर भी मृदंग जैसी ध्वनि की सृष्टि करती है। ध्रुपद सदा मृदंग के साथ गाया जाता है, जिसे उत्तर भारत में पखावज की संज्ञा दी जाती है जबकि पखावज मृदंग का परिष्कृत रूप है।

स्वामीजी के सभी पद चार पंक्तियों के हैं। शास्त्रानुसार ध्रुपद के भी चार अंग होते हैं-स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग। प्रत्येक छन्द की चारो पंक्तियाँ इसी विभाग के अनुसार है।

स्वामी जी के पदों को राग-विभाग के अनुसार संकलित किया गया है। भिन्न-भिन्न रागों के पदों की संख्या निम्नलिखित है-

अष्टादश सिद्धान्त के पदों में:-

विभास-4; बिलावल-1; आसावरी-7; कल्याण-6

केलिमाल में:-

कान्हरा-30; कल्याण-12; विभास-10; गौड़-2; गौरी-6; बिलावल-2; केदारा-22; सारंग-11; मलार-8; बसन्त-5; नट-2

स्वामीजी की गायन पद्धति कैसी थी? यह तो जानना आज असम्भव है। यदि उनके गायन पद्धति के कोई संकेत हमें मिल सकती है, तो सम्भवतः उनके सम्प्रदाय के विरक्त साधुओं के 'समाज' की गायन पद्धति से। इस सम्प्रदाय में समाज की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। यह गायकी अन्य ध्रुपद-कलाकारों के गायन से बहुत भिन्न है। योग्य संगीतज्ञ आज भी 'समाज' में गाये जाने वाले ध्रुपदों की स्वरलिपी कर लें, तो कम से कम आज इस परम्परा की गायकी का जो रूप मिलता है तो उसे सुरक्षित किया जा सके।

यह भी कहा जा सकता कि डागर वाणी स्वामी हरिदासकी वाणी है। परन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है। वास्तव में शास्त्रीय दृष्टि से आज तक किसी ने इन चारों वाणियों का भेद स्पष्ट नहीं किया। इनमें ऐसा कोई भेद है भी या नहीं, इनमें संदेह है। जैसे एक ही राग को विभिन्न कलाकार अलग-अलग तरह से गाते हैं, उसी प्रकार ध्रुपद के विभिन्न घरानों की गायन-शैली को ही चार नाम दिये गये हैं-

1. डागर, 2. खण्डहार, 3. नौहार, 4. गोबरहार, जिन्हें बानी की संज्ञा दी गई है।

डागर नाम को स्वामीजी के साथ जोड़ना भी एक भ्रम पर आधारित है, जिसका उदाहरण कोलकाता में छपा 'संगीत राग कल्पद्रुम' है। इसके अनुसार स्वामी हरिदास डागर नाम के एक अन्य व्यक्ति हुए हैं और उन्हीं के पद 'संगीतरागकल्पद्रुम' में संग्रहीत हैं। इस ग्रन्थ में स्वामी हरिदासजी के जो पद आये हैं, उनमें स्पष्ट श्रीहरिदास के स्वामी 'श्यामाकुंजविहारी' यह छाप मिलती है। डागर छाप के छन्दों का विषय और शैली स्वामीजी से बिलकुल भिन्न है। हरिदास डागर के पदों में गणेश-वन्दना भी है, जो स्वामीजी के रचना में सम्भव ही नहीं।

स्वामीजी संगीत के उच्चतमूकोटि के आचार्य थे, जीवनपर्यन्त सिर्फ संगीत की उपासना में रत रहे और इसी कारण उनकी भक्ति में लीन होने का माध्यम भी संगीत रहा। उनमें बाल्यकाल से ही संगीत के संस्कार जागृत थे और धीरे-धीरे यह संस्कार भगवद्भक्ति में प्रवृत्त हो गये। सन्यास ग्रहण करने के पश्चात् वृन्दावन धाम आकर हरिदासजी पूर्णतः संगीतमय भगवद्भक्ति में लीन हो गये। बादशाह अकबर के दरबार के श्रेष्ठ गायक तानसेन भी स्वामीजी के शिष्य सर्वसम्मति से माने जाते हैं। तानसेन के मुख से स्वामीजी के दिव्यातिदिव्य संगीत का वर्णन सुनकर बादशाह अकबर भी वेश बदलकर उनका गायन सुनने गये।

स्वामीजी के संगीत की प्रषंशा में सम्पूर्ण एकारता समाहित है। नित्य वृन्दावन निकुंज केलि का वर्णन तो अनेक महात्माओं ने किया, किन्तु निकुंज केलि का माधुर्य जिसको वेद भी प्रकट नहीं कर सके, ऐसे उज्जवल रस का आस्वादन केवल रसिक अनन्य नृपति स्वामी हरिदासजी ने ही किया।

यह भी सत्य है कि स्वामीजी के कई पद, वर्तमान ध्रुपद धमार के परम्परा में गायन के रूप में आज भी भिन्न-भिन्न रागों में गाये जा रहे हैं। जबकि इसका मूल रूप आज मन्दिरों (हवेली) में आज भी सुरक्षित हैं, जिसे हवेली संगीत की संज्ञा देकर कलाकार उसे मन्दिरों में गा रहे हैं।

यह कहा जा सकता है कि स्वामी हरिदास जी की भक्ति का प्रेरणास्त्रोत उनका पारिवारिक व आस-पास का परिवेश था, जो कृष्ण भक्ति से सारोबार था। श्रीकृष्ण की जन्मभूमि व लीलाभूमि उनके आस-पास का क्षेत्र था। इसके अतिरिक्त उनकी अन्तःप्रेरणा भी उन्हें भक्तिमार्ग की ओर अग्रसर करती चली गई। संगीत उनके जीवन में चारो ओर व्याप्त रहा जिससे इन्होंने संगीत को उपासना पद्धति के रूप में अपनाया। स्वामीजी श्यामा और श्याम के विषय में जो कुछ भी सोचते, देखते व कहते थे, वह संगीत की किसी न किसी विधा (गायन, वादन,नृत्य) से जुड़ा होता था। उनकी अन्तःप्रेरणा संगीत थी और संगीत के कारण ही भक्ति की दिशा की ओर अग्रसर हुए और उनकी उपासना संगीत के कारण अमर हो गई।

सन्दर्भ सूची

- प्रताप.रागिनी; सूर, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना में संगीत का योगदान; मेरठ.शलभ पब्लिशिंग हाऊस; संस्करण प्रथम 2012
- स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी साहित्य; दत्त.गोपाल; जयपुर.नेशनल पब्लिशिंग हाऊस; संस्करण प्रथम 1977
- मध्यकाल के संगीतज्ञ व कवियों का हिन्दुस्तानी संगीत व काव्य में योगदान; दीक्षित.रश्मि; इलाहाबाद. अनुभव पब्लिशिंग हाऊस; संस्करण प्रथम 2012
- अकबरी दरबार; वर्म्मा, रामचन्द्र.काशी, नागरी प्रचारिणी सभा. संवत् 1993
- संगीत चिन्तामणि, बृहस्पति,कै.च.दे.. हाथरस, संगीत कार्यालय. संस्करण, द्वितीय 1976
- विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ व स्मारिकाएँ

फुटनोट

[1] स्वामी हरिदास वाणी एवं संगीत, अलेनंदा पलनीटकर, पृ.सं.56

[2] "वही" पृ.सं.128

[3] संगीत चिंतामणि, आचार्य बृहस्पति, पृ.सं.274

[4] स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी साहित्य; .गोपाल दत्त, पृ.सं.200

[5] "वही" पृ.सं.201

[6] स्वामी हरिदास वाणी एवं संगीत, अलेनंदा पलनीटकर, पृ.सं.122

[7] स्वामी श्री हरिदास संगीत महोत्सव स्मारिका

[8] स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी साहित्य; .गोपाल दत्त, पृ.सं.241

स्वामीजी के संगीत की प्रषंशा में सम्पूर्ण एकारता समाहित है। नित्य वृन्दावन निकुंज केलि का वर्णन तो अनेक महात्माओं ने किया, किन्तु निकुंज केलि का माधुर्य जिसको वेद भी प्रकट नहीं कर सके, ऐसे उज्जवल रस का आस्वादन केवल रसिक अनन्य नृपति स्वामी हरिदासजी ने ही किया।

यह भी सत्य है कि स्वामीजी के कई पद, वर्तमान ध्रुपद धमार के परम्परा में गायन के रूप में आज भी भिन्न-भिन्न रागों में गाये जा रहे हैं। जबकि इसका मूल रूप आज मन्दिरों (हवेली) में आज भी सुरक्षित हैं, जिसे हवेली संगीत की संज्ञा देकर कलाकार उसे मन्दिरों में गा रहे हैं।

यह कहा जा सकता है कि स्वामी हरिदास जी की भक्ति का प्रेरणास्त्रोत उनका पारिवारिक व आस-पास का परिवेश था, जो कृष्ण भक्ति से सारोबार था। श्रीकृष्ण की जन्मभूमि व लीलाभूमि उनके आस-पास का क्षेत्र था। इसके अतिरिक्त उनकी अन्तःप्रेरणा भी उन्हें भक्तिमार्ग की ओर अग्रसर करती चली गई। संगीत उनके जीवन में चारो ओर व्याप्त रहा जिससे इन्होंने संगीत को उपासना पद्धति के रूप में अपनाया। स्वामीजी श्यामा और श्याम के विषय में जो कुछ भी सोचते, देखते व कहते थे, वह संगीत की किसी न किसी विधा (गायन, वादन,नृत्य) से जुड़ा होता था। उनकी अन्तःप्रेरणा संगीत थी और संगीत के कारण ही भक्ति की दिशा की ओर अग्रसर हुए और उनकी उपासना संगीत के कारण अमर हो गई।

सन्दर्भ सूची

- प्रताप.रागिनी; सूर, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना में संगीत का योगदान; मेरठ.शलभ पब्लिशिंग हाऊस; संस्करण प्रथम 2012
- स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी साहित्य; दत्त.गोपाल; जयपुर.नेशनल पब्लिशिंग हाऊस; संस्करण प्रथम 1977
- मध्यकाल के संगीतज्ञ व कवियों का हिन्दुस्तानी संगीत व काव्य में योगदान; दीक्षित.रश्मि; इलाहाबाद. अनुभव पब्लिशिंग हाऊस; संस्करण प्रथम 2012
- अकबरी दरबार; वर्म्मा, रामचन्द्र.काशी, नागरी प्रचारिणी सभा. संवत् 1993
- संगीत चिन्तामणि, बृहस्पति,कै.च.दे.. हाथरस, संगीत कार्यालय. संस्करण, द्वितीय 1976
- विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ व स्मारिकाएँ

फुटनोट

[1] स्वामी हरिदास वाणी एवं संगीत, अलेनंदा पलनीटकर, पृ.सं.56

[2] ''वही'' पृ.सं.128

[3] संगीत चिंतामणि, आचार्य बृहस्पति, पृ.सं.274

[4] स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी साहित्य; .गोपाल दत्त, पृ.सं.200

[5] ''वही'' पृ.सं.201

[6] स्वामी हरिदास वाणी एवं संगीत, अलेनंदा पलनीटकर, पृ.सं.122

[7] स्वामी श्री हरिदास संगीत महोत्सव स्मारिका

[8] स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी साहित्य; .गोपाल दत्त, पृ.सं.241

प्रेम का अलौकिक रूप श्री राधा-कृष्ण (सूरदास के विशेष दृष्टिकोण से)

अमृता मिश्रा
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रेम एक परम सौंदर्यपूर्ण सुनहली अनुभूति है। इसकी कोई व्याख्या नहीं है। बस, इसका होना ही पर्याप्त है, पर अनुभव को अभिव्यक्त करने के लिए इसे वाणी में या शब्दों में उतारना पड़ता है। इसे उकेरा तो नहीं जा सकता है, हाँ इसकी झीनी सी एक झलक-झाँकी देखी-दिखाई जा सकती है। अनुभव करने वाले जानते हैं कि प्रेम सार्वकालिक, सर्वव्यापी और अपनी मूलप्रकृति में मंगलकारी भी है। इसकी ऊर्जा अनंत, अक्षत एवं अक्षय है। प्रेम ने बहुतों के जीवन का रूख बदल दिया। किसी को कविता की राह दिखाई तो कोई क्रांति व कला के रास्ते पर चल निकला।

भारतीय संस्कृति में कई महान कवि एवं साहित्यकार हुए हैं जिनकी दशा और दिशा बदली-प्रेमपूर्ण प्रेरणा से। ऐसे ही कवियों में सूरदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। "सूर की भक्ति और संगीत उनकी सहज अन्तःप्रेरणा का ही फल है। वह कल्पना के ऐसे शिल्पी थे, जो शब्दों से, स्वरों से अपने आराध्य श्रीकृष्ण की कैसी-कैसी लीलाएँ गढ़ लेते थे। संसार का कोई भी सौन्दर्य चाहे वह वाह्य हो अथवा आन्तरिक उनकी अन्तःदृष्टि से अछूता न रह सका। उन्होंने कृष्ण काव्य में अपनी सम्पूर्ण कल्पना उड़ेल दी।"[1]

"सूरदास ने कृष्ण के मानव रूप को ही प्रधानता दी है। यद्यपि उनके कृष्ण अन्तर्यामी हैं परन्तु भक्तों के हित के लिए वह समय-समय पर अवतार धारण कर लेते हैं। कृष्ण संसार का उद्धार करने के लिए ही मानव रूप धारण करके अवतरित हुए हैं।"[2]

"सूर के कृष्ण अपरिमित शोभा के भण्डार हैं। ये सौंदर्य के सागर हैं। सुषमा का यह अक्षय स्रोत परम ब्रह्म के अतिरिक्त और कहाँ हो सकता है? अतः कृष्ण साक्षात् भगवान हैं।[3]

"सूरदास ने कृष्ण को अलौकिक मानकर भी मानव देहधारी कहा है। इसी कारण से उन्होंने कृष्ण के व्यक्तित्व को मानवीय विशेषताओं एवं गुणों की दो समानान्तर धाराओं में प्रवाहित किया है। एक ओर उनका अति प्राकृत रूप है जिसमें उनका बहिर्मुखी व्यक्तित्व अधिक परिलक्षित होता है और दूसरा मानवीय तथा लोक नायकीय स्वरूप है, जिसमें वह प्रायः अन्तमुर्खी हो जाते हैं। मथुरा पहुंचने पर कृष्ण के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के दर्शन अधिक होते हैं।"[4]

"राधा कृष्ण लीला की प्रधान नायिका हैं। सूरदास ने उन्हें श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व की पूरक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। आध्यात्मिक अर्थ में वह कृष्ण की अर्द्धांगिनी हैं।"[5]

"कृष्ण सूरदास के उपास्य हैं और राधा उनके उपास्य की उपासिका, इसलिए सूर ने राधा का चित्रण भी अलौकिक रूप में ही प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार सूर ने अपने उपास्य कृष्ण को प्रतिपल नेत्रों के सम्मुख ही रखने के इच्छुक हैं उसी प्रकार

राधा भी कृष्ण को आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहती। वह अनेक बहाने बनाकर उनसे मिलने का मार्ग खोज ही लेती हैं। सूरदास ने राधा को प्रेम की देवी के रूप में प्रस्तुत किया है। वह कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति हैं।"[6]

"सूर की राधा सुन्दर एवं हंसमुख हैं। चंचल तथा चपल हैं। उनकी अनेक सखियां हैं जिनके साथ वह बरसाने में तथा नन्दगांव में बाल सुलभ क्रीडा करती फिरती हैं।"[7]

"राधा अत्यन्त सीधी एवं परम सुन्दरी हैं। यशोदा को बाल्यावस्था से ही जो कृष्ण के प्रति आशंका हो गई थी, उसका कारण राधा की अतीव सुन्दरता और उसके नयनों का विलक्षण आकर्षण ही था। राधा के रूप का वर्णन कवि ने प्रधानतया दो प्रकार से कराया है- एक तो राधा के विरह और मान के समय दूत द्वारा और दूसरे कृष्ण मिलन सुख के बाद सखियों द्वारा।"[8]

"राधा 'सहज रूप की राशि' और सुन्दरता की पुंज हैं और स्त्रियां नख-शिख श्रृंगार करके भी उसकी समता नहीं कर सकतीं। रति, रंभा, उर्वशी, रमा आदि उसे देखकर मन में झूरती हैं, क्योंकि ये सब 'कंत-सुहागिन' नहीं हैं और राधा कंत को प्रिय हैं। 'रूप-निधान', 'राधा-नागरी' के अंगों पर भूषण और भी अधिक शोभित होते हैं, मानो सुख-सौरभ और सुधा कनकलता पर छाजते हों।"[9]

सूरदास ने कृष्ण को साक्षात् ब्रह्म और राधा को ब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति के रूप में माना है।

"राधा कृष्ण का प्रथम मिलन और प्रेम विकास का कथानक कृष्ण के 'चकई-भौंरा' खेलने से सम्बद्ध है। प्रथम मिलन में ही न केवल दोनों में प्रेम का उदय हो गया, अपितु राधा ने चतुरतापूर्वक प्रेम-गोपन का भी पाठ पढ़ लिया।"[10]

"कृष्ण एवं राधा का प्रेम निरन्तर घनिष्ठता को प्राप्त हो रहा है परन्तु सामाजिक मर्यादा उनके मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती है। राधा कृष्ण प्रतिदिन किसी न किसी बहाने से परस्पर भेंट करने में सफल होते रहते हैं। यशोदा को बर-बार राधा का कृष्ण से भेंट करना रूचिकर नहीं लगता अतः वह एक दिन उसको झिड़क देती है। झिड़की सुनकर साधारण बालिकाओं के सदृश राधा न तो सहमती हैं और न रोती ही हैं वरन् तत्काल उत्तर देती हैं कि मुझे क्यों कहती हो, अपने पुत्र को रोको जो मेरे से कहता है कि तुझे देखे बिना मेरे प्राण नहीं रहते।"[11]

राधा और कृष्ण अतिमानव होते हुए भी पूर्ण मानव हैं। मानव भी मूक और कृत्रिम नहीं, साधारण और जीवन से तटस्थ और चहार दीवारी के अन्दर रंगरेलियां करने वाले नहीं वरन् जीवन के सामान्य धरातल पर बालोचित क्रीड़ा, यौवन-सुलभ हास-परिहास, एक के सुख में सुख और दुःख में दुःख का अनुभव करने वाले परिस्थिति के अनुकूल क्रिया उद्योगशील एवं प्रवृत्ति परायण हैं। सूर ने उस परम पुरूष और परम प्रकृति को कृष्ण और राधा के रूप में अवम बनाकर, ऊपर से नीचे लाकर, हम सबके पास बिठा दिया है।"[12]

"सूरदास ने व्यास की साक्षी देकर राधा-कृष्ण के प्रेम-विकास का संक्षिप्त इतिहास देते हुए वनभूमि के प्राकृतिक और सरस वातावरण में उनके गंधर्व विवाह का पूर्ण यथार्थ और चित्रोपम वर्णन किया है। विवाह के उपरान्त पुनः रास-क्रीड़ा के अनेक चित्र दिए गए हैं जिनमें राधा की प्रधानता और अधिक लक्षित होती है। इसी प्रधानता के कारण राधा को गर्व हो जाता है और वह समझने लगती हैं कि मेरे समान और कोई स्त्री नहीं है, मैंने गिरधर को अपने वश में कर लिया है। मैं जो कहती हूँ वे वही करते हैं, मेरे ही कारण यह रास रचा गया है। गर्व के वशीभूत होकर उसने कंत से कहा कि नृत्य करते-करते मैं थक गई हूँ, अतः मेरा श्रम मिटाने के लिए मुझे कंधे पर चढ़ा लो। गर्व का नाश करने के लिए श्री कृष्ण अन्तर्धान हो गए। श्री कृष्ण प्रेम में राधा के विशिष्ट स्थान के कारण ही कवि श्रीकृष्ण को राधा के साथ अन्तर्धान होते दिखाता है।"[13]

"राधा का प्रेम कृष्ण के साथ उसी प्रकार का है, जैसा चकोर का चन्द्र के साथ। इस रतिनागर की ओर जब-जब राधा की दृष्टि जाती है, तो मुख मंडल की आभा उसके नेत्रों में बिंध सी जाती है। और कृष्ण? वे भी राधा की अनिंद्य छवि पर आसक्त हैं।

कृष्ण के चित्त से वह क्षण भर के लिए भी नहीं हटती। सूर ने राधा और कृष्ण दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट करके अन्योन्य प्रेम का अद्भुत वर्णन किया है। सूर लिखते हैं-

चितै रही राधा हरि को मुख।
भृकुटि विकट बिसाल नयन युग देखत मनहिं भयो रीति पति दुख।।
उतहि स्याम एकटक प्यारी छवि अंग अंग अवलोकत।
रीझि रहे उत हरि दूल राधा अरस परस दोउ नोकत।।
10 / 1302

सूरसागर (ना.प्र.स.2383)

राधा और कृष्ण दोनों मिलकर एक हो गये हैं। कहाँ तो राधा श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में सखियों से पूँछताछ ही करती थी, उनसे पहिचान तक नहीं थी, पर आज यह दशा है कि वे सखियाँ कहीं की न रहीं, राधा और कृष्ण एक दूसरे के लिए सब कुछ हो गये। अनुराग समय के पदों में गोपियाँ कहती हैं-

पुनि पुनि कहति है ब्रजनारि।
धन्य बड़भागिनी राधा तेरे वश गिरिधारि।।
धन्य नन्दकुमार धनि तुम धन्य तेरी प्रीति।
धन्य तूम दोऊ नवल जोरी कोक कलानि जीति।।
हम विमुख तुम करूण संगिनी प्राण एक द्वै देह।
एक मन एक बुद्धि एक चित्त दुहुनि एक सनेह।।
एक छिनु तुमहि देखे स्याम धरत न धीर।
मूरलि में तुम नाम पुनि पुनि कहत हैं बलबीर।।
स्याम मणि में परखि लीन्हों महा चतुर सुजान।
सूर प्रभु के प्रेम ही बस कौन तो सरि आन।।
सूरसागर (ना.प्र.स. 2460)

राधा! तू बड़भागिनी है। तू धन्य है। गिरिधर आज तेरे ही वश में हैं। तेरा प्रेम धन्य है। नंदकुमार भी धन्य हैं। तुम दोनों की अभिनव जोड़ी धन्य है। तुम दोनों लोक कलाओं में व्युत्पन्न हो। प्रेम-प्रणाली पर तुम्हीं ने विजय प्राप्त की है। हम तो विमुख ही रहीं, पर तुम कृष्ण की संगिनी बन गई। दो शरीर होते हुए भी तुम दोनों एक प्राण हो। दोनों के समान मन, समान बुद्धि, समान चित्त (समान मनः सह चित्तमेषाम्) और समान प्रेम। श्याम भी एक क्षण के लिए तुम्हें बिना देखे नहीं रह सकते। मुरली की ध्वनि में श्रीकृष्ण तुम्हारा ही नाम लेते हैं। श्याम रूपी मणि को हमने अच्छी तरह परख लिया है। वे बड़े चतुर हैं और तुम्हारे समान भी कोई अन्य गोपी नहीं है, क्योंकि तुम प्रभु के प्रेम को प्राप्त कर चुकी हो।

सूर ने राधा-कृष्ण के अनन्य प्रेम का अन्योन्य रूप में जहां वर्णन किया है, वहाँ संयोग के वियोग-भावना के अनुभव को भी दोनों में समान रूप से प्रदर्शित किया है। राधा यदि श्याम की प्रेमिका है, तो हरि भी राधा के प्रेमी हैं। कृष्ण के शरीर में राधा का निवास है, तो राधा के शरीर में कृष्ण का। राधा हरि के नेत्रों में बसी हैं, तो हरि राधा के नेत्रों में। इसी प्रकार राधा यदि हरि-मिलन के लिए व्याकुल होती हैं तो हरि भी राधा-विरह से व्याकुल हो उठते हैं। सूर ने लिखा है-

स्याम अति राधा बिरह भरे।
कबहूँ सदन कबहूँ आँगन ही कबहूँ पौरि खरे।।
सूरसागर (ना.प्र.स. 2517)

जैसे गुण गुणी से पृथक नहीं होता, शक्ति अपने आश्रय से अलग नहीं होती उसी प्रकार राधा कृष्ण से भिन्न नहीं हैं।[14]

1226वें पद में श्रीकृष्ण राधा से कहते हैं कि प्रकृति और पुरूष एक ही हैं, केवल बातों का भेद है। जल और थल जहाँ भी मैं रहता हूँ, तुम्हारे साथ ही रहता हूँ, तुमसे पृथक होकर नहीं। हमारे तुम्हारे शरीर दो हैं, पर जीव एक ही है। हम तुम दोनों ही ब्रह्म रूप हैं। राधा इस बात को सुनकर कृष्ण के मुख की ओर देखती हुई आनन्द में मग्न हो गई। राधा ने समझ लिया कि वह प्रकृति है, नारी है और श्रीकृष्ण पुरूष हैं, पति हैं। यह कोई नवीन स्नेह नहीं है। यह तो पुरातन, शाश्वत प्रेम है- युग-युग की लीला है। 1230वें पद में श्रीकृष्ण पुनः कहते हैं; ''राधा, मेरी बात सुनो। इस पुरातन प्रीति को छिपाकर रखो मैं और तुम दो नहीं, एक ही हैं। पद संख्या 1590 में सूर कहते हैं : ''जो प्रभु तीनों लोकों का नायक हैं, सुर और मुनि जिसका अन्त नहीं पाते,

शिव जिसका दिन-रात ध्यान करते हैं, सहस्रानन शेष जिसका कीर्तिगान गाते हैं, वही हरि वृषभानु-सुता राधा के वशीभूत हो रही हैं। राधा के अतिरिक्त उन्हें और कुछ अच्छा ही नहीं लगता। जैसे छाया शरीर के साथ रहती है, वैसे ही श्रीकृष्ण राधा के साथ रहते हैं।''

एक बार कृष्ण के पीछे से अचानक आकर राधा की आँखें मूंद ली। राधा इतने में ही भाव-विभोर हो गई। सखियों से वह कहती है-''आज मैं फूली नहीं समाती। मैं गाऊँ या बजाऊँ या प्रेम रस भर के नाचूँ अथवा तन-मन-धन निछावर कर डालूँ, कुछ समझ में नहीं आता। मेरा भाग्य मेरा सौभाग्य, मेरा अनुराग और कन्हाई सभी धन्य हैं। आज रात्रि धन्य है। यह दिवस धन्य है, मेरा गृह, मेरी देह, मेरा श्रृंगार, वह प्रतिबिंब सब धन्य हैं। सूर प्रभु धन्य हैं, उनका दृष्टि निक्षेप उनका आंख मींचना और वे स्वयं सुखदायी प्रिय धन्य हैं।''[15]

राधा-माधव-भेंट का वर्णन करते हुए सूर लिखते हैं–

राधा माधव भेंट भई।
राधा-माधव, माधव-राधा क्रीट भृंग गति होई जु गई।।
माधव राधा के रँग रँचि राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरन्तर रसना कहि न गई।।
सूरसागर (ना.प्र.स. 4910)

जैसे भृंग कीट को पकड़ कर अपने रूप में परिवर्तित कर लेता है उसी प्रकार राधा माधव में और माधव राधा में मिलकर एक हो गये। भक्त ने प्रभु को अपने धरातल पर खींच लिया और प्रभु ने भक्त को अपने रंग में रंग दिया, अपने में मिला लिया। हृदय की रागानुगा वृत्ति के लिए कितना सुन्दर आश्रय है यह। यहाँ प्रेम भी है और पूजा भी। काव्य भी है और भक्ति भी। सूरदास ने राधा को मतवाली मीरा नहीं बनने दिया। सांख्य एवं मधुर भाव की भक्ति के धनी सूर के लिए यह नितान्त सहज और स्वाभाविक था। सूरसागर इसीलिए कवियों का कंठहार और भक्तों की माला का सुमेरू बना है। राधा और कृष्ण का जो रूप सूर ने अंकित किया है, उसकी अमिट छाप अन्य कवियों के ग्रन्थों में दिखाई देती है।

संदर्भ

[1] सूर, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना में संगीत का योगदान-डॉ. रागिनी प्रताप, पृष्ठ-63, शलभ पब्लिशिंग हाऊस मेरठ।

[2] सकल लोक नायक सुखदायक, अजन, जन्म धरि आयौ। सूरसागर, पद 622

[3] भारतीय साधना और सूर साहित्य, डॉ. मुंशीराम शर्मा पृष्ठ-351 ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

[4] आधुनिक मनोविज्ञान और सूर-काव्य, डॉ. कमला आत्रेय, पृष्ठ 246, विभू प्रकाशन, साहिबाबाद।

[5] सूरदास-जीवन और काव्य का अध्ययन, ब्रजेश्वर वर्मा, पृष्ठ-321, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।

[6] आधुनिक मनोविज्ञान और सूर-काव्य, डॉ. कमला आत्रेय, पृष्ठ-257 विभू प्रकाशन, सहिबाबाद।

[7] वही, पृष्ठ-258

[8] सूरदास-जीवन और काव्य का अध्ययन, ब्रजेश्वर वर्मा, पृष्ठ-323, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[9] वही, पृष्ठ-323

[10] आधुनिक मनोविज्ञान और सूरकाव्य, डॉ. कमला आत्रेय, पृष्ठ-258 विभू प्रकाशन, इलाहाबाद

[11] वही, पृष्ठ-258

[12] भारतीय साधना और सूर साहित्य डॉ. मुंशीराम शर्मा, पृष्ठ-308, गन्थम रागबाग कानपुर।

[13] सूरदास जीवन और काव्य का अध्ययन, ब्रजेश्वर वर्मा, पृष्ठ-277-278, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

[14] भारतीय साधना और सूर साहित्य, डॉ. मुंशीराम शर्मा, पृष्ठ-253, ग्रन्थम रामबाग कानपुर।

[15] सूरदास जीवन और काव्य का अध्ययन, ब्रजेश्वर वर्मा, पृष्ठ-320 लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

मध्य प्रदेश के अंचलों का भारतीय संगीत जगत में योगदान

नेहा त्रिपाठी

शोध छात्रा
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

संगीत का प्रारम्भ व विकास सदा संस्कृति पर ही आश्रित रहा है, हमारा संगीत मानव उत्पत्ति काल से ही जन-जीवन से सम्बन्धित रहा है। हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ ही हमारा संगीत भी विकसित होता रहा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति का विस्तार जितना अधिक था इसमें आत्मसात् करने की क्षमता उतनी ही प्रबल थी। यह संस्कृति समाज में होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार करती चली गयी। संसार में देशभेद से अनेक प्रकार के मनुष्य हैं। उनकी संस्कृतियां भी अनेक है। यहां नानात्व अनिवार्य हैं, वह मानवीय जीवन का झंझट नही, उसकी सजावट है। किन्तु देश और काल की सीमा से बंधे हुये हमारा घनिष्ठ परिचय या संबंध किसी एक संस्कृति से ही सम्भव है।

पुराण में वर्णित भारतीय संस्कृति का व्यवहारिक रूप कितना मधुर एवं विश्व कल्याण के सदभावों से परिपूर्ण है तथा भारतीय विद्याओं-कलाओं का आर्विभाव लोकमंगल की भावना प्रसारित करने के लिये हुआ है, यह तथ्य पुराण साहित्य के अध्ययन में ही समझ में आता है। पाश्चात्य विचारकों ने पुराणों में प्रतिपादित विषयों को काल्पनिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है यदि उनके इस विचार को स्वीकार कर लिया जाये, तब तो भारत का कोई इतिहास ही नही रह जायेगा। क्योंकि इतिहास हीन संस्कृति अपने अस्तित्व को कब तक बनाये रह पायेगी। मध्य प्रदेश ऐसा प्रांत है जिसका सांस्कृतिक व सांगीतिक इतिहास भी अत्यन्त पुराना है। इस प्रांत में अलग-अलग 51 जिले है और इन नगरों ने किसी न किसी कला में अपना एक अलग योगदान दिया है चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो या शास्त्रात्मक पक्ष या फिर लोक संगीत। मध्य प्रदेश के इन नगरों में सर्वप्रथम स्थान है ग्वालियर का। इसके संबंध में यह कहा गया है कि ग्वालियर का बच्चा भी जब रोता है, तो सुर में रोता है। कई ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने मध्य प्रदेश व इसके बाहर भी अपना एक वर्चस्व स्थापित किया है। मध्य प्रदेश ही ऐसा अंचल है जहां पर 40-50 वर्ष पुराने संगीत के विद्यालय मौजूद है। ग्वालियर, इंदौर, उज्जैन, रतलाम, धार, जबलपुर, भोपाल, मैहर आदि स्थानों में शासन द्वारा संचालित अथवा अनुदान प्राप्त संगीत के विद्यालय हैं। इसी प्रान्त में संगीत का स्वतंत्र विश्वविद्यालय, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय इसकी स्थापना भी मध्य प्रदेश में हुई थी। नवम्बर 2000, तक क्षेत्रफल के आधार पर भारत का सबसे बड़ा राज्य था किंतु इस दिन म0प्र0 के कई नगरों को उससे हटाकर छत्तीसगढ़ की स्थापना हुई तो यह वि0वि0 छत्तीसगढ़ की सीमा में चला गया।

मध्य प्रदेश के गायक वादकों से शिक्षा पाकर संगीत के विभिन्न व्यवसायों में ख्याति अर्जित किये हुये हजारों संगीतकार देश के कोने-कोने में पाये जाते हैं। दक्षिण भारतीय संगीत में जो स्थान त्यागराज को प्राप्त है वही श्रद्धा हिन्दुस्तानी संगीत में तानसेन को प्राप्त है। मध्य प्रदेश का तानसेन समारोह भी अपने किस्म का एक अनूठा आदर्श प्रस्तुत करता है

न जाने कितने ही विभिन्न घरानों के कलाकार यहां एकत्रित होकर अपनी गायकी प्रस्तुत करते हैं। मैं मध्य प्रदेश के कुछ अंचलों का सांगीतिक वर्णन प्रस्तुत कर रही हूँ- ग्वालियर के अतिरिक्त यहाँ रीवां, जबलपुर, इन्दौर, उज्जैन, देवास, धार, मांडव आदि मध्य प्रदेश के ऐसे स्थल है जिनका संगीत कला के विकास में महत्वकांक्षी योगदान है।

इंदौर प्रांत के कलाकारों ने अपना योगदान भारतीय संगीत को देकर अपना एक सशक्त स्थान बनाया है यहां के संगीतज्ञों ने न केवल मध्य प्रदेश अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष को गौरव प्रदान किया है। मृदंगवादन कला के कोष को इन्दौर के नाना साहेब पानसे ने इतना समृद्ध किया कि उनके नाम से पानसे घराना चल पड़ा। मध्य प्रदेश के सुन्दरतम नगर इन्दौर को संगीत जगत में गौरवान्वित करने का सर्वप्रथम श्रेय महाराजा शिवाजीराव होल्कर को है। देश के कई प्रसिद्ध कलाकार उनके आश्रय में रहकर संगीत साधना किया करते थे। ध्रुपद धमार तथा होरी गायन में निष्णात श्री बहराम खां इन्दौर के निवासी थे इनके दो पुत्र थे, अल्लाबंदे खां तथा जाकिरूद्दीन खां। जाकिरूद्दीन खां, नासिरूद्दीन खां के पिता तथा डागर बन्धुओं के दादा थे। ध्रुपद गायक केशव नारायण आप्टे, मृदंगवादक सखाराम पंत आगले प्रसिद्ध थे। इंदौर के अमीर खां जी की लोकप्रिय ख्याल गायकी केवल इंदौर में ही नही अपितु देश में विख्यात है। यद्यपि अमीर खां जी का कोई घराना नही है परन्तु उन्होंने अपनी गायकी का नाम इन्दौर घराना दिया है।

देवास, मध्य प्रदेश की इस नगरी ने संगीत कला में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यासीन खां, रज्जब अली खां, कुमार गंधर्व ऐसे संगीतकारों को भुलाया नही जा सकता। प्रतिवर्ष रज्जब अली खां की स्मृति में समारोह का आयोजन होता है। **इनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये देवास के एक मार्ग का नामकरण इनके नाम पर किया गया है।**

अवन्तिका का सांगीतिक इतिहास अत्यन्त प्राचीन व समृद्ध है। यह वर्षों तक मालवा की राजधानी रही है। महाराज विक्रम स्वयं दीपक राग गाने में प्रवीण थे। उनके भाई संगीतसाहित्य कलविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः लिखने वाले राजा भर्तहरी, संगीतज्ञ नही होगे यह कौन कह सकता है ? राजा विक्रम ने अपने राज्य शासन में संगीत तथा साहित्य का विभाग कालिदास को ही सौंप रखा था। आगे चलकर गुप्तकाल में संगीत की पर्याप्त उन्नति हुई। सम्राट समुद्रगुप्त वीणा वादन में सिद्धहस्त थे।

शाजापुर नगर अति प्राचीन एवं ऐतिहासिक है। मुगलों के काल में यह एक समृद्ध नगर था। इस नगर के डॉ0 शरच्चन्द्र परांजये जी का नाम कई प्रमुख विद्वानों में लिया जाता है। परांजये जी की पुस्तक प्राचीन भारतीय संगीत का इतिहास (वैदिक काल से गुप्त काल तक) निश्चित ही इनके गूढ़ अध्ययन का द्योतक है। इनकी ही पुस्तक संगीत बोध जिसमें आपने संगीत एवं संस्कृति के संबंध में बताते हुये शास्त्रीय संगीत के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं की विवेचना की है।

नवीं शताब्दी में मालवा पर परमार वंशी राजाओं का आधिपत्य हुआ, जिनके शासन काल में धार को उच्च स्थान मिला। सिन्धुराज तथा कवि मित्र राजा भोज साहित्यकला में मर्मज्ञ ही नही, अपितु विशेषज्ञ भी थे। राजा भोज ने ज्योतिष-शास्त्र, अलंकार शास्त्र आदि विविध शास्त्रों पर जहाँ रचनाये की वहाँ संगीत शास्त्र पर भी रचनायें की। ग्वालियर को यदि सांगीतिक कलाओं की नगरी कहा जाये तो निश्चित ही यह उचित है। राजा मान सिंह व सिंधिया वंश के कार्यों का इतिहास साक्षात प्रमाण है। न केवल पुरूषों ने अपितु यहां की स्त्रियों ने आगे बढ़ कर संगीत के उत्थान के लिये कई कार्य किये है। शास्त्रीय गायकी का ग्वालियर घराना अपनी अष्टांग प्रधान गायकी के कारण संगीत के अन्य घरानों पर अपना वर्चस्व स्थापित किये रहता है। यह अन्य घरानों में सबसे ज्येष्ठ है तथा इस घराने की गायकी की परंपरा अति प्राचीन तथा विस्तृत है। इस परम्परा में अनेक श्रेष्ठ कलाकार हुये, कुछ कलाकार महाराष्ट्र चले गये और वहां अपनी गायकी का प्रचार प्रसार किया। संगीताकाश के देदीप्यमान सूर्य मियां तानसेन का नाम कौन नही जानता। स्वर कोकिला लता मंगेश्कर जिनकी ख्याति अंतर्राष्ट्रिय स्तर पर व्याप्त

है, इसी भूमि की देन है। ग्वालियर की परम्परा अक्षुण्ण एवं समृद्धशाली बनाने व उच्च शिखर तक पहुंचाने में हस्सू खां, हददू खां, निसार हुसैन खां, शंकर पंडित, कृष्ण राव पंडित, राजा भैया पूछवाले, बाला साहब पूछवाले, विष्णु दिगम्बर पलुष्कर इत्यादि संगीतज्ञों का अमूल्य योगदान है।

एस0एम0 टैगोर के अनुसार- ''ग्वालियर सम्प्रदाय का आरम्भ मान सिंह तोमर से होता है, जब भारत पर सूफी परम्परा हावी हो रही थी और अरबी फारसी संगीत ने इसके स्वरूप को ढ़क लिया था, उस समय राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद जैसी गंभीर शैली का प्रचार किया और भारतीय संगीत की प्राचीन परम्पराओं को कायम रखने में उल्लेखनीय तथा सराहनीय योगदान दिया।'' इस घराने की विशेषता में स्वरों का ठोस लगाव, डज को पूर्ण रूप से भरकर लगाना, दो बार स्पष्ट उच्चारण के साथ ख्याल की स्थायी का गायन, दानेंदर तानों का प्रयोग, शुद्ध उच्चारण, टप्पा गायन एवं ध्रुपद ख्याल के साथ-साथ अष्टपदियां व टप ख्याल गाने की विशेषता है। मेरे गुरूजी प्रो0 जयंत खोत जी जिनके सानिध्य में मैं अपना शोध कार्य कर रही हूँ ग्वालियर परम्परा से ही सम्बद्ध है। मैंने गुरूजी एवं अन्य अनेक विद्वानों से साक्षात्कार के फलस्वरूप इन विशेषताओं को प्रत्यक्ष देखा व सीखने का प्रयत्न भी किया। बंदिशों को दुगुन की लय में गाना, तराना गायन, तानों का स्पष्ट उच्चारण इत्यादि विशेषतायें है जिसके कारण इतने उतार-चढ़ाव देखने के उपरान्त भी आज भी यह गायकी सर्वोच्च शिखर पर विद्यमान है। संगीतज्ञों ने अपनी साधना आराधना के द्वारा मध्य प्रदेश के मस्तक को ऊँचा किया है और यही कारण है कि इस प्रदेश का सांगीतिक इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मध्य प्रदेश में संगीत नाटक अकादमी से सम्बद्ध अनेक सांस्कृतिक संस्थान जैसे-मध्य प्रदेश लोक कला संस्थान (मंडला), कालिदास अकादमी (उज्जैन), उस्ताद अल्लाउद्दीन खां अकादमी (भोपाल) मध्य प्रदेश नाटक लोक कला अकादमी (उज्जैन), भारत भवन आदि संस्थानों का उल्लेख मिलता है। शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में कुछ सम्मानों का भी विवरण मिलता है। जैसे कुमार गंधर्व सम्मान, तानसेन सम्मान, लता मंगेश्कर सम्मान इत्यादि। यह सम्मान मध्य प्रदेश सरकार द्वारा सम्पन्न कलाकारों को उनकी प्रतिभा व गुण के लिये दिया जाता है।

कई संगीतज्ञों ने मध्य प्रदेश की सांस्कृतिक परंपरा को शक्तिशाली बनाने और संरक्षण प्रदान करने का श्रेयस्कर कार्य किया है। मध्य प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में संगीत की प्राचीन और पुष्ट परम्परा का अस्तित्व रहा है। मध्य प्रदेश में ग्वालियर जैसे स्थान है जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। इसके साथ ही रीवां, मैहर, इंदौर, दतिया, टीकमगढ़, बघेलखंड, देवास, रायगढ़, जबलपुर आदि स्थानों में भी संगीत को संरक्षण एवं प्रोत्साहन मिलता रहा है।

लोक संगीत की दृष्टि से मध्य प्रदेश एक समृद्ध प्राप्त है और यदि संक्षेप में कहा जाये कि **''भारतीय संस्कृति की आत्मा लोक कलाओं में रमती है''** तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगी।

शिल्प हो या कला, संगीत हो या साहित्य इस राज्य ने सदैव ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संगीत के क्षेत्र में मध्य प्रदेश आज भी अग्रणी है, यह हमारे लिये कम गौरव की बात नहीं है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. संगीत मीमांसा - डा0 मृदुलापुरी
2. भारतीय संगीत शास्त्र - तुलसीराम देवांगन
3. संगीत सुमन - डॉ0 जयंत खोत
4. ठुमरी एवं महिला कलाकार - पूर्णिमा द्विवेदी
5. भारतीय संगीत का इतिहास - डॉ0 शरत्चन्द्र श्रीधर परांजपे
6. संगीत बोध - डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे
7. ग्वालियर की संगीत परम्परा - डॉ0 अरूण बांगरे
8. मध्य प्रदेश के संगीतज्ञ - डॉ0 प्यारे लाल श्रीमाल
9. भारतीय संस्कृति - डॉ0 दीपक कुमार
10. कला और संस्कृति - वासुदेव शरण अग्रवाल
11. भातखंडे स्मृति ग्रंथ - डॉ0 प्रभाकर नारायण चिंचोरे।

पत्रिकाएं

संगीत पत्रिका, जून, 2007

संगीत पत्रिका, फरवरी, 2007

संगीत पत्रिका, फरवरी, 2008

छायानट पत्रिका, जनवरी- मार्च 2005

सोलह कलाओं के अवतार श्री राधा के कृष्ण

अंजली कनौजिया

एस.आर.एफ.

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

यद्यपि प्रत्येक पुराण में अनेक देवी देवताओं का वर्णन हुआ है तथा प्रत्येक पुराण में अनेक विषयों का समाहार है तथापि शिव पुराण, भविष्य पुराण, मार्कण्डेय पुराण, लिंग पुराण, बाराह पुराण, स्कन्द पुराण, कूर्म पुराण, वामन पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, एवं मत्स्यपुराण आदि में शिव को, विष्णु पुराण, नारदीय पुराण, गरूड़ पुराण एवं भागवत पुराण आदि में विष्णु को, ब्रह्म पुराण एवं पद्म पुराण में ब्रह्मा को तथा ब्रह्म को तथा वैवर्त पुराण में सूर्य को अन्य देवताओं का स्रष्टा माना गया है।

पुराणों के गहन अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पहले शिव की उपासना का विशेष महत्व था किन्तु तदनन्तर विष्णु की भक्ति एवं उपासना का विकास एवं महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता गया। वासुदेव, नारायण, राम एवं कृष्ण आदि विष्णु के ही अवतार स्वीकार किए गए। 14वीं शताब्दी तक आते-आते राम एवं कृष्ण ही इष्टदेवों में सर्वाधिक मान्य एवं प्रतिष्ठित हो गए।

अलग-अलग कालखण्डों में विष्णु, नारायण वासुदेव, दामोदर, केशव, गोविन्द, हरि सात्वत एवं कृष्ण एक ही शक्ति के वाचक भिन्न नामों के रूप में मान्य हुए। महाभारत के शान्ति पर्व में वर्णित है[1]

"मैं रूद्र नारायण स्वरूप ही हूँ। अखिल विश्व की आत्मा मैं हूँ और मेरी आत्मा रूद्र है मैं पहले रूद्र की पूजा करता हूँ। आप अर्थात् शरीर को ही नारा कहते है। सब प्राणियों का शरीर मेरा 'अयन' अर्थात निवास स्थान है। इसलिए मुझे नारायण कहते है। सारा विश्व मुझमें स्थित है, इसी से मुझे वासुदेव कहते है। सारे विश्व को मैं व्याप लेता हूँ, इस कारण मुझे 'विष्णु' कहते है। पृथ्वी, स्वर्ग एवं अंतरिक्ष सबकी चेतना का अन्तर्मार्ग मैं ही हूँ इस कारण मुझे 'दामोदर' कहते है। मेरे बाल सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि की किरणें है, इस कारण मुझे 'केशव' कहते है। गो अर्थात् पृथ्वी को मैं ऊपर ले गया इसी से मुझे गोविन्द' कहते है। यज्ञ का हविमार्ग मैं हरण करता हूँ, इस कारण मुझे 'हरि' कहते है। सत्वगुणि होने कारण मुझे 'सात्वत' कहते है। लोहे का काला काल होकर मैं जमीन जोतता हूँ और मेरा रंग काला है इस कारण मुझे 'कृष्ण' कहते है।[2]

भगवान कृष्ण के अनेकानेक रूप है। उनकों सोलह कलाओं का अवतार माना जाता है। श्री कृष्ण के अनन्त प्रकार है। जो रूप सर्वातीत, अत्यन्त, निरंजन, नित्य आनन्दमय है उसका वर्णन करना सम्भव ही नही है। क्योंकि अनन्त सौन्दर्य के चैतन्यमय आधार को भाषा में नहीं व्यक्त किया जा सकता है कृष्ण एक हिन्दू देवता है। कृष्ण को गौड़ीय वैष्णव धर्मशाला अक्सर स्वयं भगवान के रूप में सन्दर्भित किया गया है और राधा एक युवा नारी है, एक गोपी जो कृष्ण की सर्वोच्च देवी स्वीकार किया जाता है और यह कहा जाता है कि वह अपने प्रेम से कृष्ण

को नियंत्रित करती है। यह माना जाता है कि कृष्ण संसार को मोहित करते है लेकिन राधा "उन्हें भी मोहित कर लेती है। इसलिए वे सभी की सर्वोच्च देवी है राधा कृष्ण।"[3]

दिव्य कृष्ण और उनकी भक्त राधा के बीच के आध्यात्मिक प्रेम सम्बन्ध के विषय को सम्पूर्ण भारतवर्ष में पूजा जाने लगा। यह माना जाता है कि कृष्ण ने राधा को खोजने के लिए रास नृत्य के चक्र को छोड़ दिया है। चैतन्य सम्प्रदाय का मानना है कि राधा के नाम और पहचान को भागवत पुराण में इस घटना का वर्णन करने वाले छन्द में गुप्त भी रखा गया है और उजागर भी किया गया है यह भी पाया जाता है, कि राधा मात्रा एक चरवाहे की कन्या नही बल्कि सभी गोपियों या उन दिव्य व्यक्तित्वों का भूल है जो रास नृत्य में भाग लेती है।

राधाकृष्ण को दो भागों में तोड़ा जा सकता है-कृष्ण विष्णु के आठवें अवतार और उनकी सहचारी राधा वृन्दावन में कृष्ण को कभी-कभी बाएं तरफ खड़ी राधा के साथ चित्रित किया जाता है, जिनकी छाती पर लक्ष्मी विराजमान है।

इन सोलह कलाओं के नाम अलग-अलग ग्रन्थों में अलग-अलग मिलते है।

1. अन्नमया 2. प्राणमया 3. मनोमया 4. विज्ञानमया 5. आनन्दमया 6. अतिशयिनी 7. विपरिनाभिगी 8. संक्रमिनी 9. प्रभवि 10. कुंथिनी 11. विकासिनी 12. मर्यादिनी 13. सन्हालादि 14. आहलादिनी 15. परिपूर्ण और 16. स्वरूपवास्थित तथा अन्यत्र

ग्रन्थ में 1. श्री 2. भू 3. कीर्ति 4. इला 5. लीला 6. कांति 7. विद्या 8. विमला 9. उत्कार्शिनी 10. ज्ञान 11. क्रिया 12. योगी 13. प्रहवि 14. प्राण 15. सत्य 16. इसना

और कही पर सोलह कलाओं में–1. प्राण 2. श्रधा 3.आकाश 4. वायु 5. तेज 6. जल 7. पृथ्वी 8. इन्द्रिया 9. मन 10. अन्न 11. वीर्य 12. तप 13. मन्त्र 14. कर्म 15. लोक और 16. नाम[4]

शक्तियों की सामर्थ्य को समझने के लिए कलाओं को आधार मानते है। कला को अवतारी शक्ति की एक इकाई माने तो श्री कृष्ण सोलह कला के अवतार माने गये है। भागवत पुराण के अनुसार सोलह कलाओं में अवतार की पूरी सामर्थ्य खिल उठती है। अवतारों में श्रीकृष्ण में ही यह सभी कलाएं प्रकट हुई थी। इन कलाओं के नाम है–

1. श्री धन सम्पदा- प्रथम कला के रूप में धन सम्पदा को स्थान दिया गया है। जिस व्यक्ति के पास अपार धन हो और वह आत्मिक रूप से भी धनवान हो। जिसके घर से कोई भी खाली हाथ नही जाए वह प्रथम कला से सम्पन्न माना जाता है। यह कला भगवान श्री कृष्ण में मौजूद है।

2. भू-अचल सम्पत्ति- जिस व्यक्ति के पास पृथ्वी का राज भोगने की क्षमता है। पृथ्वी के एक बड़े भू-भाग पर जिसका अधिकार है और उस क्षेत्र में रहने वाले जिसकी आज्ञाओं का सहर्ष पालन करते है वह अचल सम्पत्ति का मालिक होता है। भगवान श्री कृष्ण ने अपने योग्यता से द्वारिका पुरी को बसाया। इसलिए यह कला भी इनमें मौजूद है।

3. कीर्ति-यश प्रसिद्धि- जिसके मान-सम्मान और यश की कीर्ति से चारो दिशाओं में गूंजती हो। लोग जिसके प्रति स्वतः ही श्रद्धा और विश्वास रखते हो वह तीसरी कला से सम्पन्न होता है। भगवान श्री कृष्ण में यह कला भी मौजूद है। लोग सहर्ष श्री कृष्ण की जयकार करते है।

4. वाणी की सम्मोहकता- चौथी कला का नाम इला है जिसका अर्थ है मोहक वाणी। भगवान श्री कृष्ण में यह कला भी मौजूद है। पुराणों में श्री उल्लेख मिलता है श्री कृष्ण की वाणी सुनकर क्रोधी व्यक्ति भी अपना सुध-सुध खोकर शांत हो जाता था। मन में भक्ति की भावना भर उठती थी। यशोदा मैंया के पास शिकायत करने वाली गोपियाँ भी कृष्ण की वाणी सुनकर शिकायत भूलकर तारीफ करने लगती थी।

5. लीला-आनन्द उत्सव- पॉचवी कला का नाम है लीला इसका अर्थ है आनन्द। भगवान श्री कृष्ण धरती पर लीलाधर के नाम से भी जाने जाते है, क्योंकि इनकी बाल लीलाओं से लेकर जीवन की घटना रोचक और मोहक है। इनकी लीला कथाओं

को सुनकर काफी व्यक्ति भी भावुक और विरक्त होने लगता है।

6. कांति-सौन्दर्य और आभा-जिनके रूप को देखकर मन स्वतः ही आकर्षित होकर प्रसन्न हो जाता है। जिसके मुखमण्डल को देखकर बार-बार छवि निहारने का मन करता है वह छठी कला से सम्पन्न माना जाता है। भगवान राम में यह कला मौजूद थी। कृष्ण भी इस कला से सम्पन्न थे। कृष्ण की इस कला के कारण पूरा व्रज मंडल कृष्ण को मोहनी छवि को देखकर हर्षित होता था। गोपियाँ कृष्ण को देखकर काम पीड़ित हो जाती थी और पति रूप में पाने की कामना करने लगती थी।

7. विद्या-मेघा बुद्धि- सातवी कला का नाम विद्या है। भगवान श्री कृष्ण में यह कला भी मौजूद थी। कृष्ण वेद-वेदांग के साथ ही युद्ध और संगीत कला में पारंगत थे। राजनीति एवं कूटनीति भी कृष्ण सिद्धहस्त थे।

8. लीला पारदर्शिता- जिसके मन में किसी प्रकार का छल-कपट नही हो वह आठवीं कला युक्त माना जाता है। भगवान श्री कृष्ण सभी के प्रति समान व्यवहार रखते है। इनके लिए न तो कोई बड़ा है और न छोटा। महारास के समय भगवान ने अपनी इसी कला का प्रदर्शन किया था। इन्होंने राधा और गोपियों के बीच कोई फर्क नही समझा। सभी के साथ समभाव से नृत्य करते हुए सबकों आनन्द प्रदान किया।

9. उत्कर्षिणि-प्रेरणा और नियोजन- महाभारत के युद्ध के समय श्री कृष्ण ने विमुख अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित किया और अधर्म पर धर्म की विजय पताका लहराई। नौवीं कला के रूप में प्रेरणा को स्थान दिया गया है। जिसमें इतनी शक्ति मौजूद हो कि लोग उसकी बातों से प्रेरणा लेकर लक्ष्य भेदन कर सके।

10. ज्ञान-नीर क्षीर विवेक- भगवान श्री कृष्ण ने जीवन में कई बार विवेक का परिचय देते हुए समाज को नई दिशा प्रदान की जो दसवीं कला का उदाहरण है। गोवर्धन पर्वत की पूजा हो अथवा महाभारत युद्ध टालने के लिए दुर्योधन से पॉच गॉव मांगना यह कृष्ण के उच्च स्तर के विवेक का परिचय है।

11. क्रिया-कर्मण्यता- ग्यारहवीं कला के रूप में क्रिया को स्थान प्राप्त है भगवान श्री कृष्ण इस कला से भी सम्पन्न थे। जिनकी इच्छा मात्र से दुनिया का हर काम हो सकता है वह कृष्ण सामान्य मनुष्य की तरह कर्म करते है और लोगों को कर्म की प्रेरणा देते है महाभारत युद्ध ये भी कृष्ण ने भले ही हाथों में हथियार लेकर युद्ध नही किया लेकिन अर्जुन के सारथी बनकर युद्ध संचालन किया। जिनका मन केन्द्रित है, जिन्होंने अपने मन को आत्मा में लीन कर लिया है वह बारहवीं कला से सम्पन्न श्रीकृष्ण हैं। इसीलिए कृष्ण योगेश्वर भी कहलाते है। कृष्ण उच्च कोटि के योगी थे। अपने योग बल से श्री कृष्ण ने ब्रह्मास्त्र के प्रहार से माता के गर्भ में पल रहे परीक्षित की रक्षा की। मृत गुरू पुत्र को पुर्नजीवन प्रदान किया।

13. प्रहवि-अत्यंतिक विनय- तेरहवी कला का नाम प्राहवि हैं। इसका अर्थ के स्वामी है। सम्पूर्ण सृष्टि का संचलन इनके हाथों में है फिर भी इनमें कर्ता का अहंकार नहीं है। गरीब सुदामा को मित्र बनाकर छाती से लगा लेते है। महाभारत युद्ध में विजय का श्रेय पाण्डवों को दे देते हैं। सब विद्याओं के पारंगत होते हुए भी ज्ञान प्राप्ति का श्रेय गुरू को देते है।

14 सत्य-यथार्थ - भगवान श्री कृष्ण की चौदहवीं कला का नाम सत्य है। श्री कृष्ण कटु सत्य बोलने से भी परहेज नहीं रखते और धर्म की रक्षा के लिए सत्य को परिभाषित करना भी जानते हैं। यह कला सिर्फ श्री कृष्ण में है। शिशुपाल की माता ने कृष्ण से पूछा कि शिशुपाल का वध क्या तुम्हारे हाथों होगी। श्री कृष्ण निःसंकोच कह देते है यह विधि का विधान है और मुझे ऐसा करना का विधान है और मुझे ऐसा करना पड़ेगा। यहां कृष्ण रिश्ते की डोर में बंधकर शिशुपाल की माता यानी अपनी बुआ से झूठ नहीं बोलते। इसी प्रकार अन्धआत्मा के वध के समय श्री कृष्ण युधिष्ठिर से ऐसा झूठ बुलवाते हैं

जो सत्य की सीमा में है और जिसके बोलने के पाप से भी बच जाते है।

15. आधिपत्य- पंद्रहवीं कला का नाम इसना है। इस कला का तात्पर्य है व्यक्ति में उस गुण का मौजूद होना जिससे वह लोगों पर अपना प्रभाव स्थापित कर पाता है। जरूरत पड़ने पर लोगों को अपने प्रभाव को एहसास दिलाता है। कृष्ण ने अपने जीवन में कई बार इस कला का भी प्रयोग किया जिसका एक उदाहरण है मथुरा निवासियों को द्वारिका नगरी में बसने के तैयार करना।

16. अनुग्रह-उपकार- बिना प्रत्युकार की भावना से लोगों का उपकार करना यह सोलही कला है। भगवान श्री कृष्ण को कभी भक्तों से कुछ पाने की उम्मीद नहीं रखते हैं, लेकिन जो भी इनके पास इनका बनाकर आ जाता है उसकी हर मनोकामना पूरी करते हैं।

अब तक हुए अवतारों में मत्स्य, कश्यप और वराह में एक कला नृसिंह और, वामन में एक-एक कला, नृसिंह और वामन में दो दो और परशुराम में तीन कलाएं व्यक्त हुई थी। राम बराह कला के अवतार थे और श्री कृष्ण सोलह कला के। बुद्ध सहस्रार सिद्ध अवतार थे। माना जाता है कि भावी अवतार बल्कि भगवान चौबीस कला से सम्पन्न रहेंगे।[5] कलाएं दरअसल बोध प्राप्त योगी की भिन्न-भिन्न स्थितियाँ है। बोध की अवस्था के आधार पर आत्मा के लिए प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक चन्द्रभा के प्रकाश की 15 अवस्थाए ली गई है। अमावस्या अज्ञान का प्रतीक है तो पूर्णिमा पूर्ण ज्ञान का। 19 अवस्थाएं भगवद्‌गीता में भगवान श्री कृष्ण ने आत्मा तत्व प्राप्त योगी के बोध की उन्नीस स्थितियों को प्रकाश की भिन्न-भिन्न भाग में बताया है। इनमें अग्निर्ज्योतिरहः बोध की 3 प्रारम्भिक स्थिति है और शुक्लः पक्ष की 01 है। इनमें से आत्मा की 16 कलाएं है। आत्मा की सबसे पहली कला ही विलक्षण है। इस पहली अवस्था या इससे पहली की तीन स्थिति होने पर भी योगी अपना जन्म और मृत्यु का दृष्टा हो जाता है और मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है।

"अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षठमासा उत्तराणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः"।।

अर्थात जिस मार्ग में ज्योर्तिमय अग्नि अभिमानी देवता है, शुक्ल पक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण के छः महीने का अभिमनी देवता है, उस मार्ग में भरकर गए हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले जाकर बाह्य को प्राप्त होते है। (8-24) भावार्थ श्रीकृष्ण कहते है, जो योगी, अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण के छः माह में देह त्यागते है अर्थात दिन पुरूषों और योगियों में आत्मा ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, वह ज्ञान के प्रकाश से अग्निमय, ज्योर्तिमय दिन के समान, शुक्लपक्ष की चांदनी के समान प्रकाशमय अरि उत्तरायण के छः भावों के समान परम प्रकाशमय हो जाते है। अर्थात् जिन्हें आत्मज्ञान हो जाता है। आत्मज्ञान का अर्थ है स्वयं को जानना या देह से अलग स्वयं को जानना या देह से अलग स्वयं की स्थिति को पहचाना।

1. अग्नि- बुद्धि सतोगुणी हो जाती है। दृष्टा एवं साक्षी स्वभाव विकसित होने लगता है।

2. ज्योति- ज्योति के समान आत्म-साक्षात्कार की प्रबल इच्छा बनी रहती है। दृष्टा एवं साक्षी स्वभाव ज्योति के समान गहरा होता है।

3. अहं- दृष्टा एवं साक्षी स्वभाव दिन के प्रकाश की तरह स्थित हो जाता है। 16 कला-15 कला शुक्ल पक्ष +01 उत्तरायण कला= 1 बुद्धि का निश्चयात्मक हो जाना[6] 2. अनेक जन्मों की सुधि आने लगती है। 3. चित्र वृत्ति नष्ट हो जाती है। 4. अहंकार नष्ट हो जाता है। 5 संकल्प विकल्प समाप्त हो जाते हैं, स्वयं के स्वरूप का बोध होने लगता है। 6. आकाश तत्व में पूर्ण नियंत्रण हो जाता है। कहा हुआ प्रत्येक शब्द सत्य होता है। 7. वायु तत्व में पूर्ण नियंत्रण हो जाता है। स्पर्श मात्र से रोग मुक्त कर देता है। 8 अग्नि तत्व में पूर्ण नियंत्रण हो जाता है। दृष्टि मात्र से कल्याण करने की शक्ति आ जाती है। 9. जल तत्व में पूर्ण नियंत्रण हो जाता है। जल स्थान दे देता है। नदी, समुद्र आदि कोई बाधा नहीं रहती। 10 पृथ्वी तत्त्व में पूर्ण नियंत्रण हो जाता है।

हर समय देह से सुगनध आने लगती है, नींद, भूख-प्यास नहीं लगती। 11 जन्म, मृत्यु, स्थिति अपने आधीन हो जाती है। 12. समस्त भूतों में एक रूपता हो जाती है और सब पर नियंत्रण हो जाता है। जड़, चेतन इच्छानुसार कार्य करते है। 13. समय पर नियंत्रण हो जाता है। देह वृद्धि रूक. जाती है अथवा अपनी इच्छा से होती है। 14. सर्वव्यापी हो जाता है। एक साथ अनेक रूपों में प्रकट हो सकता है। पूर्णता अनुभव करता है। लोक कल्याण के लिए संकल्प धारण कर सकता है। 15 कारण का भी कारण हो जाता है। यह अव्यक्त अवस्था है। 16-7 उत्तरायण कला-अपनी इच्छा अनुसार समस्त दिव्यता के साथ अवतार रूप में जन्म लेता है। जैसे राम, कृष्ण यहां उत्तरायण के प्रकाश की तरह उसकी दिव्यता फैलती है। सोलहवीं कला पहले और पन्द्रहवीं को बाद में स्थान दिया है। इससे निर्गुण सगुण स्थिति भी सुस्पष्ट हो जाती है। सोलह कलायुक्त पुरूष में व्यक्त अत्यन्त की सभी कलाएं होती है। यहीं दिव्यता है।

संदर्भ सूची-

1. भारतीय साधना और सूर साहित्य-डॉ. शर्मा मुंशीराम, पृष्ठ संख्या-299
2. रासलीला तथा रसनुकरण विकास-डॉ. बसन्तयामदिग्न पुष्ठ संख्या-15-19
3. इन्टरनेट से प्राप्त जानकारी के अनुसार
4. संगीत पत्रिका फरवरी हरिदास अंक
5. कला के दार्शनिक तत्व-डॉ. चिरंजीव लाल झा पृष्ठ संख्या-93
6. अष्टछाप संगीत- एक विश्लेषण-डॉ. नीरा शर्मा-पृष्ठ संख्या-48-49

सूरदास के भक्तिपरक काव्य में राधाकृष्ण की प्रणय गाथा

अंकिता मुखर्जी

एस.आए.एफ.

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ललित कला की उत्कृष्ट विधा संगीत अनादिकाल से मानव को लुभाती रही है। नाद के नियम और संगीत के सात स्वरों के सिद्धान्तों के स्थिरीकरण के पीछे मनुष्य की असीम साधना और कठोर तपस्या छिपी हुई है। काव्य कला की दृष्टि से जब कवि अपने अन्तर्मन को कल्पना के पंख देकर मनोहारी शब्दों से लोगों के सम्मुख रखता है तो सभी उसके साथ-साथ मानव जीवन की गहन अनुभूतियों, भावना, संघर्षों, आशाओं, निराशाओं में डूबने इतराने लगते हैं। काव्य में संगीत की संगति हृदय के भावों की मधुरतम् अभिव्यक्ति बन जाती है। अनुभूति की गहनता के साथ-साथ भाषा को सटीकता एक सुकुमारता जो उत्कृष्ट काव्य का अनिवार्य आभूषण है विरले कवियों में ही देखने को मिलती है।

भारतीय मानस आदि काल से ही धर्म से प्रेरित रहा है। भक्ति का स्थान अत्याधिक प्राचीन है। धर्म हमेशा से साहित्य को प्रेरित करता रहा है। अपने आराध्य के लिए जिस तन्मयता, एकाग्रता एवं भाव की आवश्यकता होती है, वह केवल संगीत से ही प्राप्त हो सकती है।

भक्ति शब्द स्त्रीलिंग है तथा इसके अनेक अर्थ हैं जैसे-भिन्नता, प्रथकता, बंटवारा, विभाग, अंश आदि। भज् शब्द का अर्थ है प्रेमपूर्वक सेवा करना। भक्ति मानव की सहज क्रिया है।' इसमें प्रभु की स्वीकारोक्ति भी है जैसा कि उन्होंने स्वयं श्रीमद् भगवद् गीता में कहा है-

"नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च
मदभक्तां यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।"

भगवान श्रीकृष्ण ने नौ प्रकार की भक्ति बतायी है जिसे नवधा भक्ति कहा गया है-

"श्रवणं कीर्तन विष्णोंः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चन वन्दनं दास्य सख्य आत्मनिवेदनम्।"

भक्ति मानव की सहज विभूति है। प्रत्येक प्राणी स्वभावतः अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियों के प्रति श्रद्धायुक्त आकर्षण रखता है। इसी श्रद्धा का विस्तार जब असीम, अपरिमित तथा अजेय परमात्मा के प्रति होता है तो वह भक्ति कहलाती है। भक्तिपरक काव्य को ही भजन कहते हैं। इस दृष्टि से महाकवि सूरदास की भक्ति रचनाएँ इसी श्रेणी में आती है। इनके द्वारा रचित पदावलियाँ जहाँ काव्य शास्त्र के मापदंडों पर खरी उतरती है, वही संगीत शास्त्र की दृष्टि से विशुद्ध सिद्ध होती है।

काव्य और संगीत का जैसा मणि-कांचन संयोग सूरदास के राधा कृष्ण काव्य में लक्षित होता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भारतीय साहित्य में राधा कृष्ण काव्य की परम्परा बड़ी प्राचीन है। वह स्त्रोत पुराणों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और वैदिक संहिताओं तक में मिलते हैं। भारत की अधिकांश भाषाओं की

पोषणकत्री संस्कृत भाषा के काव्य साहित्य का बहुत बड़ा भाग राधा कृष्ण काव्य से सम्बन्धित है। यद्यपि भारतीय धर्म साधन में असंख्य अवतारों की कल्पना मिलती है। इनमें भी कृष्णावतार की कल्पना पुरानी और व्यापक है। इसका प्रधान कारण श्री राधा कृष्ण की लीला की बहुलता ही है। सूरदास जी के अनुसार वास्तव में श्री राधा कृष्ण का व्यक्तित्व एवं प्रेम इतना महान, व्यापक, आकर्षक और मधुर है कि उनको आधार मानकर जितनी काव्य रचना हुई है उतनी किसी और मनुष्य अवतार के सम्बन्ध में नहीं हुई।

'सूरसागर' में श्री राधा का कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव का विकास अनेक वर्णनों और प्रसंगों के द्वारा व्यंजित किया गया है, जिसमें राधा सम्बन्धी कथा-प्रसंग मुख्य है। प्रथम मिलन और प्रेम-विकास का कथानक कृष्ण के 'चकई-भौरा' खेलने से सम्बद्ध है। खेलते हुए श्रीकृष्ण 'रवि-तनया तट' पहुँचते हैं जहाँ अचानक 'नयन विशाल' राधा दिखाई दे जाती है। देखते ही वे रीझ जाते हैं, 'नैन नैन मिलकर ठिगोरी पड़ जाती है, परस्पर परिचय होता है और 'रसिक शिरोमणि' भोली राधिका को बातों में भरमा लेते हैं। प्रथम मिलन में ही न केवल दोनों में प्रेम का उदय हो गया, अपितु राधा ने चतुरतापूर्वक प्रेम-गोपन का भी पाठ पढ़ लिया।

राधा-कृष्ण के प्रथम मिलन को उनके बाल्यावस्था के पूर्ण रति सुख और दोनों के पारिवारिक स्नेह सम्बन्ध तक विकसित करके इस प्रसंग को पुनः कृष्ण की बाल-केलि और यशोदा द्वारा उनके कलेऊ आदि की परिचर्या से सम्बद्ध कर दिया गया है। दाम्पत्य प्रेम की उत्पत्ति और उसके मनोवैज्ञानिक विकास की दृष्टि से राधा-कृष्ण की कथा का यह प्रसंग प्रेम काव्य का एक सुन्दर उदाहरण है।

'सूरदास' जी के काव्य के एक प्रसंग में कृष्ण पर अधिकार प्राप्त करके राधा कहती है कि तुम 'मुझे छोड़कर कही जाओगे तो पकड़कर घर लाऊँगी, तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगी, क्योंकि नन्द तुम्हें मेरे हाथ सौंप गए हैं।' 'कृष्ण' उपरफट बातें करते हैं और बाँह छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रेम-प्रसंग की परिणति श्याम-श्यामा की गुप्त लीला में होती है। गगन मेघाच्छादित हो जाता है और राधा-कृष्ण सुख-विलास में तत्पर हो जाते हैं। विलास, मान, मनुहार आदि के द्वारा राधा-कृष्ण का गोप्य रति-सुख वर्णन करके कृष्ण और राधा को एक दूसरे के परिवर्तित वस्त्रों में अपने-अपने घर पहुँचाता है।

सूर की राधा जगदीश की प्रिया है। सूरदास द्वारा लिखी गई पंक्तियाँ हैं कि :-

सूर स्याम नागर इह नागरि एक प्राण तनु द्वै हैं।

''राधा हरि आधा आधा तनु एकै हवै द्वै ब्रज में अवतरि
द्वै तनु, जीव एक, हम तुम दोऊ सुख कारण उपजाये''

-सूरसागर

जैसे गुण गुणी से पृथक नहीं होता, शक्ति अपने आश्रय से अवगत नहीं होती उसी प्रकार राधा कृष्ण से भिन्न नहीं हैं। दोनों शाश्वत रूप से एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

सूरसागर के 1226वें पद में श्रीकृष्ण राधा से कहते हैं कि प्रकृति और पुरूष एक ही हैं, केवल बातों का भेद है। जल और थल जहाँ भी मैं रहता हूँ, तुम्हारे साथ ही रहता हूँ, तुमसे पृथक होकर नहीं। हमारे तुम्हारे शरीर दो हैं, पर जीव एक ही है। हम तुम दोनों ही ब्रह्म रूप हैं। राधा इस बात को सुनकर आनन्द से मग्न हो गई। राधा ने समझ लिया कि वह प्रकृति है, नारी है और श्रीकृष्ण पुरूष हैं, पति हैं यह प्रेम पुरातन, शाश्वत है- युग- युग की लीला है।

राधा और कृष्ण के इस दार्शनिक विवेचन के पश्चात् हम सूरदास के हृदय की उस भूमिका में प्रवेश करते हैं, जहाँ उसने अप्राकृत को प्राकृत और अनन्त को सान्त बना दिया है। राधा और कृष्ण अतिमानव होते हुए भी पूर्ण मानव हैं। सूर ने उस

परम पुरूष और परम प्रकृति को कृष्ण और राधा के रूप में अवम अनाकर, ऊपर से बीचे लाकर हम सबके पास बिठा दिया है।

राधा कृष्ण लीला में ना जाने कितने विनोद के प्रसंग आए हैं। कभी कृष्ण राधा के आभूषण पहन लेते हैं, तो कभी-कभी राधा पीताम्बर धारण कर लेती हैं और मुरली बजाने लगती है। इसी प्रकार रंग रहस्य के संयोग सुख के दिन व्यतीत हो गए। अन्त में वियोग की घड़ियाँ भी आई। संयोग में जिन्होंने सुख लूटा था, वही एक दूसरे के वियोग में दुख का अनुभव करने लगे।

रासलीला में वर्णित राधा कृष्ण के एकान्त प्रेम संयोग का स्वाभाविक विकास है। प्रेम की पूर्णता में प्रेम की गति का प्रवाह एकांगी नहीं रहता।

सूरदास ने राधा-कृष्ण मिलन, संयोग-सुख और रति विलास का अत्यन्त उत्फुल्ल चित्रण किया और निकुंज-सुख में लोक और परलोक, पृथ्वी और आकाश, स्वर्ग और पाताल को एकाकार कर दिया है।

बड़ी मानलीला में पुनः नवीन कारणों, नवीन परिस्थितियों और नवीन विवरणों के साथ राधा के प्रेम का चित्रण किया गया है। कवि ने राधा के रूप, विशेषतः नयनों के सौन्दर्य का अनेक पदों में प्रधानता कूट शैली में चित्रण किया है जिससे उसका गूढ़ कृष्ण-प्रेम व्यंजित होता है।

राधा कृष्ण लीला की प्रधान नायिका है। कवि ने उसे कृष्ण के व्यक्तित्व की पूरक के रूप में प्रतिष्ठित किया है वह कृष्ण की अर्द्धांगिनी है। राधा का प्रेम कृष्ण के साथ उसी प्रकार का है, जैसा चकोर का चन्द्र के साथ। कृष्ण के चित्त से वह क्षण भर के लिए भी नहीं हटती। सूर ने राधा और कृष्ण दोनों को एक दूसरे की ओर आकृष्ट करके उनके अनन्य प्रेम का अद्भुत वर्णन किया है। सूर लिखते हैं :-

"चितै रहो राधा हरि को मुख
भृकुटी विकट विसाल नयन युग देखत मनहिं भयो रतिपति दुख
उतहि स्याम एकटक प्यारी छवि अंग अंग अवलोकत
रीझि रहे उत हरि इत राधा अरस परस दोउ नोकत"

श्री राधा कृष्ण के कुछ चित्र

कृष्ण के वंशी-नाद पर मोहित श्रीराधा

महारास का पटचित्र

सूर ने राधा कृष्ण के अनन्य प्रेम का अन्योन्य रूप में जहाँ वर्णन किया है, वहाँ संयोग के वियोग-भावना के अनुभव को भी दोनों में समान रूप से प्रदर्शित किया है। राधा यदि श्याम की प्रेमिका हैं तो हरि भी राधा के प्रेमी हैं। इसी प्रकार राधा यदि हरि मिलन के लिए व्याकुल होती हैं, तो हरि भी राधा विरह से व्याकुल हो उठते हैं। सूर ने लिखा है -

स्याम अति राधा बिरह भरे।
कबहूँ सदन कबहूँ आंगन ही कबहूँ पौरि खरे।।

कृष्ण प्रेम में ही राधा के सौन्दर्य और गुणों की पूर्णता है उसके बिना राधा कुछ नहीं है। कृष्ण का पल मात्र का वियोग उससे सहन नहीं हो सकता। राधा-माधव- भेंट का वर्णन करते हुए सूर लिखते हैं:-

राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव-राधा क्रीट भृंग गति होई जु गई।।
माधव राधा कै रंग राँचे राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरन्तर रसना कहि न गई।।

जैसे भृंग कीट को पकड़ कर अपने रूप में परिवर्तित कर लेता है उसी प्रकार राधा माधव में और माधव राधा में मिलकर एक हो गये। भक्त ने प्रभु को अपने धरातल पर खींच लिया और प्रभु ने भक्त को अपने रंग में रंग दिया। यहाँ प्रेम भी है और पूजा भी। काव्य भी है और भक्ति भी। संख्य एवं मधुर भाव की भक्ति के धनी सूर के लिए यह नितान्त सहज और स्वाभाविक था। सूरसागर इसलिए कवियों का कंठहार और भक्तों की माला का सुमेरू बना है।

पुष्टि-पथ की सेवाभिक्ति और हरिलीला का जो स्वरूप सूरदास ने सूर सागर में खड़ा किया, उसका परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभूत मात्रा में प्रभाव पड़ा राधा और कृष्ण का जो रूप सूर ने अंकित किया है, जिसकी अमिट छाप अन्य काव्य ग्रन्थों में दिखाई देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भैरवी संगीत शोध पत्रिका, अंक 6 वर्ष, 2012
2. शर्मा, डॉ. मुंशीराम - भारतीय साधना और सूर साहित्स- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।
3. वर्मा, ब्रजेश्वर - सूरदास जीवन और काव्य का अध्ययन - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. प्रताप, डॉ. रागिनी - सूर, मीरा एवं स्वामी हरिदास की भक्ति साधना में संगीत का योगदान- शलभ पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
5. श्रीमद् भगवद् गीता
6. सूरदास- सूरसागर

लौकिक-अलौकिक संदर्भ में राधा कृष्ण का प्रेम

अर्चना रंजन

सनातन धर्म के अनुसार भगवान विष्णु के सर्षपापहारी पवित्र एवं संसार के सभी मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले प्रमुख देवता माना गया है। जब - जब इस संसार पर पापियों का आतंक व्याप्त होता है। तब-तब भगवान विष्णु किसी न किसी रुप में अवतार लेकर संसार के पापियों का नाश करते है। वैसे तो भगवान विष्णु के अनेक अवतार है परंतु सब अवतारों में से सबसे अद्भुत अवतार श्री कृष्ण के रुप में माने जाते है। भगवान श्री कृष्ण के सभी लौकिक रुप हृदय को स्पर्श करने वाले होते है। भगवान कृष्ण का अलौकिक रुप वासुदेव के नाम से तथ लौकिक रुप कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ था तथा राधा श्री कृष्ण की एक विशेष प्रिया के रुप में ही लोक अनुश्रुति द्वारा ग्रहण हुई थी बाद में उसे आराध्या का दर्जा प्राप्त हुआ था तथा कृष्ण को अपना असाध्य देव मानने के कारण उनका नाम राधिका पड़ा था। यु तो राधा कृष्ण को प्रेम करनेवाली अन्य गोपियों कि समान थी परंतु कृष्ण राधा को अन्य गोपियों से अधिक प्रेम करते थे। इस प्रकार भारतीय लोक जीवन में प्राचीन काल से राधा कृष्ण प्रेम को लौकिक तथा अलौकिक दोनों धाराएँ प्रचलित हुई थी।

भगवान विष्णु के आठवे अवतार के रुप में श्री कृष्ण ने भादो मास के कृष्ण पक्ष के अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र के अंतर्गत वृष लग्न में जन्म लिया। भगवान श्री कृष्ण का जन्म तो हुआ था मथुरा के कारागार में माता देवकी के गर्भ से परंतु उनका लालन पालन नंद गाँव वृंदावन में माता यशोदा एवं नंद बाबा के घर हुई। कृष्ण गोकुल के रहने वाले थे तो राधा रानी बरसाने गाँव की बेटी थी राधा के पिता का नाम वृषमान था तथा माता का नाम कीर्त्ति। राधा रानी कृष्ण से 11 माह की बड़ी थी अर्थात कृष्ण के आयु से 11 माह अधिक। फिर भी राधा कृष्ण के मन में ऐसी समा गयी कि फिर उसे कृष्ण के मन से कभी कोई निकाल नही सका। राधा को पुराणों में श्री कृष्ण की शश्वत जीवन संगीनी बताया गया है। ब्रम्ह वैवर्त पुराण में यह बताया गया है कि राधा कृष्ण का प्रेम परलोक का प्रेम है। सुष्टि के आरंभ से अंत तक दोनो गोलाक में वास करते है, परंतु लौकिक जगत (संसार) में राधा कृष्ण का प्रेम मनुष्य रुप में था तथा इनके प्रेम की एवं मिलन की शुरुआत की कथा बड़ी ही रोचक है। एक कथा के अनुसार राधा और कृष्ण की पहली मुलाकात उस समय हुई जब राधा 11 माह कि थी और कृष्ण मात्रा एक दिन के थे। और वह शुभ दिन था श्री कृष्ण का जन्मोत्सव। इस उत्सव में राधा अपनी माँ कीर्ति के साथ नंदगाँव आई थी यहाँ श्री कृष्ण पालने में झुल रहे थे और राधा रानी अपनी माता की गोद में थी। यही मुलाकात राधा और कृष्ण के पहली लौकिक मुलाकात थी।

राधा और कृष्ण की दुसरी मुलाकात लौकिक न होकर अलौकिक मुलाकात थी। इस संदर्भ में गर्ग

संहिता में एक कथा मिलती है, यह बात उस समय की है जब श्री कृष्ण नन्हें बालक थे उस समय एक बार नंद बाबा कृष्ण को लेकर भांडीर वन से गुजर रहे थे अचानक कुछ दुर चलने पर एक ज्योति प्रकट हुई जो देवी राधा के रुप में दिखाई पड़ी। राधा को देखकर नंद बाबा आनंदित हो गए। राधा ने नंद जी से कहा की कृष्ण को उन्हे (राधा को) सौंप दे, तब नंद जी ने कृष्ण को राधा के गोद मे दे दिया तभी श्री कृष्ण अपने बाल रुप त्याग कर किशोर रुप में आ गए। कुछ क्षण बाद ब्रम्हा जी भी वहाँ उपस्थित हुए तथा उन्होनें कृष्ण का विवाह राधा के करवा दिया। उसके बाद राधा एवं कृष्ण कुछ क्षण साथ उस वन में समय बीताए फिर देवी राधा ने कृष्ण को उनके बाल रुप में नंद जी को सौंप दिया। यह मुलाकात राधा एवं कृष्ण की अलौकिक मुलाकात थी। एक ऐसा मिलन जो सिर्फ राधा और कृष्ण के लिए थी।

भगवान श्री कृष्ण के दो रुप है एक ऐश्वर्यमय और दुसरा प्रेममय। श्री कृष्ण ने जितनी भी लीलाएँ द्वारिका और मथुरा में की वो सब लीलाएँ ऐश्वर्यमयी है। लेकिन उनकी वृंदावन को सभी लीलाएँ प्रेममयी है वृंदावन की माधुर्यमयी लीला का मुल तत्व है प्रेम। इस लीला के अनुसार प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर प्रेममय है तथा संपुर्ण लीला का कारण तत्व प्रेम ही है। और श्री कृष्ण उस प्रेम के आलंबन है। गोकुल की संपूर्ण लीलाएँ प्रेममयी है तथा राधा और कृष्ण को प्रेमलीला अत्यंत मनोहर है तथा राधा कृष्ण की प्रेम लीला ही ब्रजलीला का केन्द्र है। लौकिक रुप से श्रीकृष्ण एवं राधा एक दिन ब्रज की गलियों में अचानक मिले, दोनो एक दुसरे को देखा और एक दुसरे के रुप पर रीझ गए और इससे जो प्रेम विकसित हुआ उससे सारा ब्रजमंडल प्रेममयी हो गया। श्री कृष्ण में सौन्दर्य, वाकचातुर्थ और जो आर्कषण शक्ति है उससे राधा प्रभावित होकर कृष्णमय हो गई।

इस प्रकार राधा और कृष्ण एक दुसरे के मन में बस चुके इसके बाद राधा कृष्ण यमुना तट पर वृंदावन में, कुंजो में गलियों में बार - बार मिलने लगें। जब - जब श्री कृष्ण अपनी मुरली की मधुर तान छेड़ते तब राधा और गोकुल की सारी गोपिया खिची चली आती थी श्री कृष्ण बंशी में वो जादू था कि कोई भी स्वयं को उनके पास आने से खुद को नही रोक पाता था। श्री कृष्ण लौकिक - अलौकिक दोनों रुपों में राधा से बहुत प्रेम करते है।

राधा और कृष्ण के परिचय के बाद एक दिन जब राधा कृष्ण के घर जाती है। बाते करती है और यशोदा माँ का श्रृगांर करती है तो यशोदा माता राधा को कृष्ण की जीवन संगिनी के रुप में देखने की आंतरिक कामना भी प्रकट करती है। वह सोचती है कि यदि राधा श्याम (कृष्ण) के लिए वघु के रुप में मिले तो कितनी अच्छी जोड़ी मिलेगी। यशोदा मुस्कुराते हुए राधा से कहती है 'तेरे ढ़ग विचित्र है, तुम जगत मोहिनी हो, अत्यंत रुपवती हो, तुमने कृष्ण को ढ़ग लिया है। और अभी बचपन में यह हालत है, तो आगे क्या होगा? तुम बार-बार घर मत आया करो राधा ने तुरंत जबाब दिया अपने श्याम को रोको वही मुझे घर से बुला लेता है। वह कहता है कि तुम्हे देखे बिना मेरा जीवन कठिन है तो मुझे दया आती है उस पर" यशोदा राधा की इस बात पर मुग्ध हो जाती है।

एक कथा के अनुसार एक दिन श्री कृष्ण राधा से मिलने तथा बरसाना गाँव देखने गए, कृष्ण वहाँ एक योगी के रुप में बरसाना गाँव जा पहुचें, वहाँ एक बाग में उन्होनें अपरा डेरा डाला और धुनी रमाई और अलख जगाई। बरसाने की सारी स्त्रीयाँ को पता चला तो सभी वहाँ आ पहुँची राधा भी अपनी सखियों के साथ वहाँ आ पहुची, राधा और उसकी सखियों ने कृष्ण के इस वेश को पहचान गई। कृष्ण मुस्कुराते हुए राधा के हाथ देखकर कहते है कि यदि एकांत में देवी की पूजा की जाए तो राधा को निश्चित ही कृष्ण वर की प्राप्ति होगी। राधा की माता योगी रुपी कृष्ण को भोजन करने का अनुरोध करती है पर कृष्ण टाल देते है और वहा से तुरंत ब्रज लौट जाते है और वहाँ जो लीलाएँ करते है उसे अपने ग्वाल वालों को सुनाते है।

श्री कृष्ण राधा में सामने दृष्य-अदृष्य दोनो रुपों में अनेक लीलाएँ करते है, एक बार कृष्ण एक स्त्री के रुप धारण कर के बरसाने गाँव जाते है राधा से मिलते है और उनसे कहते है कि मेरा नाम सामल है और मै ब्रज मंडल से आ रही हूँ राधा यह सुन वहुत प्रसन्न होती है और स्त्री रुपी श्री कृष्ण का स्वागत सत्कार करती है। बातों-बातों मे राधा बताती है कि वहाँ मेरे प्रियतम कृष्ण रहते है। इसलिए मुझे ब्रज मंडल से प्रेम है यह सुनते ही सामल ने ऐसा भाव जताया मानो वह सन्न रह गई हो। वह एक दम मौन रह जाती है, तब राधा उसका बदला हुआ रंग देखकर पूछती है कि क्या हुआ? क्या तुम पारिवारिक कलेश से दुःखी हो? सामल ने कहा कि ऐसा कुछ नही है। सामल राधा से पुछती है कि "यदि तुम कहो तो मै तुम्हारे प्रिय कृष्ण की बात सुनाउफँ" राधा कि स्वीकृति पा कर सामल कृष्ण की निंदा करने लगी कि वह तो आवारा है ठगी है उसने मुझे रास्ते में छेड था। वही किसी से सच्चा प्रेम नही रखता। यह सुन राधा को गुस्सा आ जाता है और वह सामल के विपरीत कृष्ण के रुप गुण का बखान करने लगती है। तब सामल कहली है कि यदि तुम कृष्ण के प्रेम मे इतनी मग्न हो तो अपनी आखें मुँदकर उसका ध्यान करो और अपने प्रेम से उसको यहाँ बुलाओं। इतना सुन राधा आँखे बंद करके ध्यानमग्न होती है इतने में कृष्ण सामल का छलावा वाला वेश बदल कर राधा के सामने आ जाते है राधा अपने प्रियतम को सामने पाकर आनंद - विभार हो जाती है।

श्री कृष्ण ने तो कई बार राधा के समक्ष छलिया के वेश में आए है राधा ने भी एक बार ग्वाला के रुप में गोकुल आती है और वह कृष्ण की परीक्षा लेती है वह ग्वाला बाल का रुप बनाकर कृष्ण से मिलती है और स्वयं को बरसाने का ग्वाला बताती है।

कृष्ण उसका स्वागत करते है इस बार राधा ने बातचीत के दौरान बरसाने के ग्वाले ने राधा की निंदा शुरु कर दी उसने कहा कि राधा से लाख गुना अच्छी एक अत्यंत सुन्दरी बरसाने में है, जो कृष्ण के सर्वथा योग्य है, उसने कृष्ण से कहा कि मैं तुम्हार विवाह उस सुन्दरी से करा सकता हुँ कृष्ण ने उस ग्वाले की बात का बुरा मान गए और कृष्ण ने कहा कि मै राधा की निंदा नही सुन सकता। कृपा कर राधा कि निंदा मेरे समक्ष ना करे। कृष्ण ने राधा का रुप - गुण का विस्तृत बखान किया और कहा कि राधा और मै सर्वथा अभिन्न है इस प्रकार राधा ने कृष्ण से तथा कृष्ण ने राधा से अनेक परिक्षाए लेते है छल करते है लीलाएँ करते है क्योंकि राधा और कृष्ण एक दुसरे से लौकिन तथा अलौकिक दोनो रुपों में प्रेम करते है।

श्री कृष्ण कि अनेक लीलाओं में से एक है रामलीला कृष्ण कि सभी लीलाओं मे से राम लीला का विशेष महत्व है क्योंकि रामलीला में श्री कृष्ण प्रत्येक गोपियों के लिए एक - एक कृष्ण का रुप लेते है। सभी गोपियों के साथ एक वृत बनाकर सभी के साथ नृत्य करते है। और उस रामलीला में श्री कृष्ण राधा के साथ भी नृत्य करते है नृत्य के उपरांत सारी गोपिया कृष्ण से बोलती है कि "हे कृष्ण हम आपके तिलक तथा कुंडल एवं घुँघराली लटों से आवृत मुखमंडल तथा आपकी अलौकिक मुस्कान को देख कर मन मोहित हो गये है।"

राधा का कृष्ण से मिलने से राधा के मन की सारी अभिलाषा पूरी हो जाती है उन दोनों के मिलने पर प्रेम भी होता है और थोड़ा नोक - झोक भी। राधा कृष्ण से अपनी मनोदशा एवं मनोयथा व्यक्त करती है। राधा कृष्ण से कहती है कि "कृष्ण पूरे ब्रज में हमारे प्रेम की चर्चा है सभी यह कहते है कि राधा मोहन एक है यह मैं सब सुन कर लज्जित हो जाती हूँ" राधा कृष्ण से प्रार्थना करती है कि "तुम इस गलीयों में मत आओं और अगर आओं भी तो अपनी मोहिनी बंशी न बजाओं" राधा ने यहाँ अपनी एकांत निष्ठा व्यक्त कि है कि तुम बिन श्याम और नही जानौ। राधा के लिए वह सब कुछ निरर्थक है जो उसके प्रेम में बाधक है। प्रेममयी राधा के लिए तो उसका प्रेम ही सर्वस्व (सबकुछ) है। राधा और

कृष्ण के प्रेम प्रसंग में यह भी कहा गया है कि राधाकृष्ण का देन गोदोहन मे विकसित हुआ है। एक दिन राधा ने कृष्ण से गोदोहन (गौ के दुध दुहने कि प्रक्रिया) की प्रार्थना करती है और इस गोदोहन में ही प्रीति की प्रगाढ़ता प्रकट होने लगी। गौदोहन के दौरान कृष्ण एक धार दोहनी में डालते है और एक राधा पर पफेंकते है कृष्ण की कलावाजी पर राधा मुग्ध हो जाती है। गोदोहन के पश्चात् राधा कृष्ण को छोड़ कर घर जाना चाहती है तो पैर तो आगे बढ़ रहे है राधा के पर उसका मन पीछे की छुटा जा रहा है। राधा बार-बार मुड़कर नंद की गली की ओर देखती है वह अनेक बार अपने प्रिय के दर्शन के लिए पुनः लौट आती है। क्योकि कृष्ण से अलग होते ही राधा बेचैन हो उठती हैं।

श्री कृष्ण को लीलाधर के नाम सभी पुकारा जाता है श्री कृष्ण के 16 वर्ष पूर्ण होने के बाद वह गोकुल छोड़कर मथुरा चले गए, परंतु राधा के मन से वह आज भी नही निकले है वैसे तो कृष्ण के तो आठ पत्नीयाँ है—रुकमणि, सत्यभामा, जाम्बवन्ती, कालिन्दी, मित्रबिन्दा, सत्या भंद्रा तथा लक्ष्मण परंतु आज भी कृष्ण राधा से ही अधिक प्रेम करते है। कहा जाता है कि आज वर्त्तमान में भी राधा और कृष्ण अलौकिक रुप मे वृंदावन के वाटिकाओं में भ्रमण करने के लिए धरती पर आते है।

संदर्भ सुची

1. कृष्ण भक्ति काव्य धारा और कवि, 53, 56, 79, 83
2. कृष्ण कथा की परम्परा और सुरदास का काव्य, 113, 215

प्रेम का उदात्त रूप और राधा-कृष्ण

श्रीमती अणिमा श्रीवास्तव

शोध-छात्रा (संगीत)
पटना-विश्वविद्यालय, पटना

"न पा सकते जिसे पाबंद रहकर कैदे हस्ती में,
सो हमने बेनिशाँ होकर तुझे ओ बेनिशाँ पाया।"

परम भक्त श्री बिन्दु जी लिखते हैं-

"है प्रेम जगत में सार अरू कछु सार नहीं।"

जब वंशी की तान पर मुग्ध हुआ मृग अपनी मृत्यु में भी अमरत्व का पान करने लगे, जलज में बंद भ्रमर के प्राण घुटते हों और उस समय भी उसके हृदय में प्रणय-संगीत की तान पर आनन्द का प्रवाह होने लगे, नदियाँ अपने नाम और रूप को अनन्त जल राशि में डूबो एक लय हो आनन्दित होने लगें तथा भावुक प्रेमी अपने सम्पूर्ण भावों की परितृप्ति अपने परम-साध्य में करने लगे, तब यह परम-भावनापूर्ण प्रीति ही 'प्रेम' की परिणति है। इसी परम भावनापूर्ण प्रीति को शास्त्रों में **'सा त्वस्मिन् (कस्मै) परम प्रेमरूपा'** कहा गया है। शांडिल्य ने स्पष्ट कहा है कि ईश्वर में परम अनुरक्ति का नाम हीं 'प्रेम' है। इसी प्रेम के अभिभूत हो **कबीर** ने स्वयं को राम की बहुरिया बना डाला तो श्रीकृष्ण की 'सनातन प्रेयसी' तिस्सपा बाई आण्डाल ने देवदासियों की परम्परा का निर्वाह करते हुए कृष्णमय हो प्रेम के दिव्य-भाव का वरण किया। इस प्रेम की सम्पुष्टि जहाँ मीरा ने "मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरों ने कोय" कह कर की तो तुलसीदास ने 'सियाराम मय सब जग जानि' कहकर अपने अन्तर भाव का सम्पोषण किया।

मायिक जगत् से अपनी ममता खींचकर, परमात्मा के प्रेम में डूब कर मानव कृतकृत्य हो जाता है। जब तक मनुष्य की आत्मा की महत्ता को ममता की बेड़ियों ने जकड़ रखा है तब तक वह आत्मा की स्वाभाविक व्यापकता को अनुभूत नहीं कर सकता। जीव का सच्चा आश्रय और परम लक्ष्य परमात्मा हीं है, इस तथ्य में अडिग विश्वास हीं शनैः-शनैः प्रीति और समर्पण के उच्च शिखर पर विराजते हुए उदात्त प्रेम की आरे अग्रसर होता है। परमात्म प्रेम के विविध स्वरूप हैं। प्रभु की चित्तमोहक, सुमधुर स्वरूप को जो जिस भाव से भजता है, उनका गुणानुवाद करता है, उनमें तन्मय हो जाता है वह उसी भाव के साथ उस व्यक्ति विशेष से अपना तारतम्य जोड़ लेते हैं। वह विविध रूपों में जीव को आत्मतृप्त करते हैं। कभी पिता रूप में तो कभी मातारूप में, कभी बालरूप में, कभी प्रियारूप में तो कभी सखा रूप में। अतः सब प्रकार से उनसे नेह जोड़-प्रेम-पिपासु उनसे तन्मयता प्राप्त कर सकते हैं।

प्रेम ऐसा अद्भूत तत्व है, जिसमें रत हो ईश्वर भी अपने, अनादि, अनन्त, अखण्ड स्वरूप को भूलकर समानधर्मा हो जाते हैं। एक प्रेमी भक्त ने इस प्रकार कहा है:-

"जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद्य अभेद सुवेद बतावैं।
ताहि अहिर की छोहरियाँ छछिया भर छाँछ पै नाच नचावैं।(1)

जो उन्हें ज्ञानमय जानते हैं, ब्रह्म समझते हैं, वे उनके एकांगी रूप को जानते हैं किन्तु जो उन्हें प्रेम के अगाध रूप को समझते हैं, वस्तुतः वे उनके सम्पूर्ण तत्व से परिचित होते हैं। प्रेमी कवि और साधक तो यहाँ तक मानते हैं कि मोक्ष परम-पुरूषार्थ नहीं वरन् प्रेम हीं परम पुरूषार्थ हैः- 'प्रेमा पुमर्थो महान्' प्रेम-भक्ति से प्राप्त रसानुभूति हीं परम रस का द्योतक है, यह रस सौन्दर्योन्मेषित आत्मा का रस है। सौन्दर्य अगर देह है तो रस उसकी आत्मा है। अभिव्यक्ति पक्ष में जिसे सौन्दर्य कहा गया उसे हीं अनुभूति पक्ष में आनन्द के रूप में जाना गया है। इस आनन्द को हीं 'परम रस' भी कहते हैं।

''रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति।''(2)

रस हीं आनन्द और रस ही प्रेम है। वैष्णवाचार्यों ने प्रेम को <u>**'आनन्दचिन्मय रस'**</u> कहकर व्याख्यायित किया है। इस रस को हीं पाकर जीवन सन्तृप्त हो जाता है और प्रेमातुर हो ईश्वर को हीं अपना घर मान लेता है।

''God is our home." (3)

ऋगवेद में कहा गया हैः-

''परा हि मे विमन्यवो पतन्ति वस्य इस्टये वयो न वसतीरूप'' (4)

अर्थात् जिस प्रकार पक्षीगण हर्षित हो घोंसले की ओर लौटते हैं, वैसे ही उतने हीं, आनन्द व उल्लास से मेरी मनोवृतियाँ परमात्मा की ओर खिंचती है। यह मनोवृत्ति आत्मोन्नति का प्रथम सोपान है। इस सोपान पर चढ़ते-चढ़ते, आगे बढ़ते हुए मनुष्य चरमोत्कर्ष पर पहुँच, वैराग्य और प्रेम से पूर्ण हो अन्ततः प्रभुमय हो जाता है। प्रेम के इसी चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर मीरा कहती हैः-

''माता छोड़ी, पिता छोड़े, छोड़े सगा सोई।
अब तो बात फैल गयी जाने सब कोई।।'' (5)

वैराग्य का वास्तविक अर्थ त्याग नहीं बल्कि किये गये कर्म-फल का त्याग है। गोपिकाएँ अपने प्रिय कृष्ण की अनन्य प्रेमी है, निष्काम भाव से उनका प्रेम नित-निरंतर उर्ध्वागामी हो रहा है। गोपिकाओं का कृष्ण के प्रति प्रेम, अनन्यता का अनुपम दृष्टान्त हैः-

''भक्ति परम प्रेमरूपा- यथा ब्रजगोपिकानाम्।''

इस प्रकार प्रेम का लक्षण बतलाते हुए इसकी विशद व्याख्या करते हुए देवर्षि नारद कहते हैं-

''तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति'' (6)

अर्थात् परमात्मा हेतु समस्त कर्मों का समर्पण कर और उसकी क्षणमात्र विस्मरण में भी अत्यधिक व्याकुलता की स्थिति की अनुभूति हीं 'प्रेम' है। यह प्रेम हीं है जिससे आत्मा का अस्तित्व स्वीकार्य है, क्योंकि प्रेम की उपस्थिति में 'मैं' जैसी वस्तु विलुप्त हो जाती है। इसमें ईश्वर की प्रतीति प्रेम के द्वारा हीं होती हैं। बिना प्रेम अनुराग के उन्हें अनुभव भी नहीं किया जा सकता है। एक भक्त कहते हैंः-

''हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम से प्रकट होहिं में जाना।''

यहाँ मैं एक प्रसंग देना चाहूँगी जिसमें प्रेम के उत्कृष्टतम रूप का वर्णन है। जब श्री कृष्ण, उद्यो को वृन्दावन जाकर प्रेम में लीन गोपियों को ज्ञान तत्व समझाने हेतु भेजते हैं और राधिका उन्हें प्रेम की गूढ़ता बता कर उनके ज्ञान के परदे हटा कर प्रेम सार समझाती है। प्रेम तत्व का सार समझते हीं उधो राधे के शरणागत हो जाते हैं। बिन्दु जी ने इस प्रेम सार को बहुत सुन्दर ढंग से शब्दों में पिरोया हैः-

''है प्रेम जगत में सार अरू कछु सार नहीं
कहा श्री राधिका ने तुम संदेशा खूब लाये हो।
मगर यह याद रखो प्रेम की नगरी में आये हो।
'संभालो योग की पूँजी न हाथों' से निकल जाये,
कहीं विरहाग्नि में यह ज्ञान की पोथी न जल जाये।
है प्रेम जगत में सार अरू कछु सार नहीं
अभी तुम खुद नहीं समझे कि किसको योग कहते हैं
सुनो इस तौर योगी द्वैत में अद्वैत रहते हैं
उधर मोहन बने राधा वियोगन की जुदाई में

इधर राधा बनी है श्याम मोहन की जुदाई में
है प्रेम जगत में सार "(8)

अर्थात् प्रेम में द्वैत का स्थान नहीं है। जब यह प्रेमासक्ति तन्मयता का रूप धारण कर लेती है तब प्रेमी और प्रेमिका के बीच भेद नहीं होता। दोनों तद्रूप हो जाते हैं। सूरदास जी कहते हैं:-

"राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, क्रीट भृंग गति हवै जु गई।
माधव राधा के रंग राचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई।" (9)

'प्रेम' नारी हृदय का सहज वैभव है। नारी हृदय को प्रारंभ से हीं संवेदनशील, भाव-प्रणव माना जाता रहा है। वह प्रेम की वेदना, में जल कर निखर भी सकती है। स्त्री में त्याग, समर्पण, बलिदान, संवेदनशीलता के भाव अक्षुण्ण माने जाते हैं। इसलिए कृष्ण के प्रेम हेतु आलम्ब रूप में राधा (नारी) है, जो आराध्या भी है, भाव-प्रणव कोमल हृदया भी और जन्म-जन्मातंर से अपने परम-पुरूष के प्रेमालिंगन के लिए आतुर भी हैं। उनमें लिप्त होकर भी निर्लिप्त है। परमभाव की साकार और सुन्दरतम प्रतिमा राधा है। कृष्ण की राधा सर्वसारातिसार स्वरूपा हैं। जहाँ एक ओर उनमें लावण्य का सार है वहीं दूसरी ओर समस्त सुखों का सार है, उनमें दयालुता के साथ-साथ माधुर्यता का सार निहित है और विदग्धता और रतिकेलि का भी साररूप उनमें प्रदीप्त है।

नारद सूत्र में कहा गया है:-

"कर्षति आत्मसात्करोति आनन्दत्वेन परिणमयति।
मनो भक्तानां इति यावत् स कृष्णः।" (10)

पूर्ण आनन्द दायक, आकर्षण सत्तायुक्त, चिदधनस्वरूप, परम तत्व, मुरली मनोहर, वासुदेव, जो आकृष्ट करे वह कृष्ण है अर्थात् इस परम तत्व की ओर आकृष्ट चित्कण स्वरूप राधा की आकर्षण क्रिया का नाम हीं 'प्रेम' है। परम भक्ति की सीमा का छोर 'प्रेम' में विलय हो जाता है। सब कुछ कृष्णमय, 'सर्व खल्विदं श्रीकृष्णः'। इस स्थिति को प्राप्त कर भक्ति की संज्ञा प्रेमी की हो जाती है। श्रीकृष्ण की ऐसी स्निग्ध छवि हमारे समक्ष दृष्टिगत होती है, जिसमें एक हीं साथ शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य इन समस्त भावों की अनुभूति प्रस्फुटित होती है। उनमें एक साथ हीं सौन्दर्य, माधुर्य सौकुमार्य एवं लावण्य के संपूर्ण उपादान निहित हैं। वह प्रेम के साकार और अन्यतम स्वरूप हैं और उनमें रत प्रेमी उन्हें हीं सुनता है, उन्हें ही देखता है, उन्हें हीं बोलता है और प्रतिपल उनका ही चिन्तन करता है।

महाभाव में राधा और कृष्ण निरन्तर विहार करते हैं। कभी-कभी राधा हीं कृष्ण तथा कृष्ण हीं राधा रूप में आकर केलि-क्रीड़ा करते हैं। राधा-रानी श्री कृष्ण की गोद में सिर रखे लेटी हैं, फिर भी उन्हें भान हो रहा है कि कृष्ण नहीं मिले। यह मिलन में विरहावस्था का भान 'प्रेम-वैचित्र्य' की स्थिति उत्पन्न करता है। शाश्वत प्रेम की यह अनुभूति विरह में उदीप्त एवं जागृत रहती है। मिलन इसके आनन्द को हल्का और सतही कर देता है। विरह के झीने पट से छन-छन कर आती हुई मिलन की सुषमा को हृदय प्रत्यक्ष अनुभव करता है। महामिलन की उत्सुकता और विरह की वेदना दोनों हृदय में लिपटे होते हैं, यह बड़ी विचित्र स्थिति है:-

बाहिरे विष जवाला हय, भितेर आनन्दमय।
कृष्ण-प्रेमार अद्भुत चरितामृत।।
एर प्रेमार आस्वादन तप्त इक्षुचर्वण।
मुख ज्वले ना पाय त्यजन।।
एई प्रेमार मने, तार विक्रम सेई जाने।
विषामृत एकत्र मिलन।। (11)

यह चिरप्यास! और कृष्ण-कृष्ण के आवाहन से क्षण-क्षण तृप्त होती यह प्यास अन्ततः राधा को कृष्ण बना देती है, ज्योंहि राधा कृष्ण का रूप ले लेती है तत्क्षण उनके मुख से राधे! हाः राधे का स्मरण होने लगता है। राधा-कृष्ण और कृष्ण-राधा

की ऐसी स्थिति जहाँ द्वैत है ही नहीं। परा अपरा के पार इन प्रेमी युगल में आध्यात्मिक आनन्द के शुभ्र नीलरस की निष्पत्ति होती है। सौन्दर्य और सुन्दर, प्रेम और प्रेमिक एक ही है। जो ज्ञाता है वहीं ज्ञान है, जो आनन्दमय है वहीं आनन्द है, जो चेतन है वही चैतन्य है जो धर्म है वही धर्मी है। उपाधि के भेद से सौन्दर्य अनन्त होने पर भी सुन्दर एक हीं हैं, वैसे ही उपाधि-भेद से प्रेम अनन्त होने पर भी प्रेमिक एक हीं है, यह सत्य है:-

नाना भक्ते रसामृत नाना विध हय।
सेई सब रसामृतेर विषय आश्रय।। (12)

कृष्ण प्रेमिक हैं और राधा सुन्दर। स्वंय कृष्ण कहते हैं:- "प्रेमिक मानों 'मैं' हूँ और सुन्दर मानो 'तुम' हो। जगत के जितने सौन्दर्य हैं सभी जब एक हैं तब एकमात्र अद्वितीय सुन्दर तुम हो। सभी प्रेम जब मूल में एक हैं, तब एकमात्र अद्वितीय प्रेमिक 'मैं' हूँ। तुम्हारा अनन्त सौन्दर्य, मेरा अनन्त प्रेम- प्रकार में अनन्त, काल में अनन्त, देश में अनन्त, वैचित्र्य में अनन्त हैं, इसी से तुममें, मुझमें नित्य लीला है। अवश्य इस लीला की स्फुर्ति तब हो सकती है जब तुम और मैं दोनों स्वरूप में सजग रहें।"(13)

राधे-कृष्ण का प्रेम, उनकी लीलाएँ अनन्त हैं, उनके धाम और उनका आस्वादन भी अनन्त है। उनके पूर्ण सौन्दर्य चिर पुरातन होकर भी नित्य नूतन है। उनके प्रेम का वर्णन शब्दातीत है। दोनों का प्रेम प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध है:-

'I am he whom I love,
He whom I love is I
We are two spirits
Dwelling in one body." (14)

राधे और कृष्ण दोनों "आध्यात्मिक परिणय' के सूत्र में सदा से सदा के लिए बद्ध हैं।

विजयकृष्ण गोस्वामी लिखते हैं-

"Love is ever young, and it ever renews itself in fresh rosy colors; and hence Sree Krishna is the Eternal Masculin and Sree Radha is the Eternal Feminine in the enjoyment of eternal youth." ¼15½

कृष्ण हीं रस है और राधा रति हैं। कृष्ण मदन है तो राधा मदनप्रिया। शिव शक्ति की भाँति, प्रज्ञा-उपाय की तरह राधा ओर कृष्णका लीला-विलास एवं आनन्दोल्लास हीं साधक का परम लक्ष्य है। श्रीकृष्ण में भोक्ता और भोग्या दोनों भाव सन्निहित है। भोग्या से विलग हो भोक्ता की स्थिति या आन्नदोल्लास संभव भी नहीं हो सकता। आनन्द स्वरूपिणी राधा चिर भोग्या और चित्तस्वरूप कृष्ण चिर भोक्ता हैं- मूल में दो नहीं हैं किन्तु लीला-विहार में दो।

डॉ. भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' लिखते हैं:-

"यह लीला वन वृन्दावन, मन वृन्दावन और नित्य वृन्दावन में होती हीं रहती है। वन वृन्दावन में होती है लीला की आंतरिक लीला ओर नित्य वृन्दावन में, जिस नित्य देश या गुप्तचन्द्रपुर कहते हैं, राधा और कृष्ण की नित्य, दिव्य, मनोहारिणी, प्रेम-लीला और रास-विलास होते रहते हैं। यही 'सहज' है। प्रेम-साधना से जब प्रेममय प्रभु के प्रेम का एक कण मिल जाता है, तब साधक इस नित्य लीला में, दिव्य भाव में, सिद्ध देह से प्रवेश पा सकता है।"(16)

निष्कर्षतः इस दिव्य प्रेम को देखने के लिए दिव्य दृष्टि की आवश्यकता है । इन अप्रतिम युगल के चिर विरह, चिरमिलन, चिर विहार और 'आध्यात्मिक परिणय' से बद्ध स्वरूप को समझना और उसे बताना शब्दातीत, वर्णनातीत है। इनके स्वरूप और प्रेममय स्वरूप का वर्णन वही कर सकता है, जिसे इनकी महत्ती कृपा से प्रकाशित दिव्य चक्षु मिले हों। अर्थात् अन्तर की आँखों के खुले बिना इनका वर्णन व दर्शन असंभव है। हज़रत मुइनुद्दीन

चिश्ती साहब के शब्दों के साथ मैं इस विषय विशेष को विराम दूँगीः-

"चश्म बकशाई कि दीदारे खुदा जलबा नमूद,
दीदह शो यकसर बर बन्द दरे गुफ़्तो शुमीद।" (17)

संदर्भः-

(i) मीरा श्रीवास्तव- कृष्ण काव्य में सौन्दर्य-बोध एवं रसानुभूति, पृ.सं.-3

(ii) डॉ. कुमार वीरेन्द्र एवं सुभद्रा वीरेन्द्र-आरोह-अवरोह, पृठ संख्या-17

(iii) डॉ. भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'-मीरा की प्रेम साधना, पृ. सं.- 03

(iv) वही

(v) वही

(vi) वही, पृ.सं.-6

(vii) वही

(viii) रामानन्द श्रीवास्तव 'विदेह'-अध्यात्म रहस्य, पृ.स .-51

(ix) संजय गुप्ता- सूरदास के लोकप्रिय पद, पृ. स.- 396

(x) नारद सूत्र, पृ. सं.- 249

(xi) मीरा श्रीवास्तव-मीरा की प्रेम साधना, पृ. सं. -251

(xii) वही, पृ. सं.-29

(xiii) वही

(xiv) वही, पृ. सं.- 129

(xv) वही, पृ. सं.- 74

(xvi) वही, पृ. सं.- 98

(xvii) कृपाल सिंह-अध्यात्म विद्या क्या है?, पृ. सं.-123

चैतन्य सम्प्रदाय में चित्रित श्री राधाकृष्ण का स्वरूप

अरूणा यादव

शोधच्छात्रा संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री चैतन्य महाप्रभु (1476 ई.-1533 ई.) ने राधा-भाव को अंगीकार कर रस-साधना की धारा का प्रवर्तन किया। चैतन्य महाप्रभु मधुर रस के साक्षात् विग्रह थे। उन्होनें राधाभाव को ही भक्ति का चरम उत्कर्ष स्वीकार किया। चैतन्य महाप्रभु के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है- कि महाप्रभु जब तीर्थाटन करते हुए दक्षिण देश में पहुँचे, उस समय उत्कल देश के प्रसिद्ध विद्वान् तथा राजमन्त्री राय रामानन्द से उनका साक्षात्कार हुआ था, जिसका विस्तृत विवरण कृष्णदास कविराज ने अपने 'चैतन्य चरितामृत' मे दिया है। महाप्रभु ने रामानन्द से वैष्णव धर्म के मूल तथ्यों तथा सिद्धान्तों के विषय में प्रश्न किया, जिनका उत्तर रामानन्द ने विस्तार के साथ उन्हें दिया। महाप्रभु ने राय रामानन्द से पूछा कि हे विद्धान्, तुम भक्ति किसे कहते हो? राय रामानन्द ने जरा सोचकर उत्तर दिया- स्वधर्माचरण ही भक्ति है।[1]

लेकिन यह तो वाह्य है, और भीतर की बात कहो? श्रीकृष्ण को समस्त कर्मो का अर्पण कर देना ही भक्ति है।[2] लेकिन यह भी ऊपरी बात है और आगे कहो? सर्वधर्मपरित्याग पूर्वक भगवान की शरण में जाना ही भक्ति है।[3] यह भी वाह्य है, और आगे की कहो? भगवान के प्रति प्रेम ही भक्ति है। ठीक है, पर यह भी स्थूल है, आगे की कहो?

दास्य प्रेम ही भक्ति है।[4] ठीक है, पर यह भी स्थूल है, आगे की कहो?

सख्य प्रेम ही भक्ति है।[55] विभ्रद्वेणुं जठर पटयोः श्रृंगवेत्रे चाकक्षें वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्युंगुलीषु।

तिष्ठन् मध्येस्वपरिसु
दो हासयन् नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके भिषतिवुभुजेयज्ञभुकवालकेलिः।।

ठीक है, पर और आगे की बात कहो? कान्ता का प्रेम ही भक्ति है।[6] बहुत उत्तम! लेकिन और भी आगे की कहो? राधा भाव का प्रेम ही परमभक्ति है। हाँ राधाभाव ही श्रेष्ठ है, परन्तु प्रमाण क्या है?

रायरामानन्द ने इसके उत्तर में 'गीातगोबिन्द' का मत उद्धृत किया जिसमें बताया गया है कि भगवान श्रीकृष्ण ने राधा को हृदय में धारण कर अन्य ब्रज सुन्दरियों को त्याग दिया था।[7] यह श्लोक इस बात का प्रमाण है कि कान्ता भाव में भी राधाभाव ही सबसे श्रेष्ठ है। महाप्रभु इसी राधाभाव से ही भजन किया करते थे। सम्प्रदाय के परम भक्त कृष्णदास कविराज ने चैतन्य चरितामृत में उनके आविर्भाव के तीन कारणो का उल्लेख किया है-

1. श्री राधा की प्रणय महिमा को दिखाने के लिए।
2. श्रीकृष्ण की मधुरिमा का आस्वादन करने के लिए।
3. मधुरिमा के द्वारा राधा के सुख को व्यक्त करने के लिए।

चैतन्य सम्प्रदाय श्रीकृष्ण को ही परमतत्व मानता है[8] उनके अनुसार श्रीकृष्ण ही अनन्त शक्तियों के

स्वामी और अनादि है। उनकी शाक्ति अचिन्त्य है। वे सच्चिदानन्द विग्रह है, परम ईश्वर और स्वयं भगवान है, सर्वकार्यो के कारण हैं। उनमें समस्त शक्तियों का विकास होने से उन्हें अंशी कहा गया और समस्त स्वरूप अंश रूप है।

भगवान श्रीकृष्ण की तीन शक्तियाँ मानी गयी है, अन्तरंग शक्ति, बहिरंग शक्ति और तटस्थ शक्ति।[9] भगवान की अंतरंग शक्ति ही स्वरूप शक्ति है जिसे'संधिनी शक्ति' भी कहते है। सत्‌चित् आनन्द इसी का सामूहिक नाम है। बहिरंग शक्ति माया कहलाती है। इस माया के दो भेद है, गुणमाया और जीवमाया। गुणमाया से त्रिगुणात्मिका शक्ति का सृजन होता है। जीवमाया जीव को भगवान से विमुख करती है। तटस्थ शक्ति को जीव शक्ति भी कहते हैं। जिस प्रकार समुद्र की तटभूमि न तो समुद्र के बाहर है और न भीतर, उसी प्रकार जीव ठीक-ठीक स्वरूप शक्ति के न अन्तर्गत ही है और न स्वरूप शक्ति के बाहर मायाशक्ति के अधीन। जीव जब अपने स्वरूप को भूलकर श्रीकृष्ण से बहिर्मुख हो जाता है, तब बहिरंग मायाशक्ति के अधीन हो जाता है, और जब अपने स्वरूप की स्मृति रखते हुए भगवदन्मुख होता है, तब अंतरंग शक्ति उसको अंगीकार करती है। जीव अंतरंग शक्ति के विलास द्वारा अनुगृहीत होकर परमतत्व को प्राप्त करता है और भगवान से पराङ्मुख जीव माया द्वारा परिभूत होकर संसारी बनता है। चैतन्य मत में जीव सदैव, अणु और नित्य माना गया है।

श्री चैतन्यमत में राधा का महत्वपूर्ण स्थान है। गोपियों मे राधा का स्थान सर्वप्रमुख है। उनके प्रेम की समानता मे कोई नहीं है। इस मत में राधा को परकीया माना गया है। रूप गोस्वामी की व्याख्या के अनुसार परकीया वह स्त्री है जो इस लोक और परलोक दोनो की अनुपेक्षा करने वाले प्रेम से अपनी आत्मा को उस पुरूष के प्रति अर्पित करती है, जिससे उसका विधिवत् विवाह नही हुआ रहता।[10] रूपगोस्वामी का कथन है कि परकीया अपने अन्तरंग राग के द्वारा अपने आपको श्रीकृष्ण के लिए अर्पित करती है, बहिरंग विवाह प्रक्रियात्मक धर्म के द्वारा नहीं और श्रीकृष्ण भी उसे विवाहात्मक धर्म से स्वीकार न कर राग के द्वारा ही स्वीकृत करते है। प्रेम की, रति की, पराकष्ठा स्वकीया रति की अपेक्षा परकीया रति में ही होती है। स्वकीया में रहता है विधि-विधान का नियंत्रण, जो उसके प्रेम के ऊपर एक गहरा आवरण डालकर उसे पूर्णतया विकसित होने से रोकता है। इसके विपरीत परकीया की रति विधि-अनुष्ठान के नियन्त्रण से स्वतन्त्र जो रति को पूर्ण विकास तक पहुँचाने में समर्थ होती है। इसीलिए परकीया के प्रति नायक का आकर्षण सर्वापिक्षया अधिक होता है। चैतन्य मत में राधा का यही परकीया-भाव सर्वतोभावेन मान्य तथा प्रामाणिक बन गया।

गोपियों मे राधा उत्तमा है, वह रूप, गुण सौभाग्य और प्रेम में सर्वाधिका है।[11] राधा का प्रेम इतना दृढ़ है कि वह कृष्ण को सदा विह्वल किया करता है। श्री कृष्ण कहते हैं कि मैं रस का निधान हूँ, पूर्ण आनन्दमय हूँ, चिन्मय हूँ, पूर्णतत्व हूँ, लेकिन राधा का प्रेम मुझे उन्मत्त बना देता है। मैं नही जानता कि राधिका के प्रेम में कितना बल है, जो मुझे विह्वल बना देता है। राधा महाभावस्वरूपिणी है। कृष्ण की पट्टप महिषियों में केवल अनुराग तक प्रेम का विकास होता है, उसके बाद उनका कोई अधिकार नहीं है। इसके बाद गोपियों का प्रेम महाभाव तक जाता है, किन्तु उनमें भी अधिरूढ़ महाभाव में प्रवेश करने का अधिकार केवल राधा को है। राधा ह्लादिनी रूपा मानी गयी है क्योकि वह कृष्ण को आनन्द प्रदान करती रहती है और भक्तो को भी आह्लादित किया करती है। ह्लादिनी का सार अंश प्रेम। इसी को आनन्द भी कहते है। प्रेम का परमसार है महाभाव और महाभाव का चरमरूप अधिरूढ़ भाव में मिलता है इसीलिए राधा को महाभावस्वरूपिणी कहा गया है।

चैतन्य महाप्रभु ने राधाभव से कृष्ण के प्रति प्रेम निवेदित किया था उन्होंने स्वयं को राधारूप में समझा और अपने सम्प्रदाय के आठ स्तभों को आठ सखियों क्रमशः विशाखा, ललिता, चित्र, इन्दुलेखा, चंपकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या सुदेवी के नाम से स्थापित

भी किया। इस मत में आराध्य देव हैं सर्वेश्वर श्रीकृष्ण तथा उनकी आह्लादिनी शक्ति श्री राधा। भक्तों के लिए सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की चरण सेवा छोड़कर अन्य उपाय नहीं है। श्रीकृष्ण की शक्तियाँ अचिन्तनीय है जिनके बल पर वे भक्तों का क्लेश दूर करते है। कृष्ण ही परम उपास्य देवता है।[12] ऐसे कृष्ण के वामांग में प्रसन्नवदना राधा विराजमान है। हजारो सखियो से परिसेवित है और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। इस प्रकार इस मत में सखियों द्वारा परिवेष्टित राधा कृष्ण का युगल रूप ही उपास्य है।

संदर्भ

[1] स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मोभयावहः।
-श्री मद्भगवद्गीता 3/35

[2] यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्करोषि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।।
- श्रीमद्भगवद्गीता 9/27

[3] सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः
- श्रीमद्भगवद्गीता 18/66

[4] अहं हरे तव पादैक मूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणानां गृणीतवाक् कर्म करोतु कायः।
-भागवतपुराण 2/11/24

[5] विभ्रद्वेणुं जठर पटयोः श्रृंगवेत्रे चाकक्षें वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्युंगुलीषु।
तिष्ठन् मध्येस्वपरिसुदो हासयन्नूनमंभिः स्वैः स्वर्गे लोके भिषतिवुभुजेयज्ञभुकवालकेलिः।।
-भागवत पुराण 10/13/11

[6] पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिंगगूढः पुराणपुरूषो वनचित्र माल्यः।
गांः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीड़याचति गिरित्र माचिंताङ्घ्रि
-भागवत 10/44/13

[7] कंसारिरपिसंसारवासनावद्ध श्रृंखलाम्।
राधामाधाय दये तत्याज व्रजसुन्दरी।।
-गीतगोविन्द 3/1

[8] चैतन्य चरितामृत 1/2/5

[9] कृष्णेर अनन्तशक्ति ताते तीन प्रधान।
चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीवशक्तिनाम।।
अंतरंगा, बहिरंगा तटस्था कहि जारे।
अंतरंगा स्वरूपशक्ति सभार उपरे।।
चैतन्य चरितामृत 2/8/116-117

[10] रागेणैवर्पितात्मानो लोकयुग्मानुपेक्षिणा।
धर्मेणास्वीकृता यास्तु परकीया भवन्ति ताः।।
-उज्जवल नीलमणि, पृ 52

[11] चैतन्य चरितामृत 1/4/116

[12] नान्यागातिः कृष्णपदारविन्दात्,
संदृश्यते ब्रहशिवादि-बंदितात्।
भक्तेच्छयोपात्त-सुचिन्त्य-विग्रहा,
दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्।
-दशश्लोकी श्लोक 8

लौकिक और अलौकिक संदर्भ में राधा-कृष्ण का प्रेम

प्रेमदीप सिंह

शोध छात्र (S.R.F.)
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

आचार्य भामह के अनुसार 'यत् हितम् सन्निहितम् तत् साहित्यम्' को आधार बनाकर राधा-कृष्ण प्रेम की साहित्यिक मीमांसा करना लाक्षणिक व्यंजना को प्रभूत आधार प्रदान कर सकता है। वस्तुतः प्रेम गुणात्मक अवयव है और इसे द्रव्यानुभूति से अलग करके देखना होगा। प्रेम की भाव- भांगिमा सदैव ही एक नये क्षितिज का निर्माण करती है। संपूर्ण मनुष्य मात्र में आरोपित प्रेम विशिष्ट एवम् निर्पेक्ष होती है। इसकी व्यंजना अलग-अलग होते हुए भी कुछ समरूपता स्थापित करती है। प्रेम सर्वस्व समर्पण और अहंकार का विलोपन है। यदि प्रेम वस्तु होता तो ताजमहल में जड़ा अवश्य गया होता लेकिन ताज निर्माण की पूर्णपीठिका नहीं बन पाता। जिस प्रकार प्रेम को लौकिक और अलौकिक रूपों में विभाजित किया गया है, यह वस्तुतः भ्रम मात्र है, क्योंकि लौकिकता का अतिरेक ही पारलौकिकता में अभिव्यंजित होता है। प्रेम मानवता की एक पुकार, आत्मा की बुभुक्षा और हृदय की पिपासा है जिसे साहित्यकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से गवेषणा की है।

राधा कृष्ण प्रेम अपूर्णता से पूर्णता प्राप्त करने की एक यात्रा है। मानव मात्र का सृजन ही यह प्रमाणित करता है कि हम किस प्रकार एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करते हैं। सदैव दृष्टि का कुछ तलाश करते रहना यह सिद्ध करता है कि कुछ पाना शेष है। वही 'शेष' जीवन भी है और प्रेम भी। जैसा कि कामायनी में प्रसाद जी ने लिखा–

"समरस थे सब जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था
चेतनता एक विलसती, आनंद अखंड घना था।"

जड़ और चेतन का सामंजस्य ही अखंडता पैदा करता है। प्रकृति का पुरूष से समन्वय, राधा का कृष्ण से समन्वय ही प्रेम का श्रेय है जिसको कामायनी में कुछ इस प्रकार अभिलक्षित किया गया है–

"काम मंगल से मंडित श्रेय, सर्ग ईच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर इसको तुम भूल, बनाते हो असफल भवधाम।।"

राधा और कृष्ण का प्रेम यह इंगित करता है कि द्रव्य और रस को अलग करके नहीं जाना जा सकता। रस को जानने के लिए द्रव्य को माध्यम तो बनाना ही पड़ेगा। शरीर के मिलन के बिना आत्माओं का मिलन कहाँ संभव है, आखिर आत्मा का निवास-स्थल तो शरीर ही है, जिसे कबीर ने अपनी सीधी-साधी भाषा में कहा,

कबिरा इस संसार में, जाति धर्म कुल नाम,
शबद मिलावा होई रहा, देह मिलावा नाम।।

एक बार सच्चे प्रेम की अनुभूति हो जाने पर अन्य सभी स्वाद फिके लगते है। अतः प्रेमी सदा इस प्रेम में लीन रहना चाहता है। इस प्रेम में ना

मिलन होता है, न विछोह, वहाँ तो सदा आनंद ही आनंद का अनुभव होता है। मिलन और विछोह के कारण तो प्रेम रस की अखंडता समाप्त हो जाती है। प्रेम के उदय मात्र से मानसिक भ्रम अथवा संशय नष्ट हो जाते है। और इस प्रकार माया-मोह आदि से रहित होकर मन बिल्कुल शुद्ध हो जाता है। फिर प्रेमी के वाह्य अंगों में सात्विक भाव-पुलक, अश्रु प्रवाह आदि लक्षित होते हैं।

राधिकोपनिषद में कृष्ण को परमदेव का रूप प्रदान किया गया है। वे सर्वेश्वर नृत्य और अखिल ब्रम्हाण्ड के अधिश्वर है। यहाँ ज्ञान, इच्छा, संधिनी और अल्हादिनी शक्तियाँ प्रधान है। और वही राधा है। श्री कृष्ण और राधा एक दूसरे की आराधना में सदैव लगे रहते है। राधा की महानता को स्वीकारते हुए यह कहा गया है कि जो राधा को छोड़कर मात्र कृष्ण की उपासना करते हैं वे मूर्ख है।

राधिकातापिनी योपनिषद में राधा को विशिष्ट एवं उच्चतम पद प्रदान करते हुए उपनिषदकार ने यह मान्यता स्थापित की है कि सृष्टि का उद्भव भी राधिका के द्वारा होता है। राधा परात्पर ब्रह्म की शक्ति से युक्त हैं। श्री कृष्ण उन्हें एकान्त में पाकर उनकी चरण धूलि मस्तक पर धारण करते हैं। राधा कृष्ण भिन्न शरीर वाले नहीं हैं। मात्र लीलाओं के समय दो रूपों में व्यक्त होते है। उपनिषदकारों की मान्यता है कि जो राधा और कृष्ण के सम्बन्ध में सुनता है, पढ़ता अथवा स्मरण करता है वह निश्चित ही परमधाम को प्राप्त होता है

राधा कृष्ण के प्रेम में इस सीमा तक अनुरक्त है कि उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि कृष्णमयी जान पड़ती है। उन्हें कालिन्दी के जल, संध्या की अरूणिमा, निशा की श्यामलता में कृष्ण के दर्शन होते है। यही नहीं उन्हें उपा में कृष्ण प्रेम तथा सूर्य में कृष्ण का तेज दिखाई पड़ता है। भ्रमर समूह, खंजन, मृग, हाथी की सूँड, शुक्र की नासिका, दाड़िम, विम्बफल, केला, गुल आदि में कृष्ण के विभिन्न अंगों के दर्शन होते है। राधा को सम्पूर्ण प्रकृतिक रूप माधुरी में कृष्ण का अनुपम सौन्दर्य, पृथ्वी के प्रत्येक भाग में कृष्ण की सौम्य मूर्ति एवं पक्षियों के कलरव में मूरली की मधुर ध्वनी सुनाई पड़ती है।

राधा कृष्ण प्रेम के बारे में कई विद्वानों ने यह भी कहा है कि इनके प्रेम की गति अगम और इसका स्वरूप कठिन से कठिन है। इस प्रेम का अनुभव कभी मिलन कभी वियोग तो कभी संयोग मिश्रित रूप से होता है। किन्तु इसे वही जान सकता है जिसको इसका कभी अनुभव हुआ हो। जैसे-

"प्रेम अटपटी बात कछु , कहत बने नहीं वैन,
कै जाने मन की दशा, कै नेही के नैन।।"

राधा कृष्ण की मधुर लीलाएँ विविध है, कभी कृष्ण प्रिया के साथ ह्रास करने के लिए उनके आभूषणों को उतारते है और फिर पहना देते है। कभी उसके कपोलों को मृदंगम से चित्रित करते हैं, और फिर मिटा देते हैं, दूसरी ओर राधा को प्रियतम के इस स्पर्श से अत्यधिक सुख मिलता है।

कृष्ण ने राधा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए, उन्हीं स्त्री-जाति के रत्न के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार राधा की मुख मण्डल दीप्ति प्रफुल्लित होने वाली कला की आभा दे रही है। उनकी क्रीडा, मृदुभाषण, मृग-नेत्र स्वर्णिम-गात, आल्हादक मुस्कान, कुचिंत अलकें एवं भावों-विभावों से पूरित चेष्टाएँ सभी को आनंदित करने वाली है।

राधा और कृष्ण मिलन और वियोग की एक साथ अनुभूति करते हैं यद्यपि वे परस्पर तन व मन से मिले रहते हैं, तथापि उनमें अतृप्ति की भावना सदा विद्यमान रहती है। राधा बल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार-राधा कृष्ण प्रेम का वर्णन इस रूप में प्राप्त होता है-

"अंग-अंग सब मिलि रहे, मन सो मन अरूक्षात,
देखो अटपटि प्रेम गति, चित्त न कबहु अघात।।"

कृष्ण की अल्हादिनी शक्ति होने के कारण राधा कृष्ण का प्रेम रूप स्वीकार की गई हैं। ये कृष्ण का आल्हादन करती हैं। इसी कारण इन्हें "आल्हादिनी" ऐसा नाम दिया गया है। स्वयं कृष्ण

राधा रूप आल्हादिनी शक्ति का आश्रय लेकर भक्तों का पोषण करते हैं। कृष्ण की इच्छाओं की पूर्ति राधा की एक मात्र आराधना है। अपने इस आराधना भाव के कारण ही राधा को पुराणों में राधिका नाम दिया गया है। गोविन्द ही राधिका के सर्वस्व हैं, इस कारण इन्हें गोविन्द नंदिनी, गोविन्द, मोहिनी और गोविन्द सर्वस्वा कहा गया। राधा सर्वत्र कृष्ण का दर्शन करती हैं। हर समय कृष्ण का गुण श्रवण करती हैं और सदा कृष्ण का ही स्मरण करती है। इस प्रकार राधा कृष्णमयी हैं। कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम अपूर्व है। स्वयं कृष्ण इस प्रेम के वशीभूत हैं, संसार को तृप्त करने वाले होने पर भी उन्हें राधा के प्रेम से तृप्ति प्राप्त होती है। यही कारण है कि कृष्ण रास में राधा के प्रेमवश अन्य गोपियों को छोड़कर राधा के पीछे-पीछे जाते हैं।

राधा कृष्ण की मुख्य शक्ति है, इस कारण जिस प्रकार श्री कृष्ण अपनी लीला के विस्तार हेतु विभिन्न अवतार ग्रहण करते हैं। उसी प्रकार राधा भी अवसरोचित कान्तागण का प्रसार करती हैं। क्योंकि रसोल्लास के लिए यह प्रसार आवश्यक है। कृष्ण कान्ताओं के तीन अंग हैं- लक्ष्मीगण, महिषिगण, और ब्रजांगना। इसमें से प्रेम की तीव्रता के कारण ब्रजागनांए श्रेष्ठ स्वीकार की गई हैं। किन्तु राधा इन सभी की अग्रणी हैं उनमें केवल प्रेम की प्रधानता नहीं रूप, गुण और सौभाग्य की दृष्टि से भी वे अद्वितीय हैं। इस प्रकार जहाँ अन्य गोपियॉ रस की उपकरण मात्र हैं। वहाँ राधा रस वृद्धि का कारण हैं। इसलिए राधा को **''कृष्ण प्राण धन''** कहा गया है।

प्रेम व्यक्ति के जीवन का आलोकमय एवं पावन तत्व है। वह मनुष्य को उदार बनाता है। प्रेम में त्याग एवं समर्पण के अतिरिक्त कुछ नहीं है। प्रेम का उदार स्वरूप प्रिय-प्रेमी के विच जन्म-जन्मांतर का संबन्ध स्थापित करता है। यह स्वार्थ की भाव-भूमि से उपर उठकर व्यक्ति के अन्तःकरण में आत्मोत्सर्ग का भाव भरता है। प्रेम जगत का रंग इतना पक्का होता है कि लाख प्रयास करने पर भी नहीं छूट सकता।

राधा कृष्ण प्रेम के स्वरूप पर डा. भाटी ने विचार व्यक्त किए हैं कि- प्रेम प्रिय शब्द का भाववाचक रूप है। प्रिय शब्द का अर्थ है तृप्तिकारक, आल्हादक आदि। ''प्रीणाति इति प्रियः''। प्रेम इस भाव को कहा जाता है, जो मानव मन का आल्हाद या तृप्ति के द्वारा उन्नयन करें। हरिऔध जी ने ''प्रियप्रवास'' में राधा-कृष्ण का जो रूप प्रस्तुत किया है। वह सात्विक है दोनों के दाम्पत्य प्रेम का आदर्श रूप इस श्लोक में प्राप्त होता है।

''हृदय चरण तो चढ़ा ही चूकि हूँ,
सविधि वरण की थी कामना और मेरी।।''

राधा अपना सर्वस्व श्री कृष्ण के लिए अर्पित कर चुकी है। हृदय में उन्हें पति रूप में पाने की अभिलाषा शेष है। इसके पूर्ण ना होने पर युवती राधा ने आजीवन कौमार्य व्रत के संकल्प का निर्वाह किया है। यही नहीं कृष्ण के पद चिन्हों पर चलती हुई राधा ब्रज प्रदेश की ही नहीं, नारी जाति की आराध्य रूप में मान्य हो गयी। राधा कृष्ण के प्रति प्रेम की प्रबलता का प्रस्तुतिकरण हरिऔध जी ने मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है-नंद और वृष भानु के परिवारिक घनिष्ठ संबंध और अबोधावस्था से ही श्री कृष्ण का राधा के यहाँ क्रीड़ारत रहने के कारण दोनों का मैत्री संबन्ध होना स्वाभाविक था। यह मैत्री संबन्ध काल और अवस्था का संयोग पाकर प्रणय में परिणित हो गया।

राधा प्रेम पूर्णता प्राप्तकर दाम्पत्य सूत्र में बँधने की प्रतीक्षा में थी। परन्तु एकाएक कृष्ण को मथुरा जाने की सूचना पाकर वे बहुत दुखी होती हैं। राधा का वियोग उन्हें अशान्त बनाए रखता है। उनके लिए कृष्ण ने मथुरा जाने के पश्चात् जो संदेश उद्धव के द्वारा भेजा उसमें प्रेम का निश्चल और गम्भीर रूप विद्यमान है-जैसेः-

जो राधा वृषभानु भूप तनया स्वर्गीय दिब्यगना,
शोभा है ब्रज प्रान्त की अवनि की स्त्री जाति वंश की,
होगी हा! वह भग्नभूत अति ही मेरे वियोगाविधि में,
जो हो संभव तात पोत वनके तो बाण देना उसे।।

लगा और पुरानी जीवन दृष्टि धीरे-धीरे पुरानी कह कर ठुकरायी जाने लगी। इस प्रकार राधा-कृष्ण प्रेम पर पूरी साहित्य यात्रा दो ध्रुवों के बीच की यात्रा है। प्रथम ध्रुव चेतना और द्वितीय ध्रुव मांसलता है। दोनों का समन्वित रूप काम्य है पर एक को अधिष्ठापित करना मर्यादा विहीन और अराजक है। साहित्य सिर्फ मनोविनोद की दृष्टि से ही आवश्यक नहीं है वरन् यह जीवन दृष्टि भी है, अतएव साहित्यकारों को कोई भी व्याख्या समग्र दृष्टि से करनी चाहिए न कि एकांकी होकर।

इससे प्रभावित होकर जयशंकर प्रसाद ने भी अपनी रचना "कामायनी" में प्रेम को इस रूप में व्यक्त किया है-

मनु, उसने तो मन कर दिया दान,
तुम देखते रहे जड़ देह मात्र,
सौंदर्य जलधि से भर लाये,
तुम केवल अपना गरल पात्र।।

भगवान श्री कृष्ण के अनुसार प्रेम क्षेत्र का यह विचित्र नियम है कि प्रेमी मे जितनी अधिक दीनता होगी वह उतना ही उच्च कोटि का प्रेम होगा। अतः प्रेम के साधक में दीनता का होना अत्यधिक आवश्यक है और यह केवल आत्म समर्पण के द्वारा ही सम्भव है, इसे इस रूप में भी समझा जा सकता है-

उलटी चाल है प्रेम की, को समुझे बिन लाल,
ज्यों-ज्यों हारे आपनों, त्यों-त्यों बढ़े विशाल।।

अतः लौकिक एवं अलौकिक परिपेक्ष्य में राधा-कृष्ण प्रेम अपूर्णता से पूर्णता प्राप्त करने की एक यात्रा है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डा. नगेन्द्र-नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
2. वृजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति-डा. रूपनारायण-नवयुग प्रकाशन नई दिल्ली
3. ब्रज साहित्य और संस्कृति-डा. आनंद स्वरूप पाठक-शिक्षा ग्रंथागार डीग दरवाजा मथुरा।
4. कामायनी-डा. जय शंकर प्रसाद।
5. भक्तिकालीन राम तथा कृष्ण काव्य की नारी भावना-(एक तुलनात्मक अध्ययन) डा. श्याम वाला गोयल-विभू प्रकाशन-साहिबाबाद-201005
6. प्रेम रसायन एवं संगीत-मीमांसा-डा. उर्मिला शर्मा-(राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली)

ब्रज में श्रीराधाकृष्ण की सांगीतिक रासलीला

आरती वाही

शोध छात्रा
संगीतशास्त्र विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ब्रज शब्द और स्वरूप

ब्रज शब्द संस्कृत धातु 'ब्रज' से निर्मित हैं। महर्षि पाणिनी के अनुसार इसका अर्थ 'गतिशीलता' हैं। ऋग्वेद में यह शब्द गोशाला अथवा गायों के प्रकोष्ठ के लिये प्रयुक्त हुआ हैं। यजुर्वेद में गायों के चरने के स्थान को 'ब्रज' और गोशाला को 'गोष्ठा' कहा गया हैं। पुराण साहित्य में 'ब्रज' शब्द की मूल चेतना तो पूर्ववर्ती आधार पर ही आश्रित रही हैं किन्तु उसके अर्थ में विस्तार हुआ है। अर्थ-विस्तार ने इसके स्वरूप को परिवर्तित किया है। हरिवंश पुराण में यह शब्द गोप-ग्वालों की बस्ती के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

यथा-

तद् ब्रजस्थानमधिकम् शु शुभे काननावृत्तम।" (विष्णुपर्व, 9-30)

श्रीकृष्ण-राधा

पुराणों के अनुसार भगवान विष्णु ने यह (श्रीकृष्ण) अवतार आठवें मनु वैवस्वत के मन्वतर के अठाईसवें द्वापर में श्रीकृष्ण के रूप में देवकी जी के गर्भ से मथुरा के कारागार में जन्म लिया। उनका जन्म भाद्रपद की रात्रि के सात मुहूर्त निकल गये और आठवाँ हुआ तभी आधीरात के समय सबसे शुभ लग्न उपस्थित हुआ। उस लग्न पर केवल शुभ ग्रहों की दृष्टि थी। रोहिणी नक्षण तथा अष्टमी तिथि के संयोग से जयंती नामक योग में लगभग 3112 ईसा पूर्व (अर्थात् आज से 5121 वर्ष पूर्व) को हुआ।

राधाजी श्रीकृष्ण की विख्यात, प्राणसखी, उपासिका और वृषभानु नामक गोप की पुत्री थी। श्रीराधाकृष्ण शाश्वत प्रेम के प्रतीक हैं। राधिका जी को श्रीकृष्ण की प्रेमिका और कहीं-कहीं पत्नी के रूप में माना जाता है। श्रीकृष्ण की प्राण शक्ति ही राधा जी है। ब्रह्म वैवर्तपुराण के अनुसार राधाजी श्रीकृष्ण की सखी थी। उनका विवाह रायाण अथवा रापाण नामक व्यक्ति के साथ हुआ था। अन्यत्र राधा और कृष्ण के विवाह का भी उल्लेख मिलता हैं।

माना जाता है कि राधा और कृष्ण का विवाह कराने में ब्रह्मा जी का बड़ा योगदान था। भगवान ब्रह्मा जी ने अपने हाथों से शादी के लिए वेदी को सजाया। गर्ग संहिता के अनुसार विवाह के पूर्व उन्होंने श्रीकृष्ण और राधिका जी से सात मंत्र पढ़वाये।

भांडीरवन में वेदीनुमा वही पेड़ हैं जिसके नीचे, जहाँ पर बैठकर श्री राधाकृष्ण ने विवाह किया था। श्रीराधाकृष्ण की विवाह कराने के पश्चात् ब्रह्मा जी अपने लोक को लौट गये, लेकिन इस वन में श्रीराधाकृष्ण अपने प्रेम में डूब गये।

रासलीला

रास शब्द की निष्पत्ति 'रस' अथवा रास धातु के साथ 'धञ' प्रत्यय के संयोग से सम्पन्न हुई है। ब्रज

क्षेत्र में रास-संगीत का अपना विशिष्ट महत्त्व रहा है। रास शब्द का सुनते ही वस्तुतः सर्वप्रथम वृन्दावन की किसी रासलीला मण्डली के श्री राधाकृष्ण स्वरूपों, द्वारा प्रस्तुत एक मनोमुग्धकारी कत्थक नृत्य का दृश्य हमारे समक्ष उपस्थित होता है। जिससे हमारे पूर्ववर्ती भक्त कवियों, आचार्यों की वाणियों का शास्त्रीय गायन परम्परागत शैली में उसे मण्डली के समाजियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। 'रसिया' शब्द की उत्पत्ति रस से हैं। इस शब्द के निरुक्ति मूलक अर्थ को स्पष्ट करें तो कह सकते हैं कि रसिया अर्थात् जिसमें रस है; जो रस से भरा है। वह व्यक्ति विशेष भी हो सकता है।

'रसिया' श्री कृष्ण की रसमयी लीला-भूमि ब्रज की एक समृद्ध लोक गायन की परम्परा है। यह लोक-कण्ठ के सहज रूप से पल्लिवित हुई हैं। ब्रज में आज इसकी गेय-परम्परा इतनी समृद्ध हैं कि इसे 'ब्रज लोक-संगीत के सम्राट' की उपाधि भी दी जाने लगी हैं।

उत्तर प्रदेश के लोकनाट्यों में रासलीला का प्रमुखस्थान हैं। रासलीला वृन्दावन से अविभाज्य रूप से सम्बद्ध है। भगवत पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण ने, यमुना के तट पर वृन्दावन में, गोपियों के साथ 'रास' नृत्य किया था। जब गोपियों को श्रीकृष्ण के साथ नृत्य करने पर अभिमान हुआ तो वे अर्न्तध्यान हो गये। उनकी विरह में पीड़ित गोपियों ने श्रीकृष्ण से सम्बन्धित लीलाओं का अनुकरण किया। यह लीला-अनुकरण ही कालान्तर में 'रासलीला' कहलाया। आज भी रासलीला में पहले श्रीकृष्ण और गोपियों का मण्डलाकार नृत्य होता है। जिसे 'नित्यरास' कहते हैं।

उसके पश्चात् श्रीकृष्ण-कथा से सम्बन्धित किसी प्रसंग का अभिनय जैसे माखन चोरी लीला, कालिय दमन लीला आदि प्रस्तुत की जाती हैं।

पातंजलि, हरिवंश पुराण और विष्णु-पुराण के सन्दर्भों से सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण-कथा सम्बन्धी नाटिकायें प्राचीन काल से ब्रज-क्षेत्र में प्रचलित थी।

रास के पात्रों को रास मण्डली की भाषा में स्वरूप कहा जाता है। वस्तुतः इसका कारण ये हैं कि पात्र या कलाकार किसी व्यावसायिक नाटक के हुआ करते हैं। यहाँ रास एक पूर्ण अध्यात्मिक भावात्मक लोक नाट्य रूप हैं जिसमें अभिनय करने वाले प्रतिभागी कलाकारों को किसी न किसी पौराणिक पात्रों का स्वरूप धारण करना होता है। इसी बात को ध्यान में रखकर इन्हें 'स्वरूप' संज्ञा से सम्बोधित किया जाता रहा है। इन स्वरूपों को हम निम्नलिखित प्रकार से समझ सकते हैं।

श्रीकृष्ण का स्वरूप धारण करने वाले बालक की आयु 7 वर्ष से 12 तक हो एवं संभवतया बालक श्यामववर्ण हो। श्रीकृष्ण के स्वरूप बालक को भावनात्मक दृष्टि से पूर्ण सम्मान दिया जाता एवं उन्हें 'श्री ठाकुर जी' कहा जाता है। आधुनिक नाट्य मीमांसा के आधार पर देखा जाये तो श्रीकृष्ण-स्वरूप ही रासलीला के नायक हैं। मंच पर अपने श्रृंगार के सहित सिंहासनारूढ़ होने पर मण्डली का स्वामी उनकी पूजा करके, भोग आदि लगाकर, चरण स्पर्श करते हैं। तत्पश्चात् रास का प्रारम्भ होता हैं।

राधा जी-राधा जी का अभिनय करने वाले बालक की आयु श्रीकृष्ण से कुछ कम होती हैं विशेष रूप से कद में। उन्हें 'श्री जी' कहा जाता है। श्रीकृष्ण के स्वरूप के साथ-साथ दूसरे क्रम में सम्मान की दृष्टि से श्रीराधिका जी का स्थान है। यह बालक गौर वर्ण एवं सुन्दर होना आवश्यक है।

रासलीला के सूत्रधार-ब्रज रास संगीत का सूत्रधार 'स्वामी' कहलाता है। यह स्वामी जी का मण्डली का प्रधान अथवा मुखिया होता है। रास के समस्त स्वरूप इन्हीं के निर्देशन में कार्य करते हैं।

स्वामी स्वयं भी सिद्ध (कुशल) संगीतज्ञ, गायक, वार्त्ताकार, समाजी, कीर्तिनियाँ तथा नृत्य निर्देशक होता हैं। आवश्यकता होने पर वह उद्धव, शंकर, सुदामा आदि महत्त्वपूर्ण पात्रों के अभिनय का दायित्व भी निभाता है। पुरातन काल में मण्डली का मुखिया यह स्वामी ब्राह्मण ही होते थे। पुरातन काल में स्वामी की रासमण्डल पर बैठने की स्थिति दाईं ओर होती थी। कहीं-कहीं स्वामी खड़े होकर भी रास-संचालन करते हैं।

रास का प्रधान पक्ष संगीत

संगीत रास का प्रधान पक्ष हैं। वस्तुतः रास शब्द को सुनते ही एक विशेष प्रकार के संगीत की अनुभूति होने लगती है। रासलीला में संगीत को विशेष स्थान प्राप्त हैं। सर्वप्रथम 'स्वामी जी' के द्वारा सांगीतिक पदों को इस प्रकार गाते हैं-

"श्री ब्रज राजकुमार वर गाइयै।
श्री लाडली ललनवन गाइयै।।
श्री ब्रज कौ जीवन धन गाइयै।
भक्तन कौ मन भांवतौ गाइयै।।"

इसके पश्चात् श्रीमद्भागवत् वर्णित श्लोक गाया जाता है-

"बर्हापीडं नटवर वपुः कर्णयोकर्णि कारं,
विभ्रद्रासं कनक कषिश वैजयन्तींचमालाम्
रन्ध्रान वेणोरधर सुधया पूरयन गोपवृन्दै
वृन्दारण्यं स्वपद प्राविसद् गीतकीर्तिः।।"

इसके पश्चात् गुरु वन्दना, ब्रज गोपियों की वन्दना तथा रास स्थली वृन्दावन धाम की वन्दना की जाती हैं। ब्रज के वाणीकारों द्वारा विरचित दोहे आदि गाये जाते रहे हैं तथा इसके उपरान्त मण्डली का स्वामी वाद्य वृन्द के साथ सामूहिक रूप से ध्रुपद का गायन करते हैं।

"वनी री तेरे चारि चारि चूरी करनि।
कंठ सिरी दुलरी हीरनि की, नासा मुक्ता ठरनि।
तैसेई नैननि कजरा कवि रह्यौ, निरखि काम डरनि।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी, रीझि पिया पग परनि।।"

ध्रुपद का यह पद समाप्त होते-होते सखियों के द्वारा युगल श्रीराधा-कृष्ण की आरती की जाती हैं। आरती के विभिन्न पद हैं जो कि भिन्न-भिन्न रास मण्डलियों में गाये जाते हैं। प्रायः रासमण्डलियों में जयदेव कृत **'गीतगोविन्द'** की ये आरती अधिकांशतः गायी जाती रही है।

'श्रित कमला कुच मण्डल द्वित कुण्डल है,
कलित ललित वनमान, जय-जय देव हरे।'

इस प्रकार आरती सम्पन्न होने के पश्चात् संगीत के इस क्रम में सखियों द्वारा श्रीकृष्ण एवं राधिका जी से रासमण्डल में रासलीला हेतु पधारने की प्रार्थना की जाती, यह क्रम आज भी जारी है एवं सगत्-वाद्यों में सारंगी, बाँसुरी, पखावज, मंजीरा, हारमोनियम आदि प्रयोग होते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. सिंह, डॉ. वन्दना, ब्रज की संगीत परम्परा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996।
2. श्रीवास्तव, डॉ. आरती, ब्रज रास में संगीत (उत्पत्ति, विकास और स्वरूप), राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003।
3. श्रीवास्तव, डॉ. आरती, ब्रज-गरिमा (वार्त्ताएं, लेख कहानी एवं एकांकी), नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014
4. सक्सेना, डॉ. राकेश बाला, ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा, प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र. संस्करण 1996
5. गर्ग, डॉ. लक्ष्मी नारायण, ब्रज-संस्कृति और लोक संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण नवम्बर 2009।

भारतीय साहित्य में चित्रित राधा और कृष्ण का प्रेम

डॉली भारती

स्नातकोत्तर संगीत विभाग
ति मा भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सृष्टि में जब कुछ भी न था, तब वहाँ प्रेम था। सृष्टि में जब कुछ नहीं रहेगा, प्रेम तब भी वहाँ रहेगा। इस कुछ और कुछ नहीं के बीच जो फासला है, वहाँ भी प्रेम ही है। सृष्टि का पोर-पोर प्रेम से ध्वनि-प्रतिध्वनित है। अतीत, वर्त्तमान और भविष्य की सरहदों के आर-पार इस सृष्टि में गूँज रही है प्रेम की अविरल, कहानियाँ-

प्यार की अनंत गाथाएँ, और इन्हीं गाथाओं में राधा-कृष्णा की प्रेमकथा आलौकिक प्रेम गाथा के रूप में भारतीय साहित्य में अमर है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ प्रेम की पूजा होती है। और इसी प्रेम के प्रतीक माने जाते हैं राधा-कृष्ण।

अगर हम इनकी व्याख्या करें तो कृष्ण संपूर्णता का नाम है। कृष्ण मनुष्य हैं। देवता हैं। स्पष्ट हैं। योगी राज है। गृहस्थ है। संत है। चिंतक है। संन्यासी हैं। लिप्त हैं। निर्लिप्त है। शिषु हैं तो संकट में है। किशोर हैं तो युद्ध कर सकते हैं। युवा हैं तो महाभारत की दिशा तय कर रहे हैं। देव होने के बावजूद चमत्कार नहीं करते। सच तो यह है कि कृष्ण केवल कर्म करते हैं। कर्म पर ही विश्वास करते हैं और इसी की सीख देते हैं। कृष्ण का सामान्य शाब्दिक अर्थ है- काला रंग अथवा श्यामल वर्ण। कृष्ण अपने अपरिमेय अर्थ में एक प्रतीति है, एक आनंदानुभूति है। कृष्ण अपने परिमेय अर्थ में एक अव्ययमान है, एक 'रस विशेष' है, एक आस्वाद छन्द हैं, एक अनुगुंज की यात्रा है जो वेणु से पांचजन्य शंख के मध्य संपन्न होती है। कृष्ण महाकाल के अधरों पर थिरकता हुआ महाराग का शाश्वत महारास है। वह तांडव और लास्य का कास्य शिव समन्वय हैं। राधा और कृष्ण यह दो शब्द मन हैं, प्राण हैं, जिनकी अनुपस्थिति में, जिनके अभाव में भारत की संस्कृति, प्रेंम की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती है।

कृष्ण प्राकृत का एक अनाम कवि है, जिसने माता यशोदा की एक अनूठी छवि को उकेरा है। माता यशोदा और गौर वर्ण है, तनिक स्थूल। शिशु कृष्ण पयपान कर रहें हैं वे अपनी नन्हीं-नन्हीं अरूण-श्याम हथेलियों में उनका प्रथुल पयोधर सम्हाल कर मुँह से लगाये हैं कवि कहता है ''री बड़भागिन यशोदा, किसे मालूम था कि तेरा यह प्योधर कृष्ण की इतनी बड़ी विवशता बन जाएगा कि यहाँ से लेकर महाभारत के युद्ध तक पांचजन्य बनकर उसके मुहँ से लगा रहेगा। बचपन से ही कृष्ण की लुका-छिपी सखी राधा शक्ति और आत्मा कहा गया है। कृष्ण के लिए राधा और राधा के लिए कृष्ण दिव्य मित्र हैं। ''श्रीमद्‌भागवत'' में वेदव्यास ने राधा को अनाम रखकर कृष्ण के साथ जो रमणधारा दी है, वह कुरूक्षेत्र की रणभूमि से दूर नैसर्गिक और कमनीय हैं वहाँ अर्जुन को कही गई गीता मौन हैं। यहाँ एकांतिक मदहोशियां और खामोशियाँ हैं, मंजीर और किंकणी की सरगोशियाँ है। यहाँ देह की तमाम परतें एक हो रूह से मिलती है। यहाँ विपरीत ध्रुवों ने अपनी मांसलताओं को आत्मा दी है। यह दो सागर कुंभ। इस अनुभव तक कोई आए तो जाने। इस रहस्य में नहाए तो जाने। देहात्मा का यह अद्धैत इतना विराट

है कि तन, मन, एकांत, संसार, आत्मा परमात्मा सब एक हैं। यह वह आतिश है, जिसे लगाने और बुझाने का फ्रिक नहीं।

राधा के बिना कृष्ण हैं ही नहीं। सदियों के बाद चैतन्य महाप्रभु आते हैं तो उनकी मस्ती बताती है कि वे राधा-कृष्ण के अवतार हैं। कृष्ण को शरण देने वाला ये हृदय उसी आराधिका का है, जो पहले राधिका बनी और फिर राधिका से कृष्ण की आराध्या हो गई। कुष्ण अराधना करते हैं, इसलिए ये राधा हैं या ये कृष्ण की अराधना करती हैं, इसलिए राधिका कहलाती हैं। सच, बहुत, कठिन हैं इसको परिभाषित करना, क्योंकि इसकी परिभाषा स्वयं कृष्ण हैं। खुद को असाधारण होने की सीमा तक साधारण बनाए रखने वाली ये किशोरी कृष्ण को अनायास ही मिली थी, भागवत में। भागवत रस का गीत है। उस गीत का रस भी और कोई नहीं, यहीं आराधिका है। कृष्ण राधा से पूछते हैं, ''राधे। भागवत में क्या भूमिका होगी तुम्हारी।'' राधा कहती है, मुझे कोई भूमिका नहीं चाहिए कान्हा, मैं तो बस तेरी छाया बनकर रहूँगी, तेरे पीछे-पीछे।

'छाया' हाँ, कुष्ण के प्रत्येक सृजन की पृष्ठभूमि में यही छाया ही तो है। कृष्ण की बांसुरी का राग भी यही छाया है। गोवर्द्धन को धारण करने वाली तर्जनी का बल भी यही छाया है लोकहित के लिए मथुरा से द्वारिका तक की विषम यात्रा करने वाले कृष्ण की आत्मशक्ति।

संपूर्ण ब्रज रंगा है कृष्ण रंग में, कदंब से लेकर कालिंदी तक सब ओर कृष्ण ही कृष्ण लेकिन इस कृष्ण की आत्मा बसती है राधा में। वृदांवन की कुंज गलियाँ हो या मथुरा के घाट हर ओंर, हर तरफ बस एक नाम एक रट, राधा...राधा...राधा...बांके का बांकपन भी राधा है और योगेश्वर का ध्यान भी राधा है।

कृष्ण के विराट को समेटने के लिए जिस राधा ने अपने हृदय को इतना विस्तार दिया कि सारा ब्रज ही उसका हृदय बन गया। उसी राधा के बारे में भागवत में गोपियां पूछती हैं कि ये आराधिका आखिर हैं कौना? पहले तो कभी दिखी नहीं कौन हैं वे मानिनी, जिसकी वेणु गूंथता है उसका श्याम, जिसके पैर दबाता है सलोना घनश्याम और हाँ. जब वो रूठ जाती है तो मोर बनकर नृत्य भी करता है। गोपियाँ ही नहीं कृष्ण भी पूछते हैं, बूझत श्याम, कौन तू गोरी...लेकिन राधा को बूझना इताना सरल नहीं और राधा को बूझ पाने से भी कठिन है...राधा के प्रेम की थाह बूझ पाना। इसी अथाह प्रेम की थाह पाने के लिए एक बार लीलाधर ने लीला रची। स्मृतियाँ कृष्ण को खींच ले गई उत्सब के क्षणों में।

हर ओर खुशी का सैलाब। हास-परिहास के बीच अचानक पीड़ा से छटपटाने लगे कृष्ण ढोल, ढप, मंजीरे खामोश होकर मधुसूदन के मनोहारी मुख पर आती-जाती पीड़ा की रेखाओं को पढने लगे। चंदन का लेप...शुलांतक वटी, कोमलांगी स्पर्ष...सब व्यर्थ। वैद्य लज्जित से एक-दूसरे को निहार रहे थे। सत्यभामा ने डबडबाती आंखों से पूछा तो उत्तर मिला, 'मेरे किसी परम प्रिय की चरण धूलि के लेप से ही मेरी पीड़ा ठीक हो सकती है। कृष्ण की पीड़ा बढ़ती ही जा रही है। सोलह हजार रानियां पटरानियाँ, करोड़ों भवत, सरवा, सहोदर...सब प्राण होम करके भी अपने प्रिय की पीड़ी हरने को तैयार हैं, लेकिन प्रभु के मस्तक पर अपनी चरण बूलि लगाकर नर्क का भागी कोई नहीं बनना चाहता। सब ने अपने पांव पीछे खींच लिए। राधा ने सुना तो नंगी पांव भागती चली आई...आंसुओं में चरण धुलि का लेप बनाकर लगा दिया कृष्ण के भाल पर। सब हतप्रभ थे। ये कैसी आराधिका है इसे नर्क का भी भय नहीं। कृष्ण मुस्कुरा दिए, जिसने मुझमें ही तीनों लोक पा लिए हों, वो अन्यत्र किसी स्वर्ग की कामना करे भी तो क्यों...सारे संसार को मुक्त करने वाला इसीलिए तो बंधा है इस आराधिका से। कृष्ण सबको मुक्त करते हैं, लेकिन राधा कभी मुक्त नहीं करती कृष्ण को। कृष्ण खुद भी कहाँ मुक्त होना चाहते है, ब्रज की इस गोरी के मोहपाश से कभी कभी रूक्मिणी छेड़ती हैं, क्या सचमुच बहुत सुन्दर थी राधा...?

कृष्ण कहते हैं...हाँ बहुत सुन्दर कि उसने सामने मौन हो जाती हैं, सौन्दर्य की समस्त परिभाषाएँ। गौर अंग, मुख पर मंद हास, सूर्य की प्रथम किरण

की अरूणिम आभा को लजाता अधर राज और धनी पुतलियां से ठंके चपल नेंत्र वाली किशोरी ही तो है मेरी राधारानी एक टीस के साथ मन की मंजुशा से निकल एक स्मृति उमरती है ह्रदय में, गहरी सांस छोड़ कृष्ण फिर आंख मूंद लेते है। नीला लहंगा, नीली कंचुकी और नीली ही ओढ़नी...द्रौपदी, सत्यभामा, सत्या, लक्षम्णा और मित्रवंढा सब आतुरसी देख रही हैं, उस राधा को जिसके बगैर आधे हैं कृष्ण ... सूर्योपराग के समय कुरूक्षेत्र में सब उपस्थित हुए हैं। राधा भी आई हैं, नंद-यशोदा, गोप-ग्वाला, गोपियों के साथ। रूक्मिणी आश्चर्य में है इस राधा के आते ही सारा परिवेश कैसे एकाएक नीला हो गया है। और कृष्ण का नील वरण राधा के वसंत से मिलकर कैसे सावन-सावन हो उठा है। यों रुक्मिणी खुद स्वागत कर रहीं हैं राधा का लेकिन कैसे बावले हुए जाते हैं कृष्ण-एक जलन-सी उठती है मन में और यही जलन रुक्मिणी सौंप देती हैं राधा को गर्म दूध में। कृष्ण का स्मरण कर एक सांस में पी जाती है राधा- सारा द्वेष, सारी जलन,सारी पीड़ा लेकिन कृष्ण नहीं झेल पाते। कृष्ण के पैर दबाते समय रुक्मिणी ने देखा कि श्री कृष्ण के पैरों में छाले हैं। मानो गर्म खोलते तेल स`जल गए हों।

ये क्या हुआ द्वारिका नाथ-ये फोफले कैसे?

कृष्ण बोले, प्रिय, राधा के हृदय में वसता हूँ मैं। तुम्हारे मन की जिस जलन को राधा ने चुपचाप पी लिया वही मेरे तन से फूट पड़ी है।'

राधा के विना कृष्ण हैं ही नहीं सदियों बाद चैतन्य महाप्रभु आतें हैं तो उनकी मस्ती वताती है कि वे राधा-कृष्ण के अवतार हैं। मीरा आती है और राधा से रुह पाकर कृष्ण को अपने साथ नचाती, सजाती, सुलाती और जगाती है। इस प्रेम-पड़ाव पर दुनियावी 'चरित्र' भौचक्का है। धरती और स्त्री को जायदाद बनाने वालों के आसन मिल जाते हैं। 'श्रीमद्भागवत' की ओर से चलकर राधा-कृष्ण मुखर हो सैकड़ों शास्त्रों के किरदार हो जाते हैं। काव्य उनके असीम को गाने को तड़प उठता है। स्त्री-पुरुष उसे घेर कर नाचाने लगते हैं, गौएं वंशी सुन रंभाने लगती हैं, पंक्षी नए सुर पाते हैं, ग्वाले मातवाले हो जाते हैं, मोर चितचोर हो उठते हैं। नदियों को अपना नया पता मिलता है। डुवकियां खुद को कदंब पर टंगा देख कसमसाती है। वस्त्र पाते हैं कि वे हो तो राधा कृष्ण कि टोली के साथ हो और न हो तो भी इसी छैल-छबीली टोली के साथ देवकी और यशोदा ध्न्य होती हैं। फूलों को अचानक ख्याल आता है- अरे। हम जिनके लिए आँखें बिछाए खिल-खिल नहीं थकते थे, वे नटखट आ गए। चलो मधुवन हो जाओ। तितलियों, मंवरों, पंछियों में जुनूनी उड़ाने जगाओ। जुगनुओं से कहो, आकाशगांगा हो जाओ। जहाँ तक बन सको वहाँ तक बन जाओ- तन-मन और जीवन को स्मपूर्णतः से सजाओ। मौत आती हो तो चूम-चूम कर गले लगाओ-हर नवद्वार से गुजर जाओ। फिर जागने में गहरा विश्राम है, फिर गहरी निद्रा में गहरा जागरण है। जब रोग कट जाता हैं तो हर भोग एक जोग और हर जोग एक भोग हो जाता है। खुद का पाना भगवान को भोग लगाना हैं।

कृष्ण भरते ही खाली हो जाते हैं और खाली होते ही भर जाते हैं। वे कब क्या करेगें, कोई भरोसा नहीं। वे छलिया हैं, वे मयावी हैं, वे लीलामय हैं। राधा-कृष्ण का इतिहास रुखा-सुखा नहीं है, समूचा महारास रचा जाता है। उनसे सनातन सत्य टवकते है। कृष्ण जिस प्रेम की वंशी बजाते हैं, वहां किसी को भी, प्रेम की नीव हो तो विवाह जैसी पारंपरिक चीज भी नितनूतन और अदभुत हो उठती है। कृष्ण प्रेम नहीं करते, कृष्ण प्रेम नही माँगते। कृष्ण प्रेम होते हैं। वहाँ सुदामा जैसे निर्धन सखा शिष्य हुए विना तर जाता है। अर्जून जैसा सखा सामाजिक संबंधों से ऊपर उठकर जो मरे ही हुए हैं, उनके बोझ से धरती को मुक्त करने के लिए तत्पर हो जाता है। पत्नी रुक्मिणी और मित्र द्रोपदी राधा-कृष्ण के बीच दीवार नहीं वनाती। दूसरे के स्वभाव को उसका समूचा आकाश और अवकाश मिलता है- प्रेम में भी युद्ध में भी। भागवत और महाभारत की गीता कृष्ण की अनंनता के दो गीत हैं- एक में स्त्री के साथ कृष्ण समूचे हैं, दूसरे में मित्र के साथ समूचे।

राधा को बड़भागिन कहता है ये संसार लेकिन बड़भागी तो कृष्ण हैं जिन्हे राधा जैसी गुरु मिली,

सखी मिली, आराधिका मिली। जिसने उन्हें प्रेम, सर्मपण और त्याग की वर्णाक्षरी सिखाई। तभी तो दानगढ़ में दान माँगते हैं कृष्ण। दान गढ़- जो वसा है सांकरी खोर और विलास गढ़ से विपरीत दिशा में। यहाँ राधा के चरणों में झुककर याचक हो जाते हैं कृष्ण- हे राधे। बड़ा दानी है तू सुना है तेरे बरसांने में जो भी आता है, वो खाली हाथ नहीं जाता । मुझे भी दान दो। प्रथम दान अपनी रूप माधुरी का दुसरा दान तेरे अंनत रस और विलास का...। दानगढ़ में कृष्ण को दिया गया, ये महादान ही पाथेय बन जाता है कृष्ण का, गैया चराने वाले गोपाल से द्वारिकाधीश बनने तक की लंबी यात्रा में कुरुक्षेत्र से लेकर प्रभास तक राधा का यही प्रेम रहा कृष्ण के भीतर। गीता का आधार भी यही प्रेम है और महारास का रास भी। वेणु हो या पांच-जन्य, दोनों में एक ही स्वर फूटता है। एक ही पुकार उठती है, राधे, तेरे नैन बांधो री बान...। कृष्ण से जुड़ी हर स्त्री राधा होना चाहती हैं स्वंय कृष्ण भी राधा हो जाना चाहते हैं, लेकिन कृष्ण जानते हें कि राधा का पर्याय केवल राधा ही हो सकती है, इसलीए तो कृष्ण बार-बार आना चाहते हैं राधा के शरण में।

राधा-कृष्ण की कथा किसी द्वापर की कथा नहीं हैं, किसी अवतार की लीला नहीं है। वह गंगा-यमुना के मैदानों में बसने वाली एक महाजाति का भवनात्मक इतिहास है, उसके मन-मस्तिष्क की गाथा है। वह प्रभु की लीला हो या न हो, जीवन-लीला का एक महासागर अवश्य है। जिसमें से हम अपने लिए कितना जल पी सकते हैं, कितनी रौशनी ले सकते है, यह हम पर निर्भर करता है। इसलिए हम इस महासागर के तट पर खड़े हैं इसके असीम विस्तार के एक कोने पर जहां से इसका छोटा सा अंश भर दिखाता है, पर यह आंश भी बहुत व्यापक है, गहरा है, अर्थपूर्ण है...।

सखी मिली, आराधिका मिली। जिसने उन्हें प्रेम, सर्मपण और त्याग की वर्णाक्षरी सिखाई। तभी तो दानगढ़ में दान माँगते हैं कृष्ण। दान गढ़- जो वसा है सांकरी खोर और विलास गढ़ से विपरीत दिशा में। यहाँ राधा के चरणों में झुककर याचक हो जाते हैं कृष्ण- हे राधे। बड़ा दानी है तू सुना है तेरे बरसांने में जो भी आता है, वो खाली हाथ नहीं जाता । मुझे भी दान दो। प्रथम दान अपनी रूप माधुरी का दुसरा दान तेरे अंनत रस और विलास का...। दानगढ़ में कृष्ण को दिया गया, ये महादान ही पाथेय वन जाता है कृष्ण का, गैया चराने वाले गोपाल से द्वारिकाधीश बनने तक की लंबी यात्रा में कुरुक्षेत्र से लेकर प्रभास तक राधा का यही प्रेम रहा कृष्ण के भीतर। गीता का आधार भी यही प्रेम है और महारास का रास भी। वेणु हो या पांच-जन्य, दोनों में एक ही स्वर फूटता है। एक ही पुकार उठती है, राधे, तेरे नैन बांधो री बान...। कृष्ण से जुड़ी हर स्त्री राधा होना चाहती हैं स्वंय कृष्ण भी राधा हो जाना चाहते हैं, लेकिन कृष्ण जानते हें कि राधा का पर्याय केवल राधा ही हो सकती है, इसलीए तो कृष्ण बार-बार आना चाहते हैं राधा के शरण में।

राधा-कृष्ण की कथा किसी द्वापर की कथा नहीं हैं, किसी अवतार की लीला नहीं है। वह गंगा-यमुना के मैदानों में बसने वाली एक महाजाति का भवनात्मक इतिहास है, उसके मन-मस्तिष्क की गाथा है। वह प्रभु की लीला हो या न हो, जीवन-लीला का एक महासागर अवश्य है। जिसमें से हम अपने लिए कितना जल पी सकते हैं, कितनी रौशनी ले सकते है, यह हम पर निर्भर करता है। इसलिए हम इस महासागर के तट पर खड़े हैं इसके असीम विस्तार के एक कोने पर जहां से इसका छोटा सा अंश भर दिखाता है, पर यह आंश भी बहुत व्यापक है, गहरा है, अर्थपूर्ण है...।

अध्यात्म एवं संगीत में राधा-कृष्ण की प्रेम अभिव्यक्ति

प्रतिभा कुमारी

विश्वविद्यालय संगीत विभाग,
ति.माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

भारतीय दर्शन मे अध्यात्म शब्द प्रधान हैं इसे आत्मानुभूति, आत्मबोध और आत्म-साक्षात्कार आदि संज्ञा दी जाती है। आत्मा और परमात्मा का मिलन ही अध्यात्म है। भक्ति मार्ग के द्वारा ही सूर, तुलसी, मीरा, चैतन्य महाप्रभु, बल्लभाचार्य आदि संतों ने आत्म साक्षात्कार किया।

अध्यात्म के मार्ग में सभी संतों ने अपने इष्ट ईश्वर से साक्षात्कार किया। चाहे वह शिव हों, राम हो, कृष्ण हों, राधा हो, दूर्गा हो, काली हो, हनुमान हों आदि-आदि।

हमारी सृष्टि में शिव और शक्ति का संयोग है। श्री राधा पूर्ण शक्ति हैं एवं श्री कृष्ण पूर्ण शक्तिमान। वैष्णव संप्रदाय में उज्जवल प्रेम रस के प्रतीक के रूप में शक्ति (राधा) आर शक्तिमान (कृष्ण) को प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया है।

श्री बसंत यामदग्नि जी ने अपनी पुस्तक रासलीला तथा रासानुकरण विकास के पृष्ठ 55 पर लिखा है-

"वेदान्त के शक्ति-शक्तिमान् में उपास्य तत्त्व शक्ति है, जबकि वैष्णवी साधना का उपास्य-तत्त्व प्रेम है। पुरूष-प्रकृति शिव शक्ति, शक्तिमान और विष्णु-लक्ष्मी के समान श्री राधा कृष्ण भी अद्वय युगलभाव को प्राप्त हुए हैं, परन्तु इनमें विशेषता यह रही है कि जहाँ सनातन युगल तत्त्व सृष्टि के मूल परमतत्व के रूप में उपास्य था, वहाँ श्री राधाकृष्ण वह सब कुछ होते हुए भी प्रेमास्पद थे। यह प्रेम ही अपने महाभाव रूप में श्री राधा-रूप मूर्तिमान-स्वरूप है। श्रीकृष्ण में यह प्रेम गाढ़ होता हुआ, उत्कर्ष की ओर बढ़ता हुआ क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग और अनुराग के रूप में परिणत होता हैं इस अनुराग की चरम परिणति को गोस्वामीपाद ने 'भाव' संज्ञा दी है। भाव का उर्ध्वतर स्तर महाभाव है और इस महाभाव का उच्चतम धनीभूत मूर्ति श्रीराधा है। श्रीकृष्ण की संपूर्ण लीलाओं की आश्रय श्री राधा ही हैं, जो उपर्युक्त विभिन्न भावों की अवस्था विशेष में रसौ वै रसः- के निज स्वरूप को आस्वादनीय बनाती हैं। श्री कृष्ण की कलित-ललित वंशी-ध्वनि चतुर्दश भुवनों को आकर्षित करती है पर श्रीकृष्ण के कान श्री राधा के वाक्य-सुधा-पान से ही तृप्त होते हैं। भगवद्भक्ति के लिए बहुत से साधन हैं, लेकिन सर्वोपरि है कीर्त्तन। कीर्त्तन करते समय भक्त अपने ईष्ट में तल्लीन हो जाते है।

राधा कृष्ण प्रेम की अभिव्यक्ति में कीर्त्तन का अत्यधिक महत्व है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवदी ने राधा-कृष्ण से संबंधित प्रेम के लिए लिखते हैं–"भक्ति, प्रेम और माधुर्य के नाना संविद से विचित्र यह युगल-मूर्ति ईश्वर का रूप तो थी, पर उस ईश्वर में वैदिक देवताओं का संभ्रम नहीं था, ग्रीक अपोलो की भीति नहीं थी, इस्लामी खुदा की तटस्थता नहीं थी, दार्शनिक ईश्वर की अद्भुतता तो एकदम नहीं थी। एक सहज, सरल, घरेलू संबंध। तंत्रवाद के ससीम रस से सीमाहीन की उपलब्धि के सिद्धांत ने तात्कालिक जन-समुदाय को सखा-रूप से, प्रिय-रूप से, स्वामी-रूप से कृष्ण की उपासना के प्रति अग्रसर कर दिया था।

अध्यात्म—अध्यात्म का शब्दिक अर्थ होता है आध-आत्मा अर्थात परमात्मा। मानव जीवन का परम लक्ष्य परमात्मा का साक्षात्कार माना गया है।

अध्यात्म एवं संगीत की प्राप्ति का सर्वोतम माध्यम संगीत होने के कारण उसे अध्यात्म के रंग में पूरी तरह रंगने का प्रयत्न किया गया है। सामवेद के अतिरिक्त ब्राह्मण संहिता, गांधर्व संहिता, प्रतिशाख्य, नारदीय शिक्षा, उपनिषद नाट्यशास्त्र आदि इसके प्रमाण है।

''नौ लाख गोपियों के साथ वृन्दावन में रास रचाने वाले मुरली मनोहर भगवान श्री कृष्ण का जो स्वरात्मक बखान होता है मानों उनके साक्षात् अवतार का दर्शन हो जाता है। अगर उनहें संगीत से अलग कर दे तो पात-पुष्पविहिन शुष्क वृक्ष के समान कला का स्वरूप शेष रह जायेगा। मुरली की एक तान पर गोपियों को वेसुध बना देने वाले वंशीधर की परंपरा ही तो आज का आध्यात्मिक संगीत है। संगीत की अधिष्ठात्री माँ वीणा-वादिणी, भगवान शिव, माँ दुर्गा, काली, विष्णु आदि सभी देवो की महिमा को स्वर में गाने पर मानों उनके प्रत्यक्षीकरण का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

वैष्णव धर्म शास्त्र में कृष्ण के साथ राधा को स्वयं देवी के रूप में स्वीकार किया जाता है और कहा जाता है कि वह अपने प्रेम से कृष्ण को नियंत्रित करती है। ऐसा माना जाता है कि कृष्ण संसार को मोहित करते हैं लेकिन राधा उन्हें मोहित कर देती हैं इसलिए राधा सभी सर्वोच्च देवी हैं।

अध्यात्म और संगीत एक-दूसरे में पूर्णतः गूँथा हुआ है क्योंकि संगीत द्वारा आध्यात्मिक ईश्वर प्राप्ति सुलभ है, सक्षम है। शायद इसीलिए कृष्ण ने रास लीला का अद्भुत संदेश दिया हैं रास लीला में भी पूर्णतः प्रेम की अभिव्यक्ति होती है, ईश्वर प्राप्ति की अभिव्यक्ति होती है। किस प्रकार राधा और गोपियाँ श्रीकृष्ण, प्रेम के लिए व्याकुल हैं, आतुर हैं, यही रास के नाम से जाना जाता है, और जब इसे नाट्य रूप दिया जाता है तो इसे रासलीला कहते है। यही नाट्य रूप ईश्वरीय प्रेम है। इस ईश्वरीय प्रेम में राधा-कृष्ण का वर्णन अद्वितीय प्रेम, अतुलनीय प्रेम का परिचायक है।

इस प्रेम में मीरा का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने कृष्ण भक्ति में अनेक पदों की रचना की जैसे—

म्हारे घर आवों प्रीतम प्यारा।
तन मन धन भेंट धरूँगी, भजन करूँगी तुम्हारा।
तुम गुणवंता साहिब मेरा, मोंमें औगुन सारा।।
मैं निर्गुनियाँ कछु नहिं जानूँ, तुम हो मेरा अधारा।
'मीरा' कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम बिना नैण दुरवारा।।

मीरा का, कृष्ण के प्रति यह अध्यात्मिक प्रेम है। ऐसे भजन-कीर्त्तन से मन की शुद्धता होती है और अपने आप को हम ईश्वर से निकट समझने लगते हैं।

कृष्ण कीर्त्तन में राधे का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि कृष्ण और राधा का आध्यत्मिक प्रेम शाश्वत है, कभी न खत्म होने वाला है। कृष्ण-राधा के प्रेम स्वरूप को जयदेव ने गीत गोविन्द में वर्णित किया है। चैतन्य महाप्रभु, विद्यापति, सूरदास आदि कवियों ने अपनी लेखनी से अभिव्यक्ति किया है।

राधा कृष्ण प्रेम से संबंधित पद सूर श्याम ने लिखा है-

खेलन हरि निकसे ब्रजखोरी
गए श्याम रवि तनया के तट।
अंग लसति चन्दन की खौरी।।
औचक ही देखी तहुँ राधा।
नैन विशाल भाल दिये शेरी।।
नील वसन फरिया कटि पहरै,
बैनी पीठि रूलति झकझोरी।।
सूर श्याम देखत ही रीझै,
नैन-सैन मिली परी ठगौरी।।

माना जाता है कि यह दृष्य चित्र श्री राधा कृष्ण के प्रथम मिलन का है, लेकिन साक्ष्य नहीं है।

इस प्रकार राधा-कृष्ण का यह प्रेम संगीत के लिए, अध्यात्म के लिए, ईश्वर प्राप्ति के साधन के लिए, मार्गदर्शक का कार्य करता है।

कृष्ण प्रेम भक्ति में मीरा

वेता सत्यम

विश्वविद्यालय संगीत विभाग,
ति.मॉं. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

भूमिका

मीरा के जन्म के समय भारतवर्ष पर लोदी-वंश के शासकों का आधिपत्य था। बाद में मुगल सम्राट बाबर ने आक्रमण किया और भारत वर्ष पर मुगल-शासन की स्थापना हो गई। मीरा बाई का समय 1555 के आस-पास माना गया है। मीरा का युग राजनीतिक दृष्टि से नहीं बल्कि धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण था।

मीरा बाई अजमेर के मेड़ता के राजा की पुत्री थी। जिनका विवाह मारवाड़ के राजा महाराणा सांगा के जेष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज के साथ संवत 1573 में हुआ।

मीरा बचपन से ही कृष्ण की मूर्ति में डूबी रहती थी और उन्हीं को अपना प्रियतम समझती थीं। मीरा ससुराल जाते समय भी गिरधर की मूर्ति अपने साथ ले गई।

एक जन श्रुति ने यह भी कहा है कि - ससुराल जाने पर मीरा की सास ने देवी-पूजन के लिए कहा तो मीरा ने उत्तर में कहा–

जू विकायों माथों लाल गिरधारी हाथ,
और कोन गहै, एक बहै अभिलाखिये।

मीरा की सास ने पुनः आग्रह किया-

"बढ़त सुहाग थाके पूजे ताते पूजा करों।"

कहते है इस पर भी मीरा देवी पूजन के लिए तैयार नहीं हुई।

मीरा का वैवाहिक जीवन सुखमय बीता किन्तु दुर्भाग्यवश वे जल्दी ही विधवा हो गई। मीरा की बालपन की भक्ति और धर्म के संस्कार अब कृष्ण भक्ति में व्यतित होने लगा। मीरा लोकलाज और कुल की मर्यादा को त्याग कर अपने आराध्य की भक्ति आरम्भ कर दी कभी-कभी वे श्री कृष्ण के प्रेममृत का पान कर इतनी प्रेमोन्मत हो जाती थी की पैरों में धूँधरू बाँध कर ताली दे दे कर श्री कृष्ण की मूर्ति के सामने नाचने लगती, यह सब देवर को पसन्द नहीं था। इसलिए वह मीरा को मारने के लिए पिटारी में सांप भी भेजा, किन्तु जिनके अनुकूल स्वयं प्रभु हो गए, उस मीरा के लिए कुछ भी प्रतिकूल नहीं हो सका। मीरा ने जब उस पिटारी को खोल कर देखा तो साँप के स्थान पर शालिग्राम की मूर्ति दिखाई पड़ी।

मीरा बाई ने श्री कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम-भाव के साथ ही एकनिष्ठ भक्ति भावना की भी अभिव्यक्ति की है। जैसा की भक्ति के संबंध में बताया गया है कि-मनुष्य का लौकिक प्रेमभाव अध्यात्मिक प्रेम के निकट की प्राथमिक अवस्था है। लौकिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन दोनों ही प्रेममंत्र के दिव्य प्रकाश से ही चमत्कृत होते हैं। इस प्रकार ईश्वरीय भक्ति-भावना-पथ का प्रथम चरण प्रेम भाव ही होता है।

इसी क्रम में यदि हम राधा कृष्ण के प्रेम को देखे तो राधा का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम आदि शक्ति के रूप में जाना जाता हैं इसलिए राधा को

कृष्ण के लिए प्रेम दिवानी की संज्ञा दी गई है। वृहदारण्यक की एक श्रुति में कहा गया है कि ब्रह्म एकाकी होने से रमण नहीं कर सका अतः वह एक रूप से दो हो गया। श्री राधा और श्रीकृष्ण कीड़ाशील रस की दो मूर्तियाँ है जिनमें आनन्दधनरसिक हैं। श्रीकृष्ण और अद्‌यादिनी रसकिनी है श्री राधा। श्री राधा रसस्वरूप श्रीकृष्ण की रसलीलाओं की संचालिका हैं। वे ही आद्‌या शक्ति हैं, मूल प्रकृति है। वे ही प्राणधिष्ठात्री देवी है। वे कृष्ण मयी है और मधुर रस की मूल आश्रयमूर्ति है।

श्री कृष्ण भी उनके बिना जड़वत् माने गये—इस प्रकार श्री राधा श्री कृष्ण की सर्वशक्तियों का अधिष्ठान हैं। श्री राधिका सुन्दरता की सौभाग्य शिरोंमणि है। रूप की सीमा है। उनके अंग-अंग में अमित रूप की तरंग उठा करती है। श्री राधा का अंग प्रत्यंग असंख्य छवियों का संग्रह हैं, जिसकी अलबेली तन-क्रान्ति ने सम्पूर्ण वृन्दावन की धरा को रूपमयी बना दिया है।

गौड़ीय वैष्णवों ने श्री राधा को श्रीकृष्ण के लिए यह रसनीयता की चरम परिणति कहा हैं स्वयं श्रीकृष्ण को अपने प्रेमास्वाद में जितना आह्लाद होता है, उससे भी कई गुणा अधिक आस्वाद श्री राधा के प्रेम में निहित है। वस्तुतः श्री राधा प्रेम की ही प्रतिमूर्ति हैं। श्री राधा पूर्ण शक्ति है तो श्री कृष्ण पूर्ण शक्तिमान है। वैष्णवी साधना का उपास्य तत्व प्रेम है- पुरूष-प्रकृति, शिव-पार्वती, शक्ति, शक्तिमान और विष्णु-लक्ष्मी के समान श्री राधा कृष्ण भी अद्वय युगल-भाव को प्राप्त हुए है।

गोपिगण के साथ कृष्ण का प्रेम—गोपियों भगवान के समान ही परम रसमयी सच्चिदानंदमयी और संवेदन-शील है। कृष्ण प्रेम में डूबी हुई उन गोपियों ने निज तन मन-प्राण को ही नहीं मोक्ष तक को नगण्य बता कर भक्ति का आदर्श प्रतिष्ठित किया है। प्रतीक रूप में इन्हें कृष्ण-प्रेम की प्रेरिका शक्ति कहा जाता है।

''गोपी'' शब्द का सामान्य अर्थ गोप-पत्नी है, परन्तु 'गो' शब्द से इन्दिय एवं किरण जैसे अर्थों की भी प्राप्ति होती है। श्री कृष्ण को सूर्य की किरणों के रूप गें वर्णन किया गया है। लीला प्रसंग में तो गोपियों का व्यक्तित्व ही कृष्ण प्रेम का दूसरा नाम है।

आचार्य बल्लभ ने ब्रज की इन गोपियों को तीन श्रेणीयों में विभक्त किया है।

1. अनयपूर्वा, 2. अनन्यपूर्वा, 3. सामान्या।

अन्यपूर्वा गोपियाँ वे है जो विवाहिता होते हुए भी केवल श्री कृष्ण में पूर्णतः लीन हो। दूसरा अनन्यपूर्वा इसमें गोपियों को श्री कृष्ण पति रूप में प्राप्त है। तीसरा सामान्या इस कोटी में श्री कृष्ण के प्रति मातृभावना रखती है।

मानव मन विभिन्न भावों का अक्षय कोष है। प्रेम भी मानव मन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाव है। प्रेम से ही मानव की आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है क्योंकि प्रेम के क्षेत्र में मैं अथवा अहम भाव रह ही नहीं सकता।

शास्त्रकारों ने प्रेम को गूंगे का गुड़ तथा अनिवर्चनीय कहा है। प्रेम आनन्द शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। प्रेम की गागर सदा ही छलकती रहती है। केवल ज्ञान के सहारे ब्रह्म साक्षात्कार की दुहाई देने वाले सन्त कबीर को भी प्रेम की वेदी पर सादरनत होना पड़ा था। उन्होंने शुष्क ज्ञान के ककरीलें मार्ग के साथ-साथ प्रेम की महिमा का भी गान किया है-

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा पंडित भया न कोय
ढ़ाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।

मीरा के प्रेम-भाव का वर्णन करते हुए श्री नाभादास जी ने भक्त माला में इस प्रकार कहा है।

सदरिस गोपिन प्रेम प्रगट, कलियुगहिं दिखायों।
निर अंकुस अति निडर, रसिक जस रसन गायों
दृष्टनि दोष निचारि, मृत्यु को उदगम कियों
बार न बाको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयो
भक्ति निसान बजाय के काहू ते ना ही जली
लोकलाज, कुल श्रृंगार तजि मीरा गिरिधर भजी

ध्रुवदास ने मीरा का परिचय इस प्रकार दिया है—

लाज छांडि गिरिधर भजी, करि न कछु कुल कानि।
सोई मीरा जगविदित प्रगट भक्ति की खानि
ललिता हूँ लई बालिकै तासों अति हेत
आनन्द सो निरखत फिरै वृन्दावन रस खेत
नृत्यत नूपुर बाधि के नाचत लै करतार
विमल हियों भक्तिनि मिली, तृन सम गन्ये संसार
बंधुनि विष ताक दियों करि विचार चित आन
सो विष फिरि अमृत भयो, तब लागे पछितानि

श्री कृष्ण प्रेम की दीवानी मीरा का यह काव्य चित्र मीरा के हृदय की सात्विकता का परिचायक है। संसार के अधिकांश व्यक्ति दो प्रेमियों के मध्य दीवार बन कर खड़े होने में ही अपने जीवन की सफलता मानते है, किन्तु सयूया प्रेम ऐसी बाधाओं और विध्नो की चिन्ता नहीं करता। अपने प्रियतम के वियोग में मीरा सुखानुभूतियों की संचित सुखद स्मृतियों में छिपा हुआ अभूतपूर्व सुख और आनन्द लूटती है। पूर्वानुभूति का सुख ही विरह दग्ध मन का एकमात्र सम्बल होता है। मीरा भी ऐसी ही सुखद स्मृतियों में खो जाना चाहती है–

होरी खेलत है गिरधारी,
मुरली चंग बजत डफ न्यारों संग जुबती ब्रजनारी
चंदन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी
भरि भरि मूतठ गुलाल लाल चहूँ, देत सब पे डारी
छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी
गावत चार धमार राग तह, दे दे कल करतारी
फागु जू खेलत रसिक सांवरों, बाड़यों रस ब्रज भारी
मीरा के प्रभु गिरधर नागर मोहन लाल बिहारी

प्रेम और वेदना चिरसंगी होते है। वेदन (विरह) में ही प्रेम का जन्म होता है, विरह के ताप में ही प्रेम का रूप निखरता है वास्तविकता तो यह है कि विरह वर्ग स्थिति में प्रेम का प्रकाशन सामान्य से कहीं अधिक प्रतिक्रिया लिए होता है।

मीरा के निम्न पद में यही प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है–

मैं तो गिरधर के धर जाऊ गिरधर महारों सांचों प्रीतम, देखत रूप लुभाऊ
रैण पड़े तब ही उठी जाँऊ, भोर गए उठि जाँऊ
रैण दिना वाके संग खेलू, ज्यूँ त्यों वाहि रिझाऊ
जो पहिरावे सोई पहिरू, जो दे सोई खाँऊ
मेरी उनकी प्रत पुरानी, उन विन पल न रहाऊ
जनां बैठावें तित ही बेढ, बेचे तो विके जाँऊ
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाँऊ

प्रेम के रंग में रंगा हुआ हृदय भी अप्रत्याशित कल्पनाएँ करने लगता है। ऐसी स्थिति में प्रेमी हृदय को प्रायः दो प्रकार की शंकाएँ घेर लेती हैं

1. या तो प्रियतम मुझे भूल गया हैं
2. या वह किसी अन्य के प्रेम में फंस गया है।

उस समय मीरा एक तारा पर कृष्ण जी का भजन गाती थी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मीरा की प्रेम-साधना, एकनिष्ठ भक्ति भावना ही मीरा को श्री कृष्ण की प्रेम दिवानी नाम से संबोधित करता है।

रास में राधा-कृष्ण

प्रगति मिश्रा

विश्वविद्यालय संगीत विभाग
ति.माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

संगीत कला कलाओं में सर्वोच्च स्थान रखती है। प्राचीन समय में संगीत अध्यात्मिक था। परमात्मा से संबंध रखने का प्रयास था। विदेशों में भी कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो संगीत को भक्ति-भावना से ओत-प्रोत मानता था। कहा जाता है कि बेबिलोनिया में संगीत को आत्मिक चेतना से संबंधित माना जाता था। जापान में धार्मिक नृत्य 'कागुरा' प्रचलित था।

किंतु मध्यकाल में यह निम्न स्तर का होता गया। निबंध संगीत पृ.-308 पर लिखा है कि "मध्यकाल में धर्म से विलग होने पर संगीत का प्रयोजन आत्मोन्नति न रहकर मात्र मनोरंजन रह गया। मध्वाचार्य, बल्लभाचार्य, निंबार्काचार्य, प्रभृति वैष्णवाचार्यों ने, चैतन्य महाप्रभु, संत ज्ञानेश्वर, त्यागराज, स्वामी हरिदास आदि भक्त गायकों ने तथा सूर, तुलसी, मीरा-जैसे पद रचयिताओं ने संगीत की डगमगाती नैया को यदि दिशा दान न किया होता, तो आज भारतीय संगीत की क्या दुर्दशा हुई होती, कुछ नहीं कहा जा सकता। शास्त्रीय तथा लोक-संगीत में इन भक्तों ने राधा-कृष्ण के युगल-स्वरूप को इस प्रकार रमा दिया कि वे संपूर्ण भाव जगत् की वस्तु बन गए। प्रेम, ज्ञान, वाात्सल्य, दास्य आदि विविध भावों के मधुर आलंबन के रूप में परिपूर्ण ब्रह्मनारायण श्री कृष्ण को चित्रित किया, साथ ही परम शक्ति के रूप में राधा को प्रतिष्ठित किया।"

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं कि—"भक्ति, प्रेम और माधुर्य के नाना संविद् से विचित्र यह युगल-मूर्ति ईश्वर का रूप तो थी; पर इस ईश्वर में वैदिक देवताओं का संभ्रम नहीं था, ग्रीक अपोलो की भीति नहीं थी, इस्लामी खुदा की तटस्थता नहीं थी, दार्शनिक ईश्वर की अद्भुतता तो एकदम नहीं थी। एक सहज, सरल, घरेलू संबंध। तंत्र वाद के ससीम रस से सीमाहीन की उपलब्धि के सिद्धांत ने तात्कालिक जन-समुदाय को सखा-रूप से, प्रिय-रूप से, स्वामी रूप से कृष्ण की उपासना के प्रति अग्रसर कर दिया था।"

इस प्रकार धर्म की उपासना में राधा-कृष्ण का प्रेम अपूर्व माध्यम है, जो मनोरंजक भी और कलात्मक भी। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है—रास पाणिनी रचित अष्टाध्यायी में रास-नृत्त एवं रास-संगीत को रस से संबंधित बताया है। कृष्ण भक्त कवियों ने सहस्त्रों पदों के माध्यम से महारास की रचना की है।

'अष्टछाप संगीत एक विश्लेषण' में लिखा गया है कि हरिवंश पुराण के अनुसार कृष्ण को विशिष्ट गीत शैली एवं एक नृत्य प्रणाली का प्रवर्त्तक बताया गया है। हरिवंशकार ने छालिक नामक गंधर्व की चर्चा में सामूहिक संगीत योजना तथा साथ में हल्लीसक नृत्य का उल्लेख किया है। तदनुसार इसकी रास से निकटता स्थापित होती है। परम्परा से पहले से भी रास के तत्व विद्यमान रहे है। भोजन के "श्रृंगार-प्रकाश" में 'छालिक' विशेष नृत्य प्रकार है, जो एक

नर्तकी द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। भोज के पूर्ववर्ती आचार्यें भामह, दण्डी ने दृश्यकाव्य के अंतर्गत 'छालिक' का उल्लेख किया है—जो स्पष्टतः गीत नाट्य पर आधारित काव्य बंध है। कालिदास ने भी एक व्यक्तिय 'चलित' या 'छलिक' नृत्य का वर्णन किया है। हरिवंश में छालिक्य का उल्लेख 'छालिक्य क्रीड़च' वर्णन के अंतर्गत किया गया है। विवरण से स्पष्ट होता है कि गोपजाति के सामूहिक समारोहों पर गाया जाने वाला यह एक नृत्य गीत था। इस गीत को गाकर सभी नर-नारी नृत्याभिनय करते थे। छालिक्य गीत की प्रमुखता के कारण समस्त क्रीड़ा को 'छालिक्य-क्रीड़ा' का नाम दिया गया होगा। हरिवंश पुराण में छालिक्य गान के साथ श्रीकृष्ण के हल्लीसक नृत्य का भी उल्लेख है।

रास भी एक सामूहिक नृत्य-नाटक है। यह काव्य रूप भी रहा है। रास आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत राधा-कृष्ण के प्रेम से संबंधित है जो आगे चलकर 'रास-लीला' कहलाने लगा। इसमें संगीत एवं काव्य का अद्भुत मिश्रण रहता हैं इसमें राधा-कृष्ण के साथ-साथ गोप और गोपियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

नन्ददास के अनुसार -''कृष्ण अभिभान से जन्मे विकार को नष्ट करने के लिए अन्तर्ध्यान हो गए। प्रणयानुकूल-विरहाकुल गोपियों ने कृष्ण की लीलाओं का स्मरण करते हुए विलाप किया। अनुकरण द्वारा लीलाभिनय से रासलीला की अवधारणा हुई।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वृंदावन धाम में कार्तिक पूर्णिमा के दिन, यमुना नदी के किनारे शुभ्र चंद्रिका में श्रीकृष्ण एवं ब्रज की गोपियों के साथ मंडलाकार बनाकर नृत्य किया जाता है जिसे महारास कहते हैं। महारास से संबंधित अद्भुत कथाएँ प्रचलित हैं। जिसमें कृष्ण के अंतर्धान होने के पश्चात पुनः गोपांगनाओं के भक्ति-भाव के कारण समक्ष प्रस्तुत होना, अत्यन्त ही मधुर वृतान्त है। श्रीमद्भागवत् की रास पंचाध्यायी में इसका अति सुन्दर वर्णन है। श्रीकृष्ण परम-तत्व हैं श्री राधा उनकी अभिन्न हैं। श्रीकृष्ण की यह नित्य रहस्यमयी लीला है। यह आनन्दमय पूर्णब्रह्म है।

सूरदास की कृतियां में राधा-कृष्ण प्रेम

शुभांगी श्रेया

बी. कॉम., बी.एच.यू., वाराणसी

पुष्टि मार्ग के प्रचार प्रसार के लिए सूरदास जी का महत्वपूर्ण स्थान है। काव्य संख्यात्मक एव गुणात्मक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण माना गया है।

डॉ. दीन दयालु, गुप्त के अनुसार "यदि केवल काव्य कला की तुलनात्मक दृष्टि से हिन्दी साहित्य के प्राचीन और अर्वाचीन काव्य का हम अध्ययन करें, तो हमें ज्ञात होगा कि काव्य रस की जो धारा अष्टछाप-काव्य में प्रवाहित हुई है और कला का जो मनोमुग्धकारी प्रदर्शन उसमें हुआ है, वह किसी कवि की कृति में-यहाँ तक कि महात्मा तुलसीदास के काव्य में भी नहीं मिलता।"

सूरदास ने कृष्ण के बाल लीला से लेकर गोपियों एवं राधा के संग रास का भी वर्णन किया है। उनके द्वारा लिखित कुछ गीत इस प्रकार हैं-

गीत

स्याम कछु मनो तन ही मुसुकात।
पहरि पितंबर, चटन, पाँवटी, ब्रज बीथिनि में जात। (1)
अद्‌भूत बिंद चंदन, नख-सिख लौं सोंधे मीने गात,
अलकावली अधर, मुख बीरा, लिए कर कमल फिरात। (2)
धन्य भाग या ब्रज क सखि री, धनि-धनि जननी तात
धनि जे सूरदास प्रभु निरखत लोचन नाहि अघात। (3)

इस गीत में सूरदास जी का भाव है कि गोपी कहती हैं- सखी, श्याम मेरी ओर देखकर ही मुस्कुरा देते हैं। पीताम्बर पहने एवं चरणों में जूतियाँ पहने ब्रज की गलियों में जा रहे थे। ललाट चंदन की बेदी से शोभायमान था। नखसिख तक अत्यन्त सुन्दर, मुख में पान का बीड़ा एवं हाथ में कमल धुमा रहे थे।

इन्हें देखकर ब्रज के लोग धन्य हैं-

गीत-2

कहँ लों कहीं सखि! सुंदरताई
मोर पच्छ माथे पै राजत, फेरत कमल अंग सुख दाई।।
पहिरें पीतांबर है ठाढ़े, बहु विधि ठाट बनाई।
मुरली अधर मधुर धुनि बाजति, नए मेघ मानों घहराई।2।
सिर पें लाल पागरी बाँधे डर मुक्तन की माल रूराई।
जंगल प्रबाह सरसरी धारा, निरखल कलिमल गए हिराई।।3।।
बैजंती लटकति चरननि लौं, हंस बीर रहे बैटि लजाई।
सौभा सिंधु पार नाहिं जाकी, सिव बिरंचि सोचत अधिकाई।।4।।
बड़े भाग प्रगटे जसुवा कैं, घर बैठेंही नव निधि आई सुरदास
प्रभु नंद अनंदित तिहँ लोक छिति छवि न समाई।।5।।

इस गीत में गोपी कहती है कि श्यामसुन्दर की सुन्दरता का कहाँ तक वर्णन करूँ, उनके मस्तक पर मयूरपिच्छ शोभा दे रहा है, वे हाथ से कमल धुमा रहे हैं, सभी अंग सुखदायक है। पीताम्बर पहने अनेक प्रकार से मनोहर ठाट बनाएँ खड़े है और ओठों पर

मधुर ध्वनि से वंशी इस प्रकार बज रहीं है, मानों नविन मेघ की गर्जना हो, मस्तक पर लाल पगड़ी बाँधे हैं तथा वक्ष स्थल पर मुक्ता माला की ऐसी शोभा है, मानों गंगा जो दो धारा होकर वह रही हों जिन्हें देखते ही कलियुग के दोष नष्ट हो जाते हैं। चरणों तक वैजयन्ती माला लटक रही है, जिसे देख कर हंस और तोते लज्जित होकर बढ़े रह गये। ये शोभा के ऐसे समुद्र हैं, जिसका कोई ओर-छोर नहीं है, और जिसके संबंध में शंकर जी और ब्रहमा जी भी पार नहीं पाते। बड़े सौभाग्य से श्री यशोदा जी के घर में प्रकट हुए हैं। सूरदास जी कहते हैं- मेरे स्वामी को पाकर श्री नन्दजी आनन्दित है। उनकी शोभा तीनों लोकों के धरातल में भी समाती नहीं।

गीत-3

बसौ मेरे नैननि में यह जोरी।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन, संग वृषभानु किसोरी।।1।।
मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल, पीतांबर झकझोरी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को, का बरनौं मति थोरी।।2।।

कमल-दल-लोचन श्याम सुन्दर के साथ श्री वृषभानुनन्दिनी, श्री राधा की जोड़ी मेरे नेत्रों में निवास करे। मयूरपिच्छका मुकुट, मकराकृत कुण्डल और फहराता पीताम्बर। सूरदासजी कहते हैं- हे स्वामी आपके दर्शन का मैं थोड़ी बुद्धिवाला क्या वर्णन करूँ।

गीत-4

मुरली द्वरि कराएँ बनि है।
अबही तै एसे ढँग थाके, बहोरि काहि यह गनि है।।1।।
लागी यह कर पल्लव बैठन, दिन-दिन बाढ़ति जाति।
अबही तैंतुम सजग होह री, मैं जु करति अकुलाति।।2।।
यह ब्रज मैं नहिं भली बात है; देखों दृढ़ विचारे।
सूर स्याम वाही के हैं गए, सब ब्रजनारि बिसारि।।3।।

गोपियाँ कह रही हैं- संखियों मुरली को कृष्ण से दूर करना होगा, क्योंकि अभी से इसके ऐसे ढंग है, तो ये पीछे किसको गिनेगी, किसी परवाह करेगी। अब तो यह मोहन के पल्लव सदृष्य कोमल हाथों पर बैठने लगी है, और दिनों दिन इसकी महत्ता बढ़ रही है। गोपियाँ व्याकुल हो कर कहती है कि सखियों तुम अभी से सावधान हो जाओं। अपने हृदय में विचार करके देखों ब्रज में यह कोई अच्छी बात नहीं है। क्योंकि सूरदास जी के श्यामसुन्दर सभी ब्रजनारियों को भुलाकर उसी वंशी के हो गए है।

लोकगीतों में राधा कृष्ण

अनुपम कुमारी

शोध-छात्रा
विश्वविद्यालय संगीत विभाग
ति.माँ. भा. वि.वि., भागलपुर

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में नैसर्गिक संगीत है लोक संगीत। यह संगीत हमारे समाज में प्रचलित है। प्रायोगिक रूप में यदि चिंतन करें तो इसका कोई वर्गीकरण वांछनीय नही है। यह तो सदियों से चली आ रही परम्परा और संस्कृति की आत्मा की खुशबू है। जो अनायास प्रस्फुटित होती हैं चाहे वह अवसरानुकूल हो, कार्यानुकूल हो, भक्ति परक हो, वह तो आनंदायक है। लोक संगीत हमारे मर्म को सर्वाधिक छूती है।

लोक संगीत में गीत की अपनी विशेषता है। आत्मा की अनुभूति के लिए शब्द का सहारा लिया जाता है। शब्दों और स्वरों के मेल से रस की प्राप्ति संभव होती है। लोक गीतों में अथाह वर्ण्य-विषय हैं- संस्कारों से संबंधित, देवी-देवताओं से संबंधित, ऋतुओं से संबंधित, समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों से संबंधित आदि-आदि। इन सभी प्रचलित गीतों में राधा-कृष्ण के नोक-झोंक एवं प्रेम-अभिव्यक्ति के वर्णन मिलते हैं। यही तो हमारे जीवन के उमंग और उत्साह के परिचायक हैं। इसी गतिशीलता में हमारे जीवन की गतिशीलता है। सृष्टि की सरसता है।

कुछ लोकगीतों में राधा कृष्ण से संबंधित गीतों का वर्णन इस प्रकार है-

होरी—

ब्रज मंडल फाग मचावे रसिया, बजभंडल
किनके हाथ कनक पिचकारी
किनके हाथ अबीर झोली, ब्रजमंडल
कृष्ण जी के हाथ कनक पिचकारी
राधे हाथ अबीर झोली, ब्रजमंडल
केसर रंग उरत है चहो दिशी
सखीयन संग सबरीयारी, ब्रजमंडल

प्रस्तुत होरी में राधा-कृष्ण एवं सखियों संग होली खेलने का वर्णन हैं इसे फागुन मास में गाया जाता है।

चैती-

मोहन मदन मुरारी हो रामा कोई बुला दें
नंद जी के छौना श्याम सलोना
रास रसिक बनववारी हो रामा कोई बुला दे
मथुरा बसी हरि कुबजा के वश हुए
भूल गए ब्रजनारी हो रामा, कोई बुला दे
ब्रज जन चातक स्वाति जलद हरि
मोहन मुरली धारी हो राम, कोई बुला दे
हूक उठत पिक कूक सुनत हिय
बिरहा अनल दुख भारी हो रामा, कोई बुला दे।

प्रस्तुत चैती में कृष्ण जी से विरह का वर्णन हैं इसे चैत मास में गाया जाता है।

कजरी -

नहि आए धनश्याम, धेरि आई बदरी,
बैठी तीरे वृज वाम, तू न मेरो लाज धाय।
आई सावन की बहार, करे मोखा पुकार,
पड़े बुन्दन फुहार, घेरि आई बदरी।
कान्ता हमें बिसराय, रहे सौतन लगाय,
करी कौन उपाय, घेरि आई बेदरी।

प्रस्तुत कजरी में श्याम के प्रति चिंता व्यक्त की गई है, कि बदरी घिर आई लेकिन अभी तक श्याम नहीं आए। लगता है श्याम हमें भूल गए है। कजरी गायन शैली का अपना एक रंग हैं। जब स्त्रियाँ इसे मिलकर गाती है तो उसका माधुर्य कुछ और ही होता है। इसमें अधिकतर राधा का मर्मस्पर्शी विरह-वर्णन रहता है। कजरी का मुख्य विषय होता है-श्रृंगार रस और श्रृंगार रस के अंतर्गत संयोग श्रृंगार एवं वियोग श्रृंगार दोनों का वर्णन मिलता है।

झूला - कजरी जेसी ही एक गायन शैली है–

झूला - इस झूला गीत में झूला झूलने का वर्णन रहता है, जैसे

''झूला धीरे से झूलावो बनवारी रे साँवरिया''

ऐसे अनेक लोकगीत हैं जिनमें नायक-नायिका के रूप में राधा-कृष्ण का वर्णन मिलता हैं। संस्कार-गीतों में भी राधा-कृष्ण का वर्णन मिलता है। एक गीत जो महाकवि विद्यापति द्वारा रचित है, निम्न प्रकार है-

कुंज भवन से निकसल रे रोकल गिरधारी
एकहि नगर बसु माधव रे जनु करू बटमारी
छोड़ूँ श्याम मोर आँचर रे फाटत नव सारी
अपयश होएत जग भरि रे जनि करिय उधारी
संगक सखि अगुआयलि रे हम एकसरि नारि
दामिनी आबि तुलायलि रे एक गति अन्हारी
भनहि विद्यापति गाओल रे सुनु गुनुमति नारि
हरि संग किछु डर नहि रे तोहे परम गमारी।

प्रस्तुत गीत में कृष्ण ने राधा का रास्ता रोका है, इसी का वर्णन है।

हमारा अधिकतर लोकगीत राधा-कृष्ण के प्रेम, नोंक-झोंक, संयोग-वियोग श्रृंगार आदि वर्ण्य विषय से ओत-प्रोत हैं

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिना राधा-कृष्ण के वर्णन के सारा लोकगीत अधूरा है। राधा-कृष्ण के गीतों में जो भक्ति रस, अद्‌भूत रस और विशेषकर श्रृंगार रस (जिनमें संयोग एवं वियोग श्रृंगार दोनों का समावेश है) की अभिव्यक्ति मिलती है वह मर्मस्पर्शी एवं अतुलनीय है। वैसे भी प्रेम तो ''हरि अनंत हरि कथा अनन्ता'' जैसा है, जिसका ओर-छोर पाना मुश्किल ही नहीं असंभव है।

भारतीय पौराणिक कथाओं में राधा कृष्ण का प्रेम प्रसंग

कुमार वीभा

पूर्व शोध छात्रा
ति. मा. मा. वि. वि. भागलपुर

श्री कृष्ण आनंद है और राधा उनका स्वरूप है। राधा और कृष्ण यू तो जन्म जन्मान्तर के प्रेमी हैं। पुरानों के अनुसार, गोलोक में दोनो साथ-साथ रहते हैं। लेकिन कृष्ण ने जब मथुरा में अवतार लिया तो राधा का जन्म बरसाना में हुआ।

राधा का जिक्र पद्मपुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है। पद्म पुराण के अनुसार राधा वृषभानु नामक गोप की पुत्री थी। बरसाना राधा के पिता वृषभानु का निवास स्थान था। कुछ विद्वान मानते हैं कि राधा जी का जन्म यमुना के निकट स्थित रावल ग्राम में हुआ था बाद में उनके पिता बरसाना में बस गए। राधारानी का विश्व प्रसिद्ध मंदिर बरसाना ग्राम की पहाड़ी पर स्थित हैं। बरसाना में राधा को 'लाड़ली' कहा जाता है।

कहते हैं राधा की कृष्ण से पहली मुलाकात नंदगांव और बरसाने के बीच हुई थी। राधा और कृष्ण के प्रेम की शुरूआत बचपन में ही हो गई थी। एक दूसरे को देखने के बाद दोनों में सहज ही एक-दूसरे के प्रति आकर्षण बढ़ गया। माना जाता है कि यहीं से राधा-कृष्ण के प्रेम की शुरूआत हुई।

माना जाता है कि अवतार लेने से पहले ही राधा कृष्ण ने इस स्थान पर मिलने की योजना बनाई थी। इस स्थान पर आज भी एक मंदिर है। इसलिए इस स्थान को 'संकेत' नाम से जाना जाता है।

रासलीला भगवान कृष्ण और राधा के प्रेम को दर्शाने वाला एक मनमोहक नृत्य है। रासलीला में शास्त्रीय संगीत, नृत्य और नाटक तीनों तत्वों का समावेश होता है। यह कृष्ण और गोप-गोपियों का चक्राकार नृत्य है जिसमें नृत्य संगीत और नाटक के जरिए राधा और कृष्ण के प्रेम से जुड़ी विभिन्न कथाओं को निरूपित किया गया है।

विष्णु पुराण में वृन्दावन में कृष्ण की अन्य लीलाओं का भी वर्णन है। मान्यता है कि श्री कृष्ण और एक घाट पर युगल स्नान करते थे। यहीं पर श्री कृष्ण उनके सखा और सखियाँ मिलकर रासलीला अर्थात् तीज-त्योहारों पर नृत्य उत्सव का आयोजन करते थे। कृष्ण की इन्हीं शरारतों के कारण उन्हें बांकेबिहारी कहा जाता है।

चरणामृत से सम्बन्धित एक पौराणिक गाथा काफी प्रसिद्ध है जो हमें श्री कृष्ण और राधा जी के अटूट प्रेम की याद दिलाती है। पौराणिक कथा के अनुसार, एक बार श्री कृष्ण ने बीमार होने का स्वांग रचा। सभी वैध एवं हकीम उनके उपचार में लगे रहे परन्तु श्री कृष्ण की बीमारी ठीक नहीं हुई। कोई दवा या जड़ी-बूटी उन पर बेअसर साबित हो रही थी। वैधों के द्वारा पूछे जाने पर श्री कृष्ण ने उ र दिया कि मेरे परम प्रिय की चरण धूलि ही मेरी बीमारी को ठीक कर सकती है। उनका मानना था कि उनके परम भक्त या जो उनसे अति प्रेम करता

है तथा उनकी चिंता करता है यदि उसके पांव को धोने के लिए इस्तेमाल हुए जल को वे ग्रहण कर ले वे निश्चित ही ठीक हो जाएंगे। रूक्मिणी आदि रानियों ने अपने प्रिय को चरण धूलि देकर पाप का भागी बनने से इनकार कर कर दिया। गोपियां भी श्री कृष्ण के स्वास्थ्य के लिए चिंतित थी। श्री कृष्ण उन सभी गोपियों के लिए बेहद महत्वपूर्ण थे।

उनके मन में बार-बार यह आ रहा था कि यदि उनमें से किसी एक गोपी ने अपने पांव के इस्तेमाल से चरणामृत बना लिया और कृष्ण जी को पीने के लिए दिया तो वह परम भक्त का कार्य कर देगी। परन्तु किन्ही कारणों से कान्हा ठीक ना हुए तो उसे नर्क भोगना पड़ेगा।

अब सभी गोपियां व्याकुल होकर श्री कृष्ण की और ताक रही थी और किसी अन्य उपाय के बारे में सोच रही थी कि वहाँ कृष्ण की प्रिय राधा आ गई। अपने कृष्ण को इस हालत में देख के राधा के तो जैसे प्राण ही निकल गए हो।

राधा जी ने कहा कि भले ही मुझे 100 नरकों का पाप भोगना पड़े तो भी मैं अपने प्रिय के लिए चरण धूलि अवश्य दूंगी। राधा ने एक क्षण भी व्यर्थ करना उचित नहीं समझा और जल्द ही स्वयं के पांव धोकर चरणामृत तैयार कर श्री कृष्ण को पिलाने के लिए आगे बढ़ी।

आखिरकार कृष्ण ने चरणामृत ग्रहण किया और देखते हीं देखते वे ठीक हो गए। क्योकि वह राधा ही थी जिनके प्यार और सच्ची निष्ठा से श्री कृष्ण तुरंत स्वस्थ हो गए। अपने कृष्ण को निरोग देखने के लिए राधा जी ने स्वयं के भविष्य की चिंता ना की और वही किया जो उनका धर्म था। इस तरह वे श्री कृष्ण की परीक्षा में खरी उतरीं।

और भी पौराणिक कथाएँ हैं जिनसे राधा जी का कृष्ण पर प्रेम और कृष्ण काराधा पर प्रेमबंधन सामने आता है। श्री कृष्ण का राधाजी से इतना प्रेम था कि एक बार कमल के फूल में राधा जी की छवि की कल्पना मात्र से मूर्छित हो गये तभी तो ब्रजभूमि में हर भक्त कहता है।

राधा तू बड़भागिनी, कौन पुण्य तुम कीन।
तीन लोक तारन तार, सो तोरे आधीन।।

जब श्री कृष्ण वृंदावन छोड़कर मथुरा चले गए, तो राधा के लिए उन्हे देखना और मिलना और दुर्लभ हो गया। श्री कृष्ण की अनुपस्थिति में राधा जी के प्रेमभाव में और भी वृद्धि हुई।

वृन्दावन में हर साल राधा के जन्म यानि राधाष्टमी से लेकर अनंत चतुर्दशी के दिन तक मेला लगता है। इन दिनों लाड़ली मंदिर में दर्शन के लिए दूर-दूर से श्रद्धालु आते हैं और राधा-कृष्ण के प्रथम स्थल पर आकर इनके शाश्वत प्रेम को याद करते हैं।

राधा और कृष्ण का यह प्रेम उदात्त होकर लोक सेवा, परोपकार और सर्वभूतहित में परिणित हो जाता है। व्यक्तिगत सुख भोग को दोनो हेय मानकर निष्कार्म कर्म में लीन हो गये हैं।

एक ओर कृष्ण लोकहितरत होकर दुखी एवं पीड़ित प्राणियों की रक्षा, दुष्ट, कुकर्मियों को उनके दुष्कर्मों का फल देने आदि कर्मों में लगे रहते हैं दूसरी ओर राधा रूग्णजनों की सेवा, दिन अबलाओं और विधवाओं के दुख का निवारण कर कलह युक्त घर में शान्ति स्थापित करती हैं।

मानवेतर प्राणियों के प्रति भी राधा का विशेष प्रेम था। वह चीटियों को आटा देती, पक्षियों को दाना देती, यहाँ तक की कीट आदि का भी विशेष ध्यान रखती। राधा और कृष्ण एक दूसरे से दूर अवश्य थे, किन्तु दोनों के कार्य-कलापों में इतनी समता है कि दूरि दृष्टिगत नहीं होती। वास्तव में आदर्श प्रेमी का व्यापार यही है कि वह प्रिय के अनुरूप उसके आचरण को और कर्तव्यों को जीवन में स्वीकार करके वैसा ही जीवन व्यतीत करें।

एक स्थान पर सखी श्रीकृष्ण को विरहिणी श्री राधा की दशा बता रही हैं—हे केशव! चित्र बनाने के लिए तुम्हारा चिन्तन करते ही मानों कामदेव ने धनुष पर प्रत्यञ्र्या चढ़ाली, जब उंगलियाँ तुलिका पकड़ने चली तो मानों कामदेव ने धनुष की डोरी पर बाण रख लिया, तुम्हारा चित्र आँकना प्रारम्भ करते ही मानों उस धनुष से छूटे अस्त्र से गहरी बंधी हुई वह इस भित्ति पर चित्र बनी-सी रह गई है।

हिन्दुस्तानी संगीत में कुछ ऐसी गायन शैलियॉ हैं जिनमें मुख्यतः राधा कृष्ण के प्रेम का ही वर्णन प्राप्त होता है जैसे-ठुमरी, होरी एवं धमार आदि। श्री सुनील कुमार बोस का विचार है कि ठुमरी शब्द में प्रथम दो शब्द का अर्थ ठुमकत चाल अर्थात राधा की चाल एवं तीसरा शब्द "री" शब्द "रिझावत" अर्थात भगवान कृष्ण के मन को रिझाने की ओर इंगित करता है अतः ठुमरी में राधा के ठुमक कर चलते हुए कृष्ण के मन को रिझाने की अभिव्यंजना है। इसके अतिरिक्त होरी एवं धमार में तो पूर्णतः राधा-कृष्ण का वर्णन मिलता है।

रास की योजना शरीर से आत्मा तक पहुँच की व्यवस्था है। साहित्य में "नैनन वारि" की व्यवस्था को थोड़ा आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। नैनन को माध्यमस्थम की भूमिका में रहने दिया जाये और आत्मिक भावभूमि को ऊपर अधिष्ठापित किया जाये तभी जाकर राधा-कृष्ण प्रेम की सही भाव-भूमि को हृदयंगम किया जा सकता है।

साहित्य में राधा-कृष्ण पर सर्वाधिक लेखन मध्य-काल में हुआ। मध्यकालीन कवियों ने युगानुरूप राधा-कृष्ण प्रेम को प्रस्तुत किया और सारे सामंतवादी लक्षणों को मुक्त हृदय से पिरोने का प्रयास किया। कुल मिलाकर राधा-कृष्ण को पूरी मानसिक चेतना ही रूपान्तरित कर दिया जिससे समाज में एक प्रकार का छिछोरापन उभर कर सामने आया। चेतना का विलोपन और मांसलता की प्रभावी दृष्टि बन गयी। इसके पीछे राजशाही व्यवस्था और उससे अंकुरित कुसंस्कार भी इसके लिए उत्तरदायी थी। कवियों ने राधा-कृष्ण को आधार बनाकर अपनी अतृप्त इच्छाओं को साहित्य में ढालकर साहित्य को फायदा पहुँचाया या नुकसान, यह विचार का विषय हो सकता है लेकिन मौलिक प्रेम की अवधारणा को कुसंस्कृत अवश्य कर दिया। इन कवियों ने राधा को कुंज गली से निकालकर दरबारी भोग्या नारी बना दिया।

मध्य काल सांस्कृतिक दृष्टि से पराभव का काल है जब जनमानस अपने संस्कारों से च्युत होता जा रहा था। सुख-वैभव की लालसा ही मुख्य लक्ष्य बन गया और नैतिकता और संस्कार धीरे-धीरे अदृश्य होने लगे। एक तरफ मुगल काल का वैभवपूर्ण रोमांस था, दूसरी तरफ प्राचीन परम्परावादी समाज अतएव संक्रमण होना अपरिहार्य था। इन सभी कारकों ने मिलकर राधा-कृष्ण को भी बणी-ठणी का रूप प्रदान किया जिससे समाज की पूरी दृष्टि चौंधियाने लगी। राधा-कृष्ण का नया अवतार लोगों को भाने

विद्यापति के पदों में राधा-कृष्ण

अमित प्रकाश झा

आई. आई. एम., लखनऊ

भारत की विभूतियों में विद्यापति अमूल्य धरोहर हैं। आपने मिथिला की धरती पर अवतरित होकर मिथिला की ज्ञानमयी गंगा को निरन्तरता प्रदान किया। आपकी रचनाएँ बहुरंगी हैं। आपके विविध रचनाओं में राधा-कृष्ण के प्रेम, नोक-झोंक की अजस्र धारा बही है। इनकी पदावली राधा-कृष्ण के प्रेम से सुसज्जित हैं।

विद्यापति जी को विद्वता और शास्त्र निपुणता अपने आनुवंशिक गुणों, पूर्वजों के कारण प्राप्त थी। उनके गुरू का नाम हरिमिश्र था। आपने श्रृंगार रस, भक्ति रस और अद्‌भुत रस से ओत-प्रोत पदों की रचना की है। शशीभूषण पाण्डेय शीतांशु जी के अनुसार-

"विद्यापति प्रमुखतः रसराज-श्रृंगार के लालित्य को लोक-कंठ की प्रीति पुत्री, सुमधुर, सुर-लहरी में प्रस्तुत करनेवाले कवि शेखर थे, गौणतः वीरता की विवृत्ति और भक्ति की अभिव्यक्ति करने वाले महाकवि! वे प्रेम और सौंदर्य के कवि थे, जीवन के राग, रंग और रस के गायक थे। उनकी जिजीविषा भरी काव्य-कुसुमावली जहाँ परवर्त्ती कवियों और काव्यों को अपनी सुरभि का अमूल्य अवदान देती है वही उनके काव्य का आलवाल अपने पूर्ववर्त्ती कवियों से प्रभूत रस-सिंचन भी प्राप्त करता है।"

विद्यापति के काव्य का आलंबन है-राधा। राधा को उन्होंने संपूर्ण मानव जीवन का सौंदर्य माना हैं। पुराण साहित्य से राधा का आविर्भाव हुआ है, ऐसा माना जाता है। गीत-गोविन्द में तो राधा ही राधा है। उसमें ईश्वर की प्रेयसी राधा है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है-

"जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूषधारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक-भाषा की सरसता में परिणति होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई आगे चलकर ब्रज कटील कुंजों के बीच फैल, मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला का वर्णन करने उठी, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।"

डॉ. मनमोहन गौतम ने लिखा है कि सूर पर विद्यापति का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता। लोक परम्परा से ही अष्टछाप कवियों पर विद्यापति का प्रभाव पड़ा है।

विद्यापति के पदों में शब्द और स्वर का मधुर सामंजस्य है। मीना अग्रवाल ने "विद्यापति के काल में संगीत तत्व" के आलेख में लिखा है-

"शब्दो और स्वरों का सामानुपातिक संतुलन इस बात का स्वयं प्रमाण है कि विद्यापति ने अपने गीतों को पारम्परिक शास्त्रीय संगीत की आवश्यकतानुसार ढाला हैं चूँकि उसका आधार मूलतः लोकसंगीत है, इसलिए गीतों की अभिव्यंजना में कृत्रिमता आभासित नहीं होती। उनके गीतों में लय का आधार शब्द नहीं है, शब्दों का आधार लय है।

संगीत की आवश्यकतानुसार ही इन्हें गूँथा गया है।''

उनके पदों में—''काव्य की संगीतात्मकता के लिए शब्दों का चयन कुछ इस प्रकार होता है कि उससे संगीत-विशेष उत्पन्न हो जाय। विद्यापति को शब्दों की सत्ता, झंकृति और अर्थगुरूता का अत्यधिक ध्यान था। सच्चे अर्थों में विद्यापति की कविता शब्दों के रूप में संगीत और संगीत स्वर रूप में काव्य है।''

विद्यापति रचित गीत जिसमें राधा-कृष्ण का वर्णन है, इस प्रकार है-

ए सखि पेखलि एक अपरूप, सुनइत मानव सपन सरूप।
कमल जुगल पर चाँदक माल, तापर उपजल तरून तमाल
तापर बेढ़लि बीजुरि लता, कालिन्दि तट धिरें-धिरे जाता।
साखा सिखर सुधाकर पाँति। ताहि नव पल्लव अरूनक कांति।
विमल बिम्ब-फल जुगल विकास, तापर कीर थीर करू बास।
तापर चंचल खंजन-जोर, तापर सांपिनि झांपल मोर।
ए सखि रैंगिनि कहल निसान, हेरइत पुनि मोर हरल गेआल।
कवि विद्यापति एह रस मान, सुपुरूष मरम तोहें भल जान।

इस कविता में वर्णन है कि श्रीकृष्ण को यमुना के तट पर देखकर राधा उनके अपार सौंदर्य पर मोहित हो गई और इसी अपार सौंदर्य को अपनी सखियों से बता रही हैं-एक अपूर्व सौंदर्य को हमने देखा है, जिसे सपने में देखा हुआ सौंदर्य कहा जा सकता हैं, कमल के समान सुंदर चरणों के चंद्रमाओं के समान सुंदर नखों की पंक्तियाँ सुशोमित हो रही थी, उसके ऊपर तरून तमाल जैसा युवा श्याम शरीर सुशोमित था एवं उस पर बिजली के समान दिव्य पीताम्बर लिपटा हुआ था, वह धीरे-धीरे यमुना-तट पर जा रहा था। हाथ की ऊँगलियाँ भी चंद्रमा के समान पंक्तिबद्ध थी; उस पर नवीन पत्तों की लाल ज्योति खंजन-नेत्र जैसा नेत्र था, उस पर मोर मुकुट सुशोमित था। सर्पिणी के समान केश था। उसे देखते ही, उसने मेरे ज्ञान का हरण कर लिया। मैं तो सुधि-बुधि खो बैठी। विधापति कहते हैं कि मुझे अनुमान है कि तुम सत्पुरूष (श्रीकृष्ण) के रहस्य को अच्छी तरह से जानती हो।

ऐसे उच्च कोटि के पदों में राधा-कृष्ण वर्णन अतुलनीय हैं। ऐसा सारगर्मित साहित्य अपूर्व लेखनी का ही परिचायक है। यदि इन गीतों का गायन हो तो उसकी छटा ही निराली होगी।

रासलीला में प्रेम अभिव्यक्ति

स्वस्तिक शिववर्धन

बी.बी.ए.

सेंन्ट्रल युनिवर्सिटी, राँची

'रास' शब्द 'रस्' अथवा 'रास्' धातु के साथ 'धञ' प्रत्यय के योग से बना हैं शब्दार्थ के अनुसार रास का अर्थ है चिल्लाहट। प्राचीनकाल से ही मनुष्य अपनी खुशी को, खुशी के क्षण को चिल्लाहट के साथ व्यक्त करता आया है। यही कोलाहल जब प्रसन्नता सूचक होता है जिसे सब लोग गा-बजाकर, नृत्य के साथ प्रस्तुत करते हैं। रास कहलाता हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- 'रासक वस्तुतः एक विशेष प्रकार का खेल या मनोरंजन है, रास में वही भाव है।' संस्कृत कोश में प्राप्त होता है कि - "रास एक क्रीड़ा भेद अवश्य है, परन्तु वह क्रीड़ा नृत्त ही है, जहाँ श्रृंखला निबंधित होकर युग्मों के मध्य क्रीड़ा होती है।

कुछ विद्वान मानते हैं कि रास नामक एक ताल होता था यह कहरवा ताल के समान था। इसी से रास की उत्पत्ति हुई है। संगीत रत्नाकर में 'रास' ताल का उल्लेख है।

वैसे रास को मूलतः नृत्त माना गया है। नृत्य लय और ताल पर आश्रित होता है। पदार्थाभिनय एवं भावाश्रय होने के कारण ही यह नृत्त से नृत्य बन जाता है।

रास को कुछ प्राचीन विद्वानों ने हल्लीसक की संज्ञा दी है क्योंकि यह भी मंडलाकर समूह नृत्य है।

रास शब्द का रस से भी संबंध है। गीता में कहा गया है कि- श्रीकृष्ण स्वयं रस स्वरूप हैं। उपनिषदों में 'रसो वै सः' कहा गया है वह ब्रह्म श्रीकृष्ण ही है। रास की सर्वरसमयता को 'रसानों समूहो रासः' से अभिव्यक्त किया गया है। श्री बल्लमाचार्य जी ने कहा है- "रस की अभिव्यक्ति जिससे हो वह रास है"।

श्री किशोरी प्रसाद जी ने लिखा है-

रसकदम्बमयः कश्चिद्विलक्षणों ब्रजलीला विशेषः
यद्वा रसा मुख्यरसः शुद्ध प्रेमा स एवंरासः।

रास लीला में श्रीकृष्ण, श्रीराधा एवं गोपियों का उल्लेख मिलता है। श्रीकृष्ण आनन्दमय पूर्णब्रह्म परमतत्व हैं एवं श्रीराधा श्रीकृष्ण के रास लीला की संचालिका हैं। वे आद्याशक्ति हैं, मूल प्रकृति है। वे कृष्णमयी हैं। बिना राधा के कृष्ण जड़वत माने गए है। श्रीराधा, श्रीकृष्ण की सर्वशक्तियों की अधिष्ठात्री हैं। गोपियाँ रास लीला के संपादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गोपियाँ श्री कृष्ण की इंद्रियाँ हैं। रास लीला में गोपियाँ कृष्ण प्रेम का दूसरा नाम हैं। ब्रज की भूमि गोपी और सखि के प्रेम से प्रेममय है और श्रीकृष्ण के साथ नित्यसिद्ध संबंध है। इनके अभाव में कृष्ण लीला असंभव है। रासमंच की संगीत के संबंध में रासलीला तथा रासानुकरण विकास ग्रंथ में लिखा है कि -

"रास के मंच पर संगीत का विलक्षण न्यास है। रासलीलाओं की संगीत प्रधानता इसकी मौलिक विशेषता है। लीला में उपयुक्त पद्य-भाव की गेयता स्वयं सिद्ध है; परन्तु लीला की सम्वाद शैली भी इस गुण से पृथव नहीं है। जहाँ कहीं सम्वादों की नियोजना मूलतः गद्य के माध्यम से ही होती है, वहाँ भी इसके

प्रस्तुतीकरण में बलाधात की संगीतमयी परिपारी अपनायी जाती है। जिससे संपूर्ण वातावरण संगीतमय हो जाता है। रास नृत्य और उसके सम्वादों में निहित संगीत तत्व की कर्नल जेम्स टाड ने भी अत्यधिक प्रशंसा की है। लीला का कथा भाग हो अथवा पात्र विशेष का चरित्र-चित्रण, नृत्य की किसी स्वरावली का प्रस्तुतीकरण हो अथवा झांकी की अवतारणा-सभी में संगीतात्मकता पूर्णतः परिव्याप्त है।

रास की संगीतमयता रस के संप्रेषण में भी अत्यधिक सहायक है। आधुनिक दृष्टि से जो गीतिमय सम्वाद अतिशयोक्तिपूर्ण एवं पुनरूक्ति दोषों से दूषित प्रतीत होते हैं, वैष्णवी दृष्टि से रस की सम्प्रेषणीयता के लिए वे यहाँ महत्वपूर्ण उपादान सिद्ध होते हैं। रसमंच की संगीतमयता ऐसे प्रसंगों पर रास-दर्शक को एक दिव्य मनोदशा में अधिष्ठित करके उस कलात्मक सौंदर्य पर रीझने के लिए मुग्ध कर देती है और इस स्थिति में उसका अहं स्वयं विगलित हो उठता है। रास-रस के आस्वादन की पूर्व पीठिका का निर्माण वस्तुतः रास-प्रदर्शन की संगीतमयी शैली में ही बहुत कुछ निहित है। इस मनः स्थिति में प्रेक्षक उस संदेश को सहज ही ग्रहण कर पाता है, जैसे वर्षा से गीली की गई धरती में बीज डालने से प्रस्फुटन आसानी से हो जाता है। इस प्रकार लीला-प्रदर्शन की संगीतमयता रास मंच की अवान्तर विशेषता ही मानी जाएगी।

श्रीकृष्ण की रास लीला उपास्य हैं। इसमें गायन की एक समृद्ध परम्परा रही है। इसमें काव्य सृजन एवं कीर्त्तन साहित्य का सामंजस्य है। नाट्यविधा के लिए इसमें उपजीव्य साहित्य है। इन लीलाओं में प्रेम का प्रस्फुटन ही सर्वोच्च माना जाता है।

इस रासलीला में श्रीराधा लीला कथा की धूरी हैं एवं श्रीकृष्ण कथा सूत्र के धारक होते हैं। ब्रज की रस रसिकों में भगवत्प्रेम का यह सर्वोत्तम उदाहरण है। भक्ति रस की दृष्टि से अत्यंत ही प्रभावोत्पादक है। इसलिए इस लीला को हमारे भारतीय संस्कृति में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी गयी है।

कजरी में राधा कृष्ण को प्रेम अभिव्यक्ति

बीणा पाण्डेय

शोध छात्रा, संगीत, विभाग
तिलकामांझी, भागलपुर विश्व विद्यालय, भागलपुर

कजरी का नामकरण श्रावण मास में घिसे वाले काजल सरीखे बादलों की कालिमा के कारण हुआ है। काजल शब्द 'काजल' का अपभ्रंश है, इसी में 'कज्जली' शब्द बनता है जिसे बोलचाल की भाषा में 'कजली' या 'कजरी' कहा जाता है। काजल-सरीखे कजरारे बादलों को देखकर गाने की कल्पना को लेकर ही वर्षाकालीन गीत विशेष को कजली या कजरी नाम दे दिया गया।

सावन के मनभावन महीने में भोजपुरी प्रदेश में जो गीत गाये जाते है, उन्हे 'कजली' कहते है। सावन में प्रकृति सर्वत्र हरी दिखाई पड़ती है तथा मेघों के आगमन के साथ ही प्रकृति में एक विचित्र प्रकार की मादकता संचरित होती है। उत्तर प्रदेश एवं बिहार के रस-भरे लोकगीतों में 'कजरी' का महत्वपूर्ण स्थान है। 'कजरी' मूलतः लोकनारी का पावसकालीन आभरण है। जिस तरह बसन्त के आते ही लोक-हृदय 'फाग' के रंगों में सराबोर हो उठता है, चैत के लगते ही ग्रामीण अँचलों में 'चैती' के स्वर उठते है, उसी प्रकार सावन आते ही आकाश पर काले-कजरारे सघन मेंघों, चमकती बिजुरिया और रिमझिम बरसते पानी के बीच कजरी-गीतों के बोल लोक-हृदय को आलोड़ित कर देते है। झूलो पर झूलती ग्रामीण युवतियों की मधुर स्वर-लहरी वातावरण को मादक बना देती है-और सारे वातावरण में 'कजरी' के गीत बढ़ती पेंगों के साथ तैरने लगते है। भारत में प्रत्येक ऋतु का पृथक् संगीत है। प्रत्येक ऋतु देश के सामूहिक सौन्दर्य-बोध की परियाचिका है। शरद ऋतु में धान के खेतों और कमल-वनों का मोहक सौन्दर्य आँखो को ठगता है। वसन्त में लगता है टेसू और सेमल का मेला, और ग्रीष्म में शाखाओं पर झूलते है अमलतास के फूल। पावस में वर्षा का ठण्डा सोंधा जल लता और तरु-पल्लवों में सख्यभाव जगाता है। मेघाच्छन्न आकाश लोकगीतों का उदगम बनता है और किसी न किसी रुप में भारत का प्रत्येक जनप्रद वर्षा-मंगल की प्रेरणा से झूम उठता है। इन मेघो को द्रोण की संज्ञा दी गई है। मेंघो के साथ किसान का मिलन-सूत्र जुड़ता है, तो चारों ओर का चित्रपट स्वतः प्राणपान् हो उठता है। हर कोई मेघो का शकुन मनाकर धरती का श्रृंगार करना चाहता है। सूखे सरोवरों का मुख तक छलका देने का श्रेय केवल मेघो को है।

वैदिक सूक्तों में इन्द्र का स्थान अंतरिक्ष सूकतों में इन्द्र का स्थान अंतरिक्ष है और वह जल बरसाता है, इसलिए इन्द्र राजा के गीत में उसका आह्वान किया जाता है।

हाली हुलि बरसू इन्नर देवता
पानी बिनु पड़इछई अकाले हो रामा।

वर्षा में मेघों को देखकर किसान प्रसन्नता में झुम उठते है। और वर्षा की प्रतीक्षा करने लगते है। खेत खेत में, गलियों चौबारों में सुरीले कण्ठों में उतर आते है, मलार और कजरी के भावभीने स्वर। बगीचे में झूला झुलती हुई युवतियाँ रिमझिम बूंदो का आनंद लेती हुए गा उठती है-

सावन का महीना मेघा रिमझिम बरसे
ठंडी ठंडी बियार बादल बरसे है फुहारें
ऐसे में होते होते सखी पिया जी हमारे।

कजरी के रसभीने भाव-भरे स्वर मन को इतने गहरे तक छूते है कि उसके शब्द शरीर की नसों में रोमांच जगाने लगते है। उल्लास के गीत हो तो पाँव थिरकते है और करुणा के गीत हो तो आँखे बरसती है-

अदरा से बदखा बदखा से पानी
पानी के पिआर भुई भईली गुमानी
फुटि-फुटि निकलई सनेहिया क अँखुआ
रोई-रोई रोवेला बदरवा अँकसुआ।

लौकिक साहित्य में रिमझिम- रिमझिम नीर बरसता है वैसे ही सन्त साहित्य में झिलमिल- रिमझिम नूर बरसता है।

कजरी के उद्‌भव का वास्तविक कारण चाहे जो कुछ रहा हो, किन्तु इतना निश्चित है कि इसके मूल में बादलों की श्याम छटा एक बड़ा कारण रही है। शैली तथा स्थानीयता की दृष्टि से कजरी के तीन प्रमुख भेद हो जाते है। - भोजपुरी कजरी, बनारसी कजरी, मिर्जापुरी कजरी।

कजरी से जुड़े हुए कुछ ऐसे भी गीत है जो पावस में कजरी गीतों के समान ही महत्व रखते है बारहमासा, चौमासा, झूला, सावन, मलार, आदि ऐसे ही गीत है।

बारहमासा- ये गीतों वर्षा ऋतु में गाये जाते है। इन्हे स्त्री-पुरुष दोनो ही गाते है। इनमें बारहों महीनों का बड़ा रुचिकर वर्णन होता है। ऋतु -गीतों में यह बड़ा लोकप्रिय है। इन गीतों में बहुधा कृष्ण की वियोगिनी राधा या गोपियों को आधार बनाया जाता है। इस गीत की परम्परा लोक साहित्य में ही नहीं, शिष्ट-साहित्य में भी जाती है। वस्तुतः बारहमासा वियोग के गीत है। ये प्रकृति-वर्णन के गीत है, किन्तु प्रकृति का आलंबंन रुप में वर्णन न होकर वियोग के उधीपन विभाव का वर्णन होता है। बारहमासा गीतों में किसी वियोगिनी के बारह महीनों के मनोभावों का चित्रण मिलता है। यह मनोभाव कहीं तो किसी प्रोषितपतिका नायिका द्वारा व्यक्त होता है और कहीं गोपियों अथवा राधा द्वारा एक बारहमासा में गोपियाँ उद्धव को सबेरे -सबेरे मथुरा भेजती है कन्हैया को मना कर ले आने के लिए।

उधों भैर से मधुपुर जाव हो
कन्हैया के मनाय दीयउ ना।

छमासा- छमासा बारहमासे का ही एक संक्षिप्त रुप है। इसका वर्ण्य-विषय बारहमासा की तरह होता है।

चौमासा- बरसात के कुल चार महीनों की विरह-व्यथा इन गीतों में पाई जाती है। समय की दृष्टि से ये बारहमासा की अपेक्षा अधिक गाये जाते है, क्योंकि इनको गाने में समय कम लगता है।

मलार- कजरी का ही रुप मिथिला में 'मलार' नाम से प्रचलित है। पावस में 'मलार' स्त्री- पुरुष दोनों गाते है लेकिन दोनो के गाने के ढ़ंग अलग है। औरते इन्हे गाने के समय किसी साज-बाज की मदद नहीं लेती, वे इन्हे हिंडोले पर बैठकर गाती है। पुरुष इन गीतो को साज बाज के साथ गाते है।

सावन गीत- सावन के गीतों में अधिकतर भाई-बहन के प्रेम का वर्णन मिलता है

झूला या हिंडोला- बारहमासा गीतो से विपरित झूला या हिंडोला गीत में संयोग श्रृंगार की प्रधानता होती है। इनमें अधिकतर बगीचों में राधा-कृष्ण या नायक-नायिका के झूला-झूलने तथा मान मनुहार आदि का वर्णन मिलता है। कही रेशम की डोरी में सोने का झूला बगीचे में डालकर राधा-कृष्ण के झूलने का वर्णन है।

झूला झूले राधिका प्यारी
संग में कृष्ण मुरारी ना।
सोने के पालना रेशम के डोरी
कदम्ब के डारी ना।

तो कहीं नायिका द्वारा नायक को झूला झूलाने का वर्णन है, और कहीं प्रेमा-लाप, हँसी-ठिठोली का चित्रण है। प्रेम की पेंगें बढ़ाई जा रही है और झूले के आने-जाने के साथ सुख की हिलोर आ रही है-

झूला-झूले नन्दलाल संग राधा-गूजरी
क्हे राधाजी पुकार पेंग मारठ सरकार
उड़े पगिया तोहार मोरी उड़े चुनरी।

सावन का भींगा मौसम हो और आम की डाल पर झूला पड़ा हो तो कुमारी ननद का मन झूलने के लिए मंचल उठता है। वह भाभी से झूला-झूलने के लिए चलने का आग्रह करती है। किन्तु उसकी भाभी प्रोषितपतिका है। सावन की बुँदे उसके शरीर में दाहक लगती है, इसलिए झूले के प्रति उसी अरुचि स्वाभाविक है। कुछ झूला-गीतों का विषय आधात्म से संबंधित है-

मूलतः कजरी का वर्ण्य-विषय प्रेम है, इसके अन्तर्गत श्रृंगार के उभय पक्ष-संयोग एवं वियोग की झाँकी मिलती है- कजरी गीतों मे ननद-भावज के संबंधो की मधुरता भी चित्रित है। कजरी के संयोग पक्ष में श्रृंगार का जैसा मनोहारी चित्रण है, वियोग पक्ष की करुणा भी वैसी ही हृदयग्राही है। पावस में वियोगिनी विकल हो उठती है। मेघ बरसने को आये, किन्तु इसके प्रियतम नहीं आए-

श्याम नहीं आये आई श्याम बदरिया।

कजरी गीतों में कन्हैया-राधा की प्रेम भक्तिः- श्रृंगार से विशेष संबंध होने के कारण कजरी गीतों में बहुधा श्रीकृष्ण की चर्चा आती है। एक गीत में उस समय का वर्णन है जब पूतना ने श्रीकृष्ण के वध का प्रयास किया, किन्तु कृष्ण अपने बल से सुरक्षित बच गये, उल्टे पूतना को ही मारकर उन्हौने यमपुरी पहुँचा दिया।-

कंस महलिया से निकले रानी पूतना
चलि भईली नन्द के महलिया ए हरी
वालका उठाइ रामा छतिया लगवली
दुनो छतिया जहर लगवली ए हरी।

जहाँ कहीं झूला झूलने का वर्णन आया है, वहाँ कृष्ण कजरी के अधिनायक और राधा नायिका बनी है-

झुले झुले राधिका प्यारी
संग में कृष्ण मुरारी ना।

कहीं कन्हैया राधा की गलियाँ में चूड़िहार का रुप धरे भ्रमण कर रहे है। राधा चुड़ी पहनने के लिए उन्हे बुलाती है। कृष्ण चूड़ियाँ पहनाने के बहाने राधा की कलाइयाँ दबाते है। राधा उन्हे पहचान लेती है।

धरे हरि रुप मनिहार को
ऊँची अटा से राधा बुलावें
इटे लाओ लाल नई चुरियाँ रे
कर मस के चुरियाँ रे
निरख रये रुप राधा प्यारी को।

और कही राधा ग्वालिन बनकर दही बेचने जाती है तो कृष्ण मनिहारी बनकर उसे छलते है-

ग्वालिन बने राधिका प्यारी
कृष्ण मनिहारिन ए रामा

एक गीत में राधा मान करती हुई पाई जाती है। उसे शिकायत है कि जिन सखियों को कृष्ण ने फुल दिये है, उन्हीं के पासे जाये। कृष्ण बाग से फूल चुनकर लाये है। उन्हौने सबको फूल बाँटे लेकिन राधा की बारी आते-आते पुष्प समाप्त हो गये। इस बात पर राधा को गुस्सा है। वह उत्तर देती है।

ए जी जित् बाँटे झोली पर फूल
उतै पड़ सो रहो भगवान।

कृष्ण प्रतिकुल परिस्थिति के प्रति राधा का ध्यान आकर्षित करते है। बादल बरस रहे है और भगवान भींज रहे है, उन्हे अँधेरी रात में डर लग रहा है लेकिन राधा-कृष्ण से घर की दीवारें भी नहीं छुलाना चाहतीं क्योंकि भित्ति पर की चित्रकारी नष्ट हो जाएगी। राधा के ये विचार कृष्ण को खल जाते है और वहाँ से चले जाते है। राधा को अब पछतावा होता है, वे कृष्ण की खोज में निकलती है। कृष्ण एक स्थान पर सोते हुए मिलते है। कातर होकर राधा जार-जार रो उठती है।

वैसे तो समस्त पावस गीतों में ही प्रेम-भावना का प्राधान्य है किन्तु कजली, सावन एवं बारहमासा में यह भावना विशेष रुप से देखी जा सकती है। इन

गीतों में कही तो राधा-कृष्ण प्रेम के प्रतीक बनकर आते है तो कहीं दाम्पत्य प्रणय प्रधान होता है।

इस तरह के अनेक पारिवारिक एवं सामाजिक चित्र इन गीतो में पाये जाते है। रस भाव, कला, सामाजिक वातावरण आदि सभी को समाहित करने वाले इन गीतों में भारत का अतीत एवं ऐतिहासिक गौरव सुरक्षित है। इनमें प्रयुक्त कथायें एतिहासिक परम्परा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। तथा कजरी में राधा-कृष्ण की प्रेम भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई है। ये कजरी गीत में राधा-कृष्ण के भाव-प्रणव होने के साथ-साथ वर्णनात्मक अधिक बिजली, बादल तथा गर्जन उसके विशेष अस्त्र है, जो लोक-नारी के हृदय पर सर्वाधिक प्रभाव डालते है, कृष्ण की वंशी में राधा के पुकार की धुन होती है राधा-कृष्ण जब अपनी प्रेम प्रसंग में विलिन रहते है तब नन्हीं नन्हीं बुंदे, पपीहा की पुकार, कोयल की कुक, मोर का शोर, घनघोर घटा, बिजली की चमक ये सब पुरे वातावरण में मनुष्य के शरीर और हृदय को पवित्र कर देती है। आज भी राधा-कृष्ण की प्रेम भक्ति हमारे विचारो में है जो मन को पवित्र करती है एवं उनकी प्रेम लीला से आपस में प्रेम रखने की प्रेरणा मिलती है।

परणों में राधा-कृष्ण जी का संदर्भ

हरिओम हरि

शोधार्थी
वाद्य संगीत विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारतीय परम्परा में संतो की एक महान श्रृंखला बहुत समृद्ध रही है, जिसमें राधा-कृष्ण जी को आराध्य माना है और श्रीकृष्ण की भक्ति में सम्पूर्ण जीवन न्यौछावर कर अपने-आपको धन्य किये। इस भक्ति काव्य में संतों के पद, कवियों की कविताएं, इसमें राधा-कृष्ण जी के लीला का बहुत मनोहारी वर्णन हुआ। यही प्रभाव संगीत परम्परा में भी फलती-फूलती रही। ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, दादरा, भजन इत्यादि विधाओं में अनेक ऐसे बंदिशों की रचना हुई, जिसमें श्री राधा-कृष्ण जी के लीला का वर्णन मिलता है। तत्पश्चात् भारतीय ताल वाद्य मृदंग व तबला में तथा कत्थक नृत्य के प्रस्तुती में अनेक रचनाएँ निर्मित हुई, जिसमें श्री राधा कृष्ण जी के लीला का वर्णन मिलता है।

परण या परन मूलतः पखावज का बोल होते हुए भी आज न केवल तबला, बल्कि कत्थक नृत्य से भी अभिन्नता से जुड़ गया है। चूँकि यह पखावज का बोल है, अतः स्वाभाविक रूप से इसमें गंभीर खुले और जोरदार बोलों का प्रयोग होता है। यह टुकड़े से बड़ा होता है। इसके बोल प्रायः दुहराते हुए चलते हैं, और इसके अन्त में एक तिहाई भी होती है। अतः "खुले और जोरदार बोलों से युक्त, तीन, चार अथवा अधिक आवर्तन का वह बड़ा बोल समूह परन कहलाता है।" इसका अन्त प्रायः बिहाईयुक्त होता है। परण के अन्तर्गत लम्बे-लम्बे छन्दों को सम्मिलित करते हैं। पखावज से प्रभावित तबले का पूरब बाज जिसमें परन का प्रयोग व प्रचार खूब मिलता है।

उघट करन नाना लयें,
होय धनाक्षर वर्ण
धमक धमक धधकार गत,
ताके कहियत पर्ण।।

परण के चार प्रकार बताए गये हैं :

1. साथ परण- इसे बहुतांश के साथ संगत में बजाया जाता है।

2. गत परण- तिहाई रहित परण को गत परण कहते है। यह रचना खाली भरी के तत्व से बजाई जाती है।

3. बोल परण- यह रचना साहित्यिक शब्द, भक्ति, भाव देवताओं की स्तुति आदि गुणों से सजी धजी होती है। इस तरीके की रचनाओं में ऐसे संस्कृत एवं हिन्दी के शब्दों को चुना होता है ताकि विशिष्ट निकास से वे शब्द ही वाद्यों से बजते हुए प्रतीत होते हैं।

4. ताल परण- यह रचना चकदार होती है।

परणों के इन सभी प्रकार में बहुत सारी रचनाएँ उपलब्ध हैं। परण का तीसरा प्रकार यानी 'बोल परन' के अन्तर्गत ही रास परन, महारास परन, अद्‌भुत रास परन, युगल रास परन, गिरिधारी परन, छवि वर्णन इत्यादि कुछ परन प्रस्तुत किया जा रहा

है जिसमें श्री राधा कृष्ण जी के लीला का वर्णन मिलता है। बोल-परनों में भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों का समावेश रहता है—यह आगे के परनों से स्पष्ट हो जायेगा। मृदंग-वादक सर्वप्रथम बोल परनों की मुख से व्याख्या करता है। उसमें साहित्यिक शब्दों का विश्लेषण करते हुए परनान्तर्गत भावों को श्रोताओं के समक्ष स्पष्ट करके, पुनः मृदंग पर बजाकर सभा में यश का भागी बनता है। बोल-परनों का प्रयोग कथक नृत्य में अधिक किया जाता है। वैसे नृत्यकार सभी प्रकार के बोलों को सफलतापूर्वक एक महान् सुख का अवसर उपस्थित हो जाता है।

छवि-वर्णन-

हाथल कुटवं शीमुख बाजे चपलन यनकुँ डलझल के मोरमु कुटपी ताम्बर सोहे। मन्दम न्दमधु रीमुस केंमाधों एकमाधो दोमाधो तीनमाधो चारमाधो पॉचमाधो छहमाधो सातमाधो आठमाधो। नौ

नोट- इस परन में हाथो से धा मारकर मुख से अंकों का उच्चारण करना अच्छा रहेगा।

रास पारन

धा धा दिन् ता तेट धा दिन् ता वृन्दा वनकूँ जनरचे वरास।

आली ऽआ लीवन माली निरतत सखिसब दैता ली दिगदिगत्राम दिगदिगत्राम तगतगतगतग दिगदिगदिगदिग। ताथुंगाता थुंगाता तिग्धादिगदिग ता उघटत नवरस रंगढं गसौ गतदिख रावत हावभा वरू। कटाक्ष सोलह अंगब तावत ऽचम कदमक फेरे ऽतो ड़ापल टा गतनिका ऽसके। कसकम सकथिर कनिढुर निमुरनि चालढा लछवि अतिन्या री भृकुटिकु टिलसुं दरअल कझलक। भौंकमा नचं चलनय नबान हसनद सनमुस कनितक निझँकनि झाँकिझ मकिमुख मोरमो रचित चोरच पलचप लासी चमकति (चन्द्रमु खीरा धारा धारा धारा धारा धारा धारा। धारा धारा धा ३)।

महारास परन-

थ्रकथ्रक थ्रकथ्रक छूमछन ननछा ईछ टा रमकिझ मकिबूँ दिया। बरसा ईघ टा। सघनकु जअलि गूँजस गअलि पुंजम नोहर मदमा तीमुस काती इठला तीरस राती। मंजुल मृगसा वकमरा लसुक पिककपो तके हरील जाती अंगव सनमृदु हसनद सनदा। मिनीसि हाती पगनू पुरझन कारचा रूछम छमकछ मकत्राम थेइत्राम श्रेइत्राम थेयी तादिगदिगथो। दिगदिगताता थेई ऽपुनि आइग एनट नागर यप्उ जागर पटपी ताम्बर धारे हाथमु। रलिया पगपै जनियाँ तिरकिटतकधिर किटतकधाती धाती धाती धाक-धाती धा ऽछवि नैनरं गलच कतसु। अंगसकु चअनं गवा जतमृदं गताधा ऽक्ड़ान् धा गदिकग दिकझिझ कतझुकि झूमत भृकुटिम। रोरत धारा धारा धा शरदच न्द्रचम कानमधु रमुस कानलु भावन नयनन वलरा। जीवल जावन एकएक गोपी एकएक मोहन धनदा मिनिजिमि लगतसु हावन तालछं दउघ। टनवद तपरन धेटधेन नकधाकिट तकधुमकिटतक गदिगनधा तगदिगतगदिग तगदिगतगदिग धाऽनधि किटधाऽ धागत तोरत। बोरत मनसुख सिंधुहि रोरत हरखिह रखिसुर बरखिब रखिसुर तरूप्र सूनझरझर तिरकिटतकता धा। आ महारा समन भावत भावब तावत दृगभरि निरखत मुनिजन गावत मनमो हनमा। धोमा धोमा धो मनमो हनमा धोमा धोमा धो मनमो हनमा धोमा धोमा। धो

अद्भुत रास परन

धा धा दिन् ता तेट धा दिन् ता कुंजन मेंअद भुतरचे वरास। रूमझु ऽमिसखि याँकर तिहास मुखबिला ऽसमुनि मनहा री छोऽमछो ऽमछग छमछिछि छिछिछों। तकछुमतक्क तकतकछुम झनका री नाना विधिगत लेतअ ग्रफे री तोड़ा ऽतुक बन्दी। छंदप रबंध आड़ीकु आड़ी तीनगू नचौ गुनआठसोलह लागडा टछवि अतिन्या री। गोपी करधर के भुजभर के राधा ललिता ऽवं दाचन् द्रावलि कान्हके ऽसंग। श्यामगौ रसो हतमन मोहत रासमं डलशो भाभा री नटतब जतिकि किनिरूनु नझुनुन। छननछ ऽमछम छम्मछ ऽमछम

झाँझझ नकझन नानाका री कृधेःक धेःबा जतमृदं गसंग। मेंउपं गअरू मुरजचं गमं जीरहु डुककर तालबी ऽनसुर मंडल खंजरी अनदबे नुधुनि। द्रमिकद्र मिकद्रिम धादिंता दिगदिगधा ततत्त त्रामत्राम ततका री धादिंताधा ऽधादिंता धाऽऽधा दिंताधाऽ। ऽधादिंता धाऽधादिं ताधाऽधा दिंताधाऽ ऽधादिंता धाऽऽधा दिंताधाऽ धादिंताधा ऽधादिंता धाऽऽधा दिंताधाऽ ऽधादिंता।

युगल-रास परन

तिग्धादिगदिग थेइत्राम नाचत श्याममु रलिकर लीन्हे तादिगदिगता दिगदिगताता थोदिगदिगथो दिगदिगथेई धरनिप गधरत। नूपुर झनकत बेऽनुबी ऽनडफ मुरजधुम किटतकधा तक्ड़ान्धुम किटतकधाती धाक्ड़ान् धाक्ड़ान् आई राधा। प्यारी भानुदु लारी अतिसुकु मारी वारी ठुमकिठु मकिकटि लचकिल चकिदृग भृकुटिच लतन्या। रीऽन्या री तालदे ऽतमन लेऽतमु निनको दिगदिग दिगदिग तगतग तगतग धाकिटतकधुम किटतकगदिगन। धाक्डां धाक्डां तिरकिटतकता तेटकतगदिगन धाऽऽधा ऽऽधाऽ रहसिवि हँसिदोउ नचतप रसुपर (राधा कृष्णायु गलछबि कीजै जै 3)

संदर्भ ग्रन्थ-

संगीत 'मृदंग अंक' (जनवरी-फरवरी, 1965)

तबला वादन कला और शास्त्र, लेखक- पं. सुधीर माईनरकर

तबला कौमुदी भाग-1,2,3 लेखक पं राम शंकर पागलदास

ताल वाद्य शास्त्र- लेखक-मनोहर भाल चन्द्र रॉव मराठे

ताल कोश, भगवत शरण शर्मा

भारतीय संस्कृति में श्रीराधा की कल्पना, पूजा, उत्पत्ति उद्भव एवं विकास-एक विमर्श

कन्हैया लाल यादव

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पूर्ण विश्व में ऐतिहासिक युगों के परिवर्तन के साथ अनेक धर्मों तथा संस्कृतियों का जो उद्भव हुआ वह एक विलक्षण संस्कृति का ही परिचायक है। जिसमें अनेक धर्म-प्रवर्तकों में निम्बार्क, बल्लभ आदि सम्प्रदायों का जो विशिष्ट योगदान रहा वह मूलतः केवल धर्म संस्कृति से सम्बन्धित ही नहीं था अपितु उसने भारतीय संस्कृति को भी विशेष रूप से प्रभावित किया। जिसके फलस्वरूप मुख्य रूप से वैदिक एवं बौद्ध धर्म का उद्भव हुआ जिसने भारतीय संस्कृति के विकास पक्ष को अत्यन्त सुदृढ़ एवं सुग्राह्य बना दिया यही कारण रहा कि भारतीय संस्कृति में मानव-जीवन के अनेक पहलुओं का जितना विविध व व्यापक चित्र प्रस्तुत किया गया है, अन्य संस्कृतियों में उसका अभाव ही है। इसी कारण भारतीय संस्कृति में अनेक दैवीय शक्तियों की परिकल्पना हुई इनमें से जो राधा की परिकल्पना की गई है वह उसकी अद्भुत एवं अपूर्व उपलब्धि का ही द्योतक है। जिसमें उन्हें एक ओर श्रीकृष्ण की बाल-सहचरी, किशोरी, मुग्धा, प्रगल्भा, मानिनी, प्रेमोन्मादिनी के रूप में चित्रित किया गया है तो वहीं दूसरी ओर समर्पितानारी के रूप में भी उन्हें प्रस्तुत किया गया है। जिसका केवल भारतीय संस्कृति पर ही नहीं अपितु काव्य, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला आदि पर भी व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। जिसकी व्यापकता से प्रभावित होकर कल्याण मल्ल लोढ़ा ने अपने 'भारतीय साहित्य में राधा नामक ग्रन्थ में कहा है कि - ''भारतीय संस्कृति के क्षेत्र में पूर्व के एक हजार वर्षो में राधा से अधिक सुन्दर, सशक्त एवं अनुकरणीय आलम्बन सम्पूर्ण भारत में दूसरा नहीं हुआ''।[1]

यदि राधा शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया जाय तो राधा शब्द 'राध्' संसिद्धौ धातु में अच्टाप् प्रत्यय के योग से बना है, जिसका अर्थ संसिद्धि अथवा आराधना है। कोश में राघ्नोति साध्यति कार्याणि इति राधा कहकर 'राधा' शब्द समृद्धि, सफलता आदि की समष्टि एवं राधा को कार्य-सिद्धिधात्री के रूप में माना गया है।[2] कृष्ण से सम्पर्क के प्रसंग में इनकी अन्य व्युत्पत्तियाँ भी प्राप्त होती हैं जैसे-'कृष्णं समाराधयति सदा इति राधा' तथा 'कृष्णेननाराध्यते इति राधा' अर्थात् कृष्ण के द्वारा जो आराधनीय हैं वह राधा ही हैं। अमरकोषकार ने तो उन्हें वैशाख की पूर्णिमा, वृषभानु गोप की कन्या तथा श्रीकृष्ण की प्रेयसी स्वीकार किया है।[3] श्रीहितहरिवंश गोस्वामी जी ने तो 'श्रीराधा की स्तुति के प्रसंग में कृष्ण को वज्रमणि की संज्ञा से अभिहित कर आराध्य-आराधेय स्वरूप से प्रकट करते हुए कहते हैं कि-'जैसे वज्रमणि स्वरूप कृष्ण उनकी आराधना करते हैं ठीक उसी प्रकार वे भी प्रकृष्ट अनुराग के उल्लास से परिपूर्ण होकर अपने प्रियतम की आराधना करती हैं। वही श्रीराधा मेरी साधारण गति को शिथिल करें'।[4] नारद

पांचरात्र में राधा नाम की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए कहा गया है कि-'रास से उत्पन्न होकर वह तरूणी हरि के समक्ष पहुंची, इसी कारण वह तरूणी राधा नाम से अभिहित हुई।[5] ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के कृष्ण-जन्म खण्ड में राधा को मुक्ति प्रदायनी के रूप में मानकर एक ओर 'रा' को आदानवाचक और 'धा' को निर्वाणवाचक और साथ ही 'रेफ' के उच्चारण से करोड़ो जन्मों के पाप तथा अशुभ कर्मों से मुक्ति प्रदान करने वाला, उसमें सन्निहित 'आकार' को गर्भवास, मृत्यु तथा सभी रोगों को दूर करने वाला, 'धकार' को आयु की हानि का विनाशक उसमें सन्निहित 'आकार' को भवबन्धन से निवृत्ति प्रदान करने वाला[प] तथा दूसरी ओर राधा नाम के 'रेफ' को श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में निश्चल भक्ति तथा दास्य का प्रदाता एवं 'आकार' को सर्ववांक्षित सदानन्द-स्वरूप, सम्पूर्ण सिद्धि की समष्टि रूप तथा ईश्वर की प्राप्ति का साधन माना गया।[पप]6 इसी सारतत्त्व का उल्लेख करते हुए कल्याणमल्ल लोढ़ा ने तो राधा को वैदिक राधा का व्यक्तिकरण एवं उन्हें पवित्र तथा पूर्णतम आराधना का प्रतीक माना है।[7] क्योंकि 'राधः' तथा राधा दोनों शब्दों की उत्पत्ति राधृवृद्धौ धातु से है, जिसमें आ उपसर्ग जोड़ने पर 'आराधयति' यह धातुपद बनता है। अतः इन दोनों शब्दों का समान अर्थ ही आराधना, अर्चना, अर्चा आदि है। अतः राधा पवित्र तथा पूर्णतम आराधना की ही प्रतीक हैं। ब्रह्मसंहिता में राधा और कृष्ण के नित्ययुग्म पर जो विचार किया गया है उनकी की दृष्टि से-'जो राधा हैं, वही कृष्ण हैं और जो कृष्ण हैं, वही राधा हैं' ऐसा मानकर उनके **'रसौ वै सः'**[8] इस तैत्तिरीयोपनिषद् वाक्य से राधा और कृष्ण के साकार रूप को बताया गया है। सूर साहित्य एवं हरिव्रज्या में राधा को आभीर जाति की देवी तथा उनको कृष्ण से सम्बन्धित बताते हुए राधा की प्रधानता को स्वीकार किया गया है। कुछ विद्वान् 'राधा' भाव का विवेचन दार्शनिक दृष्टि से करते हुए राधाकृष्ण के युगल रूप की उत्पत्ति का आधार सांख्यशास्त्र के पुरुष-प्रकृतिवाद को मानते हैं।[9] वैदिक वाङ्मय में प्रत्यक्ष रूप राधा के विषय में तो वर्णन नहीं प्राप्त होता किन्तु अनेक स्थलों पर 'राधस्' शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसका सम्बन्ध प्रत्यक्षतः 'राधा' से नहीं माना जा सकता है क्योंकि जिन स्थलों पर 'राधस्' शब्द का प्रयोग हुआ है, वह धन, अन्न, पूजा, नक्षत्र आदि अर्थों का मुख्य रूप से बोधक है, न कि किसी आराध्या देवी के रूप का। ऋग्वेद में **'स्त्रोतं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते पिबात्वस्य विभूतिरस्तु सुनृता**[10] तथा **'इदं हयन्वोजसा सुतं राधानां पते गिर्वणः'**[11] अदि मन्त्र मुख्य रूप से राधा की उत्पत्ति पर ही प्रकाश डालते हैं। यही मन्त्र सामवेद तथा अथर्ववेद[12] में समान रूप से प्राप्त होता है। ऋग्वेद के वरूण, अग्नि आदि सुक्तों के मन्त्रों में अनेक देवों के लिये 'गोपा' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है जैसे-**'अपश्यं गोपामनि पद्यमानम्'**[13] **'इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः'**[14] **'जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविः'**[15], **'ऋतस्य गोपावधि तिष्ठेता रथम्'**[16], **'राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्'**[17] तथा ऋग्वेद के विष्णु सुक्त के एक मन्त्र में **'त्रीणि पदा विचक्रमें विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्'**,[18] में विष्णु के लिये जो 'गोपा' शब्द का प्रयोग हुआ है यही 'गोपा' पद कालान्तर में 'गोप' रूप में प्रतिष्ठित हुआ जो केवल विष्णु के लिये ही नहीं अपितु कृष्ण-लीला के विस्तार को भी नैसर्गिक रूप से प्रमाणीकृत किया। वेदों के सार भाग तथा उनके रहस्य को प्रकट करने वाले उपनिषदों में मुख्य रूप से राधिकोपनिषद् तथा राधिकातापनीयोपनिषद् ही 'राधा' से सम्बद्ध है। जिनमें से राधिकोपनिषद् में तो राधा को कृष्ण की परमान्तरंगभूता ह्लादिनी शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा **'कृष्णं समाराधयति सदा' इति राधिका गान्धर्ववीति व्यपदिश्यते'** अर्थात् कृष्ण के द्वारा जो आराधित हैं, वही राधा हैं तथा कृष्ण की सदा आराधना करने वाली राधिका हैं, का जो उल्लेख प्राप्त होता है वह राधा से तो प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है ही और इस मन्त्र में प्रयुक्त 'गान्धर्वी' शब्द भी 'राधा' का ही बोधक है। इसी 'गान्धर्वी' शब्द का उल्लेख **'गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद्'** में भी प्राप्त होता है जिसमें कहा गया है कि-'व्रज की गोपानायें, श्रीकृष्ण

की समस्त महीषियाँ तथा वैकुण्ठ की अधीश्वरी श्री लक्ष्मी जी इन्हीं श्रीराधा की अंशरूपा हैं। ये राधा और कृष्ण एक होते हुए भी शरीर से क्रीड़ा के लिये दो हो गये और राधिका की अवहेलना करके जो श्रीकृष्ण की आराधना करना चाहता है वह मूढ़तम हैं।' जिसमें श्रीकृष्ण एवं राधा के तात्त्विक एवं अभदेस्वरूप का स्पष्टीकरण किया गया है। अथर्ववेदीयोपनिषद् जो कि **राधिकातापनीयोपनिषद्** के नाम से जानी जाती है जिसमें राधा की स्तुति के प्रसंग में-

यस्या रेणु पादयोर्विश्वभर्ता, धरते मूर्ध्नि रहसि प्रेमयुक्तः।
स्त्रस्तवेणुः कबरीं न स्मरे, तल्लीनः कृष्णः क्रीतवत्तं नमामः।।[19]

प्रस्तुत श्लोक का जो उल्लेख किया गया है वह राधिका की सर्वश्रेष्ठता तथा श्रीकृष्ण का राधा के प्रति उत्कट प्रेम का ही द्योतक है। महाभारत के प्रख्यात टीकाकार नीलकण्ठ ने अपने ग्रन्थ 'मन्त्रभागवत्' में भी कृष्ण के नाना चरित तथा लीला का वर्णन ऋग्वैदिक प्रसंगो के अनुसार किया है। इसके अतिरिक्त पुराणों में भी राधाकृष्ण की ललित तथा मधुर लीलाएँ बड़े विस्तार के साथ वर्णित हैं, जिसमें राधा का नाम स्पष्ट रूप से तो अंकित नहीं है किन्तु ये प्रसंगतः राधा-कृष्ण से ही सम्बद्ध प्रतीत होते हैं। इन पुराणों में जिसमें सर्वाधिक राधा-कृष्ण के विषय में चर्चा की गई है वह **'भागवत पुराण'** ही है। भागवत पुराण के दशम स्कन्ध में उल्लिखित-**''अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः। यन्नो विहाय मो-विन्दः प्रीतो यामनयदूरहः।।''**[20] श्लोक में राधा और कृष्ण के युगलत्व स्वरूप तथा कृष्ण के प्रति राधा एवं गोपियों के प्रेम का एवं राधा के नाम को झीने चादर से ढके हुए रत्न की भांति झलकने वाली उसकी पारदर्शिता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि-'कृष्ण रासमण्डल में से एक अपनी प्रियतमा गोपी को साथ लेकर अन्तर्निहित हो जाते हैं और इस व्यापार से सब गोपियाँ व्याकुल हो उठती हैं और कृष्ण को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करती हैं। खोजते-खोजते यमुना के उस विमल बालुकाराशि में उन्हें कृष्ण के पद-चिन्ह दिखाई पड़ते वे अकेले न होकर युगल रूप में थे।' **'नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां, विदूरकाष्ठाय मुहुःकुयो-गिनाम्। निरस्तसामयतिशयेन राधसा, स्वधामनि ब्रह्मणि रस्यते नमः'।।**[21] श्रीमद्भागवत् के दशम् स्कन्ध के इस श्लोक में राधा की श्रेष्ठता को द्योतित करते हुए उनके स्वरूप वर्णन में कृष्ण को सात्त्वत भक्तों के पालक, कुयोगियों के लिये दुर्ज्ञेय तथा क्रीड़ा करने वाले तथा राधा को समानता और आधिक्य से विहिन अर्थात् श्रेष्ठतर बताया गया हैं पुराणों में **'काचिदेवताभ्यधिकाः कुतः अनेकोटिब्रहमाण्डपतिर्यस्या वशो हरिः'** के माध्यम से श्रीकृष्ण को राधा के वशवर्ती ही नहीं अपितु राधा को इस पूरे ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाली बताया गया है। जो कि भागवत पुराण में वर्णित 'गोपी' से ही सम्बन्धित है जो संभवतः राधा की उत्पत्ति का मूलाधार ही है। किन्तु राधा का स्पष्ट रूप से वर्णन जो **'पद्मपुराण', 'देवीभागवत पुराण'** एवं **'ब्रहमवैवर्त पुराण'** में प्राप्त होता है वह अद्भुत ही है और साथ ही **'मत्स्यपुराण'** में राधा को वृन्दावन की अधीश्वरी कहा गया है। जीवगोस्वामी ने तो 'ब्रह्मसंहिता' की टीका में **'राधा वृन्दावने इति मत्स्य पुराणात्'** कहकर राधा की स्थिति को मत्स्य पुरण में ही माना है तथा इन्होंने अपने ग्रन्थ 'उज्जवल नीलमणि' में राधा के गाँधर्वी नाम का उल्लेख करते हुए ब्रह्मसंहिता की टीका में ऋक्परिशिष्ट के प्रसंग **'राधयामाधवोदेवो माधवेनैव राधिका'** में राधा एवं माधव के सहोत्पत्ति को स्वीकार किया है। पद्मपुराण के ब्रह्मखण्ड में तो 'राधाष्टमी' के व्रत के विधान का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है जिसमें राधा के जन्म के विषय में कहा गया है कि-''भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी को वृषभानु की यज्ञभूमि में राधा का प्रकाट्य हुआ। यज्ञ के लिये जब राजा वृषभानु, भूमि का शोधन कर रहे थे, तब उन्हें राधा मिली और उन्हें लाकर उन्होंने अपनी पत्नी को दे दिया, जिन्होंने उस भूमिजा कन्या का लालन-पालन कर उन्हें तरूणावस्था को प्राप्त कराया।[22] पद्मपुराण में वर्णित यह प्रसंग 'राधा' को

'सीता' से समानता प्रस्तुत करता है। पद्मपुराण में ही **'न राधिकासमा नारी न कृष्णसदृशः पुमान्'** से राधा को नारियों में श्रेष्ठ तथा कृष्ण को पुरुषों में श्रेष्ठ स्वीकार कर उन्हें एक युगल-मूर्ति रूप आदर्श-नायक-नायिका का स्थान प्रदान किया गया है। देवीभागवत पुराण में 'राधा' को सकल कामनाओं का सिद्धि करने वाली तथा राधा के अभाव में कृष्ण की अर्चना को अपूर्ण बताते हुए राधा और कृष्ण के परस्पर अभेदाश्रय की बात कही गई है एवं राधा को 'सारभूता', 'परमाद्या', 'नित्य निकुंजेश्वरी', 'रासक्रीड़ा की अधिष्ठात्री देवी' मानते हुए उन्हें 'गोपी वेश धारिणी', 'परमाह्लादस्वरूपिणी' माना गया है।[23] ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में राधा की उत्पत्ति,स्वरूप विषयक विवरण तथा कृष्ण एवं राधा की रासलीलाओं का सविस्तार वर्णन के माध्यम से राधा को लौकिक एवं पारलौकिक सिद्ध किया गया है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण के कृष्णजन्मखण्ड में राधाकृष्ण संवाद के प्रसंग में राधा के साथ कृष्ण के अविनाभाव सम्बन्ध को प्रकट करते हुए पार्वती के द्वारा राधा के प्रति कहे गये वचन का उल्लेख है कि- 'हे राधा! जिस प्रकार दूध में धवलता, अग्नि में दाहकता, पृथ्वी में गन्ध, जल में शीतलता का निवास रहता है ठीक उसी प्रकार कृष्ण में तुम्हारी स्थिति है।[2424]

यथा क्षीरेषु धावल्यं यथा वहनो च दाहिका।

इसके अतिरिक्त वायुपुराण, वाराहपुराण, नारदीय पुराण में भी राधा का उल्लेख प्राप्त होता है।

यदि पुराणों के अतिरिक्त 'राधा' नाम की प्राचीनता तथा वर्णन पर विचार किया जाय तो महाकवि जयदेव कृत **'गीतगोविन्द'** में वर्णित राधा-कृष्ण की लीलाओं में, राधा के नायिकात्व एवं कृष्ण के नायकत्व रूप में जो वर्णन किया गया है उसके आधार पर 12वीं शती. 'राधा-तत्त्व' के उन्मीलन का काल माना जाय तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसी तथ्य पर समर्थन प्रस्तुत करने वाले 12वीं शताब्दी में रचित लीलाशुक बिलवमंगल कृत **'कृष्णकर्णामृत काव्य'** तथा श्रीधर दासकृत **'सुदुक्तिकर्णामृत'** नामक सुक्ति ग्रन्थ मुख्य हैं। इसी क्रम में दशम् शती मे रचित **'नलचम्पू'** में त्रिविक्रमभट्ट ने श्लेश के द्वारा राधा नाम का संकेत किया है। नवम शताब्दी में रचित आनन्दवर्धन ने **'ध्वन्यालोक'** के द्वितीय उद्योत में भी श्रीकृष्ण से उद्धव द्वारा राधा के कुशलता पूछने के प्रसंग का उल्लेख किया है कि-"हे भद्र! गोपवधुओं के विलासखा, राधा की एकान्तक्रीडाओं के साक्षी, यमुना-तट के लताकुञ्ज तो कुशल से हैं? अथवा अब तो मदनशय्या के लिये मृदु किसलयों के तोड़ने का प्रयोजन न रहने पर नीलकान्ति को छिटकाते हुए वे पल्लव रूढ़ हो जाते होगें।[25]" इसके अतिरिक्त भट्टनारायण ने राधा की लीला का स्पष्ट वर्णन करते हुए कहते हैं कि -"यमुना के किनारे रास-क्रीड़ा में प्रेम तथा अनुराग छोड़कर कुपित होकर राधिका कहीं चली गई। भगवान् उन्हें खोजने के लिये इधर-उधर घूमने लगे। राधा के पद-चिन्हों पर अपना पैर रखते ही उन्हें रोमांच हो गया। प्रेम की इस विभूति तथा अभिव्यक्ति को देखकर राधा प्रसन्न हो गई तथा कृष्ण के प्रेम की दृढ़ता को देखकर कृष्ण को बड़े प्रेम से देखने लगीं।"[26] जो आठवीं शताब्दी तक राधा का स्पष्ट वर्णन प्राप्ति का प्रमाण प्रस्तुत करता है। पांचवी शती में रचित **'पंचतन्त्र'** में भी राधा का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त महाकवि भास के **'बालचरित'** में तथा हाल की **'गाथा सप्तशती'** की अनेक गाथाओं में भी ब्रज-लीला वर्णन में जो श्रीराधा का नाम उल्लिखित है जो साहित्य जगत में 'राधा' के नाम के प्रथम उल्लेख का ही द्योतक है।

इस प्रकार जहाँ एक ओर कृष्णोपनिषद्, गर्गसंहिता, ब्रहमसंहिता, ब्रह्माण्डपुराण, स्कन्दपुराण, नारदीय पुराण, श्रीमद्भागवत् पुराण तथा वेदादि राधा की व्युत्पत्ति पूजा कल्पना, उद्भव आदि को आधार प्रस्तुत करते हैं वहीं दूसरी ओर इनके प्रति लौकिक श्रद्धा का आधार प्रस्तुत करने का श्रेय जयदेव (कृत गीतगोविन्द), भट्टनारायण, आनन्दवर्धन, रूपगोस्वामी तथा अनेक बल्लभ, चैतन्य, राधाबल्लभ आदि सम्प्रदायों को प्राप्त है और **'तन्त्र शास्त्र'** में तो इन्हें 'देवी' तथा 'राधिका' का स्वरूप प्रदान करते हुए कहा गया कि-'श्रीकृष्ण की सेवारूपी क्रीड़ा

की नित्य-निवासस्थली होने से या श्रीकृष्ण के नेत्रों को अनन्त आनन्द देने वाली द्युति से समन्वित परमसुन्दरी होने के कारण ये 'देवी' हैं तथा आराधना करने के कारण ही वे 'राधा' नाम से पुकारी जाती है। प्रेमास्पद श्रीकृष्ण की सब प्रकार से इच्छा पूर्ण करने के रूप में ये नित्य ही तन-मन-वचन से श्रीकृष्ण की आराधना में अपने को नियुक्त करती हैं, इसलिये ये 'राधिका' हैं। जो कि इनके एक विस्मकारी स्वरूप का सृजन ही है। इसके अतिरिक्त इन्हें तन्त्र शास्त्र में 'परदेवता', 'सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्ति', 'सम्मोहिनी', 'परा' आदि नामों से अभिहित करते हुए[2727]

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।

राधा के बिना श्याम तेज की अर्चना करने वाले व्यक्ति को पातकी कहा गया है।[28] अतः उपरोक्त तथ्य भारतीय संस्कृति में राधा की कल्पना , पूजा, उत्पत्ति एवं उनके उद्भव एवं विकास को क्रमिक रूप से प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ

[1] भारतीय साहित्य में राधा-सम्पादक-कल्याणमल्ल लोढ़ा-(पृ. 258)

[2] संस्कृत-हिन्दी शब्दकोष, वामन शिवराम आप्टे- (पृ. -919)

[3] अमरकोश-रामाश्रमी टीका- 1/3/22।

[4] श्रीराधासुधानिधि-पृ.-97 (श्लोक-187)

[5] नारद पांचरात्र-2.3-36।

[6] (प) ब्रह्मवैवर्तपुराण-अध्याय-16।
(पप) ब्रह्मवैवर्तपुराण- अध्याय-13।

[7] 'भारतीय साहित्य में राधा'-पृ.-2।

[8] तैत्तिरीयोपनिपद्-सप्तम अनुवाक।

[9] भारतीय साधना और सूर साहित्य, लेखक-डॉ. मन्शीराभ शर्मा(पृ.-175)

[10] ऋग्वेद-1-30-5।

[11] ऋग्वेद-3/51/10।

[12] अथर्ववेद-20/45/2।

[13] ऋग्वेद-1/164/31।

[14] ऋग्वेद-1/164/21।

[15] ऋग्वेद- 5/11/1।

[16] ऋग्वेद-5/61 /1।

[17] ऋग्वेद-1/1/8।

[18] ऋग्वेद-1/22/18।

[19] राधिकातापनीयोपनिषद् - (श्लोक-4)।

[20] श्रीमद्भागवत पुराण-10/30/24।

[21] श्रीमद्भागवत पुराण--10/4/ 14।

[22] पद्मपुराण, ब्रह्मखण्ड-सप्तम अध्याय, (श्लोक-39-40)।

[23] (प) कृष्णार्चायां नाधिकारा यतो राधार्चनं बिना। वैष्णवैः सकलैस्तस्मात् कर्त्तव्यं राधिकार्चनम्।।
(पप) कृष्णप्राणाधिका देवी तद्धीनों विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तथा बिना न तिष्ठति।।
(देवी भागवत-खण्ड-9-50/17-18)
भुवि गन्धो जले शैल्यं तथा कृष्णे स्थितिस्तव।।
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण जन्म खण्ड-अध्याय-27)

[25] तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहःसाक्षिणां
क्षेम भद्र कलिन्दशैलतनयातीरे लतावेश्मनाम्।
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनमृदुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठीभवन्ति विगलन्नीलात्विषः पल्लवाः।।
(ध्वन्यालोक-2/5)

[26] कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामृत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्ती मनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रति मानिवेशित पदस्योद्भूतरोमोद्गते
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयिता दृष्टस्य पुष्णातु वः।।
(वेणी संहार) सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा।।
(बृहद्गौतमीय तन्त्र)

[28] गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्पयेत्।
जयेद्वा ध्यायते वापि स भवेत पातकी शिवे।।
(सम्मोहन तन्त्र)

लोककलाओं में राधा और कृष्ण

नीतू कमठान

शोध छात्रा, संगीत विभाग
दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा।

लोककलाऐं मानव जीवन का अभिन्न अंग है, उन लोककलाओं में जीवन के विवध प्रतिबिम्ब दृष्टव्य होते है। लोककलाओं में केवल मानव जीवन ही नहीं बल्कि राधा और कृष्ण का जीवन चरित्र भी दिखाई देता है। जिस प्रकार अनेक साहित्यकार राधा-कृष्ण के प्रेम को अपने लोककथाओं, लोकगाथाओं आदि के द्वारा अभिव्यक्त करते है उसी प्रकार संगीतकार भी लोकगीतों के माध्यम से राधा-कृष्ण के श्रृंगारिक भावों को अभिव्यक्त करते है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में भी शोधार्थी ने लोकभजनों के माध्यम से राधा और कृष्ण के अगाध प्रेम को प्रस्तुत किया है -

लोकभजन

मनमोहन सांवरो गिरधारी, रे
तेपे जांउ मैं वारी वारी। रे,
गउवन के पाछे तू डोले,
अधर मुरलिया मीठी बोले,
राधा भई मतवारी, रे।
जसुदा के अंखियन कै तारे
नन्द बाबा के बहुत दुलारे,
ग्वालन के हितकारी, रे।
बसुदेव बाबा तात तिहारे
बलदाउ तोरे भ्राता प्यारे
देवकी तोरी महतारी, रे।।

ताल-कहरवा-स्थाई

स ग ग ममो ह न साँध - ध धजाँ ऽ ऊ मै~
म गम नप ध नी सांव रो गि रिध - <u>नी</u> -वा ऽ
री ऽ0 ध - सां <u>नि</u>धा ऽ ऽ रीध - सां <u>नि</u>वा ऽ ऽ
रि~ ध प ग मरे ऽ तो पेध प म गरे ऽ म न0

अन्तरा -

ग म प धग उ व नसां गं रें मंअ ध र मुनी - नी नीरा ऽ धा भ~ नी - सां - के ऽ पा ऽ गं रें सां - र लि या ऽ नी - सां सां ई ऽ म रा 0 नी - सां -छे ऽ तू ऽनी - सां -मी ऽ ठी ऽध - सां <u>नि</u>वा ऽ ऽ रिऽध सां <u>नि</u> पडो ऽ ले ऽध सां <u>नि</u> धबो ऽ ले ऽध प म गरे ऽ म न0

शेष अन्तरें भी इसी प्रकार गाये जायेंगे।

लोक भजन - 'बरखा'

श्याम तोरी बंषी बजे धीरे-धीरे
बरखा बरस रही जमुना के तीरे।।
उमड़ घुमड़ कर बदरा आये।
वन में मोरवा नाच दिखाये
ग्वाले बजाय रहे ढोल मंजीरे।।
सावन के रिमझिम माँ श्याम जी भीजैं
भीगी भीगी राधे पे साँवरिया रीझै
ह्रदय माँ राधा की सूरत बसी रे।।

दादुर पपीहरा झींगुर टनकारैं
स्याम संग राधे की पायल झनकारै
राधे संग स्याम नाचै नटवरी रे।।

ताल - कहरवा - स्थाई

ग - सारे गमस्या ऽ ऽम तोरीऽग रे रे रेबं सी ऽ ब0
ग - रे रेजै ऽ धी रेऽप - म -धी ऽ रे ऽ 0

अन्तरा -

ग ग ग गउ म ड़ घुऽ प प प पम ड़ क
र0 ध ध ध नीब द रा ऽऽ प ध प
-आ ऽ ये ऽ0

दूसरी पंक्ति इसी प्रकार तथा आगे की पंक्ति स्थायी की भांति एवं सब अन्तरे एक समान ही गाये जायेंगे।

लोक भजन

राधे स्याम कै जोरी पे बलि बलि जावौं,
मन मन्दिर माँ स्याम कै सुरतिया बसावौं,
कैसी सुन्नर सोहै जोरी
स्याम, सलोने राधा गोरी,
इन नैनन माँ जुगल जोरी का बसावौ।
राधा झूमैं बाँसुरिया पै
मोहिनी मूरत साँवरिया पै,
तोरे चरनन माँ नित नित सीस झुकावौं।
स्याम कै हिरदय बिराजैं राधा,
राधा कै पीत ने स्याम को बाँधा,
ऐसी मोहिनि छबि कै दरस नित पावौं।
स्याम कहैं राधे राधे
साँवरिया संग डोलैं राधे
राधेस्याम, राधेस्याम, राधेस्याम सब गावौ।

स्थायी -

ताल दादरा

म म -रा धे ऽऽग - गस्याऽ मा0 - रे -ऽ कै
ऽऽ स नि़ रेजो ऽ री0 - रे -ऽ पै ऽऽ
ग म -ब लि ऽ0 रे रे -ब लि ऽऽ स स -जा
ऊ ऽ0

स - -कै ऽ ऽऽ ग म -सी ऽ ऽ0 प - -सुं
ऽ ऽऽ प प -द र ऽ0 ग - -सो ऽ ऽऽ
म - -है ऽ ऽ0 ग़ - -जो ऽ ऽऽ रे सा -री
ऽ ऽ0

पं. जयदेव कृत गीतगोविन्द में वर्णित कृण-राधा प्रसंग में सांगीतिक तत्व

निधि श्रीवास्तव

शोधछात्रा
संगीतशास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भक्त कवियों में शिरोमणि रसिकराज श्री जयदेव अपनी अमरकृति 'गीतगोविन्द' के कारण विख्यात हैं, किन्तु उनका प्रामाणिक जीवन वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है। जयदेव के सम्बन्ध में अब तक के अनुसंधान से ज्ञात होता है कि उनका जन्म बंगाल राज्यान्तर्गत 'वीरभूमि' नामक स्थान के निकटवर्ती किंदुविल्ब ग्राम में सं. 1165 के लगभग हुआ था।[1] जयदेव के सम्बन्ध में कहा गया है कि जब वे छोटे थे, तभी उनके माता-पिता का देहान्त हो गया। इसके उपरान्त वे जगन्नाथपुरी चले गये थे। उनका आरम्भिक जीवन भगवान जगन्नाथजी के भक्तिपूर्ण गीतों का गायन करते हुए बीता था। जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन (सं. 1176-1235) की सभा में विद्यमान थे। लक्ष्मणसेन संस्कृत काव्य के प्रेमी और सुकवियों के आश्रयदाता थे। उनके राजदरबार में गोवर्धनाचार्य, उमापतिधर, शरण और महाकवि धोयी जैसे कविपुंगव विद्यमान थे। जयदेव जन्मजात 'कवि और गायक' थे। अपने सरस गेय काव्य के कारण वे राजा लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि हो गये थे। उनकी (कविता-माधुरी) से प्रभावित होकर ही राजा लक्ष्मण सेन ने उन्हें दरबार में प्रतिष्ठित पद प्रदान किया था।

जयदेव गृहस्थ थे। उन्होंने विवाह किया, उनकी पहली पत्नी का नाम रोहिणी था जिससे उनको कृष्णदेव नाम का पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ।[2] उनकी दूसरी पत्नी का नाम पद्मावती था। इन्हीं पद्मावती के समय में आदरणीय कवितारत्न का विभूषण 'गीत-गोविन्द' काव्य जयदेव ने रचाा।[3] पद्मावती से परिचय के पश्चात् जयदेव अपने स्थापित इष्टदेव की सेवा, विवाहार्थ द्रव्य एकत्र करने की इच्छा, तीर्थाटन एवं धर्मोपदेश की रुचि से निज देश को छोड़कर बाहर निकले।

श्री बल्लभ सम्प्रदाय में 'गीतगोविन्द' का विशेष महत्व है। बल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी की 'गीतगोविन्द' की प्रथम अष्टपदी पर एक रसमय टीका भी रोचक है, जिसमें दशावतार-वर्णन, श्रृंगारपरक लगाया गया है। वैष्णवों में प्रणाली है कि अयोग्य स्थल में 'गीतगोविन्द' को नहीं गाना चाहिए, क्योंकि उनका विश्वास है कि जहां भी 'गीतगोविन्द' गाया जाता है, वहां भगवान का अवश्य ही प्रादुर्भाव होता है, इस पर वैष्णवों में एक आख्यायिका प्रसिद्ध है एक वृद्धा को 'गीतगोविन्द' की (धीरे समीर यमुना तीरे) यह अष्टपदी याद थी। वह गोवर्धन के नीचे किसी ग्राम में रहती थी। एक दिन वह बैंगन के खेत में पेड़ों को सींचने के साथ ही यही अष्टपदी भी गाती जाती थी, इससे कृष्ण भी उसके पीछे-पीछे फिरे। श्रीनाथजी के मंदिर में जब तीसरे पहर उत्थान हुआ तो गोस्वामी जी ने देखा कि श्रीनाथजी का बागा फटा है तथा बैंगन के कांटे तथा मिट्टी लगी हुई

है। इस पर भगवान से जब पूछा गया तो पता चला कि अमुक वृद्धा ने 'गीतगोविन्द' गाकर मुझे बुलाया, इससे कांटे तथा मिट्टी लग गयी, क्योंकि वह गाती थी और जहां-जहां जाती थी मैं उसके पीछे-पीछे फिरता था। तभी से गोस्वामी जी ने यह आज्ञा वैष्णवों में प्रचारित की कि कु-स्थल पर कोई गीतगोविन्द न गावे।

ऐसा कहा जाता है कि 'प्रिये चारशीले' इस अष्टपदी में 'स्मर गरल खण्डनम् मम् शिरसि मण्डन' इस पद के आगे जयदेव कवि की इच्छा हुई कि 'देहि पद-पपल्लवभुदारञ्च' ऐसा पद रखें, परन्तु ईश्वर के लिए ऐसा पद रखने का उनका साहस न हुआ, इससे पुस्तक छोड़कर ये स्नान करने चले गये। भक्त-वत्सल, भक्त-मनोरथपूरक भगवान् इसी समय स्नान से फिरते हुए जयदेव कवि के घर आये, प्रथमतः पद्मावती ने जो रसोई तैयार की उसे ग्रहण किए, तत्पश्चात् पुस्तक खोलकर देहि पदपल्लवमुदारं लिखकर शयन करने लगे। इतने में जयदेव कवि आए तो देखे कि पतिव्रता पद्मावती जी बिना जयदेव कवि के भोजन किये जल तक भी नहीं पीती थी, वह भोजन कर रही है। जयदेव कवि ने कारण पूछा, पद्मावती ने आश्चर्य से सब वृत्तान्त कहा। इस पर जयदेव कवि ने जाकर पुस्तक देखी तो 'देहि पदपल्लवमुदारं' यह पद लिखा है। वह जान गए कि यह सब चरित उसी रसकेन्द्र शिरोमणि भक्त-वत्सल भगवान का है। पुनः गद्‌गद् होकर पद्मावती की थाली का प्रसाद लेकर ही उन्होंने अपने को कृतकृत्य माना।

जयदेव कवि वैष्णव-सम्प्रदाय में एक ऐसे उत्तम पुरुष हुए हैं कि सम्प्रदाय की मध्यावस्था में इनका नाम मुख्य रूप से लिया गया है। यथा-

> *"विष्णुस्वामी समारम्भां जयदेवादि मध्यगा।*
> *श्रीमद्धल्लभपर्यतं स्तुमों गुरुपरम्पराम्।।"*[14]

शताब्दियां बीत गई, जयदेव कवि इस भूमण्डल को छोड़कर परमधाम चले गए, किन्तु अपनी कवित्व-शक्ति से आज भी हमारे समाज में वे सादर स्थित हैं। जयदेव कवि का पवित्र शरीर केन्दुली ग्राम में समाधिस्थ है। यह समाधि-स्थल मनोहर लताओं से वेष्ठित होकर अपनी सुन्दरता से आज भी जयदेव कवि के सुन्दर चरित्र तथा चित्त का परिचायक है। इनके स्मरणार्थ केन्दुली ग्राम में आज भी मकरसंक्रान्ति के दिन बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें 70-80 हजार वैष्णव एकत्रित होते हैं तथा इनकी समाधि के चारों ओर गाते-बजाते संकीर्तन करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अपूर्व बुद्धि के साथ ही साथ वाणी (सरस्वती) की कृपा उन पर खूब थी, तभी तो लक्ष्मण सेन, जैसे राजा के दरबार में अनेक कवि-पुंगवों के बावजूद जयदेव विशिष्ट प्रभा के समान प्रभाविष्ट थे। महाकवि जयदेव अत्यनत उदार एवं दयालुचित्त थे। डाकुओं के द्वारा हाथ-पांव काट लिये जाने पर अनुकूल अवसर पाकर, उनके मन में जो आक्रोश की भावना अपनी चाहिए उसका आना तो दूर, छायाचित्र भी इस उदारात्मा के अन्दर प्रविष्ट न कर सका। महाकवि जयदेव जहां भी रहे, उनके व्यक्तित्व ने उनकी विशष्टता की मरुभूमि खुद ही तैयार की।

'गीतगोविन्द' जयदेव की एकमात्र उपलब्ध कृति है। जयदेव ने अपने काव्य में भगवान श्रीकृष्ण तथा रासेश्वरी श्रीराधाजी की ललाम-लीलाओं का चित्रण करके, एक निर्दोष और अत्यधिक अभिनव कलाकृति का सृजन किया है। इनकी प्रसिद्धि तो इस बात से प्रमाणित होती है कि शताब्दियों तक उनके सम्मान के लिए प्रतिवर्ष उनके जन्मस्थान में एक उत्सव मनाया जाता है, जिसमें रात्रि में उनके काव्य के गीत गाये जाते हैं और लोग उनकी समाधि पर माल्यार्पण करते और नाचते-गाते हैं। सन् 1499ई. में बंगाल के शासक ने यह राजाज्ञा प्रस्तुत कर दी कि कोई भी नर्तक या वैष्णव सिर्फ जयदेव के ही गीतों को सीखे, साथ ही मन के सौन्दर्य को बिगाड़ देने वाले सर विलियम जोन्स के अनुवाद के माध्यम से भी जयदेव के प्रशस्त गुणों को गैटे (जर्मन कवि) ने उसी प्रकार प्रशंसा की, जैसा कालिदास के 'मेघदूत' तथा 'शकुन्तला' नाटक की थी।

जयदेव की कविता का स्वरूप बहुत ही मौलिक है। इससे यह धारणा फैल गयी कि यह कविता एक

छोटा-सा गोप-नाटङ्क (लेरिक ड्रामा) है, जैसा कि लासेन का कहना है कि यह एक परिष्कृत यात्रा है, बॉन श्रोडर भी यही नामकरण पसन्द करते हैं। दूसरी तरफ पिशेल तथा लेवी इसको गीत तथा नाटङ्क की मध्य कोटि के अन्य बातों के अतिरिक्त इस आधार पर रखते हैं कि यह यात्रा कोटि के नाटङ्क प्रयोगों से बिल्कुल भिन्न है, क्योंकि इसमें वृत्त-परिवर्तन के पद्य एक निश्चित रूप में रखे गये हैं, उनको तुरन्त रचकर बोलने के लिए नहीं छोड़ दिया गया है, परन्तु पिशेल भी उसको भावुकतामय श्रृंगारिक नाटङ्क कहते हैं। डॉ. कीथ का कहना है कि प्रेम-काव्य के रूप में गीतगोविन्द भारतीय साहित्य में अप्रतिम है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि 'गीतगोविन्द' वह कृत है, जो युग-युगान्तर तक भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य को उलझन में डाले हुए थी तथा विभिन्न विद्वानों ने इसकी समान रूप से प्रशंसा भी की।

जयदेव ने 'गीतगोविन्द' काव्य को विभिन्न सर्गों में विभाजित किया है, जो इस बात का संकेत है कि उन्होंने इसे सामान्य काव्य की कोटि का माना है। अंकों और विष्कम्भकादि में विभक्त करके इसे नाटकीय रूप देने का उनका विचार नहीं था। दूसरी ओर इसे लिखते समय उनके ध्यान में बंगाल की वे यात्राएँ थीं, जिनमें एक आदियुगीन ढंग के नाटङ्क में कृष्ण के सम्मानार्थ संगीत व गानों के साथ नृत्य किया जाता था। अपनी कविता में अत्यधिक प्राणप्रद-तत्त्व के रूप में ऐसे गीत को रखते समय जयदेव ने निःसन्देह भविष्य में मन्दिरों तथा उत्सवों में होने वाले उन गीतों के उपयोग का पूर्व साक्षात्कार कर लिया था। हस्तलिखित पोथियों में गीतों को संगीत के राग और ताल और उसके साथ होने वाले नृत्य के पारिभाषिक शब्दों द्वारा ठीक-ठीक संकेत के साथ दिया गया है। कवि का अभिप्राय निश्चित रूप से यही है कि वह गीतों को अपने मानस-चक्षुओं के सम्मुख इस प्रकार गाया जाता हुआ देखें। इस प्रकार जयदेव के इस कविता-माधुरी का सृजन निश्चित रूप से मौलिक था, क्योंकि यात्राओं के लोकप्रिय गीतों द्वारा इतनी सुन्दर तथा परिष्कृत कृति का निर्माण एक बहुत बड़ा कदम है।

जयदेव विरचित 'गीतगोविन्द' विशुद्ध प्रतीकात्मक गीतिकाव्य है। गीतिकाव्य की पूर्ण प्रतिष्ठा के निमित्त कमनीय साधनों का अस्तित्व आलोचक-वर्ग मानता है, वे समय अपने परिपूर्ण वैभव के साथ गीतगोविन्द में वर्तमान है। जयदेव ने संस्कृत के पुराणपंथी छन्दों की अवहेलना न करते हुए भी कविता को एक नया परिधान दिया और ध्रुवक देकर पद लिखने की परम्परा को बल दिया। वैसे गीतगोविन्द की पदावलियो में संस्कृत साहित्य की परम्पराएं, श्रृंगार-वर्णन की रूढ़ियां, अलंकृत वर्णन-शैली, अनुप्रास और यमक का आधिक्य अपने मौलिक रूप में सन्निहित है तथा यह भी सत्य है कि संस्कृत में पद लिखने की प्रथा छिट-पुट रूप में उनसे पहले भी रही है, किन्तु 'गीतगोविन्द' में उसका इतना प्रांजल और प्रौढ़ स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है कि आगे के कवियों के लिए यही प्रेरणा का स्रोत बन गया, जिसका अनुकरण कर दर्जनों काव्य रचे गये।

'गीतगोविन्द' वस्तुतः गीतिकाव्य (लिरिक पोइट्र) है, क्योंकि जयदेव ने स्वयं ही कहा कि इसके आस्वाद के लिए पाठक के मन में 'संगीत, विष्णु-भक्ति, तथा श्रृंगार-रस आदि के तत्त्व निरूपण की जिज्ञासा हो। इस प्रकार स्वयं जयदेव ने अपने 'गीतगोविन्द' काव्य में संगीत, भक्ति तथा श्रृंगार का सुन्दर पुट देकर संस्कृत काव्य-परम्परा में एक नूतन अभिव्यक्ति को प्रतिपादित किया और भारतीय तथा पाश्चात्य संस्कृत-प्रेमियों को उलझन में डाल दिया।

डॉ. 'डे' का कथन है कि 'पदावली जो गीतगोविन्द के कलेवर के अधिकांश में व्याप्त है, वास्तव में जन-भाषा में प्रचलित अभिव्यक्ति-पद्धति का प्रतिरूप है, संगीतमय छन्द तथा अन्त्यतुक और ध्रुवक प्राचीन संस्कृत-साहित्य में कठिनता से ही कहीं प्रयुक्त हुए होंगे। स्वयं 'पदावली' शब्द का प्रयोग भी जो बाद के बंगाली गीतों में इतना प्रचलित हुआ, संस्कृत में इस अर्थ में कहीं नहीं हुआ, अपितु

जन-साहित्य (लोक-साहित्य) से ही ग्रहण किया गया है।

जयदेव ने अपने काव्य में लीलागान परम्परा का भी निर्वाह किया है। लीलागान की परम्परा अतिप्राचीन है, यह परम्परा दशवीं, ग्यारहवीं शती में बौद्ध-सिद्धों के गान, चण्डीदास के पद तथा विद्यापति की पदावलियों में उड़ीसा और बंगाल में खूब प्रचलित थी। ऐसी लीलागान की परम्परा लोकभाषा में बहुत दिनो से प्रचलित थी और जयदेव भी इससे प्रभावित हुए। लीलागान की यह परम्परा पूर्वी भारत में ही नहीं, अपितु दीर्घकालीन से समूचे उत्तरी भारत में पूर्व से पश्चिम तक जनता में प्रचलित थी।

इस प्रकार जयदेव की वाणी का परिधान गांवों के गीतों में शताब्दियों से चली आती हुई सूत्र से निलमत हुई, फिर भी वह ग्राम्य नहीं है क्योंकि इसका परिमार्जन एक मजे हुए कलाकार के हाथों हुआ है, जो भक्ति और श्रृंगार के आरण से इन्द्रधनुषी रंग की तरह आभा प्रकट करता है। डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा ने ठीक ही कहा है 'पक्के राग के विशेषज्ञ प्रचलित भाषा में स्वतंत्र ही रचना चाहते हैं, उनकी प्रवृत्ति तो यही होती है कि वे एक-दो शब्दों को लेकर उन्हीं को भिन्न-भिन्न रूप से तोड़-मरोड़ कर गाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि 'गीतगोविन्द' संक्षिप्त शास्त्रीय-संगीत से स्वतंत्र होता हुआ एक सर्वसाधारण ग्राह्य स्वरूप रखता है, जिसका आधार लोकगीत समझना चाहिए। कीथ के अनुसार, ''गीतगोविन्द जैसे काव्य की रचना उल्लेखनीय मौलिक कृत है, क्योंकि यह यात्राओं के लोक-गीतों के अत्यन्त सुन्दर कलात्मक काव्य के प्रणयन की दिशा में एक महान प्रयत्न है।

गेयपद शैली की दृष्टि से गीतगोविन्द काफी हद तक लोक-साहित्य से प्रभावित है, जयदेव से पूर्व संस्कृत कवि अपनी रचना पर अपना उल्लेख नहीं करते थे, लेकिन जयदेव ने अपने काव्य के प्रत्येक अष्टपदी के अन्त में अपने नाम का उल्लेख किया है। उन्होंने प्रायः सर्वत्र 'जयदेवभणितम्' का प्रयोग किया। नामोल्लेख की यह प्रथा निश्चित रूए से लोक-साहित्य की प्रवृत्ति थी, उदाहरणार्थ पांचवें अध्याय में उद्धृत सिद्ध कवि सरहपा के गीतों की यह अंतिम पंक्ति उल्लेखनीय है-

''जामें काम कि कामें काम, सरह भणइ, अचिन्त सोधाम।''[5]

'सरह भणइ और जयेदव भणितम्' का साम्य विशेष रूप से लक्षितव्य है। इसी प्रकार 'चौपाई' और 'दोहा' अपभ्रंश के अपने छन्द है। संस्कृत काव्यों में चौपाई-छन्द का प्रयोग नहीं मिलता है, जयदेव ने कई प्रबन्धों की रचना छन्द में की है। इसी प्रकार अपभ्रंश का दूसरा अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रचलित छन्द दोहा है, यह मात्रिक छन्द है, जिसके पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में चौबीस मात्राएं होती हैं तथा ग्यारह और तेरह पर यति होता है,गीतगोविन्द के एक प्रबन्ध में यह छन्द भी प्रयुक्त हुआ है। मात्राएं दोनों पंक्तियों में दोहा के ही समान हैं केवल यति का पालन नहीं किया गया है।

''मामियं चलिता विलोक्य वृत वधुनिचयेन।
सापराधतया मयापि न वारितातिभयेन।
हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव ध्रुव पद।।''[6]

इस प्रकार 'गीतगोविन्द' अपने युग की एक चमत्कारिक एवम् अलौकिक रचना है, जयदेव ने लोकशैली की विधाओं का अध्ययन कर, शास्त्रीय-पद्धतियों को आधार मानकर, कुशल जौहरी के समान शब्दों के नगों को एक-एक करके यथास्थान जड़ दिया है। समूची रचना में ऐसे शब्द खोज निकालना कठिन है, जो भावनाओं के अनुरूप कोमल न हो। शब्दों के अन्तः संगीत का जैसा माधुर्य इस रचना में है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

संगीतरत्नाकर के अनुसार गीत गोविन्द में रागों के नामो का वर्णन मिलता है।

गीतगोविन्द के प्रथम सर्ग के द्वितीय प्रारंभ से ही रागों के विषय में वर्णन मिलता है। उल्लेखित है की मालव राग रुपकताले अष्टपदी पद संख्या 1 से 11 तक प्रथम प्रबंधद्ध (द्वितीय प्रबंध)

गुर्जररागे प्रतिमंठ ताले अष्टपदी पद संख्या १ से ६ बसंत रागे यतृतीय प्रबंधद्ध १ से ८ रामकरी रागे अष्टपदी १ से ८ (चतुर्थ प्रबंध)

द्वितीय सर्ग के अंतर्गतः गुर्जर रागे रूपक ताले अष्टपदी १ से ८ (पंचम प्रबंध)

मालव रागे एक ताली अष्टपदी १ से ८ तक (अष्टपदी प्रबंध)

तृतीय सर्ग : गुर्जर रागे प्रतिमंठ ताले अष्टपदी पद संख्या १ से ८ (सप्तम प्रबंध)

चतुर्थ सर्ग : कर्नाटक रागे एक ताली ताले अष्टपदी पद संख्या १ से ८

देशाख्य एक ताली ताले अष्टपदी पद संख्या १ से ८ (नवम प्रबंध)

पंचम सर्ग : देशव रागेण रूपक ताल अष्टपदी पद संख्या १ से ८

षसथ सर्ग : गुण करी रागेण अष्टपदी पद संख्या १ से ८

सप्तम सर्ग : मालव रागेण एक ताली ताले अष्टपदी पद संख्या १ से ८

बसंत रागे एक ताली ताले अष्टपदी पद संख्या १ से ८

गुर्जर रागे एक ताली ताले अष्टपदी पद संख्या १ से ८

देशव रागे रूपक ताले अष्टपदी

अष्टम सर्ग : भैरवी रागे एक ताली ताले अष्टपदी

नवम सर्ग : गुर्जर रागे रूपक ताले अष्टपदी

दशम सर्ग : देशव रागे रूपक ताले अष्टपदी

एकादश सर्ग : बसंत रागे रूपक ताले अष्टपदी वरातिरागे अडव ताले अष्टपदी

द्वादश सर्ग : विभास रागे एक ताली ताले अष्टपदी

रामकरी रागे रूपक ताले अष्टपदी7। इस प्रकार रागों एवं तालों का वर्णन मिलता है।

अष्टपदी[7]। इस प्रकार रागों एवं तालों का वर्णन मिलता है।

सन्दर्भ-

1. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, द्वादष सर्ग, श्लोक संख्या 5।
2. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, प्रथम सर्ग, श्लोक संख्या 4।
3. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, तृतीय सर्ग, श्लोक संख्या 5।
4. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, प्रथम सर्ग, श्लोक संख्या 2।
5. दासगुप्ता, लिपिका, भारतीय संगीतशास्त्र ग्रंथ परम्परा, लेख डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी, पृ.सं. 251।
6. वहीं।
7. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, श्री मोरेश्वर राय देशमुख, सम्पादन-पं. पुनीत मिश्र।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. श्री जयदेव विरचित, गीतगोविन्द काव्यम्, श्री मोरेश्वर राय देशमुख, सम्पादन-पं.पुनीत मिश्र, श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार, वाराणसी।
2. दासगुप्ता, लिपिका, भारतीय संगीतशास्त्र ग्रंथ परम्परा, लेख डॉ.प्रेमशंकर द्विवेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
3. श्रीवास्तव, आरती, ब्रज रास में संगीत, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली।
4. सिंह, वंदना, ब्रज की संगीत परम्परा, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली।

कृष्ण-राधा से जुड़े सम्प्रदाय और उनकी उपासना पद्धति

निष्ठा सिंह

शोध छात्रा, गायन विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ब्रज का जन-जीवन श्रीकृष्ण के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। उनके इष्ट श्रीकृष्ण अपने जन्म से लेकर समाप्त जीवन को अपने रंग से सरोबोर किए हुए हैं। अतः ब्रज संस्कृति कृष्णमय हो गई है। कृष्ण की लीलाएँ उनके जीवन का आधार स्तम्भ हैं। ब्रज भारत का एक मुख्य तीर्थ स्थान है। ब्रज में उत्सवों एवं त्यौहारों की सदैव विशेषता रही है। प्रत्येक उत्सव या त्यौहार आते ही ब्रज की नर-नारी गायन-वादन में आनन्द-विभोर हो जाते हैं। यहाँ के संगीत में भक्ति-भावना का पुट अधिक मिलता है, उत्सवों की रोचकता के लिए लोकगीतों का गायन आवश्यक होता है। यहाँ की मिट्टी में लोकसंगीत जैसे रचा बसा है। ब्रज के मनोरम वातावरण में कुछ ऐसे प्राकृतिक तत्व हैं, जो साहित्य संगीत एवं कला को सामाजिक रूप से प्रेरणा प्रदान करते हैं। ब्रज लोकगीतों में देवी-देवता सम्बन्धी अनुष्ठानिक गीतों में जोगनी, निराहर, गूगुर, जालपा, कुन्दर कुठारी, पैड़ों और बाहुरी देवी पूजा व जात के गीत गाए जाते हैं तथा इन्हीं अनुष्ठानिक गीतों के अन्तर्गत सैयद, मियाँ, रईस, माता भूमियाँ, भैरों, कमाल खाँ तथा जस गीत भी गाए जाते हैं तथा गंगा यमुना ब्रज के लोकगीतों की इष्टदेवी इन गीतों में चित्रकूट राजघाट पर स्नान आदि के लिए यात्रा का वर्णन होता है। चैत्र मास में फूल-डोल एवं देवी पूजन उत्सव की प्रधानता है। इस उत्सव पर गाए जाने वाले गीतों को लाँगुर या लाँगुरिया गीत कहते हैं।

रुकमनी, सांद, गौरी, सोहर, झुनझुना, पालन्ता, चकई, कणुला सार खिचड़ी, जगमोहन आदि जन्म सम्बन्धी लोकगीत हैं। संस्कार गीतों का भी ब्रज संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान है, यहाँ प्रत्येक संस्कार सम्बन्धी गीत गाए जाते हैं। विवाह संस्कारों पर बै, सहारा, हरितयरा, घोड़ी बनरा खेल लगुन के समय स्यामधना इत्यादि गीत गाए जाते हैं।

ब्रज में ऋतु उत्सव बड़े धूमधाम से बनाए जाते हैं। श्रवण मास में ऋतु गीतों का बड़ा खजाना है। इस समय के उत्सवों में हरियाली तीज, हरियाली अमावस, नागपंचमी आदि मुख्य हैं। इन पर्वों पर गाए जाने वाले गीत रसिया, झूलना, लावनी आदि हैं। ब्रज में कृष्ण जन्माष्टमी बड़े धूमधाम से मनाई जाती है। मन्दिों में एकत्रित होकर लोग कृष्ण से सम्बन्धित गीत गाए जाते हैं। सम्पूर्ण ब्रज का वातवरण कृष्णयमय हो जाता है। इस प्रकार व्रज के लोकगीतों में भारत की सांस्कृतिक एकता का परिचय मिलता है।

"रसिया"

"रसिया" कृष्ण की रसमयी लीला-भूमि ब्रज की एक समृद्ध लोक गायन की परम्परा है। यह लोक-कण्ठ में सहज रूप से पल्लवित हुई है। ब्रज में आज इसकी गेय-परम्परा इतनी समृद्ध है कि इसे "ब्रज लोक-संगीत के सम्राट" की उपाधि भी दी जाने लगी है। यह गीत-विधा मात्र किसी विशेष उत्सव अथवा संस्कार से ही नहीं जुड़ी है, बल्कि यह ब्रज के जन-जीवन में दैनिक कर्मों की तरह ओतप्रोत है।

''रसिया'' शब्द की उत्पत्ति ''रस'' से है। इस शब्द के निरूक्ति मूलक अर्थ को स्पष्ट करे तो कह सकते हैं कि ''रसिया'' यानी जिसमें रस है, जो रस से भरा है। वह व्यक्ति विशेष भी हो सकता है, और गीतविशेष भी।

आज तक रसिया की प्रयोग परम्परा को देखते हुए इसके प्रमुख तीन घराने प्रचार में हैं:- गोवरधन-नन्द गाँव घराना, भरतपुर घराना और हाथरस घराना।

गोवरधन घराना

गोवरधन-नन्द गाँव घराना रसिया का सर्वाधिक प्राचीन घराना है। इसी घराने के रसिया विशेष रूप से ''ब्रज के रसिया'' के नाम से प्रचलित हैं। गोवरधन-नन्द गाँव, बरसाना और राधा कुण्ड इसके पुराने गढ़ हैं। इन स्थानों पर विशेष रूप से रसिया गीत-विधा की दो धाराएँ प्रचलित है- प्रथम आध्यात्मिक, जिनमें भक्ति रस की प्रधानता है, द्वितीय-लैकिक अखाड़ेबाजी। इन अखाड़ेबाजी के रसियों में, विशेषतया नन्द गाँव तथा बरसाने के रसियों में सम्बन्धों का वर्णन, भी राधा-कृष्ण का भाव लिए रहता है।

इस शैली के रसियों का गायन विशेष रूप से होली एवं हुरंगों के अतिरिक्त ब्रज के सभी रस-परक लोकोत्सव, नाट्योत्सव तथा लोक-नाट्यादि में बड़े उत्साह के साथ किया जाता है। रसिया के डेढ़ तुकिया, टुकड़िया, कड़क्का, साखी एवं चौपाई आदि छन्द प्राचीन हैं। परन्तु अब रसिया का काव्य-बन्ध काफी विकसित हो चुका है। इसमें तिकड़िया, चौकड़िया, बहार एवं पलट आदि अनेक प्रयोग होने लगे हैं।

भरतपुर घराना

विद्वानों एवं ब्रजवासियों की मान्यता है कि भतरपुर में रसिया नन्दगाँव-गोवरधन से ही आया है। जब भरतपुर के राजा ''गिरिराज जी'' की परिक्रमा (गोबरधन में स्थित) लगाते थे, तो उनके साथ रसिया-गायकों के ''टोल'' चलते थे। उनके साथ भरतपुर के लोगों की संगीत से रसिया भरतपुर और उसके आस-पास भी पहुँचा। भरतपुर जनपद की गूजर, जाट, ब्राह्मण आदि अनेक जातियों ने इस गीत विधा को नीई-नई धुनों के साथ लोकप्रिय बनाया। आज भी इस घराने की गायकी के सभी प्रकार के प्रयोग का जमघट करौली गाँव के सुप्रसिद्ध ''कैला देवी के मेले'' में देखा जा सकता है।

मथुरा जनपद की तरह ही भरतपुर जनपद में भी होली पर ''हुरंगा'' मनाने की परिपाटी है और इनमें भी वैसी ही रसिया गीतों की धमक रहती है। होली के अतिरिक्त सभी लोकोत्सवों में भी रसिया गीत उनके रस-संप्रेषण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम है।

भरतपुर घरानें में भी रसियों की अखाड़ेबाजी देखी जाती है, जिसमें आध्यात्मिक विषय में साथ-साथ अन्य रस-सामयिक विषय भी होते हैं। अखाड़े प्रतिद्वन्दी रंग-बिरंगी झण्डी एवं पंखे सजा-सजा कर साथ लाते हैं, जिन्हें ऊपर उठाकर गाते हैं। ''बाम्बे'' नामक विशेष वाद्य (बड़ा नगाड़ा) इनके अखाड़ों की शान होता है।

इन अखाड़ों में रसिया ठड्डा, जिकड़ी रसिया, चौकड़िया, तिकड़िया, रंगत की लाँगुरिया रसिया-बहर, 10-12 तुक के रसिया, कासगंजी बहर, संधोली रंगत के रसिया, मेवाती रसिया, रसिया बहर-बनवारी, एलानी रसिया एवं रसिया धनु खाज आदि के प्रयोग प्रमुख रूप से मिलते हैं।

इस घराने में अखाड़ेबाजी से युक्त एक और रसिया गायकों की श्रेणी है- ''मण्डला'' जो विशेष रूप से ''चंग''नामक वाद्य पर भक्तिपरक रसिया गाते हैं। प्रत्येक ''मण्डला'' में दस से चौदह लोग होते हैं।

हाथरस घराना

वस्तुतः ब्रज का ही पारम्परिक रसिया का यह ''डेढ़तुकिया तथा टुकड़िया'' प्रकार है। यह शैली हाथरस में आकर और अधिक विकसित हुई। वर्तमान समय में भी रसिया-गायकी के इस घरानें की ''अखाड़ेबाजी के दंगल'' सम्पूर्ण रात्रि चलते हैं। सर्वप्रथम इन्हीं अखाड़ोंबाजों ने रसिया गीतों के संकलन प्रकाशित किए।

हाथरस में पहले झूलना-कवित्त इत्यादि की अखाड़ेबाजी प्रसिद्ध थीं यहीं के कुछ अखाड़ेबाजों ने रसिया की अखाड़ेबाती की भी शुरूआत की, जिसमें सर्वप्रथम लल्लू एवं भजना तथा नत्था एवं चिरंती का नाम लिया जाता है। आज हाथरस में रसिया-गायकों के अनेक अखाड़े हैं कभी-कभी तो दर्शक-श्रोताओं के भी दो दल बनाकर अखाड़ेबाजों का सथ देते हैं।

रसिया-गायकी के उक्त तीनों घरानों की समृद्ध परम्परा अपने आप में लोक-मानस् की अमूल्य एवं सहज निधि है, जो आज भी तीजी और रसवर्धक है।

रसिया-गीत

कोई लै गयों चीर हमारे, जुलम कर डारे
अपने अपने वस्त्र खोल कै, पारन पै हम धर दीने
सब गोपिन ने जुर-मिल के, धँस जमुना में गोता लीन्हें
उछरत चीर लीखै नहिं गोपि, जमुना तीर किनारे। जुलम कर डारे।
देखत चारों तरफ गापिका, काई नजर नहिं आयौ
होकर नगिन जमुना में, निज मन सोच बहुत छायौ
नहिं कोई मानुष नहिं कोई बन्दर, कौने बादल फारे। जुलम कर डारे
मन्द-मन्द मुसकाय, कदम पर बैठ देख रहे बनवारी
ताही समय बजाई वंशी, चौंक पड़ी सब बृज नारी
देखौ सखी कदम पै, तो कूँ घन मोहन प्यारे। जुलम कर डारे
धन्य-धन्य बृज के बसिवे कूँ, धन तिहारे औगुन कूँ
दीजै चीर गहाय, नहीं गुन बरने जायँ तुम्हारे। जुलम कर डारे
मदमाती तुम भई गुजरिया, क्यों इलजाम लगावत हौ
यह तो फूल्यौ कदम हमारो, या कूँ चीर वतावत हौ
ऐसे चीर नाय हम देख, धीरै-पीरे-कारे। जुलम कर डारे

सन्दर्भ सूची

1. लोकरंग-दया प्रकाश सिन्हा, प्रकाशन उ.प्र. हिन्दी संस्थान, सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश।
2. सक्सेना, डॉ. राकेश बाला, ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा, प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र. संस्करण 1996
3. गर्ग, डॉ. लक्ष्मी नारायण, ब्रज-संस्कृति और लोक संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण नवम्बर 2009।